।। ॐ ।।

श्री हरि गुरु सच्चिदानन्दाय नमः

भारतीय समाज दर्शन

सामाजिक चिन्तन का सारगर्भित अध्ययन

राष्ट्रीय समाज का उत्थान और पतन क्यों और कैसे ?

लेखक -

स्वामी रामप्रकाशाचार्यजी महाराज 'अच्युत'

॥ ॐ ॥

भारतीय समाज-दर्शन

राष्ट्रीय समाज का उत्थान और पतन क्यों और कैसे?

सामाजिक चिन्तन का सारगर्भित अध्ययन





लेखक
स्वामी रामप्रकाशाचार्य 'अच्युत'

प्रकाशक
उत्तम प्रकाशन, जोधपुर

ॐ

मनुष्य का नित्य कर्म हैं—
ईश्वर आराधना धर्म हैं।
सन्ध्या न करना शर्म हैं—
तुम्हें याद हो के न याद हो॥

श्री

राम

॥ श्री हरि गुरु सच्चिदानन्दाय नमः ॥

भारतीय समाज दर्शन

का

शास्त्रीय विवेचन

समाज के उन्नति एवं पतन की रूपरेखा का एक अध्ययन

{माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान द्वारा सार्वजनिक पुस्तकालय के लिये स्वीकृत}

वेद, पुराण, इतिहास, स्मृत्यादि के प्रमाणों-उदाहरणों से शास्त्रीय लक्षणों तथा राष्ट्रीय विवरणात्मक कारणों द्वारा प्राचीन-अर्वाचीनस्थ सभ्यतापूर्ण स्पष्टीकरण एवं भारतीय समाज-रचना का मूल कारण तथा सैद्धान्तिक वर्ण-व्यवस्था शैली के वास्तविक तथ्य से लाभ व हानि-दर्शक प्रगतिशील दर्शन-शास्त्र

परिवर्द्धित एवं परिवर्तित संस्करण

लेखक/सम्पादक/समीक्षक

ब्रह्मलीन ब्रह्मविद्वरियान स्वामी उत्तमरामजी महाराज के परम आत्मीय शिष्य

तत्वज्ञ स्वामी रामप्रकाशाचार्य जी महाराज "अच्युत"

आचार्य सुबोध चरितामृत, पिङ्गल रहस्य, तिलक प्रबोध दर्शनादि दर्जनाधिक्य सत्साहित्यक ग्रन्थों के रचयिता एवं सम्पादक

श्री महन्त - उत्तम आश्रम (आचार्य पीठ)

कागा तीर्थ मार्ग, जोधपुर-३४२००६

प्रकाशक	दानवीर भक्तों के सहयोग द्वारा *स्वामी रामप्रकाशाचार्य जी महाराज "अच्युत"* श्री महन्त - उत्तम आश्रम (आचार्य पीठ) कागा तीथ मार्ग, जोधपुर-३४२००६
प्रतिरोध	पुनर्प्रकाशनादि सर्वाधिकार सुरक्षित उत्तम प्रकाशनाधिकार
	L5604/71 © **ISBN - 81-88138-06-1**
प्रसारण	भारतीय संस्कृति के दीक्षा पर्वोत्सव में समाहुति
चतुर्थावृत्ति	रामानन्दाब्द ७०२ · उत्तमरामाब्द १३५ · हरिराम वैराग्याब्द २४९ ईसवीतः २००४ · विक्रम २०६१ · संवत् शकः १९२६ कृष्णाब्द ५१३३ · सृष्टि संवत् १,९७,२९,४९,०९८
साहित्य सेवा	सहयोग राशि { **सजिल्द** रु. १२५/- ; **अजिल्द** रु. १००/- }
सुविधा	*अपने नगर के पुस्तक विक्रेताओं से मांगिये। पत्र व्यवहार जवाबी पत्र से हिन्दी में करें। वी.पी.पी. भेजना बन्द हैं। डाक खर्च सहित पूरी राशि अग्रिम प्राप्त होने पर पुस्तकें भेज दी जाती हैं।*
अक्षर चित्रण	अचलोत्तम कम्प्यूटर, जोधपुर © व फैक्स २५४७०२४
मुद्रक	**विष्णू ऑफसेट प्रिन्टर्स** १४८८, पाटोदी हाऊस, दरियागञ्ज, नई दिल्ली-०२

सम्पादक की श्यामानन लेखनी से -

भावाञ्जलि.........

मनुष्य नैसर्गिक भाव से समाज-प्रिय जीव हैं। वह स्वाभाविक जन-समूह में रहना हितकर समझता हैं। शिष्ट समाज का निर्माण होने से मानव के कर्त्तव्य व्यक्ति तक सीमित न रहकर उनका कार्य-सञ्चालन, योजना परिणाम, विचार श्रेष्ठत्व कुछ विशिष्ठ व्यक्तियों पर उत्तरदायित्व रखते हैं। उनसे ही समाज में नैतिक सुव्यवस्था रखने को तथा दण्ड-प्रथा का परिचालन होता है, जिनका उल्लङ्घन करने को स्वार्थ-भोगी व्यक्ति तत्पर हो, यह तो हास्यसिक अपघात ही कहा जायेगा। भारत जैसे ज्ञान-प्रधान देश में युगानुजीवी समाज का देश-काल परिस्थितियों-वश अचेतन्य-परिवर्तन, दुर्बलावस्था, रूढ़ि-अपवादों से संघर्षित होना भी स्वाभाविक श्लाघनीय नहीं अपितु दुर्भाग्य ही कहना होगा। खेल-स्थल (राष्ट्र) में आज मानवीय स्मरण-विचार, साधन शक्तियों को विकसित करने के शासनीय पद्धति द्वारा ह्रास-दासता के आचरित कुठाराघात, दैवी-प्रकोप्य भावीगर्त में गिर कर पोषित पशु बनाने का यत्न किया जाता हैं। उनके लिए पेटपूर्ति, कामतृप्ति और शयनागार की मोह-जनित तरङ्गिणी लहरों के अतिरिक्त करणीय साधन न रह जाना मानव-योनि की अवहेलना द्योतना ही नहीं प्रत्युत पशुत्व-यौन का प्रतीक हैं।

एक सुकुल-सुपुत्र वहीं हो सकता है जो अपने वृद्ध माता-पिता अग्रजादि असमर्थ को मार्ग-दर्शन में अङ्गुलि-इङ्गित का सूत्रपात करे। सनातन-धर्मीय वर्ग की कोंख में उत्पन्न, संस्कारित होने से समाज के भावी उजार को देख कर क्षुद्र अन्तः में आत्मीय कराहपूर्ण संवेदनात्मक टीस प्रवाहित हुई। हार्दिक करूण-क्रन्दन को मार्मिक शक्ति-सञ्चार द्वारा समाज तक पहुँचाने को मुझे अन्य कृतियों की अपेक्षा प्रस्तुत

दर्शन-शास्त्र-सामग्री-चयन करने में सर्वाधिक [1] श्रम करना पड़ा जो निरन्तर अनन्त दुस्तरताजनक कठिनाइयों को सहन करने में भीष्म-कर्त्तव्यलीन होकर साहस बटोर सका हूँ, वह भार-निर्वहन स्वरूप-समर्थक पाठकों को समर्पण हैं।

भारतीय समाज शास्त्र के गहन विषय को प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्यकार कवि-लेखकों ने बहुत रूपों में लिखा है। बहुश्रुत-प्रेरक, भाव-ग्राह्य पदचिह्नों व भक्तों के भावों द्वारा अलभ्य सामग्री सङ्कलित कर, मूक मनोवेदना को झंकृत वाणी से कुछ व्यक्त कर सका हूँ, किन्तु ऐसे भावी गर्द का निवारण करवाने में सूझ के दाता-प्रेरक लेखकों की हिन्दू जनता आभारपूर्ण यत्किञ्चतमात्र भी ह्रासमय भूलों के परिणाम को सुधारने की रक्षा में प्रयत्नशील रहे तो मनीषी प्रवक्ताओं का श्रम-सत्व श्रेय-सफलता का परिचायक हो सकेगा।

पुस्तक-गत विषय पाठकों को रूचिकर होगा या नहीं, यह लेखक की चिन्ता [2] का विषय नहीं है। वह जनता की रूचि-अरूचि का विचार करके नहीं लिखा जाता, जैसे रूग्णाशायी पथ्यापथ्य नहीं जान पाता, किन्तु रक्षक-सेवी का कर्त्तव्य अक्षुण्ण रहता है। वैसे ही विद्वत्जन अपने मान-बिन्दू के विचारों की निर्णय-धारणा **स्वान्त: सुखाय बहुजन हिताय** की लेखन-तूलिकाग्र से लिखने में अपना विवेचित सर्वस्व लगा देता हैं।

चरण धरत चिन्ता करत, भावत नींद न शोर।
सुवर्ण को ढूँढत फिरे, कवि, कामी अरु चोर॥

ध्येय की पूर्ति एवं युग-प्रचलित बुराइयों का उन्मूलन करने में सहायक, आर्ष ग्रन्थों के प्रमाणों-उदाहरणों से मञ्जित, समाजोन्नतिदायक

---

१. मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दु:ख न च सुखम्। - *नीति*
२. निंदस्तु नीति निपुणा: यदि वा सतुवन्त। लक्ष्मी: समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्॥
अद्यैव वा मरणस्तु युगान्तरे वा। न्यायात्पथ: प्रविचलन्ति पदं न धीरा:॥

साहित्य कलेवर में प्रतिपादित अनुबन्ध समाजसेवी, धर्मभावुकों के हितार्थ जब कि पुस्तक चार वर्ष पहले लिखी जाने पर भी कई कारणों से पाठकों के समक्ष प्रकाशन-व्यवस्था से अर्पित नहीं हो सकीं। जो शास्त्रीय विवेचित के रूप में समाज की हितचिन्तिका, सेविका, माँ दुर्गा के समान वरद-रक्षे सिद्ध होगी।

विश्वास हैं! तत्वज्ञ, धर्मवीर, दानवीर और कर्मवीर सर्व क्षेत्र के कार्यवाहकों को महत्वप्रदाय, विश्वशान्ति के साम्राज्य प्राप्त करने में सङ्गठित-शक्ति का प्रभुत्व प्रेरिका रहेगी। अस्तु :-

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समाद्धति सज्जनाः॥

पथिक का कहीं प्रमादवश पाँव रपट जाता है, तब दुर्जन देख कर हँसते है तथा सज्जन उसे सम्भाल लेते हैं।

दुर्जना दोषमादत्ते दुर्गन्धिमिव सूकरः।
सज्जनश्च गुणग्राही हंस क्षीरमिवाम्भसः॥

दुर्जन दोष ही ग्रहण करते है और सज्जन गुणग्राहक होते हैं। जैसे शूकर मल ही खाता है और हंस जल में से दूध को पी लेता हैं।

सीप बङ्क की अङ्क में, मोती बङ्का नाहिं।
करे परीक्षा सीप की, सो मोती परखे नाहिं॥

अतः विषयगत असामयिकता व अनियमता जो हृदय के तीव्र धारावाहिक हिलोरों को सम्भाल सकने की अक्षम्य दुर्बलताजनक वैविध्यता से रही अनेक त्रुटियाँ द्रष्टि में आयेगी, जिसे पाठक प्रेमी, जन-जनार्दन सुधार कर पढ़ेंगें।

निवेदक -

आचार्य विराम सदन
विक्रम सं. २०२४, रामनवमी

सन्त रामस्वरूपदास

चतुर्थवृति में एक बात....

प्रस्तुत भारतीय समाज दर्शन का चतुर्थ संस्करण लोकार्पण करते प्रसन्नता होती हैं कि प्रथम संस्करण (वि.सं. २०२४) से अद्यावधि पर्यन्त द्वितीय एवं तृतीय संस्करण (वि.सं. २०५३) विभिन्न पुस्तकालयों में तथा पुस्तक मेला दिल्ली द्वारा हाथों हाथ प्रसारित हो गई। तदुपरान्त पिछले काफी लम्बे समय से मांग होते हुए भी कई अपरिहार्य कारणों से जनता को नव प्रकाशन नहीं दे पाये। अत्यधिक मांग होने पर प्रस्तुत चतुर्थ संस्करण रूप से दिया जा रहा हैं।

यत्र-तत्र के प्रामाणिक निबन्धों, सङ्कलित साहित्य एवं पूर्वाचार्यों द्वारा लिखित विविध सम्पादकों की सामग्री से बहुत कुछ लिया गया हैं।

अतः उन सभी ज्ञात-अज्ञात विद्वानोंका कृतज्ञ हूँ और बाल बुद्धि से कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए असावधात् रही कर्णापाटव अशुद्धियों को सुधार की मङ्गलकामना करता हूँ। ज्ञात-अज्ञात जिन लोगों ने प्रस्तुत ग्रन्थ के लिखने या समय-समय पर प्रकाशन करने में सहयोग दिया, वे सब धन्यवाद के पात्र है।

आशा हैं पूर्व प्रकाशनों की भाँति पाठक-पाठी समादर करके यत्किञ्चित मात्र भी सामाजिक बुराइयों का त्याग एवं समायोजित सङ्गठन शक्ति का लाभ उठायेंगे और प्रकाशन में सर्व प्रकार से रही त्रुटि का सुधार करके पढ़ेंगे तथा देववृत्ति से सूचित करेंगे ताकि भावी प्रकाशन में अशुद्धियों का समादर्शन किया जा सकें। धन्यवाद।

उत्तम आश्रम (आचार्य पीठ)
कागातीर्थ मार्ग, जोधपुर-६
गुरु पूर्णिमा, २०६१

सतगुरु पाद पङ्कज चञ्चरीक
स्वामी रामप्रकाशाचार्य ''अच्युत''
श्री महन्त

स्थापित-२ अक्टूबर १९६७ ई०   कृणवन्तो ॐ विश्वमार्यम्   दिनांक २२/१०/७० ई०

क्रमांक ८   (उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा रजिस्टर्ड)   तिथि ८ मा०कृ० २०२७ वि०

आर्य सेवा संघ, रसूलपुर जाहिद

पो० रसूलपुर कनौनी (जानी) मेरठ (उ० प्र०)

शाखा कार्यालय : ३८२, खैरनगर, मेरठ शहर

सम्मान-प्रमाण-पत्र

श्री/श्रीमति/कुमारी सन्त रामप्रकाशाचार्य निवासी उत्तम आश्रम कागामार्ग जोधपुर को आर्य सेवा संघ/आर्य सेवा संघ द्वारा संचालित भारतीय वैदिक विद्वत्परिषद् इनके/इनकी भारतीय समाज दर्शन लेख/निबन्ध/पुस्तक/सम्पादन/योग्यता/सेवा से प्रभावित होकर इन्हें "धर्म वारिधि" की उपाधि से सम्मानित करता/करती है।

ज्ञानप्रकाश शास्त्री

ब्र० डॉ० ज्ञान प्रकाश शास्त्री
"आर्य कच्चाहारी"
B.Sc, M.B.B.S., विद्या वाचस्पति, साहित्य वाचस्पति, सिद्धान्तलंकार, साहित्य रत्न
अध्यक्ष :
आर्य सेवा संघ, रसूलपुर जाहिद
पो० रसूलपुर कनौनी (जानी) मेरठ

डॉ० ओमपाल शास्त्री "आर्य सचेत"
H.L.M.S, वैद्य विशारद, आ० सि० विशारद, साहित्य वाचस्पति, सिद्धान्तालंकार साहित्यालंकार, सत्यार्थ सिद्धान्त भास्कर
मंत्री :
आर्य सेवा संघ, रसूलपुर जाहिद
पो० रसूलपुर कनौनी (जानी) मेरठ
संचालक-भारतीय आर्य वीर मंडल, मेरठ

डॉ० मुन्शीराम शर्मा "सोम"
M.A. (हिन्दी) M.A. (संस्कृत)
P.HD, डी० लिट्
संचालक :
वैदिक शोध संस्थान, कानपुर

❁ कृतज्ञतापूर्ण समर्पण ❁

प्रस्तुत प्रतिपादित पुष्पार्चन-एक अन्तस्थ का क्रन्दननाद है,
जिसे मूर्त्त करने में जिनकी प्रमुख प्रसाद-प्रेरणा रहीं हैं।

सर्व श्री १०८ सौम्यशिवाङ्कन नैष्ठिक ब्रह्मचारी आचार्य **स्वामी उत्तमरामजी महाराज** जो ऋर्षि-प्रणालीय आदर्श-भारतीय दार्शनिक धर्म-ज्ञान, सिद्धान्त में सदैव स्वानुभवैक मार्ग-दर्शन द्वारा राष्ट्र-समाज के प्रत्यङ्ग पिपासुजनों का व्यक्तीय जीवन-वैकल्प दूर कर कल्याण-शान्ति देते रहे हैं एवं मेरे अनुकरणीय, ज्ञानदाता संवर्द्धक रहे।

तथा

आचार्यश्री के भौतिकात्मीय शिष्यानुजा श्रीमत्विदुषी **बाईरामजी** जो अपनी शैशवावस्था-पर्यन्त मातामही अन्नपूर्णादेवी विरक्तभाव-भक्ति में सदैव दत्तचित्त रहे। जिनकी व्यवस्था-पालन-रक्षण से बाल्यवृत्ति का अबाध्य प्राज्ञ-पोषण प्राप्त रहा।

और

आचार्यश्री के कृपापात्र-विश्वसनीय **भक्त भीखाराम भाटी 'सूत्रकार' क्षत्रिय** जो एक मात्र सन्तति को गुरु-सेवा में अर्पित करके अटूट धर्म-प्रयाण द्वारा अकल्पमषकाय उज्ज्वल संस्कारों से साहित्य-समाज-सेवा कराने में सृजिता रूप मे सफल रहें।

श्रद्धास्पद पूजनीय ऐक्यरूप चरणाम्बुज-स्थल में अपनी सूक्ष्म मोनवृत्ति संबल-संस्कार पाकर दूरदर्शिता-पूर्ण भीष्म-व्रत से पुस्तककार में ध्येय-प्रबन्ध को सप्रेम समर्पित कर सका हूँ, जिस से वृत्तानुवृत्ति विमल समाजजीवि, आस्तिकों के हृदय को शान्ति प्राप्त हो!



त्वदीयं वस्तु गोविन्दः! तुभ्यमेव समर्पये!!

समर्पक-शिशु
वि० रामप्रकाश वैष्णव ('राघवप्रसाद')

भारतीय समाज दर्शन

के शास्त्रीय विवेचन की सूची

भारतीय समाज – दर्शन

का लक्ष्य

भारतीय संस्कृति का संरक्षण

मैं विशाल साधु-समाज के लिए एक खतरा देख रहा हूँ। आज रूस और चीन में ईसाई और बुद्ध नहीं रहें, कहीं ऐसी स्थिति भारत में न आ जाय। क्योंकि आज देश में मध्यमवर्गीय व्यक्ति पिस रहे हैं तथा नफ़ाखोरी और काला धन बढ़ रहा हैं, इससे जनता मे असन्तोष हैं। इतिहास गवाह हैं कि प्रजा का असन्तोष कभी तूफान बन कर सबको नष्ट कर देता हैं।

भारत में यदि हिन्दू-धर्म नष्ट हो गया तो कुछ नहीं बचेगा। हजारों वर्षों से चली आ रहीं भारतीय संस्कृति आज खतरे में हैं। राजनीति, समाज, शिक्षण-संस्थाओं में सभी सदाचार खत्म हो गया हैं।

गुलजारी लाल नन्दा

भूतपूर्व परराष्ट्रमन्त्री, भारत सरकार

उपोद्घात (उपक्रम)

जीव-सृष्टि का विकास कार्य

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णाद् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

शुभारम्भ

सृष्टि की उत्पत्ति में [1] पूर्वात्पर ब्रह्म-माया-सम्बन्ध, जीव-ईश्वर-भेद, प्रकारान्तर में यह षड्ैश्वर्यक पदार्थ उत्तरमीमांसा के प्रतिपाद्य विवेचन से अनादि माने है । साथ ही तार्किक परिवर्तनशील प्रकृति के ब्रह्म से भिन्न पांचों को अन्त्य (शून्य) कहा है । किन्तु पातञ्जलिमत योग दर्शन ने धाराप्रवाह विश्व में ब्रह्म-जीव-प्रकृति त्रय को अनादि, अनन्त रूप माना है । इसी प्रकार पौराणिक संसार विविध प्रकारान्तर देव विधानों से मान कर श्री मद्भागवत्पुराण स्कन्ध २ में अध्याय ५ से समाप्तिपर्यन्त तर्कसिद्ध सनातन रूप को बल दिया है कि - प्रथम विष्णु (विश्व x अणु) पुराण के पुरूषोत्तम संकल्प से सूक्ष्म सृष्टि में आप ही जलरमन नारायण (नार x अयन) रूप से स्थित होकर अवान्तर ब्राह्मज सृष्टि का उद्भव हुआ । आर्ष सिद्धान्त मय रहस्य के विचार अध्ययन-मंथन (मनन) में विश्वोऽपक्रम परमात्मा और आत्मा-संयोग से त्रयगुण प्रकृति अर्थात् रजो संचित से इन्द्रिय [2] प्राणादि सर्व, सतो प्रवृति से देवेन्द्रिय [3], उपप्रान [4],

---

१. देखिये मनुस्मृति प्रथमोध्याय, पद्मपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, भविष्यपुराण, शिवपुराण तथा ऋग्वेदादि ।

२. ***कर्मेन्द्रिय ५*** – वाक, पानी, पाद, उपस्थ, गुदा । ***ज्ञानेन्द्रिय ५*** – श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिभ्या, घ्राण । ***महाप्राण ५*** – प्राण, उदयान, व्यान, समान, अपान ।

३. ***कर्मदेव ५*** – अग्नि, इन्द्र, वामन, प्रजापति, यमराज । ***ज्ञानदेव ५*** – दिग्पाल, वायु, सूर्य, वरूण, अश्विनीकुमार ।

४. ***उपप्राण ५*** – कूर्म, किरकल, देवदत्त, नाग, धनन्ज्जय ।

अन्तःकरण [1] चतुष्यादि समूह तथा तमोप्रमाद से तत्वान्वेषण आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, जो २५ प्रकृति के मूल [2] शब्द, स्पर्श, रूप, रस-गन्ध पञ्चमहातन्मात्राधार क्रमशः के पश्चातान्तर सूर्य-चन्द्र नक्षत्रमण्डल की रचनाक्रम से सूक्ष्म सृष्टियुत्पत्ति विधान, परिवादान्तर स्थूल विश्व में जीवों को शेष कर्मानुसार नाना प्रकार की चौरासी लक्ष [3] योनियों में उत्पन्न होना पड़ा है।

इतने वृहद् रचनात्मक चतुर्दशलोक [4] निर्माण कार्य में ईश्वरीय प्रेरणा से गायत्री सम्पुट में अभिभावित तथा निम्नस्तर लोक एवं सम्पूर्ण विश्व के रक्षक अष्ट दिग्गज [5], दशदिग्पाल [6], द्वादश सूर्य [7], आदित्य कला [8], षोड्ष शशिकला [9], अष्टवसु [10], रूद्र एकादश [11],

१. *अन्तःकरण ४* - मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। *अन्तःदेव ४* - चन्द्र, विधि, वासुदेव, रूद्र।

२. शोक, काम, क्रोध, लोभ, मोह। प्रसारण, धावन, वलन, चलन, आकूचन,। निन्द्रा, तृषा, क्षुधा, क्रान्ति, आलस्य। लार, स्वेद, मूत्र, शुक्र शोणित। रोम, त्वचा, नाड़ी, मांस, हाड।

३. नव लख जल के जन्तु कहाई , दशलक्ष पक्षी नभचर गाई।
लाख एकादश कीट कहाना, स्थावर बीस लाख परमाना ।।१।।
तीस लाख पशु योनि भाई, चार लाख नरासुर पाई।
'रामप्रकाश' भज मुक्ति समाई, नहिं तो लाख चौरासी जाई ।।२।।

४. *सात ऊपर के लोक :-* भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्।
सात लोक नीचे के :- अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल, पाताल।

५. ऐरावत पू., पूण्डरीक आ., वामन द., कुमुद नै., अञ्जन प., पुष्पदन्त वा., सार्वभौम उ., सुप्रतीक उ. प्र.।

६. इन्द्र पू., वरूण प., कुबेर उ., यम द., ईश ई., नैऋत्य नै., वायु वौ., अग्नि आं., ब्रह्मा ऊर्ध, शेष अर्ध।

७. विवस्मान, अर्यमा, पूषा, त्वष्ठा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरूण, मित्र, शक्र, उरूक्रम।

८. तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रूचि, सुषमणा, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी, क्षमा।

९. अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रवि, धृति, शशनि, चन्द्रिका, कांति, ज्योत्सना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा, पूर्णामृता।

१०. धर, ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अजल, प्रत्युष, प्रभास।

११. अज, एकपात, अहिर्बुधन्य, अपराजित, पिनाकी, त्र्यम्बक, महेश्वर, वृषाकपि, शम्भू, हरण, ईश्वर।

सप्त ऋषि [१], सप्त पर्वत [२], सप्त सिन्धु [३] सप्तधातु संवर्धन[४] पंचबाण [५], नवशक्ति [६], नवस्वर्ग भेद [७] आदि विख्यात ब्रह्माण्ड को निमिष के सहस्त्र भाग काल मात्र में रचना क्रम किया, जिसका पूर्ण वृत आर्ष ग्रन्थों में अन्यत्र देखें, यहाँ अपने ध्येयोद्देश्य में बढ़िये, यथा :-

साईं मेरा बानिया, सहज करे व्यवहार ।
बिन डांडी बिन पालड़े, तोले सब संसार ।।१।।
आगे पीछे सो घड़े, बलहीना जो होय ।
समर्थ सत चित सो प्रभु, पल में रचता सोय ।।२।।

यह भी वेद-प्रमाण से किए स्पष्टीकरण द्वारा केवल तिहाई भाग मात्र विभूति है । दो पाद सूक्ष्म गोप्य ही है । अस्तु इस सिद्धान्त में तार्किक स्पष्टता है कि मनोराज्य की भौतिक सृष्टि में सर्वप्रथम स्थूल जगत में जलजन्तु, वनस्पतियों के बाद ही पक्षी आदि उड़ने वाले नभचर एवं वनचर अरण्यवासी चौपाए पशु जो कुछ समय बाद सभ्य संसार के पालतू जानवर बने, क्रमशः उत्पन्न हुए । तत्पश्चात् मानव-दानव भेदतः मनुष्यों की सृष्ट्योत्पत्ति का विधान है ।

भारतीय जीवन रचना प्रसंग को जितना सनातन धर्म ग्रन्थों के

---

१. कश्यप, वशिष्ठ, यमदग्नि, गौतम, अत्रि, भारद्वाज, विश्वामित्र ।
२. हिमालय, निषध, विन्ध्याचल, माल्यवान, पारियात्रक, गन्धमादन, हेमकूट, । यह सात महा पर्वत है ।
३. ***सात सिंधु*** :- क्षीरोद, लवनोद, दध्युद, धृतोद्, सुरोद्, ईक्षूद, स्वादूद ।
४. ***सात धातु*** :- रस, रक्त, मांस, मेद, माता की । अस्थि, मज्जा, शुक्र पिता की ।
५. ***पंच काम बाण*** :- सम्मोहन, उन्मादन, शोषण, तापन स्तम्भन ।
६. वैष्णवी, ब्राह्मणी, रौद्री, माहेश्वरी, नारसिंही, वाराही, इन्द्राणी, कार्तिकी, सर्वमंगला ।
७. पापवास, तामिस्त्र, अन्धतामिस्त्र, महारौरव, कुम्भीपाक, असिपत्रवन, शूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, सन्दंश, तप्तभूमि, वज्र, कण्टक, शाल्मलि, पूयोद, प्राणरोध, लालभक्ष, सारमेयादन, अवीचिरयपान, क्षारकर्दम, रक्षोगण, शूलप्रोत, दन्तशूक, अवनिरोधन, पयौवर्तन, सूचीमुख, यह २५ भेद नर्क के है ।

आर्ष उत्कृष्ट ऋषि-महर्षियों द्वारा प्रणीत वैदिक साहित्य ने स्पष्ट किया है, उतना आज तक कोई मतान्तर पक्षवाद के समर्थक मनीषी स्पष्टीकरण नहीं कर सके है, किया भी है तो केवल एकाध युक्तिसंगत काल्पनिक संकीर्ण ध्येय से ही जो तर्क की कसौटी पर सही नहीं ठहर सकता, किन्तु इधर सनातन वैदिक साहित्य ने सर्वोन्मुख कलातूभद्र प्रत्येक दृष्टि से ज्ञान क्षेत्र पर अपने अमिट प्रभाव की खोज पूर्ण रहस्य की छाप डाल कर कर्म, उपासना, ज्ञान, वेदत्रयी पूर्ण पथ को सर्व सुलभ कर विकेन्द्रीकरण व्याप्य बनाया है। इस का विवरणात्मक रूप प्रस्तुत लेख्य के लेखक ने जनहित की खोज के ध्येय से पूर्व ही नाना मत मजहबों का साहित्यान्वेषण पठन, तुलनात्मक तारतम्य समझा है। अपने दीर्घकालीन जीवन के प्रतिक्षण में बहुश्रुतीय अनुभव कसौटी पर निर्णय लिया है। विभिन्न मतान्तरों के बहुभाषी मननशीलों के तर्कों को समझा, उनके वैचित्र्य साहित्य का अध्ययन किया, किन्तु कहीं भी ऐसा बहुउद्देशीय विशाल युक्तियों का सुधास्त्रोत, साहित्य संगम का भान नहीं हुआ।

उल्लेखनीय मुख्यतः एक उदाहरण प्रस्तुत होगा कि ईसाई मत के पाठ्य ग्रन्थ बाइबल के सफल पठन से कई प्रमाण-पत्र प्राप्त करने पर उनके प्रोफेसर से पत्र द्वारा उनके ही मत-शास्त्राधार पर तार्किक निर्णय प्रवाह में पन्द्रह प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सके है और न भविष्य में भी कभी वास्तविक विस्तीर्ण सिद्धान्त से सन्तोषजनक उत्तर देने का शक्य विश्वास ही है, ऐसे ही कुरान का सिद्धान्त भी पढ़ा है। परन्तु हमारे सनातन प्रवृद्ध पूर्वज आर्य आचार्यों ने शास्त्रीय ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, तार्किक, दार्शनिक आदि कई सिद्धान्तों का रहस्य दिया है, वह विश्व के अनन्त पुस्तकालयों में संकलित-रक्षित नगण्य प्रस्तुत है।

वैदिक संस्कृति का जितना विस्तार क्षेत्र सार्वभौम ज्ञान का भण्डार

अनन्त श्री श्री वैष्णव अग्रद्वार स्तम्भ संत दासोत आचार्य प्रमुख दर्शन



श्री शाखोपशाखा मूल "वैरागी" श्री आचार्य श्री दर्शन

श्री वैष्णव अग्रद्वार स्तंभ, संतदासोत आचार्य-परम्परा संत दर्शन



श्री वैष्णव गुरु शिष्य पीढि सप्त आचार्य दर्शन



प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री रामप्रकाशाचार्य जी महाराज 'अच्युत'



पूज्यपाद स्वामी श्री रामप्रकाशाचार्य जी महाराज 'अच्युत'

श्रीमहन्त : उत्तम आश्रम (आचार्य पीठ), कागातीर्थ मार्ग, जोधपुर-342 006. दूरभाष : (0291) 2547024





प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री रामप्रकाशाचार्य जी महाराज 'अच्युत'

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति

उत्तम आश्रम (आचार्य पीठ)
जोधपुर

है, उतना ही उनका प्रत्येक विषय गूढ़ तत्वमय विवेचनात्मक गहनता का समुद्र है, चाहे प्रचीन या अर्वाचीन स्थल में गद्य हो या पद्य । शब्द सामञ्जस्य राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की गौरव-आभा में देखिये -

है अन्धकार वहाँ, जहाँ आदित्य नहीं है ।
है वह मुर्दा देश, जहाँ साहित्य नहीं है ।।

मानव सृष्टि में सब से पूर्व तिब्बत भूमि (पूर्वात्पर आर्यावृत) में उत्पति मानना इतिहास-साक्ष्य युक्तिसंगत है । वहीं से संकीर्णता पार बाहर विशाल वृहत्भूसंवर्तन अंबर-वितान में विस्तृत रूप से सभ्यता के प्राच्य अग्रजानुपूर्व विभिन्न दिशावर्ती भूभागों में बसने लगे थे । यह इतिहास गर्भ से संगतसिद्ध है कि इस देश का प्राचीन नाम आर्यावर्त था । उस समय हिमालय इस देश का माध्यम था । यह देश दक्षिण में समुद्र तक फैला हुआ था, उत्तर में यह हिमालय को पार कर चीन तक माना जाता था । महाराज दशरथ का चक्रवर्ती राज्य तिब्बत और चीन को लेकर एक चक्रवर्ती असीम तक था । भारत आर्यावर्त युगानुजीवी व अखण्डराष्ट्र सप्तसागर मेखला पृथ्वी, सुमेरू से सिंधु, कन्याकुमारी तक था । हिंगलाजादि उनकी सीमा रक्षणिक थे एवं चक्रवर्ती सम्राट वीरभोग्या वसुन्धरा का शासन आर्य शासक ही करते थे। उस समय के एकछत्र राज्य के अन्तर्गत आधुनिक अफगानिस्तान, ईरान, चीन, काबुल, रूस, जापान इत्यादि समस्त अंगभूत थे ।

अस्तु, इधर "भाषा विज्ञान" [1] की देन दैविक तपस्चर्या की उन्नति रूप मूक-वदन को इंगित किया । नव व्याकरण से वाणी आदान-प्रदान में स्वर-व्यञ्जन, सन्धियों के ज्ञान में देव वाणी अर्थात् मातृ भाषा मूल ईश्वरीय-प्रदत्त प्रेरणा से सात्विक लक्षणीय महात्मा, विदुष महानात्माओं ने

---

१. मुख से निकलने वाली व्यक्त ध्वनियों अथवा सार्थक शब्दों और वाक्यों का वह समूह जिसके द्वारा मन के विचार दूसरों पर प्रकट किये जाते है, ऐसी भाषा का साधन ।

शुद्ध संस्कारों द्वारा मञ्जी हुई संस्कृत सभ्यता की व्यवस्था का प्रचार किया। फलतः उन महर्षियों की महत्कृपा से ज्ञानस्वरूप, वेद [१], वेदांग [२], उपवेद [३], सिद्धान्तशास्त्र [४], स्मृत्यादि विद्याओं [५], का क्षेत्र बढ़ा और समय के साथ गति वर्द्धित इतिहास प्रांगण की गुणबाहुल्यता का भण्डार अथाह हुआ, जो आज तक निरन्तर गतिशील है।

❀ विभिन्न दृष्टियों में मानव का सृष्टि राज्य ❀

जहाँ यूरोपियन शास्त्र के अनुसार आदि मनुष्य पशुवत था और उसमें राज्य की कल्पना परीक्षणों से उत्तरोत्तर उन्नति कर रही मानी जाती है। वहाँ भारतीय कल्पना इसके सर्वथा विपरीत है। आदि मानव धर्म का ज्ञाता था और धर्म के अनुसार परस्पर रक्षा और पालना करता था, किन्तु लोग जब काम, क्रोध, लोभ, मोहादि वश राग में फँस गए, तब धर्म का नाश हुआ और ब्रह्मा या मनु को व्यवस्था स्थापित करने के लिये राजा और राज्य का विधान बनाना पड़ा।

यूरोपियन मीमांसक नास्तिकता के स्तर पर यह मानते हैं कि इस सृष्टि की उत्पति और विनाश तथा संचालन केवल मात्र घटनावश है। इसमें कोई ज्ञानवान शक्ति का हाथ नहीं है। भारतीय विचारक आस्तिकता से आर्षपूर्ण एक सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ सर्वव्यापक के करने से ही इसकी उत्पति

---

१. मुख्य वेद चार है - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद।

२. वेदांग छः है - शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, ज्योतिष और छन्द (पिंगल) शास्त्र।

३. उपवेद चार है - आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा अर्थवेद (शास्त्र)।

४. उक्त चार वेद, छः वेदांग, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण (जो अठारह है), चार उपवेद, यह अठारह शान्ति-सिद्धान्त शास्त्र माने है और इनमें मीमांसा, न्याय, वैशेषिक, योग, सांख्य, वेदान्त यह षट् सिद्धान्त शास्त्र कहे है।

५. वैद्य, गान, ब्रह्मज्ञान, नट, अश्व, तरण, धनु, वेद।
ज्योतिष, व्याकरण, कोक, रसायन, जूआ, चोरि बहुभेद॥ *रा. प्र.*

तथा इसका प्रलय मानते है। शास्त्रीय विकासवाद को दो भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम विभाग में जल सहित पृथ्वी पर वनस्पतियों और जीव-जन्तुओं की उत्पति का वर्णन है। इन जीव-जन्तुओं की सृष्टि-विकास कथा में मनुष्य की उत्पति और विकास का भी वर्णन है। इससे पूर्व आध्यात्मिक सूक्ष्म सृष्टि का विकास उत्पत्ति-विकास क्रम "**एकोऽहं बहुस्याम**" के आधार पर हुआ था।

योरोपियन [१] नास्तिकवाद मानते है कि जब पृथ्वी पर उचित तापक्रम तथा जल वायु एवं स्थल निर्माण हो गया तब इस पर प्राकृतिक शक्तियों के प्रभाव से सब से प्रथम सूक्ष्म छोटे एक कोषाणु जीव की उत्पति हुई। यह कैसे हुआ ? इस विषय में विज्ञान मौन है, इसका उत्तर विज्ञान के पास कुछ भी नहीं है। उन कोषाणु जीवों के जीवन में तीन लक्षण माने जाते हैं :- (१) पाचन क्रिया (२) विरोधी परिस्थिति में रक्षण (३) जनन (संतानोत्पत्ति), इसमें बाहरी एक दूसरे के विरोधी तत्वों से लक्षणों के अनुसार शारीरिक तथा मानसिक विकास तथा परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों का अन्तिम परिणाम विकसित ज्ञान सर्वश्रेष्ठ कृति मनुष्य है।

सृष्टि उपक्रम और प्राणियों के विकास में भारतीय विचारकों का मत सर्वथा भिन्न है कि बिना बीज के जीव-सृष्टि नहीं होती।

(१) बीज मात्रं पुरा सृष्टम् (महाभारत शांति पर्व १८४-१५)
(२) न बीजाज्जायते किञ्चित् (महाभारत शांति पर्व २९६-१२)
(३) नाँ कुरोत्पतिः अविजात् (चरक संहिता सूत्र स्थान)

इस प्रकार के अनेकों प्रमाण आर्ष ग्रन्थों में मिलते है, जिन से यह स्पष्ट होता है कि कोई भी जीव बिना जीवाणु के बीज का आश्रय लिये उत्पन्न नहीं हो सकता। भारतीय शास्त्र इस पृथ्वी पर प्रथम जीव के आगमन का वर्णन करते है।

---

१. यह उद्धरण प्रायः पं० गुरूदत्त की लेखनी '*धर्म संस्कृति और राज्य तथा पूर्वग्रह*' नामक पुस्तक से संकलित है।

(१) काल्वाली कृता हेयं तर्हि पृथिव्यास् (मा. शत. २-२-४-३-)
(२) अथवै तर्हि अल्पा पृथिव्यासीद् उजाता औषधयः (का. शत. १-२-४)
(३) ऋक्षादृवा इयमग्रआसीत् । तस्यां देवारोहिण्यां वीरूधोऽरोहयन् (मैत्रेय संहिता १-६-६-२)
(४) अथ वा इयं तर्हि ऋक्षासीद् अलोमिका तेऽब्रुवन तस्मै कामायालभामहे यथास्यामौषधयश्च वनस्पतयश्च जायन्ति इति (मैत्रेय संहिता २-५-५-२)
(५) त इमे लोका अभवन् ऋक्षा अनुवजीवनीयाः ।
कथमिमेलोकालाम गृहीयुः । (जै. ब्रा. २-२४४)

अर्थात् पृथ्वी [१] आरम्भ में गंजी थी, अल्पा थी । इस पर औषधियाँ नहीं थी । अल्पा का अर्थ है जिस स्थल पर औषधियाँ उत्पन्न होने योग्य व्यासक्षेत्र कम हो तथा जल अधिक हो । आरम्भ में पृथ्वी लोम-रहित थी । लोम का पृथ्वी के सम्बन्ध में अर्थ है वनस्पतियों से (ऋृक्षा) देवों ने रोहिणी नक्षत्र से लताओं को उस ऋृक्षा पर लगाया । देवों से अर्थ अंतरिक्ष में उपस्थिति पूर्व निहित प्राकृतिक गुप्त शक्तियों से हैं । वैदिक साहित्य में देव से अर्थ अग्नि, वायु, इत्यादि प्राकृतिक शक्तियों से लिया जाता हैं । इसी प्रकार के अन्य भी अनेकों प्रमाण मिलते हैं कि प्राकृतिक देवों ने कहीं से जीव तत्व लाकर यहाँ ऋृक्ष पृथ्वी पर आरोपित किया ।

अन्तरिक्ष में अनेकों प्रकार की रश्मियाँ सुक्ष्म और अद्रश्य और प्राकृतिक शक्तियाँ विद्यमान रहती है । उनके आश्रय से ही जीव एक नक्षत्र (लोक) से दूसरे नक्षत्र में जाता आता है । भारतीय मीमांसा में सब जीव

---

१. पृथ्वी का व्यास लगभग ८००० वर्ग मील है, लेकिन उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक लम्बाई लगभग ७९०० मील है । पृथ्वी की परिधि २५००० मील है और लगभग ६०००० ००० ००० ००० ००० ००० ००० टन भारी है । वैज्ञानिक खोज के सिद्धान्तानुसार १,९७,२९,४९,४५३ वर्ष अद्य पृथ्वी को उत्पन्न हुए बीते है । पौराणिक आधार से सृष्टियुत्पति आदि देखिये हमारे द्वारा निर्मित

रामज्ञान वेदान्त सार ब्रह्माण्ड वृक्ष पट सृष्टि ज्ञान तथा
अवधूत-ज्ञान-चिन्तामणि, मूल्य लागत मात्र ।

द्रष्टव्य :- त्रिकाल रहस्य (विश्व उपक्रमोऽपसंहार) अप्रकाशित पद्यात्मक

विराट पुरुष से उत्पन्न हुए है। यहाँ इस प्रसंग को विस्तार देने की आवश्यकता नहीं है। अपने लक्ष्य में आगे बढ़िये, यदि देखना ही हो तो पढ़िये वेदान्त मीमांसा या भागवद् महापुराण स्कन्ध ३ अध्याय ५ श्लोक १-२ तथा अध्याय ६ श्लोक ५,७,८। ईश्वर के अस्तित्व को मानने वाले तो एक बुद्धिगम्य-साक्ष्य बात मानते है वो है उपनिषद् सिद्धान्त की मान्यताएं।

पुरुषऽएवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उत्तामृत त्सश्येशानो यन्दने नाति रोहति ।। यजुर्वेद ३१-२

व्यापक परमात्मा पूर्ण जगत जो है - था अथवा होगा, सब प्रकार के प्राणी तथा अन्न को उत्पन्न करता है और जो अमृत तुल्य तत्व है, उस का स्वामी सर्व व्यापक परमात्मा है और वही सर्व रचयिता है। परन्तु प्रकृति को ही सब कुछ मानने वाले है प्रथम जीव की उत्पत्ति विवेचन को समझा नहीं सकते। वस्तुतः यह सब

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न संभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।
कर्म ब्रह्मोद्भव विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।। *(गीता ३।१४-१५)*

सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते है, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है, वर्षा यज्ञ से होती है और यज्ञविहित कर्मों से उत्पन्न होने वाला है। कर्म समुदाय को वेद (ज्ञान) से उत्पन्न और वेद (ज्ञान तत्व) को अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न जानो। इस प्रकार के घटनात्मक रूप से पंचकोशमय (अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय, आनन्दमय) जगत स्वरूप को मानना निश्चित हो जाता है, जिसे ज्ञानमार्गी, योगपन्थियों, कर्मतन्त्र के वरिष्ठ प्रवक्ताओं ने अति विशिष्ठ रूप से रचनात्मक मान्यता से साहित्य रूप दिया है।

सर्व भूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।। *गीता ९/७*

कल्पों के अन्त में सब प्राणी मात्र प्रकृति में लय हो जाते है और कल्पों के आदि में प्रकृति से फिर से वह उत्पन्न होते है ।

'कल्प भेद हरि चरित सुहाये, भाति अनेक ऋषीजन गाये' के लक्ष्य का उद्‌बोधन मात्र है क्योंकि यह सर्वमान्य है कि कोई काल-क्षण सृष्टि से वञ्चित नहीं था, साथ ही पुष्टिदायक प्रमाण समय की निश्चय वद्धता का परिमाण पुष्ट है । जो अन्य किसी मतान्तर में ऐतिह्य नहीं है, किन्तु आर्य सनातन वैदिक साहित्य डंके की चोट घोषणा करता है कि १७,२८,००० वर्षों का सतयुग । १२,९६,००० वर्षों का त्रेतायुग । ८,६४,००० वर्षों का द्वापुरयुग । ४,३२,००० वर्षों का कलियुग । कुल चत्वारयुग वर्ष का योग ४३,२०,००० हुए । ऐसे हजार युगों की एक रात्रि काल तथा इतना ही जिस विधाता का एक दिन जिसे "कल्प" कहते है । ऐसे में एकाध नहीं अपितु श्वेत कल्प, वाराह कल्प, मन्यु कल्प, ब्रह्म कल्प [1], ज्योतिष कल्प, अहिर्बुधन्य कल्पादि ३६० कल्पों का वर्ष, ऐसे (ब्रह्मा) शत वर्षायु पाकर वह सृष्टा भी निर्वाण हो जाय पूनर्पि नवीन ब्रह्मा की सृष्टि होती है, इस प्रकार नियमित धारा प्रवाह सदैव चलता रहता है ।

अथ युगानां व्यवस्था - चतुर्युगसहस्त्राणि ब्राह्मणो दिनमुच्यते, तेषु चतुर्दश मनवो भवन्ति । तन्नामानि १ स्वायम्भुवः, २ स्वारोचिषः, ३ औतम, ४ तामसः, ५ रैवतः, ६ चाक्षुषः, ७ वैवस्वतः, ८ सावर्णिः, ९ दक्षसावर्णिः, १० ब्रह्ममसावर्णिः, ११ धर्मसावर्णिः, १२ रूद्रसावर्णिः, १३ देवसावर्णिः, १४ इन्द्रसावर्णिः । तत्रैकैकस्य मनोरेकसप्ततिमहायुगानि भवन्ति ।

महायुग प्रमाण - विंशतिसहस्त्राधिक त्रिचत्वारिंशल्लाक्षमिताब्दाः, एवं

---

१. इस प्रसंग को समझने के लिए पढ़िये - **"आचार्य सुबोध चरितामृत"** ६/१,२,३ एवं अन्य साहित्य **उत्तम प्रकाशन** द्वारा प्रकाशित ।

चाक्षुषपर्यन्तं षण्मनवो गताः, वर्तमान वैवस्वतमनुः सप्तमः । तत्र सप्तविशंतिमहायुगानि गतानि । वर्तमानमष्टविंशतितमं महायुगम् ।

चार युग एक हजार बार निकल जाने पर ब्रह्माजी का एक दिन होता है, इन्हीं दिनों के मान से ब्रह्मा की आयु १०० वर्ष होती है । इस समय ब्रह्मा की आयु के ५० वर्ष व्यतीत होकर ५१ वें वर्ष के प्रथम दिन का उदय होकर १३ घटी ४२ पल ३ विपल ४३ प्रतिपल व्यतीत हो चुके है । ब्रह्माजी के एक दिन में उपर्युक्त १४ मनु होते हैं और एक मनु में ७१ महायुग होते हैं । एक महायुग के सौर मानुष वर्ष ४३ लक्ष २० हजार है, इस प्रकार चाक्षुष पर्यन्त ६ मनु निकल चुके और ७वां मनु वैवस्वत मन्वन्तर चालू है । इस मनु में २७ महायुग निकलकर २८ वां महायुग चल रहा है ।

इस गतिविधि चेष्टानुसार वर्तमानकाल [1] के ब्रह्मा की आयु भाग के ५० वर्ष बीत चुके हैं । अब इकावन वर्ष का प्रथम कल्प (दिन) चल रहा है जिसमें से यह अठाईसवीं युग चौकड़ी का कलियुग अपनी आयु के विक्रम संवत् २०६० तक ५१०४ वर्ष पा चुका है अर्थात् ब्रह्मा के एक दिन में [2] १४ इन्द्र व मनु व्यतीत होते हैं तो आज तक सात इन्द्रराज्य मनु-मन्वन्तर हो चुके हैं । अब आठवाँ सावर्णी नामक मनु चल रहा है, इस में वर्तमान सृष्टि को उत्पन्न हुए २,९६,०८,५३,०७० वर्ष ब्रह्मा की संध्या सहित भोग्यमान वर्तित हो चले है ।

अस्तु ऐसा कोई भी कालमान विश्व में पुष्टिकर इतिहास गवेषकों

---

१. लेखक की आर्ष ग्रन्थों द्वारा विवेचित **"त्रिकाल रहस्य-विश्वोऽपक्रम उपसंहार"** नामक पुस्तक का उद्धृत अंश । पूर्ण विस्तार पढ़ने के लिये मंगवाईये ।

१. इन्द्र, विश्वभुक, विपश्चित, विभु, प्रभु, शिखि, मनोजव, तेजस्वी, बलिर्भाव्य, त्रिदिव, सुशान्ति, सुकीर्ति, ऋतधाता, दिवस्पति, यह चौदह इन्द्र के नाम है (देवी पुराण-काल व्यसव्याध्याय) ।

को कदापि मिलना संभव हो ? जैसा कि वैदिक साहित्य बताता है। इसी तरह यह भी तर्कसंगत इतिहास सिद्ध है, जिस को विदुष इतिहास गवेषक इसे पुष्ट नहीं कर सकेंगे, जिसमें कभी आर्य (हिन्दू) बाहर से भारत में आये अथवा धर्म के बाद जन्य होकर निकला हो। अतः इस विवादित विषय को संक्षेप में यहीं रखकर अपने ध्येय की ओर अग्रसर होना प्रासंगिक होगा। प्रसंगवश आगे के पृष्ठों में इस का कुछ स्पष्टीकरण किया जायेगा।

उन्हीं पूर्वजों द्वारा मानव संसार में आदि ऋषियों से प्रदत्त ज्ञान ऐश्वर्य, आर्य सभ्यता का स्रोत बहता हुआ प्राणियों में संचरण (उद्भव) हुआ। उस सिंधु के घेरे की पृथ्वी (सिन्धु मेखला) तटस्थ का प्रतिरूप सिन्धुदेशस्थ परिवर्तित का अपभ्रंसित शब्द ही सम्भवतया हिन्दू का बोधक शब्द हुआ। यह सम्बोधन नामकरण देशिक मात्र है, जो आज तक रूढ़िजनक अपवाद में ही प्रचलित नहीं अपितु असभ्यता का शब्द मान कर चलते है, किन्तु वस्तुतः मूल सभ्यता का आदर्शसूचक शब्द है। वह बोधक रूप कथन करने में आज विदेशी छायानुसरण प्रभावी धर्मावडम्बरी मात्र पुतला रह कर हास्यसिक सम्बोधित होने में लज्जा का और इण्डियन कहने में स्व गौरव का भान करते हैं।

वह विश्वविदित आर्य धर्म (जाति) अर्थात् श्रेष्ठ, सभ्य जो धर्म संस्कार से रहित (पतित) होने पर अनार्य, दस्यु, यवन, दानव आदि शब्दाकरण से सम्बोधित-सूचकता थी। जिसके प्रमाण मूल वेद-मंत्र साहित्य में सर्वत्र उल्लेख है, तात्पर्य यह कि हमारे पितामह आदर्श महर्षियों ने पूर्वा-प्राचीन काल में सारी मानव जाति को कर्म-गुणों से आर्य और दस्यु (अनार्य) इन दो भागों में विभाजित किया। आगे हम उन दोनों मार्गों के प्राचीन रूप के सम्बन्ध में कुछ विवेचन करेंगे।

आर्य-अनार्य वर्ग भेद

आर्य शब्द विदेशी नहीं, संकीर्ण समाज या जाति-प्रथा का वाचक नहीं हैं अपितु भारतीय है, विशाल ज्ञान, ऐश्वर्य, समाज-शुद्धता का लक्ष्य शब्द है । यह वैदिक देव भाषा व्याकरण के धातु प्रत्यय (ऋ=ण्यत्) से निष्पन्न शब्द है, जिसके अर्थ हैं - धार्मिक, धर्मशील, श्रेष्ठ-कुलोत्पन्न, पूज्य, श्रेष्ठ, उदार चरित, शान्त, उत्तम आदि ।

कृतेन (वृत्तेन) हि भवेदार्यो धने न विद्यया ।

अर्थात् - चरित्र के प्रभाव से ही आर्य बनता है, धन या विद्या ऐश्वर्य के द्वारा नहीं । **'सदाचारेर्णव नाराणामार्यत्वम्'** सदाचार के द्वारा ही लोगों को आर्यत्व प्राप्त होता है । आर्य का भावार्थ - महाकुल, कुलीन, साधु, सज्जन ही है ।

कर्त्तव्याचरन् कामम कर्त्तव्यनाचरन् ।
तिष्ठति प्रकृताचारे स तु आर्य इति स्मृतः ।। - व्यास स्मृति

'जो कर्त्तव्य कर्म का आचरण करके तथा स्वेच्छानुरूप अकर्त्तव्य का आचरण न कर के प्रकृत आचार में स्थित रहता है, वहीं आर्य या आचार्य है ।'

वैदिक भाषा में आर्य शब्द का अर्थ कहीं भी कोई जाति-वाचक नहीं है । आर्य नाम की कोई पृथक् जाति कभी नहीं थी, परन्तु यदि किसी से जाति को आर्य नाम का वैशिष्ट्य प्रदान किया जाय तो वैदिक (भारतीय) ही एक मात्र वह विशुद्ध "आर्य" जाति है ।

किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो ।
नाशिरं दुहे न तपन्ति धर्मम् ।। ऋग्वेद ३।३।२६४

कीकट देश अनार्यों के निवास का वाचक है, जो मगध देश का प्राचीन नाम है ।

कीकटोनाम देशोऽनार्य निवासः (यास्कः निरुक्ते)

जो लोग देव, पितर और मनुष्य का उपकार नहीं करते, जिनका ऐसा विश्वास है कि इहलोक के सिवाय दूसरा कोई लोक नहीं है, जो अग्निहोत्रादि यज्ञ नहीं करते, जो तपश्चर्या से विमुख होते है, वे नास्तिक है, वे अनार्य है, ऐसे लोग जिस देश में रहे उसका नाम ही कीकट देश है। –(भार्गव शिवराम किंकर "उत्सव")

नास्तिक और अनार्य लोग श्रद्धाहीन होते हैं। यज्ञ, दान, हवनादि क्रिया से क्या फल होता है ? खाओ ! पीओ !! इस लोक के सिवाय दूसरा लोक नहीं है। अनार्य लोग ऐसी असभ्य बातें करते है। उनके द्वारा गाय के पञ्चगव्य से कोई काम नहीं होता, क्योंकि गो-घृत का यज्ञ में व्यवहार नहीं होता, अतएव वैदिक धर्म संस्कार, क्रिया में विश्वास न रखने वाले एवं आध्यात्मिक सिद्धान्त के क्रिया-उत्थान रहित जो कोई चाहे किसी भी जाति, वर्ण या धर्म मत के समर्थक हों, उनकी आकृति वर्ण गौर, सुन्दर व प्रतिष्ठा से नपी-तुली हो, परन्तु वह आर्य नहीं कहला सकते।

"मूढ़ बाहु रूपज्जननाँ या लोके जातयो बहिः ।
मलेच्छ वाचश्चार्य वाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ।। – मनु स्मृति १०।४५

ब्राह्मण, क्षत्रियकुल आदि में भी जो लोग क्रिया लोप आदि दोषों से बाह्य जाति भावापन्न हो जाते हैं। वह चाहे म्लेच्छ भाषा में बोलते हों या भारतीय (आर्य) भाषा में बातें करते है, उनको दस्यु ही कहना चाहिए। यह मनु का मत है। आर्य (हिन्दू) होना या रहना सहज नहीं है। ब्रह्मावर्त्त (वेद या वेदज्ञ ब्राह्मण जहाँ पुनः पुनः जन्म ग्रहण करते है) आर्यावर्त्त (आर्य या साधु, वेद-धर्म और आचार में निष्ठावान् पुरुष जिस देश में पुनः पुनः जन्म लेते है) आदि शब्दों की व्युत्पत्ति से ज्ञात होता है कि भारत ही वैदिक (आर्य) जाति का मूल निवास और

उत्पत्ति स्थान है ।

इस भारतखण्ड आर्य-भूमि का एक नाम कुमारिका खण्ड भी है जो कुमारिका देवी तथा कन्याकुमारी नदी के नाम से पड़ा होगा, जैसे भरत से भारत आदि । जैसे कि -

वर्ण व्यवस्थितिरिहैव कुमारिकाख्ये शेषेषु चान्त्यजना निवसन्ति सर्वे

द्रष्टव्य :- सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय

उत्तर में हिमालय से दक्षिण में कुमारिका-मन्दिर तक भारत एक ही देश के रूप में प्राचीन काल से विख्यात था । जो लोग आर्य/द्रविड़ का भेद उठाते है, उन सबको इस विषय पर विचार करना चाहिए ।

विजानी हयार्यान् ये च दस्यवो बहिष्मते रन्धया शासद् व्रतान् (ऋग्वेद १।५१।८)

इत्यादि मंत्रों से भान होता है । वेद विधेय लक्षणों के माननीय धर्म व्रत को पालन करने वाला आर्य है और सदाचार-रहित नीच पुरुष का वाचक दस्यु (अव्रती) या अनार्य (असाधु, असज्जन, दुष्ट) है । वह चाहे किसी भू-भाग (देश) और जाति-धर्म, मत-सम्प्रदाय का समर्थक है । जैसे कि -

"अकर्मा दस्युरभिनो अन्य व्रतो अमानुषः ।।" वेद

इसी प्रकार से दस्यु के लिए प्रायः अयज्वा (यज्ञ-क्रियाहीन) अथवा असुन्वन आदि विशेषण शब्द प्रयोग में आए है । जिनके अन्तस्थ यज्ञादि शुभ कर्म न करने का भाद है उन्हें अमानुष, दस्यु (दानव) पशु मृगादि नामों से शास्त्रकारों ने लक्षित कराया है । जैसा कि -

आहार निद्रा भय मैथुन च सामान्यमेतत्तत्पशुभिः नराणाम् ।
धर्मेहि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभि समानाः ।।

-नीति धर्म सुभाषित

यथा :- निद्रा भोजन भोग भय, ये पशु पुरुष समान ।
नर न ज्ञान निज अधिकता, ज्ञान बिना पशु जान ।।

-सारुक्तावलि

पुनश्चः - *येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।*
ते मर्त्युलोके भूवि भार भूता मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति ।।१।।
साहित्य संगीत कलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छ विषाणहीनः ।
तृणं न खादन्नपि जीवमानः ....-भर्तृहरि शतक

ऐसे अनार्य दस्युओं को भी आर्य बनाने का प्रयास करना चाहिए । यथा -

इन्द्र वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तो अराव्णः ।। (ऋग्वेद ६।६।५)

वेद का आदेश अति स्पष्ट है कि जिसके अनुसार चलते हुए हमारे पूर्वज आर्य आचार्यों ने लाखों म्लेच्छों और दस्युओं को आर्य धर्म की दीक्षा-शिक्षा दी । किन्तु आज के हिन्दू अपने रूढ़ि-प्रस्थ रीति-रिवाजों में अपने भाई-भाई से मिलते संकोच कर रहे हैं । अफसोस है कि आज आर्य सन्तान पाश्चात्य शिक्षा एवं उच्छृंखिल अपनी हठधर्मी से वेद-आज्ञा की अवहेलना कर रहे हैं । अस्तु -

अपध्वस्ता दस्युभूता भवन्ति ये ब्राह्मणान् क्षत्रियाः सन्त्य जन्ति ।

- महाभारत शान्तिपर्व राजधर्म ७३।४०

यहाँ भी प्रमाणित है कि पतित और क्रूर प्रकृति के लोगों को ही दस्यु नाम से पुकारा जाता था और कोई इस नाम की पृथक जाति होने की कल्पना तक करने के लिए कोई प्रमाण नहीं हो सकेगा । ***"आर्य ईश्वरः पुत्रः"*** अर्थात् ईश्वर पुत्र को आर्य कहते है एवं "***उभयो पेताऽऽर्य्य जातिः***" (मीमांसा दर्शन) पुनश्चः "***अर्तु सदाचारि तु योग्यः इति आर्यः***" जो चतुर्वर्णाश्रम से युक्त है, तथा न्याय-पथ पर चलने

वाली सदाचार-शील एवं कर्त्तव्यपरायण, अकर्त्तव्य-विमुख और शुद्ध आचारवान जाति के विशेष लक्षण शास्त्रों ने आर्य जाति के वाचक कथन किए है।

कर्त्तव्यमाचरन् कार्यमकर्त्तव्यमनाचरन् ।

तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य इति स्मृतः ।। - व्यास स्मृति

इसी प्रकार भगवती कहती है कि -

धर्म शक्तैर्हि मे पूर्णाः कला शोड्षः संख्यकाः ।

आर्य जातीय धर्मेषु विद्यन्ते विवधर्षभाः ।

आर्य जात्यितोऽन्यासामस्त्याद्यः शिक्षको गुरूः ।

आर्य धर्मोऽन्य धर्माणां जनकः पालकोऽस्ति च ।। - शक्तिगीता २।३६-३७

मेरी धर्म-शक्ति की पूर्ण शोड्ष कलाऐं आर्य जाति के स्वधर्म में विद्यमान है, इसलिए आर्य जाति जगत की अन्यान्य विभिन्न जातियों की आदि शिक्षक तथा गुरु है, आर्य (हिन्दू) धर्म अन्यान्य धर्म-मतों का पालक-पोषक है। तात्पर्य यह है कि संसार भर में जितने भी मानव धर्म-मत है, उनमें साधारण धर्म के जो अंग हैं, जिसे वह मत (मज़हब) सर्वस्व मान कर चलते है, वह तो आर्य धर्म का केवल एक अंग या उपांग मात्र ही है। इसका पूर्णतः विस्तार यहाँ शास्त्रगर्भ विशाल न होने से नहीं किया जा सकता, इसके लिए स्वतन्त्र साहित्य की आवश्यकता है। किन्तु यह निश्चित डंके की चोट कहा जा सकता है कि वेद-प्रशस्य हिन्दू धर्म अधूरा या पंगु नहीं, अदृष्ट नहीं, आँख-मिचौनी अथवा मैस्मैरिज्म (अध्यात्म-शक्ति) का झपका नहीं, अपितु वह सनातन धर्म अनादि सुदृढ़ व सांगोपांग दश अंगों-प्रत्यांगों के ऐक्य से सम्पन्न व विशाल है।

यथा :- *'धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।*

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ।।' - मनु स्मृति ६।९२

धैर्य्य, क्षमा, मनैन्द्रिय वश करना, चोरी का त्याग, तन, मन, वाणी

व्यवहार की पवित्रता, इन्द्रिय शक्ति-निग्रह, बुद्धि का विचार ग्रहण, विद्यामृत के शुद्धाचरण ज्ञान को धारण करना, सत्य का पालन करना और क्रोधादि तृष्णा सहित तामसिक वृत्तियों का सर्वथा त्याग करना। यह धर्मांग लक्षण सब सनातन वैदिक धर्म के ही मूर्त स्वरूप का कृपा-फल है। जिसकी एक-एक परछाई में विश्व के सहस्रों समानान्तर कल्पना-धर्म चल पड़े हैं। यही साधारण धर्म, पूर्ण विज्ञान और विशेष आदि धर्मों के अत्यन्त सूक्ष्म विचारों से पूर्ण है। इसी कारण से वैदिक धर्म सर्व अंगों से सम्पन्न, सम्भ्रान्त तथा सर्व उन-धर्मों का आदि स्रोत व व्यक्तित्व का मार्ग-दर्शक एवं कल्याणकारक है। सनातन आर्य धर्म सर्वलोक-हितकारी, सर्वमान्य और सार्वभोम (चक्रवर्ती) है। इन दस अंगों-युक्त धर्म की धारणा से आर्य जाति-जन के लक्षणों से जो विपरीत हैं, वहीं हिन्दू शास्त्र के अनुसार अनार्य, दस्यु और कृतघ्नी है। यथा -

तद्विपरीतानार्य्यः (पूर्वमीमांसा) अर्थात् जिस समाज का किसी कार्य में आध्यात्मिक लक्ष्य नहीं है, जो लोक-परलोक सुधार "**धर्मेति धारय**" धारणा से रहित, युक्ति, मुक्ति, भुक्ति, भक्ति-नीति से विरुद्ध कार्य करती है और लक्ष्यविहीन इह लौकिक स्थूल शरीर के वैषयिक काम विलास के लिए ही जीने-मरने का कार्य करती है, वह सब अनार्य जाति है। उनका सृष्टि के आदि काल से ही कोई विशिष्ट स्वतन्त्र विधान नहीं हो सका है और न अभी भी कोई प्रमाणिक सिद्धान्त है।

वैदिक ऐतिह्य के अनुसार विश्व के सभ्यादि से ही पृथ्वीपति आर्य जाति सब से अति प्राचीन रही, अर्थात् आर्य के भीतर से संसार भर की सब वण(जाति) व मानव-धर्म की अन्य जातियाँ निकली हैं। प्राचीन साहित्यिक इतिहास मूल के मनन करने से ज्ञात होता है कि स्वयम्भू मनु और शतरूपा मानव समाज के व्यवस्थापक प्रथम राजा-रानी रहे है।

उनकी संतान मनुष्य [१] द्वारा बसी हुई सारी पृथ्वी भारतवर्ष है । मनु भारतवर्ष अर्थात् पृथ्वी का आदि सम्राट है, परन्तु वैदिक सभ्यता का आधार और आदि भूमि भारतखण्ड या कुमारिका खण्ड है । पहले वैदिक सभ्यता पृथ्वी भर में व्याप्त थी जो अकर्मण्य, दया, उदारता और अपनी भूलों से क्रमशः शनैः शनैः संकुचित होती रही ।

हिन्दू शब्दार्थ एवं ऐतिहासिक सृष्टि

उस मनु [२] के पुत्र प्रियव्रत ने ही पृथ्वी-मेखला को सप्तद्वीप जम्बू [३], प्लक्ष, पुष्कर, क्रौञ्च, शाक, शाल्मलि और कुश आदि सात

---

१. शरीर, मन और चिदाभास आत्मा के संयोग को मनुष्य कहते है और मनुष्यों के समूह का नाम समाज तथा उनके निवास को राष्ट्र कहा जाता है । व्यक्ति उन्नत और श्रेष्ठ होगा तो समाज (राष्ट्र) भी उन्नत होगा । व्यक्ति सभ्य, सुशील और शान्ति प्रिय होगा तो राष्ट्र भी शान्तिप्रिय, सभ्य और सुशील हो सकेगा ।

२. भारतखण्ड इसी के अंतर्गत एक भूभाग है जो **"भरत राज्येति भारतः"** की उक्ति के कारण ही सम्बोधित हुआ । नव खण्डों के नाम - भरत, इलावृत, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य और कुश, जो जम्बूद्वीप में है । प्रियव्रत की निधि को पैत्रिक वितरण खण्डों के नाम से किया गया है ।

३. साधो भाई ! मानव सृष्टि रचाई ।।टेर।।
कश्यप संतति सृष्टि सारी, एक पिता-सुत भाई ।।टेर।।
ब्रह्मा मानस सृष्टि में उपजे, सप्त ऋषि गण राई ।
सात स्त्री कश्यप ऋषि के, ताते सृष्टि फैलाई ।।१।।
'दिती' से दैत्य जगत के उत्पन्न, 'अदिती' से है देवताई ।
'विनीता' से खेचर पक्षी वृत, 'दनु' से दानव पाई ।।२।।
'कद्रू' से सरीसृप वर्गादि, 'सुरभि' गौ महिषाई ।
'शरमा' से भये पशु श्वानादि, नाना सृष्टि विगताई ।।३।।
जलचर थलचर नभचर नाना, चार खानि में पाई ।
लख चौरासी नाना योनि, सृष्टि भेद बताई ।।४।।
शास्त्र पुराण इतिहास गवैषक, बहुत भांति से गाई ।
"रामप्रकाश" वेद मत सृष्टि, कल्प भेद विधि लाई ।।५।।

भागों में अपने पुत्रों के लिये विभाजन कर दिया था, जो जम्बूद्वीप के नौ खण्डों को आजकल उत्तरी-दक्षिणी एशिया एवं यूरोप आदि खण्डस्थ महादेश इन्हीं महाद्वीपों के अन्तर्गत है। यही भू-मण्डल आर्य राजाओं का वीर-भोग्य भण्डार अधिकार-भुक्त स्थल था। यहाँ का विज्ञान, कला-कौशल गोप्य या प्रकट आचार-व्यवहार को जान कर सभी देश अनुकरण-पथिक रहते थे। यहाँ की सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान और विज्ञान विश्व-प्रसिद्ध रहा है। सृष्टि के आरम्भ से लेकर कुछ सहस्रों वर्षों के पूर्व समय-पर्यंत हमारा सार्वभौम चक्रवर्त्य राज्य यही वसधा-मण्डल था। अन्य देशों के माण्डलीक छोटे-छोटे राजाओं ने यहाँ की आधीनता को स्वीकार किया था और हमारे आर्य धर्मानुसार शासन शैली की व्यवस्था को चलाते थे। इसी रहस्य से शास्त्रकारों ने समस्त पृथ्वी को एक कुटुम्ब की कथनीय उपमा **"वसुधैव कुटुम्बकम्"** की संज्ञा दी थी।

कर्नल **सम्राट अलकाट** साहब ने तभी तो कहा था कि "भारतवर्ष से ही आर्य गणों ने मिश्र देश में जाकर अपनी सभ्यता और शिल्प कला का विस्तार किया था।" इसी तरह प्राचीन तत्ववेत्ता प्रसिद्ध **पण्डित ब्रगसेव साहब** ने कहा था कि "अति प्राचीन काल में स्वेज केनाल पार (सिंधु) होकर आर्य जाति के दल ने नील नद के तीर पर उपनिवेश स्थापन किया था।" इन्हीं संस्कृत शब्दों का अपभ्रंश भी वर्तमान की नाना भाषाओं के शब्दाधार बने। यह हमें **"भाषाविज्ञान"** के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है।

संस्कृत साहित्य में **आर्य** को छोड़कर **हिन्दू** शब्द का कहीं पर कोई उल्लेख वेदों या उपनिषद वाक्यों, स्मृतियों और पुराणों में भी नहीं आया है, किन्तु तन्त्र शास्त्रों में झलक आती है। यथा -

'हीनं च दुषयतीत्येव हिन्दु रित्युच्यते प्रिये' इत्यादि ।

- मेरुतंत्र पृ. २२

"हीनं दुषयतीति हिन्दुः । पृषोदरादि त्वात्साधुः । जाति विशेषः ।"

- शब्द कल्पद्रुम

"हिन्दु हिन्दू हिन्दवः" (मेदिनी कोषः) हिनस्ती दुष्टान् इति हिन्दूः"

तात्पर्य यह कि जो हिंसा को दूषित कार्य मानता है, वह अहिंसावादी **हिन्दू** है । यह जाति-क्रियावाचक संज्ञा है और यह भी व्युत्पति हो सकती है कि आततायी दुष्टों का नाश करे, वही **हिन्दू** है इत्यादि प्रमाणों से आर्य जाति के लिए **हिन्दू** शब्द बहुत गौरवशाली प्रतिभान्वित है, यद्यपि **आर्य** शब्द गुणवाचक और **हिन्दू** शब्द वर्गवाचक है, तद्यपि हिन्दू शब्द आर्यों का बोधक है । वास्तविक प्राचीन भारतीय आर्यों की वंश-परम्परा ही वर्तमान में **भारतीय हिन्दू** है । व्यक्ति-वर्ग, गुण-गुणी, नाम-नामी का तादात्म्य सम्बन्ध होता है, अर्थात् **आर्य और हिन्दू** शब्द एकार्थवाची है । निष्कर्ष यह है कि हिन्दू शब्द राष्ट्र-सूचक समझना चाहिए और आर्य को गुण-कर्त्तव्य सूचक । जिसके बिना मानव मानवता के लक्ष्य ज्ञान से शून्य पशु तुल्य है ।

प्रश्न यह होता है कि फारसी में हिन्दू काफिर को कहते है । जैसे कि -

"हिन्दुदर महाविरे फारसियाँ व मानी दुज़द व रहाजन अयद ।"

द्रष्टव्य :- गया सुल्लोग़ात

यहाँ काफिर, चोर, डाकू का बोधक शब्द हिन्दू है, यह छोड़कर **उत्तर** में यह समझिये - यह फारसी भाषा में इसी अर्थ में प्रयोग आया है, यह कोई द्वेषवश नहीं । यह तो प्रत्येक भिन्न-भिन्न भाषाओं के क्षेत्र में एक ही शब्द के विभिन्न अर्थ होते है । केवल इतना ही नहीं अपितु एक ही भाषा में एक शब्द नाना अर्थों में प्रयुक्त होता है । जैसे कि -

भाषा	-	शब्द	-	अर्थ-विभिन्नता
संस्कृत	-	*सैन्धव*	=	*घोड़ा, नमक*
हिन्दी-संस्कृत	-	*विलोम*	=	*सर्प, वरुण, कुत्ता, रहट*
		विविक्त	=	*पवित्र, निर्जन, त्यागी*
इसी तरह - *अग्रेंजी*	-	*सन्*	=	*पुत्र, सूर्य, वर्ष-काल*
		डीयर	=	*मित्र, प्यारा, हरिण*

इस प्रकार के हजारों शब्द हैं जो देश-काल से नाना अर्थों के लिए काम आते है, तो इस से क्या हम अपना हिन्दू नाम छोड़ देंगे ? नहीं ! कदापि नहीं !! हाँ यदि किसी ने अरबी भाषा में चोर, डाकू या काफिर ही के अर्थ में हमारा नाम हिन्दू रखा है और हमने उन लक्षणों में पड़ कर स्वीकार कर लिया तब तो अवश्य ही हमारे लिए घातक और कलंक की बात होगी । परन्तु हम इस अर्थ वाले नहीं है अपितु हिन्दू नाम तो बहुत प्राचीन और गौरवान्वित है। । यह हिन्दू नाम हमें कोई विदेशी, विधर्मी और अनार्यों की देन नहीं है । मुसलमानों के इस्लाम धर्म से पूर्व भी यह हिन्दू शब्द आज से पाँच हजार वर्ष पहले पारसियों की मुख्य धर्म-पुस्तक **"दशातीर"** में मिलता है । यथा -

"अकनुविरहमने व्यास नाम अज हिन्द आमद बसदान के अकिल चुनानस्त"

द्रष्टव्य :- जरतुश्त की ६५ आयत

व्यास नामक एक ब्राह्मण हिन्द से आया था, जिसके समान कोई विद्वान नहीं था । आगे ही लिखा है -

"चूं व्यास हिन्दी बलख आमद गस्तस्य जरतुश्तरा बखवाँद"

द्रष्टव्य :- जरतुश्त की १६३ आयत

जब हिन्द का रहने वाला व्यास आया, तब ईरान के राजा गस्तास्प ने व्यास से बातचीत करने के लिए जरतुश्त को बुलाया और उनके पूछने पर व्यास ने कहा कि **"मन मरदे अम हिन्दी नेजारे"** मैं हिन्द में पैदा

हुआ एक पुरुष हूँ । आगे फिर उल्लेख है कि '***वैव हिन्द वाजगशते***' फिर वह वापिस हिन्द को लौट गये ।

इन शब्दों से स्पष्ट है कि व्यास के समय में भी ईरान वाले इस देश के भाग को **हिन्द** ही कहते थे । साथ ही स्वयं व्यास ने भी अपने देश का नाम **हिन्द** और अपने को **हिन्द** का निवासी कहा है । इस विशिष्टता से ज्ञात होता है कि इस्लामों ने हमारा नाम हिन्दू नहीं रखा अपितु यह शब्द ही प्राचीन और गौरव-प्रभा है । अतः हिन्दू और आर्य शब्द में कोई दो मतभेद नहीं हो सकते ।

– स्वामी अचलरामजी विरचित '**हिन्दू धर्म रहस्य**' से उद्धृत अंश

इस प्रकार शास्त्रीय ज्ञान ऐतिहासिकता से करने पर अति स्पष्ट हो जाता है कि संस्कारों-क्रियाओं सहित सात्विक लक्षणों मय आस्तिकता से आर्य को सात्विक और इसके प्रभाव में अनार्य जाति को तामसिक रूप माना है ।

मूलतः इस मानव वंश की पौराणिक सृष्टि का उद्भव अति सूक्ष्माणु में कमलोद्भव ब्रह्मा से होकर वैवस्त मनुवादि तथा कश्यप ऋषि के गृहस्थवास स्त्रियों से त्रिगुणात्मक चौरासी लक्ष नाना प्रकार की देव, दानव, मानव जातियों का जन्म व प्रचार सर्ग-विसर्गादि लक्षणित पुराण आधार की उत्पति का प्रमाण है । वस्तुतः मानव-परम्परा पीढ़ी में सूर्य वंश, अग्निवंश और चंद्रवंश इन तीनों की प्रधानता रहते हुए मूल से शाखा-प्रशाखा के रूप में आज तक सहस्रों गोत्र प्रचलित हो चुके है किन्तु मूलाधार पूर्वज पितामह धातरादि उक्त त्रय प्राकृतिक देवावतार ही है, जिनकी आज सब मतावलम्बी किसी न किसी रूप में पूजा-उपासना कर रहे हैं ।

जाति एवं वर्ग भेद – सृष्टि में जीव मात्र का जन्म भी चौरासी लाख जन्म गत जातियों में होता हैं, जो प्राकृतिक जगत-जाति बदल नहीं सकती, जैसे – घोड़ा, गधा, कुत्ता, बिल्ला, ऊँट इत्यादि । उसी तरह चौरासी लाख

जन्म जातियों में मानव (मनुष्य) भी जन्म जाति का एक प्राणी है, उन नारी और नर के दो वर्ग भेद है। मानव समाज में गुण-धर्म स्वभाव लक्षणों से जाति नहीं अपितु वर्ण (वर्ग) भेद करके समाज व्यवस्था बनाई है। इस सन्दर्भ में हमारे **'तिलक प्रबोध दर्शन'** द्वितीय भाग में 'मानव जाति जन्म से या कर्म से' नामक उल्लेख में पढ़े।

शास्त्रों में आर्य शब्द का प्रयोग जाति-प्रजाति के सन्दर्भ में कदापि नहीं हुआ है अपितु श्रेष्ठ व्यक्ति के लिए हुआ है - महर्षि वेदव्यासजी का कथन है कि -

ज्ञानी तुष्टश्च दान्तश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः ।

दाता दयाजुर्नम्रश्च स्यादार्यो ह्यष्टभिर्गुणैः ॥ - स्मृति

अर्थात् जो ज्ञानी हो, सदा सन्तुष्ट रहने वाला हो, मन को वश में करने वाला हो, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, दानी, दयालु और नम्र हो, वह आर्य (हिन्दू) कहलाता है। आर्य वह है जो भूमि पर सत्य, अहिंसा, पवित्रता, परोपकारादि व्रतों को विशेष रूप से धारण करते हैं। इन लक्षणों की समाज से अपेक्षा रखते हुए आज के तथाकथित जातिवाद का यहाँ खण्डन और कुछ लिखा गया हैं।

आज का मानव समाज अनेक भागों में विभाजित हो रहा है और कल्पना के रूप से जाति नाम खेमों में अपना संगठित स्वरूप खो गया है। इससे सनातन धर्म का सबल शास्त्रीय ज्ञान केवल सीमित रेखा के अन्दर ही बँटता जा रहा है। जो समाज को निर्बल प्रायः नष्ट करने में धकेल रहा है अर्थात् शास्त्रीय सामाजिक स्वरूप आज रूढ़ि ग्रस्त रस्म-रिवाजों में ढ़र्रा गया है। इसका भावी परिणाम क्या होगा ? इसे समझना प्रत्येक हिन्दू नागरिक का कर्त्तव्य है, इसी उद्देश्य को आगे लाने हेतु यदि जन्म से जाति वर्ग मानते है ? तो अतीत काल में **कई आर्यों में अनार्यों** का

जन्म जैसे विश्रवा ऋषि के घर में रावणदि व उग्रसेन के कंश पृभृत्य का ऐसे ही अनार्यों के घर आर्यों का जैसे हिरणाक्ष के घर में प्रहलाद का होना इत्यादि अनेक महर्षियों सहित महापुरुषों का सारा इतिहास बदलता है, किन्तु पूर्व ऐतिहासिकता को सजीवता देने में वर्तमान पीढ़ि को गुण-कर्म के कर्त्तव्य-धर्म की धारणा रखनी होगी। यही हिन्दू समाज का अपरिर्वतनीय सनातन-स्वरूप सुखद एवं उन्नत हो सकेगा। इसके विपरीत जन्म से जाति-वर्ग के कारण फूट पस्त भाव अरोचकता देते जाते है, जो अवश्य ही घातक परिणाम देंगे। इसी प्रसंगों में विचारणीय है कि - जाति क्या है ? जाति जन्म से या कर्म से ? इत्यादि प्रश्न चिन्हों को शास्त्रीय समाज रचना में मौलिक समझना है। कई अतीत महापुरुषों के जन्म गत इतिहास के साथ कहीं-कहीं वंशावलि कार्य-उदाहरणों को दरसाने में अनुलोम-प्रतिलोम एवं पुनरावर्ती विषयगत कई विसंगतियाँ आई हैं। जिसका सुधार विचारों के प्रवाहों में पाठक करें तथा जन्मगत जाति की मान्यता रखने वालों के सामने गंभीरता लिये पूर्व इतिहास प्रमाणों को चिन्तनीय प्रश्न बिन्दु बनाकर अपूर्व मौलिकता पूर्ण प्रस्तुत किये है। जैसे कि -

कालीदास कौन होते ? भोज कन्या कौन होती ?
ताके संग ब्याह कीने, कौन जाति मानिये ।।
डंक गुरु नद्य-राव, भड़ली से ब्याह किये ?
कौन हुति भड़लाणी, जन्म तो बखानिये ।।
जाम्भोजी थे कौन सुत ? माता ताकी कौन हुती ?
राव रिछपाल कौन ? माता कौन ? जानिये ।।
दक्ष प्रजापति कौन ? सती को विवाहे शिव ।
सन्त "रामप्रकाश" ये, इतिहास छानिये ।।

वेदोक्त सनातन आर्य-संस्कार

मनुष्य पूर्व जन्म के कर्मों तथा इस जन्म की शिक्षा-दीक्षा तथा संगत से **संस्कार** संचय करता है । ये संस्कार मन पर पड़ते है और मन उन से मार्गदर्शन पाता हुआ शरीर से कार्य करता है । मन के साथ बुद्धि का समन्वय कुछ तो माता-पिता की देन होती है और कुछ विद्या से विकास पाती है । वह संस्कार प्रत्येक हिन्दू मात्र के लिए पालन करने योग्य अति आवश्यक है । भारतीय शास्त्रों में **संस्कारों** की बहुत महिमा है, जिसके अनुसार आर्ष वेदोक्त गुण-कर्म ज्ञाता शोड्ष-संस्कारों को पालन करना प्रत्येक आर्यों का ध्येय, जीवन, उद्देश्य, कर्त्तव्य तथा वर्ण-व्यवस्था द्वारा समाज-रचना का आधार माना जाता रहा है । जो उन्नतिमय समाज-शास्त्र - विहित धर्म पालन करते हुए लोक-परलोक सुधार करने में मुख्य आधारशिला है ।

संस्कारों में शुभ कर्मों के पालन से वीर्य-संसर्ग-जनित कुलक्षण संग-दोष शान्त होकर शुद्ध धारणा शक्ति प्राप्त होती है । अतः प्रत्येक हिन्दू आर्य नामधारी को इस कर्त्तव्य के पालन में प्रथमिकता देनी चाहिए, जो उपादेय है तथा श्रेयस्कर-साधिकार है ।

१. गर्भाधान - पच्चीस वर्षायु का पुरुष और अट्ठारह वर्षों की कन्या हो, तब रज-वीर्य धातु पुष्टिकर, उत्तम, सबल होता है । इस से पूर्वावस्था का वैवाहिक-यौनाकर्षण, अप्राकृतिक संबन्ध हानिकर, पतन-निर्बलता का द्योतक है, जो सर्वथा त्याज्य है ।

यौवना दम्पति (स्त्री-पुरुष) भी सदा ऋतुकाल में कोक (रतिरहस्य) विज्ञान की रीति से समागम करें, यही गृहस्थ में शील (ब्रह्मचर्य) पालन है । स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतु-गर्भाधान काल "मासिकधर्म" से प्रति माह में आदि के सोलह दिन है, जिस में रजो दर्शन दिवस से लेकर चार दिन

रजस्वला अशौचावस्था के रहते है । इन में संयोग (भोग) का त्याग करना चाहिए अन्यथा कई महारोग, शोकादि को उत्पन्न करता है । अतः त्याज्य तथा बल, शक्ति, धन-क्रिया का नाशक होने से सर्वथा व्यर्थ है ।

स्त्री पुरुष संयोग में रात्रि-प्रमाण

प्रथम की चार रात्रियाँ तथा ग्यारहवीं, तेरहवीं रात्रियें वर्जित है । शेष दश रात्रियों में पर्व रात्रि, जैसे चन्द्र-सूर्य ग्रहणादि, त्यौहार रात्रि जैस होली, दीपावली, अमावस्या, पूर्णिमा, एकादशी, रामनवमी, शिवरात्री, जन्माष्टमी, नवरात्रि, नव वर्षारम्भादि, श्राद्धदिवस, यज्ञोत्सव, जन्मगाँठ दिवसादि का त्याग करके शेष रहे दिनों की मध्य रात्रि के बाद प्रदोष काल के प्रथम प्रहर में ऋतुदान अथवा सन्तानोत्पति (गर्भाधान) की चाहना करने वाले पति-पत्नि भाव से स्त्री-पुरुष शुद्धचित्त सात्विकता से सौभाग्य को धारण करे ।

मन वांछित पुत्र-पुत्री पाने के योग

पुत्र की इच्छा रखने वाले को रात्रि-प्रमाण का विचार करके त्याज्य दिनों के अतिरिक्त समरात्रि (रजोदर्शन से) छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं, और सोलहवीं, यह छः रात्रियें क्रमशः उत्तरोत्तर सुसन्तानदाता उत्तम है । माता पिता का भक्त, श्रेष्ठ पुत्ररत्न के पाने में सर्वोत्तम **सोलहवीं रात्रि** ग्राह्य है, अन्य उससे न्यूनतम भाव की है, सबसे कनिष्ठ छठीं है ।

कन्या की चाहना करने वालों को सोच-विचार से पूर्व विधि द्वारा विषम रात्रियें अर्थात् पाँचवीं, सातवीं, नवमी, और पन्द्रहवीं, यह चार रात्रि विशेषातिक्रम करके हितदायक है । सुलक्षणवती सुशील कन्यारत्न को प्राप्त करने में **पन्द्रहवीं रात्रि** सर्वश्रेष्ठ है । इसके अतिरिक्त मासिक कपड़ों से पहले की चौदह रात्रियों में, दिन में, प्रातः-सायं सन्ध्या-समय

में कभी भी ऋतुदान या संयोग-भोग नहीं करना चाहिए, याने धन, काँति, बल-शक्ति, सम्पति का नाशक, तपस्या का हरणकर्त्ता होने से सर्वथा निषेध है ।

पुरुष के वीर्याधिक्य से पुत्र और स्त्री के रज आर्तवाधिक्य से कन्या तथा सम होने से नपुंसक वा वंध्या (बांझ) स्त्री, अल्पवीर्य एवं क्षीणतायुक्त शुक्रविहीन निर्बल वीर्य से गर्भ नहीं ठहरता, यदि रह भी जाय तो अपक्व ही गिर (स्राव) जाता है । ऐसी स्थिति में उचितोनुचित वैद्य विद्वान का परामर्श लेना हितकर होता है । गर्भाधानकाल अर्ध रात्रि के पश्चात् पूर्वोत्तर-पूर्व रात्रियाँ उत्तमोत्तम है ।

{- सन्ततिरहस्य, गृहस्थशास्त्र, रतिरहस्य, रतिविज्ञान, कोकादि गृहस्थोपयोगी शास्त्रों से निष्कर्ष संकलित अंश । सन्दर्भित निदान के लिये **'सुगम चिकित्सा द्वितीय भाग एवं सुगम उपचार दर्शन'** उत्तम प्रकाशन जोधपुर को पढ़ कर लाभ उठायें ।}

इस सन्बन्ध में प्रत्येक गृहस्थ स्त्री-पुरुष परिवार को विवाह या संयोग (काम-कला) संसार में प्रवेश के पूर्व कामशास्त्र, संस्कार-विधि, ब्रह्मचर्य-पालन विधि के उपरोक्त निर्देशित आर्ष ग्रन्थों को अवश्य पढ़ना चाहिए । आजकल अनमेल विवाह व काम-वासना की अतृप्त विधियों के कारण से ही तलाक, व्यभिचार या मनमुटाव के मूल अपवाद फैलते है । अतः प्राचीन काल में यह शिक्षा [१] गुरुकुलों में ऋषियों द्वारा पाठ्यक्रम में दी जाती थी ।

---

१. शास्त्रीय पद्धति में कुशलतापूर्वक कार्य कर लेने की योग्यता को **'शिक्षा'** तथा आचरण शीलता में दक्ष होने को *'विद्या'* नाम से माना है । उसके अनुसार चौदह विद्याओं में यह भी एक विद्या है । जो ***'बिन पिंगल कविता करे, गुरु बिन करे ज्ञान । कोक पढ़े बिन रति करे, सो नर पशु समान'*** के शब्दों में आवश्यक है । आजकल सचित्र कोकशास्त्र प्रचलित है । यह तो एकमात्र शीलता को खोकर व्यभिचार-प्रचार के साधन ही है, अतिरिक्त उपरोक्त लिखे योग्य ग्रन्थ है, जिसे पढ़ कर जीवन का लाभ उठावें ।

क्रियात्मक आवश्यक सूचना

प्रत्येक संस्कार में वेद मन्त्रों द्वारा स्वस्तिवाचन, शान्ति-प्रकरण तथा संस्कार मंत्रोक्त शब्द कर्त्तव्यों का प्रयोग होना अति आवश्यक है । **गर्भाधान** से लेकर बालक के जन्मान्तर बाद भी जब तक संतति बालक माता का दूध पिए तब तक अर्थात् कम से कम दो वर्षों की अवधि तक स्त्री-पुरूष ब्रह्मचर्य भाव से इन्द्रिय-संयमपूर्वक रहे तो वह बालक तेजो-मूर्ति, पराक्रमी, विद्या, गुण, कर्म-शक्ति का संचयकर्त्ता पुत्र-पुत्री बालक प्राप्त होता है तथा अपनी आयु, गुण-शक्ति भी अटल दीर्घ रहती है, **यही गृहस्थ में अक्षुण्ण ब्रह्मचर्य है** । गर्भ-स्थापन से लेकर जन्म-पर्यंत पति-पत्नी यज्ञानुष्ठान, ईश्वर-प्रार्थना, शील-चित्त, प्रेम से रह कर पौष्टिक पदार्थों का सेवन करें, जिससे अपना व गर्भस्थ शिशु का स्वास्थ्य आरोग्य, सबल और सौम्य रह सके ।

२. **पुंसवन** - पूर्व ऋतुदान द्वारा गर्भ-स्थिति से दूसरे या तीसरे माह में पुरुषत्व-लाभ प्राप्म करने में भोजन, शयनादि व्यवहार से वीर्य-रक्षा हेतु यज्ञ-विधि का पालन करें तथा प्रातः बलिष्ठतादायक गुड़च, ब्राह्मी, च्यवनप्राश्यादि रसायनोत्तम औषधि का सेवन करावे तथा शौचादि नित्य क्रिया से निवृति पाकर प्रातः मौन-धारण से वट (बड़) वृक्ष के नीचे पहुँच कर पुत्रैच्छा वाली पत्नी को अपनी दक्षिणा नासिका में और पुत्री की अभिलाषा रखने वाली वामा (बांई) नासिका (घ्राण) में वटवृक्ष का दुग्ध चार या पाँच बून्दों का प्रयोग करे ।

युक्ताहार-विहार सुनियम से स्त्री गर्भ-रक्षा करे अर्थात् खट्टा-खारा, रेचक, वमनकारक न खाए । अल्प भोजन करते हुए निन्दा झूँठादि, क्रोध-द्वेषादि, तामसी खानपान दोषों व आलस्य, उन्माद से दूर रह कर सदैव प्रसन्न चित्त रहे । वीर भक्त तथा सात्विक महापुरुषों की इतिहास-कथाएँ

श्रवण करे । विपरीत किस्से-कहानीयुक्त उपन्यासादि अश्लील गल्प पुस्तकें कदापि संकल्प मनन न करें, न पढ़ें, क्योंकि इन दिनों जैसा भी साहित्य इष्ट, पठन-पाठन व्यवहार होगा, वही संस्कार बालक पर होने का स्वाभाविक ध्रुव सत्य है । मुख्य उदाहरण महाभारत के वीर पात्र बाल सेनानी अभिमन्यु को गर्भ-शिक्षा प्राप्त होते हुए माता की रञ्चमात्र असावधानी ने ही जीवन में परास्त (हार) प्रक्रिया दिलाई । गर्भ शिक्षा के कारण से ही प्रहलाद भक्त हुए थे ।

३. सीमन्तोन्नयन - गर्भाधान से चौथे महीने में शुभ नक्षत्र मुहूर्त दिन में चावल, मूंग व तिल की समभागता पवित्रता से पौष्टिक सुगन्धित द्रव्य डाल कर खिचड़ी पका कर यज्ञाहुति देवें । पत्नी का मनोमालिन्य हरने को पुरूष सुगन्धित तैलाभ्यंग आदि से सोलह [१] शृँगार करवावें और आनन्दोत्सव मनावें, जिससे दम्पति शुभ का प्रेम-प्रभाव बना रहता है ।

४. जातकर्म - बालक के जन्म-समय में सूतक-स्नान, सूर्य-जल-पूजनादि यज्ञविधि से करके घी और मधु दोनों बराबर मिला कर सोने, चाँदी या ताँबा की शक्ति-शलाका से बालक की जीभ पर **'ओ३म्'** लिखे और दक्षिण कान में **'त्वं वेदोऽसि'** (तेरा गुप्त नाम वेदज्ञान है) ऐसे

---

१. अंगशौच, मज्जन (स्नान) उबटन, दिव्य वस्त्र, महावर (लाख से बनाया हुआ एक प्रकार का लाल रंग, जिससे पैरों हाथों के नख रंगे जाते हैं) केश-गुन्थन, अंगराग, अञ्जन, दन्त मज्जन, मुखराग (ताम्बूल), भूषण [क], सुगन्ध, पुष्पाहार, कुकुम मांग, भालतिलक, चिंबुक-बिन्दू, यह १६ शृंगार है ।

[क] भूषण १२ प्रकार के यह है - नूपुर, किंकणी, हार, नथ, चूड़ी, अंगूठी, शीशफूल, बिन्दी, कंकण, कण्ठश्री, बाहुबन्ध, टीकी । सुगन्ध यह है :-

दोहा -**अगर तगर केशर चन्दन, कदली कंज कपूर । पद्म काठ ऐला मिले, बने सुगन्ध भरपूर ।।**

कपूर १३ प्रकार के यह है - पोतास (बरास), भीमसेन, सितकर, शंकरावास, पांशु पिञ्ज, अब्जसार, हिमबालुक, जूतिका, तुषार, हिम, शीतल, पत्रिकाख्य ।

सुना कर उस पूर्वोक्त घी-मिले शहद को चटावे इत्यादि ।

(५) **नामकरण** - बालक के जन्मदिन से दस दिन छोड़ कर ग्यारहवें, इक्कीस व एक सौ एकवें दिन या दूसरे वर्ष के आरम्भ में जन्मदिवस की वर्षगाँठ पर नामकरण हेतु अपने इष्ट-मित्र, परिवार-सहित विधिपूर्वक यज्ञाहुति में स्वागत-सत्कार सहित नामोच्चारण करवावें ।

(६) **निष्क्रमण** - जन्मकाल से चौथे मास में शुद्ध वायु, ऋतु, समय अनुसार ईश्वर-पूजन प्रार्थना सहित स्नान सुंदर वस्त्र, परिधान स्नान के पश्चात् किसी उपवन-उद्यान में भ्रमण करवावे, अर्थात् यह संस्कार बालक को सर्वप्रथम घर से बाहर लाने का होता है ।

(७) **अन्नप्रासन** - छठे महिने बालक को अन्न का भोजन देवें, जो प्रथम घृतयुक्त भात एवं शहद मिला कर दधिमय यज्ञ आहूति से शेष रहे पवित्र पदार्थों को प्रथम भोजन करवाना है ।

(८) **चूड़ाकर्म** - बालक के जनम से तीसरे वर्ष उत्तरायण सूर्य, शुक्ल पक्ष में हर्षोत्सव दिवस को देव पूजन करके नापित द्वारा सावधानी और कोमल हाथ से क्षौर (झडूला) कर्म करे तथा यज्ञ (हवन) द्वारा माता पिता परम परमेश्वर का ध्यान करके बालक को आशीर्वाद देवें ।

(९) **कर्णविध** - तीसरे या पाँचवे वर्ष में शुभ दिन को प्रातःकाल शुद्ध जल से स्नान और वस्त्रालंकार से सुशोभित करके यज्ञशाला में आकर मन्त्रोचारण द्वारा चरक, सुश्रुतादि ग्रन्थों का ज्ञान करे । सद्वैद्य के हाथों से नाड़ी आदि बचा कर कान का वेधन करें और चाँदी की धातुमय कर्णिका (कर्णफूली) पहना कर औषधि-लेपन करे जिससे पीड़ा-पकाव न रहे ।

(१०) **उपनयन** - यह संस्कार बालक के गुण-कर्म का द्योतक रूप शिक्षा का प्रवेश-द्वार तथा वर्ण का अधिकारदाता है । जो आचार्य[1]

---

१. विद्वानों की दृष्टि के ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, तपोनिष्ठ, आचरणशील तथा गुरू द्वारा कर्म-कौशल्यता-पदक प्राप्त, परम्पराभुक्त कर्त्तव्यारूढ़ व्यक्ति को आचार्य कहा जाता है।

एवं राजा के स्वाधीन कर्म से परीक्षण सम्पन्न होता है, जिसका उल्लेख **'प्रस्तुत पुस्तक'** में प्रसंग-विषय पा कर किया ही है, किन्तु यह अवश्य बहु-सम्मत वेदोक्त माननीय धारणा है कि ऋतु-सूत्र (कपास, मूञ्ज शणादि) की यज्ञोपवीत प्रत्येक आर्य-पुत्र हिन्दू मात्र के लिए आवश्यक अधिकार है। जन्म से चाहे ब्राह्मण हो या श्वपचादि शूद-चमार तक भी हो, परन्तु आर्य सन्तान को जनेऊ (यज्ञोपवीत) धारण करना आवश्यक है।

इसके सम्बन्ध में काल्पनिक अतथ्य रूढ़ि प्रचलित-प्रक्षिप्त कल्पनाओं का मुँहतोड़ निवारण प्रमाणों सहित बताने की चेष्टा की हैं, जो आपको आद्योपान्त प्रस्तुत ग्रन्थ पठन से ज्ञात हो सकेगा। सम्भव है समाज के पक्ष में उन्नतिप्रद, हितदायक हो। आयु, गुण, कर्मानुसार व्रती ब्रह्मचारी को इस संस्कार से वीर्यरक्षण, वेदाध्ययन, ईश्वरोपासना की प्रतिज्ञामय त्रयव्रत लेना होता है।

दोनों शब्दों के मेल से ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ वेदाऽध्ययन, ईश्वर चिन्तन और वीर्य-रक्षण होता है।

जिसके सहित जनेऊ सूत्र की सफलता है, अन्यथा केवल दिखावटी ढोंग या गले की फाँस का डोरा मात्र ही है। अतः प्रत्येक हिन्दू कहलाने वाले ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों को वेदोक्त उपनयन (जनेऊ) संस्कार का समान अधिकार है, जिसका प्रसंगवश आगे उल्लेख किया जायेगा।

(११) **वेदाध्ययन** - गायत्री मंत्र से लेकर सांगोपांग चारों वेद, षड्शास्त्र सिद्धान्त मय व्यवहार, शास्त्रों का कार्य-क्षेत्र ज्ञान प्राप्त करने के लिए सन्नियमय धारण करके रहे। जो दिन जनेऊ संस्कार का है, वही बाह्य चिन्ह है और उसीका अन्तरंग पालन वहीं दिन सन्ध्या गायत्री सहित वेदारम्भ संस्कार पालन का है। यदि वह दिन शुभ नहीं हो तो दूसरे दिन

अथवा एक वर्ष काल के भीतर ही ब्रह्मचारी को गुरुकुल में [1] आचार्य के पास विद्याध्ययन पद्धति में प्रवेश करा देना चाहिए।

इस जीवन में अंष्टांग मैथुन कामेच्छा से स्त्री-दर्शन, स्मरण, केलि (द्यूतक्रीड़ा), कीर्तन (गुण प्रशंसा), गुह्यभाषण (एकान्तवार्ता) संकल्प अध्यवसाय (स्त्री-प्राप्ति का यत्न), क्रिया-निवृति (सम्भोग) तथा गुद हस्तेन्द्रियादि, सर्व मैथुन, उपमैथुनादि क्रियाओं से दूर रह कर पूर्ण वीर्य-रक्षा करके महत्वशाली कार्यों का अनुष्ठान करना और कामज [2], क्रोधजादि [3] अपौरुषेय निंद्य आचरणों का सर्वथा त्याग करके आर्य सनातन साहित्य के आर्ष ग्रन्थ जो चार हजार पाँच सौ अठहत्तर मुख्य है। उन सबका रहस्य क्रमशः गुरुमुख से आचार्य कुल में तपोमय जीवन प्राप्त करके भविष्य का उन्नत दर्शन करें, तभी तो वेदादि मंत्रों में ब्रह्मचारी का महत्व कथन किया है।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्यु मुपाघ्नत।
इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वरा भरत॥ – अथर्ववेद ११।७।१९

ब्रह्मचर्य के तप से देव मृत्यु को हटाते हैं, इन्द्र-निश्चय से ब्रह्मचर्य द्वारा राज्य करते हुए देवों का तेज बढ़ाते है।

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं लोक द्वय रसायनम्।
अनुमोदामहे ब्रह्मचर्यमेकान्त निर्मलम्॥ –सुभाषितसार

संसार में धर्म का हितकारक, यश का विस्तार करने वाला, आयु

---

१. गुरुभ्राता सहपाठियों के साथ गुरु-गृह (आश्रम) में सांसारिक व्यवहार से दूर और संयमित जीवन में प्रवेश रहे।

२. मृगया (शिकार), जुआ, दिवास्वप्न (दिन को सोना), दूसरों के दोष निकालना, स्त्रियों के साथ रहना, नशा-मदात्य-सेवन, नाचना,गाना,बजाना, व्यर्थ घूमना, यह दस व्यसन काम से उत्पन्न होने वाले है।

३. चुगली, अच्छे पुरूषों का अपमान, द्रोह, ईर्षा-डाह, धन मार लेना, अमानत हड़प लेना, गाली देना, मारना-पीटना, यह आठ दोष क्रोध से उत्पन्न होते है।

को बढ़ाने वाला, इस लोक और परलोक को सुधारने वाला ब्रह्मचर्य ही है। इस कारण निर्मल ब्रह्मचर्य का सेवन करना मुख्य कर्त्तव्य है। उसी वेदारम्भ के दिन संक्षेप से **'संस्कारविधि'** सहित आचार्य श्री प्रथम तीन दिन तक महा ब्रह्मगायत्री का मंत्रोपदेश, श्रवण, स्मरण तथा कण्ठस्थ करवाते रहें।

ॐ भुः र्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य ।

धीमहि धीयो योनः प्रचोदयात् ॥ - यजुर्वेद ३६/३

गायत्री मंत्रार्थ - ॐ परमेश्वर का मुख्य वाचक नाम है, जिनमें अन्य सर्व नाम का कार्य कारण सहित प्रमुख विमोक्षक तथा विमृश्यविमोक तथा विधि का प्रतीक है।

भूः - जो प्राणों का साक्षी प्राण है। **भुवः** - सर्व दुःखों का हरणकर्ता है। **स्वः** - स्वयं परमानन्द स्वरूप है, उपासकों को आनन्ददाता है। अर्थात् विश्व के तीन लोक भुः भुवः स्वः का वह अधिष्ठाता पालक है। **तत्** - उसको, हम। **सवितुः** - सर्व विश्व के उत्पन्नकर्त्ता एवं सूर्यादि ज्योति प्रकाशकों का प्रकाशक समग्र ऐश्वर्यदाता। **वरेण्यम्** - अति श्रेष्ठ ध्यान में ग्रहण करने योग्य ध्येय। **भर्गः** - सर्व क्लेशों के प्रपंच से रहित शुभभावदाता। **देवस्य** - सर्वत्र विलयदाता कामना करने योग्य जो प्रभु। **धीमहि** - बुद्धि में धारण करें। **धीयः** - बुद्धियों को उत्तम गुण कर्मों के स्वभाव से। **यः** - वह प्रभु। **नः** - हमारी। **प्रचोदयात्** - भावगम्य उत्तम प्रेरणा करें।

(१२) समावर्तन - ब्रह्मचर्याविधि (पच्चीस वर्ष की आयु) तक प्रथम आश्रम में सांगोपांग चौदहविद्या, ब्रह्मज्ञान, रसायन, वेद, वैद्यक, ज्योतिष त्रिस्कन्ध, व्याकरण, धनुर्कला (युद्धकौशल-राजनीति), जलतरंग, संगीत, नाटक, अश्वचालन (वाहन-ड्राइवरी), कोक (गृहस्थशास्त्र), चौर्य, चातुर्य्य सहित वेद-वेदांग, उपांग में पारंगत होकर गुरुकुल से शिक्षा

समाप्ति करके ब्रह्मचारी (विद्यार्थी) अपने घर आवे।

(१३) **विवाह** [१] - जो पूर्ण ब्रह्मचर्य [२] आश्रम के व्रत विद्या बल को प्राप्त करके शुभ गुण, कर्म, स्वभाव से तुल्य, परस्पर प्रेम से शास्त्र-विधि प्रमाण द्वारा सन्तानोत्पत्ति हेतु उचित कुल, अनुरूप, गुण, कर्म अवस्था, स्वभाव, वर्ण की कन्या को विधेय **दैव विवाह** से ग्रहण करें और ग्रहस्थाश्रम [३] में प्रवेश करें और व्यवहार में अनुभव-प्रभावशील रहें।

(१४) **वानप्रस्थ** [४] - यह संस्कार तृतीय आश्रम प्रवेश का है अर्थात् प्रथम पच्चीस वर्ष ब्रह्मचर्य और पच्चीस वर्ष तक गृहस्थ में दम्पति रहने के बाद की अवस्था में घर पर रह कर ही सन्तान शिक्षा-रक्षा सत्य प्रचार करें एवं व्रत धारण करके शीलमय अनुष्ठान से रहें।

(१५) **सन्यास** [५] - २५ वर्ष वानप्रस्थाश्रम में रहने के उपरान्त की आयु (७५ वर्ष) में प्रत्येक आर्य पुरुष सन्यास (विरक्त) रूप से जग-जंजाल को त्याग कर घर से निकल के तपोवन में साधना, एकान्तवास, देशाटन करके यत्र तत्र संसार में सनातन वैदिक धर्म का सत्योपदेश प्रचार करे या गुरूकुल में रह कर ब्रह्मचारियों के संरक्षक (अध्यापन-आचार्य)

---

१. विवाह आठ प्रकार के होते है - जिनमें ब्राह्म, देव, आर्ष, प्रजापति, यह चार उत्तम प्रकार है और असुर, गान्धर्व, राक्षस, पिशाच, यह चार नीच कर्म के प्रवृर्तक है। अतः दुष्त्यजों का मूलतः त्याग करें। -मनुस्मृति

२. ब्रह्मचारी जग चार प्रकारा, धारे धर्म सुजाना, आप अमाना ।।टेर।।
उपनयन के बाद तीन दिन, **गायत्र**, लौन, तजमाना ।।१।।
वेदाध्ययन तक ब्रह्मचर्य हो, **ब्राह्म**, कहै सन्त ज्ञाना ।।२।।
एक वर्ष का वैदिक व्रत ले, **प्रजापत्य**, बखाना ।।३।।
मृत्यु पर्यन्त गुरूकुल साधे, नैष्ठिक हो निरवाना ।।४।।
ईश्वर किचन्तन रहिगुण सन्ध्या, वेद अध्ययन कर नाना ।।५।।
सतसंग कर सतगुण को संग्रह, वीर्य रक्षण सुविधाना ।।६।।
"रामप्रकाश" पाय पद मुक्ति, जीवन परम कल्याना ।।७।।

☞ शेष पृष्ठ ३६ पर....

केवल भोजन-वस्त्र मात्र से निर्वाह करके जीवन-यापन करता रहे और निस्वार्थ भाव से निर्वाण-पद को प्राप्त करें ।

(१६) **अन्त्येष्टि** - यह शरीर की अन्तिम प्राण त्यागने की अवस्था में वेदोक्त मंत्रों से सुगन्धित द्रव्य पदार्थों में जैसे अगर, तगर, चन्दन, पीपल आदि काष्ठ भारों की रथी के द्वारा परमोत्सव विधिवत शरीर की दाह-क्रिया (शव-जलाने) का संस्कार करना-करवाना चाहिए ।

यह शोड्ष संस्कार मानव जीवन में आश्रम-व्यवस्था सहित प्रत्येक

☞ शेष पृष्ठ ३५ का शेष भाग....

३. गृहस्थी षट् प्रकार कहते है, ग्रन्थन माहि उचारी, ज्ञान विचारी ।।टेर।।
गौरक्षा वैश्योचित वृति, **वार्ताक** कहै धर्मचारी ।।१।।
यजन, अध्ययन, दान प्रतिग्रह, कह **शालीन** अचारी ।।२।।
सत्य भिक्षा अन्न ले सन्तोषी, **यायावर** सुखकारी ।।३।।
इक दिन का अन्न पुरूषोत्तम ले, **घोर सन्यासिक** प्यारी ।।४।।
धान मण्डी खेती अन्न चुन ले, **उच्छवृति करे** गुजारी ।।५।।
बिन माँगे हरि इच्छा से मिल, है **अयाचक** त्यारी ।।६।।
"रामप्रकाश" नारद उननिषद्, प्रथम उपदेश पुकारी ।।७।।

४. वानप्रस्थ के चार भेद हैं सो भी धरो सुजाना, होय कल्याना ।।टेर।।
बिन जोते अन्न लाकर धर्मी, **वैखानस** व्रत ठाना ।।१।।
प्रातः दिशा दृष्टि फल भोगै, **औदुम्बर** कन्द खाना ।।२।।
जटा वल्कल ले ब्रत चौमासा, **बालखिल्य** सो गाना ।।३।।
सूखे पत्ते फूल फल खावे, **फैनप** कर गुजराना ।।४।।
"रामप्रकाश" उपनिषद् नारद, धर्म धरे परमाना ।।५।।

५. षट् बाँधव यह मेरे प्यारे, सदा रहे संग सारा, देख विचारा ।।टेर।।
दया मात वर पिता ज्ञान है, धर्म भ्रात सुखवारा ।।१।।
वत्य सखा पुत्र सत धैर्य, सब आनन्द भण्डारा ।।२।।
क्षमा शान्ति नारि सुखदाई, षट् बाँधव हो प्यारा ।।३।।
कुटिचक, बहुदक, हँस, परम, हंस सन्यास ये चारा ।।४।।
"रामप्रकाश" कुटुम्ब संग मुक्ति, जनम मरण को टारा ।।५।।

- श्री रामपद्धति विलास से उद्धृत

सनातनधर्मी कहलाने वालों को पालन करना/करवाना अत्यावश्यक है। चाहे वह गुण-कर्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, या शूद्र/अन्त्यज्य ही क्यों न हो। यह विधान सबके लिए प्राचीन आर्य परम्परा का मानव मात्र को प्रशस्य (माननीय) है। भारतीय शास्त्र तो प्रत्येक काल और प्रत्येक परिस्थिति में प्रत्येक समस्या का सुझाव प्रस्तुत करते हैं। शास्त्र के ज्ञाता और शास्त्रानुसार बुद्धि का प्रयोग करने वाले विद्वान ही सच्चे संस्कार के पथ-प्रदर्शक है। उनके द्वार समाज-जीवी मानव को अपने जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करने का, विश्व के रंग-मञ्च पर कुशल कलाकार की भाँति शिक्षित-दीक्षित होकर लोक में यश, नाम, कुल, पीढ़ि का यशस्वी तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्ट्य से परलोक गति भी सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् हो जाती थी। वस्तुतः जब तक यह प्रणाली नहीं अपनाई जावेगी तब तक भारतीय पद्धति की रूपरेखा कल्याणोन्नतिमय नहीं हो सकेगी। इस संसार ऐक्यता के कारण ही वेद में मानव मात्र को समानाधिकार प्राप्त है और इन सदाचरण से पतितों को अनार्य-दस्यु कहते थे।

समानी प्रपासह वोन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सभ्यञ्चऽगिंन सपर्यता रानाभि मिवाभितः॥ - अथर्व. ३/६/३०-६०

हे मनुष्यों! तुम्हारे पानी पीने की और भोजन करने की जगह एक ही रहे। मैंने तुम सब लोगों को एक ही धुरे में जोत दिया है, जिस प्रकार चक्र की नीति में ओर आरे बैठे रहते है, उसी प्रकार तुम भी इकट्ठे होकर अग्नि में हवन करो तथा श्री परमात्मा की उपासना करो। तात्पर्य यह है कि वैदिक धर्म एक मनुष्य और जाति की जागीर नहीं है। यह तो सब मनुष्यों का सामान्य पुरातन धर्म है, जो सृष्टि काल में परमेश्वर ने मनुष्यों की एक आर्य जाति और उनके हित-कल्याणार्थ सनातन धर्म को ही निर्णीत किया था। प्राचीन काल में मानव मात्र इस धर्म के उपासक थे। जिसका सिद्धान्त - धर्म शब्द **'धृ'** धातु से बना है।

अर्थ है - धारण करना **'धारयति धृति वा विश्वमिति धर्मः'** - अर्थात् जिसको विश्व धारण करता है या विश्व का आधारभूत सत्व (सत्यार्थ) हो, उसे धर्म कहते है ।

धारणाद्धर्म मित्याहुधर्म्मो धारयते प्रजाः ।

यत्स्याद्ध संयुक्त स धर्म इति निश्चयः । - महाभारत कर्णपर्व ६९/५९

धर्म ही सब प्रजा का धारण करने वाला है, जो धारण से गुणयुक्त शक्तिमान है, वह धर्म है । इसके विपरीत सब पाखण्ड हैं । यह निश्चित परिपक्व अर्थ है । किन्तु आज हिन्दू समाज में धर्म के विक्षुब्ध बहु प्रकार पाए जाते है, जैसे कि - नित्य ही स्नान करना, मन्दिर जाना, देवताओं को बलि चढ़ाना, पूर्णिमा, एकादशी आदि का व्रत रखना, शिर पर शिखा या गले में जनेऊ रखना, विशेष प्रकार के कपड़े धारण करना आदि आदि । कई बिरादरियों में तो वर्ष में एक विशेष दिन दूसरों को गाली देना तथा ईंटें मारना, कीचड़ उछालना भी धर्म की परिधि में माना जाता है । कहीं-कहीं दीपावली की रात को जूआ खेलना और होली के दिनों रंग कीचड़ उछालना गालीगलौज़ करना भी धार्मिक कृत्य समझा जाता है, ऐसे ही किसी पन्थ के विचार और आचार को भी धर्म का नाम दिया जाता है । बौद्ध, वैष्णव, शैव इत्यादि की पूजाविधि को भी धर्म माना जाता है । इस प्रकार हिन्दू जाति में धर्म की भारी महिमा होते हुए भी इसके अर्थों में विस्मयजनक अस्पष्टता ही है । इस अस्पष्टता का कारण हिन्दुओं की अपने शास्त्रों से अनभिज्ञता ही हैं । शास्त्रों में तो धर्म की व्याख्या सर्वथा सरल, सरस, उपयुक्त और स्पष्ट शब्दों में की गई है, परन्तु जब जन-साधारण वेद-शास्त्र से अपरिचित गरुओं के प्रभाव में आया तो धर्म की महिमा बनी रही परन्तु धर्म का सार नहीं रहा । प्रत्येक अनभिज्ञ व्यक्ति ने अपनी बात का जन-साधारण में प्रचार करने के लिए उसे विक्षुब्ध धर्म का नाम दे दिया । वस्तुतः **धारण करने योग्य व्यवहार का नाम धर्म है** । धर्म में

कोई भेद नहीं हो सकता। इस भूतल पर रहते हुए सब मानवों के लिए 'धर्म एक' ही है। धर्म का सम्बन्ध व्यवहार से है, विचार से नहीं। विपरीत पंथ-पद्धति का सम्बन्ध मुख्यतः विचार से हो सकता है।

धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः।

तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो, मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥ - मनुस्मृति ८/१५

नष्ट किया हुआ धर्म ही अपना नाश कर लेता है, रक्षा किया हुआ धर्म ही प्राणी की रक्षा करता है। इस कारण से धर्म को नष्ट नहीं करना चाहिए, जिससे हमारा भी धर्म नाश नहीं करें, किन्तु समय के फेर से ज्यों-ज्यों इसका प्रचार कम होता गया त्यों-त्यों इस संसार में अनेक जातियाँ व अनेक उपधर्म प्रचलित होते गए, जिसके फलस्वरूप आर्य जाति आज हिन्दुत्व से पतन के गर्त में इतिश्री हो रहीं है। उनमें धर्म के सर्व अंग-उपांग पूर्ण तथा शृँखलाबद्ध नहीं रह पाने से ही अस्पृश्यता (छूआछूत) आदि दिखावटी व रूढ़िग्रस्त विरोधाभासी रोग लगने से आपसी संगठन शक्ति का अन्त हो गया है।

इस समय के बीच में सामयिक युग-प्रभावी देशरत्न स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, श्रद्धानन्द और महात्मा गाँधी ने अमर कृतियों का स्मरणीय कदम बढ़ा कर सराहनीय कार्य किया जो प्रमुख उल्लेखनीय है। साथ ही सामयिक जन-जागृति-रूप चेतनामय सन्देश का विषय-प्रतिपादनकर्ता पुस्तक-साहित्य चाहिए, इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर मानव जाति की सभयताजनक हिन्दू जनता के हितार्थ सर्व वेदादि शास्त्रों का आर्ष सिद्धान्त सारभूत रहस्य शास्त्र "**पुस्तक रूप में प्रस्तुत लेखनश्रम**" अध्ययन विवेचन निर्माण किया गया है।

इससे मेरा अभिप्राय कोई यश-कीर्ति या विद्वानों की गणना में मेरा भी नाम हो - यह नहीं, अपितु मन्दमति बालकों से लेकर युवा-वृद्ध, स्त्री-पुरुष समस्त रूढ़ि व वृतानुवृती, साक्षर व निरक्षर हिन्दू सनातन पढ़

या श्रवण करके अपने मूल तत्व धर्म के गौरव को जान सके सब लोग धर्मज्ञ हो और रूढ़ि-प्रथा को दूर की धारणाएँ, अनभिज्ञ अज्ञान सत्ता की छाया को दूर करके अपने धर्म-सत्व में प्राण-पण रह कल्याण प्राप्त करें ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत् ।।

इस मंगल-कामना से --

कवि न होऊँ नहिं चतुर कहाऊँ, मति अनुरूप धर्म गुण गाऊँ ।।

अस्तु, केवल शब्द-रचना का स्वागत ही किया है जो सबके समक्ष ही है जिसे पाठक स्वयं स्वानुभव से शंख नाद को स्वीकार करेंगें ।

✻ प्रथम परिच्छेद ✻

आत एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीव से ज्योक् च सूर्य दृशे ।

– ऋग्वेद १०/५७/७/४

(कायर मत बनो) उठो, होश सम्भालो, फिर सोच-विचार, कर्म-कौशल के जीवन को चेतो, अभी तुम्हें चिरकाल तक सूर्य भगवान के दर्शन करते रहना है अर्थात् चिरायु जीवित रहना है ।

हिन्दू समाज का रचनात्मक समन्वय

समय के दुष्प्रभाव से आज भारत में सामाजिक त्रुटियों-बुराईयों की कोई सीमा नहीं है । जो जो गुण हमारे राष्ट्रीय भावुकों में या आर्य हिन्दू कहलाने वाले धर्म के पुजारियों में होने चाहिएँ, उनमें से आज तक रत्ती या शतांश मात्र भी दीख नहीं पड़ते, अपितु विपरीत में अनाचार, भ्रष्टाचार, झूठ, छल, कपट, वंचना, विश्वासघात, चोरी, जूआ तथा व्यभिचार, मद्यपानादि समस्त मानसिक-शारीरिक विकार-समूह का बोलबाला है । जो कि हमारे आर्ष पूर्वात्पर वेदादि साहित्य में अनार्य/दस्यु कहलाने

वालों के लक्षण कथन किए है, वहीं आज हिन्दू धर्मध्वजी नामधारियों में झलकते है। साथ ही सामाजिक ह्रास, मृत्युभोज, दहेज, अविद्या, फूटादि भी बहुत अधिक होने से मूलरूप में आज की समाज-रचना का आकार-प्रकार भी अस्त-व्यस्त हो चुका है, जिसे समझ लेने की बुद्धि-शक्ति प्रत्येक नागरिक भारतीय में होना आवश्यक है।

वर्तमान में कई अभिभावक लिख या कह बैठते है कि "छुआछूत का कारण वर्ण-व्यवस्था है" उन मान्य महाशयों को ठण्डे मस्तिष्क-हृदय से विचार कर सोचना चाहिए और निश्चित रूप से परखना चाहिए कि इसमें मूल बात क्या है ?

आज के संविधान साधिकार प्रदत्त कई जातियों-उपजातियों में अनुसूचित जन जाति, जन जाति, घुम्मकड़, आदिवासी O.B.C. इत्यादि की मान्यताऐं हैं, जो वर्ण व्यवस्था से कहीं अधिक घातक सिद्ध हो रही है।

आज जो जन्मसिद्ध जाति-भेद से अस्पृश्यता-वर्तित की जा रहीं है, वह किसी मतान्तर के द्वारा या वैदिक, धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक शास्त्रों से अनुमोदित नहीं है, वह सर्वथा भ्रामक व तथ्यहीन है। आधुनिक समाज प्राचीन शास्त्रीय समाज-सञ्चालन की वर्ण-व्यवस्था का एक अत्यन्त घृणित, छिछला (बिगड़ा) हुआ प्रारूप है, जो आज तक वर्णात्मक भावनाओं को लेकर टकराता हुआ चलता है। यत्र-तत्र स्थल-मञ्चों पर युग-प्रभावी व्याख्यानदाता प्राचीन शास्त्रों द्वारा निर्धारित वर्ण-व्यवस्था को ढकोसला मात्र व धर्म के अप्रत्यक्ष-अमूर्त को ही कपोल-कल्पित कथन करते है किन्तु वस्तुतः बुराईयों की जड़ें उखाड़ कर कोई नहीं फेंक सकते हैं और न फेंकना जानते ही हैं। उन महानुभावों तथा हिन्दू मात्र को इस सम्बन्ध में गहन विचार करना चाहिए, क्योंकि जब चोर की अपेक्षा चोर की माता को ही निर्मूल कर दिया जाय तो 'न रहेगा बाँस न बजे बाँसुरी' तब तो सम्भव है कि जन, धन, समाज, राष्ट्र का उद्धार-सुधार हो सकता है, अन्यथा लाखों उपाय-योजनाओं पर भी विकास असम्भव ही होगा

बल्कि विनाश की रेखाएँ उभरती रहेंगी । आइयें ! आज इस बात पर भी कुछ विवेचनात्मक विचार कर लिया जाय ।

वर्ण और जाति का अर्थ-भेद

जन्मानुसार जाति-भेद कब से प्रचलित हुआ, इसका कोई भी मनीषी इतिहास-गवेषक पूर्णतया निश्चय के साथ उत्तर नहीं दे सकता । अतः इसकी विस्तृत रूपरेखा बताने का पूर्ण उल्लेख करना उचित रहेगा । तथाकथित जाति और वर्ण में मुख्यतः भेद इस प्रकार से समझना चाहिए जो तर्क और शास्त्र-पुष्ट प्रमाण सिद्ध है । जाति वस्तुतः जन्म से ही प्रकृति-प्रदत्त है, जैसे घोड़ा, गधा, गाय, बकरी, ऊँट, भेड़, सांप, सिंह, सियार आदि, जो कभी बदल नहीं सकती, वैसे ही मानव भी एक बुद्धिजीवी विशेष जाति है, जिसमें **समाज-रचना का महत्व सिद्ध वर्ण-व्यवस्था कार्य क्रम है** - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कर्म-प्रेरणा, गुण-स्वभाव के द्वारा ही होता है, जो किसी अन्य के कहने से नहीं अपितु कर्त्तव्य संस्कारों से विवेचन द्वारा होता है, वह **वर्ण** कहलाता है ।

महाभारत काल से पूर्व क्या मान्य था, यह हम आगे बतायेंगें। **महाभारत काल में सिद्धान्त रूप से जन्मसिद्ध जातीयता की मान्यता नहीं थी** तथापि क्रियात्मक व्यवहार में बहुत कुछ इसे स्वीकार करते थे, इसका कुछ भान प्रतीत होता है । उसके पश्चात् अन्धकारपूर्त युग के समावेश में इस का बहुध II विशेष प्रचार हुआ और जो प्राचीन युग समाज-व्यवस्था के कार्य-सञ्चालन को अंग कल्पना रूप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के नाम से चार वर्ण जिनका आधार गुण, कर्म, स्वभाव पर निर्भर था । वहीं उस पूर्तयुग की रूढ़ि-प्रथा स्वरूप में परिणत होकर जातियाँ बन गई और उनका आधार विदेशी मनोछाया से कल्पित भेद साम्राज्य के आरोप को पाकर गुण-कर्म के बिना केवल [1] जन्म पर जन्म से जाति नाम से वर्ण माना जाने लगा ।

---

१. स्पष्टीकरण के लिये द्रष्टव्य **रामदेव गप्प दर्शन** अथवा **सुखराम दर्पण** की भूमिका ।

परशुराम के समय आर्यावर्त की स्थिति

परशुरामजी का वैदिक काल था । उनके समय में भृगु, ऋचीक, वशिष्ठ, अगस्त्य, लोपामुद्रा, भारद्वाज, कश्यप आदि ऋषियों का बोलबाला था । ऋषि लोग दो विचारधाराओं में बँटे हुए थे । एक समूह था विश्वामित्र का - जिसमें लोपामुद्रा, ऋचीक व जमदग्नि आदि थे । दूसरा समूह था वशिष्ठ का - जिसमें अगस्त्य कश्यप आदि थे । वशिष्ठ आर्यों को वर्ण शंकर होने से बचाने के पक्ष में थे, वे आर्यावर्त में विशुद्ध आर्यों को ही आर्य मानते थे, परन्तु दूसरा समूह शुद्धि में विश्वास करता था । दास तथा अनार्य को आर्य संस्कृति के संस्कार देकर जनेऊ और गायत्री जपने पर उसे आर्य मान लेते थे ।

ऐसा लगता है कि इस काल में वर्ण व्यव्यस्था पूर्ण रूप से चालू नहीं थीं । गोत्रों के हिसाब से जातीय पहिचान होती थी । समस्त जाति एक गोत्र होता था । दो जातियों का उल्लेख मिलता है, जो यज्ञ कराते थे, वे ब्राह्मण या पुरोहित कहलाते और जो राज्य करते थे वे क्षत्रिय । राजा पुरोहित की आज्ञा का पालन करता था । आज्ञा न मानने पर पुरोहित उसे छोड़ देता था, क्रुद्ध होने पर श्राप भी दे देते थे ।

परशुराम के दादा ऋचीक अथर्व उपाधि से विभूषित थे। हैह्य वंश के राजपुरोहित थे । उन्हीं के भाई शुक्राचार्य राक्षसों के पुरोहित थे । हैहय वंशी कार्तवीर्य जब आर्य धर्म के विपरीत आचरण करने लगे तो ऋचीक ने अनूपदेश छोड़कर सरस्वती नदी के किनारे आकर भृगु ग्राम बसाया और यहीं रहने लगे वे कार्तवीर्य को शाप देकर आये थे । कार्तवीर्य ने अपनी शाख बचाने के लिए एक साधारण भृगुवंशी को पकड़ कर गुरू बनाया, जिसका नाम भुशुंड था । उसने दाड़ी मूछे बढ़ा ली और रूद्राक्ष धारण कर लिया, परन्तु जानता कुछ नहीं था ।

इस काल में आर्य, शायीत, भरत, यादव, तुन्तसु, हैहया, तालजंघदास

आदि जातियाँ थी । इन जातियों में आर्य व अनार्यों (दास) का झगड़ा चलता ही रहता था । उसमें साधारण समाज सदा पिसता रहता था ।

आर्य लोग इस काल में दास व अनार्यों की लड़कियों को अपने घरों में काम कराने के लिए रख लेते थे । बहुत से उनको पत्नी के रूप में रखते थे, परन्तु कोई दास यदि आर्य बाला का हरण कर लेता तो ऋषि और आर्य राजा तबाही मचा देते थे । लोपामुद्रा महिला होकर भी सुधारवादी आन्दोलन की अगुआ थी । वह ऋषि अगस्त्य से शादी करना चाहती थी, परन्तु अगस्त्य उसे धर्म द्रोही मानता था । वह कहता था कि तू आर्यावर्त में वर्णशंकरता फैला रही है । विश्वामित्र तेरा साथ देता है । तुम दोनों आर्य संस्कृति का नाश कर रहे हो ।

लोपामुद्रा कहती कि तुम लोग अपने अहम् के कारण सत्य को नहीं समझ रहे हो । जो दास जनेऊ लेकर गायत्री जान करके आर्य संस्कृति का अनुयायी बन जाता है, वह पतित कैसे हुआ ? उसे क्यों नहीं आर्य मानते ? वो कहती - जब आर्य लोगों के घरों में कितनी ही दास कन्यायें पत्नी रूप में रह रही हैं और आर्यों द्वारा उनके सन्तान होती है, उनको आप आर्य क्यों नहीं मानते ? यह उन कन्याओं के साथ अन्याय है । जब वे पतित हैं तो उनकी पतित माताओं को घरों में क्यों रखते हो । भृगु और भरत गोत्रिय आश्रमों में सामान्य शिक्षा देकर सबको आर्य बनाते थे ।

विश्वामित्र के घर तो पत्नी रूप में दास राजा शांवर की लड़की उग्रा रहती थी । उसका लड़का शनुःशंप पढ़कर ऋषि बना और विश्वामित्र ने उसे अपना युवराज घोषित किया था । लोपामुद्रा ऋषियों की तरह से आश्रम भी चलाती थी । सुदास की बहिन लोमहर्षिणी वहीं पढ़ती थी । वह परशुराम से ६-७ वर्ष बड़ी थी, परन्तु साथ-साथ ही रहते थे । वह परशुराम की मौसेरी बहिन थी ।

इस समय हैहय अर्जुन (सहस्राबाहु) तथा देवदास व दास राजा शांवर, चक्रवर्ती सम्राट थे। विश्वामित्र भरत और शिबी भी सम्राट थे, उस समय दो-तीन गोत्रों पर शासन करने वाला ही चक्रवर्ती होता था। इस काल में ब्राह्मण और क्षत्रिय मिलेजुले रहते थे, इनमें आपस में शादी विवाह भी होते थे। विश्वामित्र क्षत्रिय थे। आगे चलकर इन्हीं के वंशज कौशिक गोत्रिय ब्राह्मण हो गये। **विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्रह्म ऋषि** हो गये। इसी प्रकार भृगु ऋचीक, च्यवन, जमदग्नि की पत्नियाँ सब क्षत्रिय कुलों की थी।

इसी काल में अघोरियों की एक ऐसी जाति रहती थी, जो जंगल में रहकर मनुष्य का शिकार करके उसका खून पीती और माँस खाती थी। आदमी की खोपड़ी पानी पीने के लिए कमर में बाँधे रहती थी। परशुराम ने उनको भी प्रभावित किया और मनुष्य की शिकार बन्द करवाई। हिंसक जंगली जानवरों की शिकार करने की शिक्षा दी थी तथा फल व अन्न भी खाने की आदत डलवाई। उनके गुरु औघड़नाथ को अपने वश में किया तथा तांत्रिक विद्या सीखी। ऐसे समय में पैदा हुए थे **परशुराम**।

अपनी माता रेणुका की पुकार पर परशुराम जी ने अपने पिता श्री यमदग्नि ऋषि के हन्ता सहस्त्राबाहू एवं उनके हैहय वंश क्षत्रियों का इक्कीस बार मूलोच्छेदन किया था। तब उन विभिन्न वंशो के क्षत्रिय गण से निकल कर अपने जीवन बचाव पक्ष में अलग-अलग जातियों के वर्ग में अनेक नामों से समाज में जीने लगे थे। कहते है तत्समय विभिन्न जातियों के नाम से जानते हुए भी आपस में अस्पृश्यता नाम मात्र भी नहीं थी। सब आपस में खाते पीते मिल कर रहते थे। **महर्षि भृगु के परशुराम जी प्रपौत्र थे** [१]। कन्नौज के राजा-महाराजा गाधि की पुत्री

---

१. बुक्षुमान, सुषेण, वसु, विश्वावसु और सबसे छोटे परशुरामजी, ये सब भाई थे।

सत्यवती से भृगुकुल ऋचीक का विवाह हुआ था। महाराज गाधि के विश्वामित्र के अतिरिक्त अन्य कोई सन्तान नहीं थी।

पूरा जीवन द्रष्टव्य - **भगवान परशुराम**, लेखक - सागरमल शर्मा से उद्धृत

कई शताब्दियों के वर्षकाल तक यही चार या पाँच वर्ण जातियाँ के रूप में रहा, परन्तु जन्मसिद्ध वर्ण से ऊँच-नीच के भाव प्रवेश करते हुए स्वभावतः एक एक जाति का सैकड़ों जातियों, उपजातियों में विभागीय भेद हो गया। हजारों ही छोटे-छोटे वर्ग बने और अपनी उच्चता प्रकट करने के लिए उन्होंने अन्य उपजातियों से आपसी खाने-पीने और वैवाहिक सम्बन्धों को तोड़ दिया तथा अपनी-अपनी जातीयता के बड़पप्न सिद्ध करने के लिए उच्च महापुरूषों, ऋषि-मुनियों के नाम पर ही कल्पित इतिहास रचना द्वारा आधार ठहरा कर प्रसारित किये।

भारतीय इतिहास का पूर्वावलोकन

परम धर्म मार्गदर्शक परात्पर ब्रह्म के साकार रूप हमारे लोकदेवता के प्रणेता आदर्श सन्त, युगधर्म महापुरुष आनधर्म परम्परा के वैभव तथा अवतरण-कारण एवं जीवन-रचना के सम्बन्ध में परिचय करवाने से पूर्व भारतीय इतिहास का सामयिक पूर्वावलोकन परमावश्यक होगा। पूर्वात्पर आर्यावर्त भारत शुद्ध सामाजिक-धार्मिक और आध्यात्मिक देव शक्तियों का सजा हुआ भण्डार था। जिसमें नैतिक परिस्थितियाँ अनेक प्रकार से थी, जिसे भारतीय सनातन धर्म साधकों द्वारा वहन किया जाता रहा, प्रत्येक मानव सुखी सबलता से स्वाभिमान पूर्वक रहता था। वह समय सर्व सुखप्रद आध्यात्मिक उत्कर्ष **ऋषिकाल, दैविक** युग या वैदिक काल था। जहाँ जन मानस में सात्विक सबल दिव्य शक्तियों का साम्राज्य बाहुल्य था।

वहाँ कभी-कभी तामसी-राजसी वैभव पूरित आसुरी भाव उभरते थे, जिसे विभिन्न नाम रूप लीला अवतरणों द्वारा महापुरुषों की सामर्थ्य से निवृति होना भक्त भावन गाथा का विषय रहा है। महाभारत काल के पूर्व शुद्ध सनातन धर्म ऋषि प्रणालीय महर्षियों द्वारा प्रतिपादित शास्त्रीय युग धर्म लिये समग्र समाज उन्नति दिशोन्मुख रीति नीति सहित कर्म जन्य वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत चलता था। दोषी व्यक्ति अपने दोष को स्वयं स्वीकार करते और उचित दण्ड की याचना करते थे। तामस व्यक्ति भी प्रजा पोषक होते और सात्विक महाशक्तियों से प्रत्यक्ष ललकार कर अपने पौरुषत्व का परिचय देते एवं धर्मयुद्ध का क्षेत्र चयन करते थे। वह नीतियाँ द्वापुर आते-आते सर्वप्रथम द्रोणाचार्य जैसे स्वार्थलीन ब्राह्मण वृति के सामर्थ्य प्राप्त वीर योद्धा के रहते सर्वथा दूषित एवं धर्म भीरूता की दिशा में अवनति कारक कही जा सकती है।

प्राचीन वैदिक-पौराणिक काल में आर्य धर्म की सामाजिक व्यवस्था कर्मगत चार भागों में विभाजित वर्ण भेद की व्यवस्था थी। तब जन्म से जातिगत मान्यता एवं पारस्परिक छायादोष, छुआछूत जैसी घृणित अस्पृश्यता का सर्वथा अभाव था। युक्त बल-आचरण क्रिया-विद्या जन्य गुण सृजित तपोबल के द्वारा वर्ण का चयन करते हुए सर्वविदित खुली घोषणा होती थी- इत्यादि कारणों से शूद्रज उच्चवर्ण तथा दुष्कर्मा उच्च भी हीनवर्ण का हो जाता था। ऐसे अनन्त प्रमाणों-कारणों को इतिहास उजागर करता है कि - ***बाल्मीकि, वशिष्ठ,शक्ति, पाराशर, व्यास प्रभृत्यों को शूद्र जन्मा या वर्णशंकर होने पर भी ब्राह्मण-द्विज, ऋषि-महर्षि-संत गण की पंक्ति में मान्यता मिली। ब्राह्मण वंश में जन्मे रावण, क्षत्रिय वंश के शिशुपाल, दन्तवक्र, कंश, हिरण्यकश्यप-हिरण्याक्ष, बलि इत्यादि को दानव, असुर, राक्षसादि के पद-परिचय से जानने लगे।*** *अयोध्या के राजा भी कल्माषपाद से घोषित हुए। राजा ऋषभ की सन्तानों में ही चार वर्णों के कर्तव्यों से*

चयनित समाज व्यवस्था हुई । आज उन्हीं महापुरुषों द्वारा रचित-सृजित साहित्य ज्ञान सनातन धर्म का कर्णधार मूल आधार है । जिन्हें नींव के पत्थर की जगह पर कहे जा सकते हैं । जो अखण्ड भारत के महाभारत युद्ध के बाद समुचित विज्ञान सहित आध्यात्मिक ज्ञान गरिमा का ह्रास हुआ, वह पांच हजार वर्ष से पूर्व आरम्भ हुई स्वार्थ परता की पतन धारा को आज तक कोई रोक नहीं पाया । वह विज्ञान निरन्तर अवनति की ओर बहता हुआ आज २०% की समता पर अपने ही विनाश की ओर अग्रसर हो रहा है । आज आध्यात्मिक ज्ञानस्तर तो प्रतिदिन हिमालय निसृत गोमुख धारा की भांति पतित प्रथा समुद्र की ओर बहती गंगधारा की तरह पतन होता हुआ दृष्टिगत हो रहा है । गंगा के तीर्थागम की तरह बीच बीच में काशी, प्रयाग, हरिद्वार इत्यादि ऐतिहासिक धाम प्रवास करते सुरसरि की भाति समयानुरूप आद्यजगद्गुरु जनों में श्री शंकराचार्य जी श्री रामानुजाचार्यजी प्रभृत्य में श्री रामानन्दाचार्य जी सहित चतुर्वैष्णवाचार्य समूह महापुरुषों के अवतरण होते हुए विभिन्न प्रणालियों की धर्म धाराओं के प्रवाह प्रवाहित हुए, जो अद्यावधि पर्यन्त गतिशील है । इनके द्वारा समयान्तर समाज को यदा-कदा एवम् सदैव शान्ति सुख सुविधाओं के अनुसरण में लाभ की अपरोक्षानुभूति के साधन मिलते रहे हैं । इसका प्रमुख कारण रहा है कि -

उत्तम जगत की प्राकृतिक रचनाऐं सदा गुणावगुण पूरित पाप-पुण्य सन्निहित रही है और रहेगी । यथा –

उपजहि एक संग जग मांही, जलज-जौंक जिमि गुण विलगाही ।
सुधा-सुरा सम साधु-असाधु, जनक एक जग जलधि अगाधु ।।
भल-अनभल निज निज करतूती, लहत सुजस अपलोक विभूती ।
सुधा, सुधाकर, सुरसरि, साधु, गरल, अनल, कलिमल, सरि, व्याधु ।।
दुःख-सुख, पाप-पुण्य, दिन-राती, साधु-असाधु, सुजाति-कुजाती ।
दानव-देव, ऊँच अरू नीचू, अमिय सुजीवन, माहुरू मीचू ।।

काशी-मग, सुरसरि-कर्मनासा, मरू-मालव, महिदेव-गवासा ।
सरग-नरक, अनुराग-विरागा, निगमागम गुण-दोष विभागा ।।

समय-प्रभाव देश, काल, वस्तु-परिच्छेद परिस्थितियों से घिरा हुआ है । काल अपने भाव-प्रभाव में सदैव परिवर्तित होता आता रहा है । युगभेद से ऐतिहासिक घटनाऐं सदा उलट फेर होती रहती है । **इतिहास समाज का दर्पण** है, इसके द्वारा अतीत काल की घटनाओं को देखा जा सकता है । आज के वैज्ञानिक यन्त्र युग में चौचक्र-षट्चक्र वाहिनी को आगे की दौड़ करते समय चालक के आगे व दाँयें एक दर्पण लगा रहता है । जिस से पीछे के मार्ग का व्यवहार देखने में आता है । यदि वह नहीं लगा हो तो बीते अतीत पथ की तरफ से अचेतावास्था रखने में कोई भी अनहोनी दुर्घटना समुपस्थित हो सकती है । **इसी तरह इतिहास हमें भूतकाल से भविष्य की ओर ले जाते समय पूर्वात्पर घटनाओं से सचेत रखकर सावधान करता है** । इतिहास के घटनाक्रम में भारत के शोषण की शुरूआत वि० संवत् ७६९ से निरन्तर बढ़ती हुई विनाश लीला के गढ़ तक पहुँच गई है । इस प्रवाह की बारहवीं शताब्दी से अट्ठारहवीं शताब्दि के पूर्वार्द्ध तक शताब्दियों का स्वार्थ-ताण्डव नृत्य लगा रहा । यह दो हजार वर्ष का समय **यवन साम्राज्य काल** का रहा, इस समय में पाश्चात्य दिशा से आये शासकों के प्रभाव से भारत प्रभावित हुआ । तत्समय आर्य भूमि पर अनेक लूट-पाट, मारधाड़ से जन त्रसित का दुःखागार पूरित वातावरण रहा ।

सर्व प्रथम वि.सं. ७६९ में यवन सेनापति मोहम्मद बिन क़ासिम ने अकस्मात भारत पर चढ़ाई की व सिंध के राजा दाहर की दो पुत्रियाँ जालय व दर्पिणी किसी प्रकार से कासिम को प्राप्त हो गई थी । जब क़ासिम ने उनका धर्म नष्ट-भ्रष्ट करने की चेष्टा की तो बुद्धिमानी से उन आर्य ललनाओं ने धर्म की रक्षा करते हुए अरब के ख़लीफा द्वारा क़ासिम को मरवा दिया और दोनों कन्याओं ने विषपान करके मृत्यु मैया की गोद

प्राप्त कर ली। संवत् १०८२ में सोमनाथ मन्दिर से करोड़ों की सम्पत्ति महमूद ग़ज़नवी द्वारा लूटी गई, फिर शिवजी की मूर्ति को खण्ड-खण्डित कर दिया गया। संवत् १२४२ में मोहम्मद ग़ौरी ने भारत पर आक्रमण किया और बुरी तरह परास्त हुआ। सत्रह बार पृथ्वीराज चौहान से क्षमा माँग कर छूटने पर भी उनकी कुटिलता का अन्त नहीं हुआ। अन्त में धोखे से महाराज पृथ्वीराज को उदारता के बदले में दी गई मौत इतिहास में सर्वविदित है, जो शहाबुद्दीन गौरी के स्वभाव के संग मुस्लिम नीति की परिचायक है। अन्त में मज़हबे इस्लाम के बन्दे ने करोड़ों की सम्पत्ति लूट ली, हजारों ललनाओं ने भ्रष्ट होने से बचाव में कोई रास्ता न देख कर अग्नि स्नान कर लिया। जो बच गई उनको मुसलमानों ने भ्रष्ट किया, फिर उन्हें अफग़ानिस्तान ले जाया गया और एक-एक ने दो दो बीवियाँ बना कर रख ली। इधर शहाबुद्दीन ग़ौरी के एक चतुर गुलाम कुतुबुद्दीन ने मुस्लिम सेना का गठन करके दिल्ली पर अधिकार कर लिया। टूटे हुए मन्दिरों को भी नेस्तनाबूद (ध्वस्त) कर दिये। सम्राट विक्रमादित्य से निर्मित मेरू स्तम्भ ही वराह मिहिर की वेधशाला (यमुना स्तम्भ) नामक गगनचुम्बी स्तूप का नाम कुतुबमीनार रखा, ऐसे ही मिहिरालय को महरोली से नाम रख दे गया। कालान्तर में गौतम, कपिल, वशिष्ठ, व्यास के वंशजों ने ब्राह्मण होकर बिरहमान, वामन आदि अपभ्रंश युक्त शब्दों से स्वयं को प्रसिद्ध कर लिया। क्षत्रियों से खत्री, राजपूतों से रजपूत हो गये। वाराणसी को बनारस, अयोध्या को फैजाबाद, प्रयाग को इलाहाबाद, लक्ष्मणपुर को लखनऊ, लवपुर को लाहौर, पुरुषपुर को पेशावर, भाग्यनगर को हैदराबाद, इन्द्रप्रस्थ को दिल्ली, आर्यावर्त को हिन्दुस्तान के परिवर्तित नाम मिले। एक ओर संवत् १३५३ में अलाउद्दीन खिलजी अपने चाचा को धोखे से मार कर दिल्ली के तख्त पर बैठा। रानी पद्मिनी की रूप-प्रसिद्धि पाकर उसकी नियत खोटी हो गई। जब प्रत्यक्ष रूप से चित्तौड़गढ़ पर विजय

प्राप्त नहीं कर सके, तो छल से महाराजा भीमसिंह को गिरफ्तार करके अपनी धूर्तता का परिचय दिया, यह सब इतिहास से सर्वविदित है। अन्ततः गौरा-बादल की मृत्यु परीक्षा से महाराजा बचकर आ सके एवं पद्‌मिन ने जौहर रचकर हजारों वीरांगनाओं के साथ अग्नि स्नान (जौहर) करके पतिधर्म रक्षा की। चित्तौड़गढ़ में बहुमूल्य वस्तुओं की लूटपाट करके अजमेर की ओर लौटा तो चिश्ती की दरगाह को चित्तौड़ की दुंदुंभी, एक मूल्यवान दीप स्तम्भ और एक राजमन्दिर के सुन्दर सुदृढ़ कपाट को अजमेर दरगाह में चढ़ा दिये, जो अद्यावधि साक्ष्य देते हुए इतिहास के पूर्वावलोकन की गाथा कहते हैं। वहाँ से दिल्ली जाते समय रास्ते में जो भी, जहाँ भी जितने हिन्दू मिले उनसे उतरवाए यज्ञोपवीत अजमेर दरगाह में तौले गये तो उनका वजन ७४/५ मन हुआ। तदुपरान्त भी बाबर, हुमायूँ, अकबर आदि शासकों ने अपने-अपने ढंग से आर्यावर्त भारत राष्ट्र को कुचलने में कसर नहीं छोड़ी। महाराजा राणा प्रताप की शक्ति नगण्य होकर भी भील सेना के साथ मुगल शासक को नाकों चने चबवा दिये। तभी से इतिहास प्रसिद्ध है कि वह राणा प्रताप हिन्दू सम्राट राजस्थान के सूर्य कहलाये। जिन्होंने राष्ट्र, गौ-गीता की रक्षा के लिये असंगठित राज-राजाओं की फूट के कारण घास की रोटियाँ खाकर भी कई वर्षों तक जंगल के पहाड़ों में विचरते-लड़ते रहे।

(१) पाश्चात्य यवन विजय के बाद मुगल साम्राज्य के संस्थापक **बाबर** की नीतियाँ हिन्दू धर्म के प्रति क्रूरता भरी अतिशय कठोर, उदारताहीन थीं। जिन्होंने निर्मम निर्दयता से शरीअती मज़हब के ऐलान से चन्देरी के साथ भारत के कई मन्दिरों को ध्वस्त करवाया। इन्हीं की आज्ञा से मीरबाकी ने हिन्दू धर्म आस्था के केन्द्र मठ-मन्दिरों के पूजास्थल धर्म परिसरों की शृँखला में स्वर्णभूमि धर्मस्थली अयोध्या की राम जन्म भूमि, काशी विश्वनाथ भूतभावन का शिवालय तथा मथुरा की कृष्ण जन्म भूमि

इत्यादि जैसे अनेक आस्था स्थापित प्रमुख हिन्दू मन्दिरों में श्री वैष्णवपीठ एवं श्रीमठ जैसे अन्यान्य कई प्रधान आचार्य पीठों एवं जैन मन्दिरों को तुड़वा कर वि.सं. १४२८ से १४२९ में बड़ी-बड़ी मस्जिदों के रूपान्तरणों में मन्दिरों को परिवर्तित करवा दिये गये थे, जो आज तक मज़हबी संघर्ष के कारण और मानवता के बीच की दरार बने हुए कराह रहे हैं।

(२) बाबर के एक मात्र पुत्र **हुमायूँ** ने भी अपने पूर्वजों का अनुसरण किया। इन्हें परास्त करके अफगान सरदार (३) **शेरशाह सूरी** दिल्ली के तख़्त पर बैठे तो उसने राजस्थान में जोधपुर के प्रधान मन्दिर को तुड़वाकर [1] मस्जिद बना दी थी। (४) हुमायूँ के पुत्र **अकबर** हुए, जिसने छद्म रीति से कुटिल राजनीति चलाकर अनेक हिन्दू राजाओं से रिश्ते जोड़ कर उनकी ललनाओं से विवाह किये। यद्यपि पूर्वात्पर मुग़ल शासकों से अकबर की छद्मता भरी धार्मिक राजनीति कुछ उदार थी। जिसमें उनके द्वारा हिन्दु त्यौहारों का मनाना, हिन्दू कवि-पण्डितों को राज्यसभा में उचित स्थान दिलाना, बीरबल एवं कवि गंग जैसे बुद्धिमानों को विनोदार्थ मंत्री पद पर नियुक्त करने के साथ गायों के वध होने की प्रक्रिया को बन्द करवा देना प्रधान कृत्य था, तद्यपि परोक्ष रूप से हिन्दु धर्मान्तरण की प्रक्रियाऐं चलती रहती थी और हिन्दु राज कन्याओं से विवाह सम्बन्ध भी किये। अकबर के पश्चात् उनकी उदार नीति का पूर्णतः पटाक्षेप (अन्त) हो गया था। (५) उनके पुत्र **जहाँगीर** का पुनः पहले के शासकों जैसा ही पुराना हिन्दू शोषण काल का जाल बिछाया गया। जिसमें सामाजिक, धार्मिक अवरोध खड़े होते रहे। वे अकबर की उदारता पर नहीं चल पाये और उदार सहानुभूति में गतिरोध हो गया। उनके पुत्र (६) **शाहजहाँ** अपने पिता की अपेक्षा और भी अधिक क्रूर रहा। उसने हिन्दु धर्म में कुफ़्रता के अनेक आघात पहुँचाये। पुनः हिन्दुस्तान को एक ऐसे

१. मुग़लकालीन भारत, पृष्ठ - ५८३

आततायी शासक औरंगज़ेब के हाथों विवश होना पड़ा, जिसने अपने पिता को कैद के कठघरे में तड़पा-तड़पा कर भूखे-प्यासे रख कर मार डाला और स्वयं शासक होकर पिता का शासन प्राप्त किया था। तब मरते हुए **शाहजहाँ** ने कहा था कि - **"मैं बादशाह होकर भी भूखा-प्यासा मर रहा हूँ। हिन्दू धन्य हैं जो ब्राह्मणों को श्राद्ध के नाम से खिलाने के बहाने अपने मृत माता-पिता को भी खिलाते हैं।"** औरंगज़ेब के शासन में हिन्दुओं का धन-धर्म, जीवन नष्ट भ्रष्ट किया गया। मन्दिर तोड़े गये, चोटियाँ काटी गईं, जनेउवों को पैरों तले कुचल कर जलाये गये, निरीह गौ हत्यायें की गईं। ज़िन्दा हिन्दुओं पर जजिया कर लगाये गये। हिन्दुओं के मरने पर मुर्दा जलाने का सवा रुपया कर देना पड़ता। जहाँ एक तरफ मुस्लिम जनों के चारित्रिक पतन के सैकड़ों ऐतिहासिक उदाहरण हैं। वहाँ हिन्दू धर्म ग्रन्थों को घुड़सालों की भट्टियों में जलवा कर नष्ट कर देने तथा तत्समय के हिन्दु-पण्डित विद्वान ब्राह्मणों को धन के प्रलोभन या तलवार के बल पर डरा धमका कर मनुस्मृत्यादि पुराण प्रभृत्य अनेक हिन्दु धर्म ग्रन्थों में प्रक्षिप्त श्लोक, अनैतिक-असभ्य कुरीतियों के अंश बीजारोपण हेतु मिलावट करवाये गये। जिसके परिणाम से जाति-पाति, भेद-भाव जन्मगत जातीयता की परस्पर छूतछात, अस्पृश्यता, अशिक्षा, पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, नारियों का अपहरण, बचाव में अग्नि समर्पण प्रथा (सती) इत्यादि अनेक नीतिहीन वेद विरुद्ध अश्लील पद्यों का क्षेत्रीय प्रभाव से मिश्रण करवाया गया। जातिगत परस्पर दूरियों के साथ हिन्दू धर्म-ग्रन्थों के पठन पर प्रतिबन्ध लगाने इत्यादि प्रक्रियाओं के लिये अलग से महकमा ही खोल दिया गया था। इससे ब्राह्मण वर्ग में अहंता वर्द्धन, तप-विद्याभाव, **क्षत्रिय वर्ग** वैश्य में धर्म-शिक्षा-संगठन का अभाव एवम् विलासिता के जीवन का भरपूर सृजन हुआ। **शोषित वर्ग** में अनेक जन्मगत जाति नाम सृजन एवं **शोषित**

वर्ग को मन्दिर प्रवेश वर्जित एवं विद्याध्ययन, धर्म संस्कृति से वंचित कर दिया गया। अस्पृश्यता, छायादोष, गुलामी, दास प्रथा, बैठ-बेगार, बन्धुआपन इत्यादि के लिये **शोषक वर्ग** में सामन्तवाद को भड़काया गया। परिणामतः **शोषक-शोषित** वर्गों के बीच अनेक जाति-गौत्रों का उद्भव, ऊँच-नीच में भावों का सृजन हुआ। **शोषित वर्ग** में हीन भावनाओं का गर्त-भय बैठाया गया। इसी शृँखला में वि. सं. १७२६ में हजारों मन्दिरों की मूर्तियां तुड़वायी गईं और हिन्दुओं पर पहले की अपेक्षा चार गुना अधिक बढ़ा कर [१] जजिया कर (Tax) लगाये गये। इस जजिया को रोकने-रूकवाने के लिये यदा कदा कई हिन्दुओं ने पूर्व बादशाह शासकों की भाति (७) औरंगज़ेब से भी कई बार प्रार्थनाऐं कीं, किन्तु एक भी प्रार्थना नहीं सुनी गई। एक बार जब कुछ हिन्दू जजिया कर हटवाने की प्रार्थना को स्वीकार करवाने हेतु दिल्ली जामा मस्जिद के सामने इकट्ठे हुए तो क्रूरता का अतिक्रमण करते निर्दयी औरंगज़ेब ने निरपराध हिन्दुओं को हाथियों के पैरों तले कुचलवा कर अन्याय की सीमा ही लांघ दी थी। इस प्रकार बर्बरता पूर्वक की गई हिन्दूओं की निर्मम हत्याओं की घटना से क्षुब्ध होकर मेवाड़ के तत्कालीन राजा राजसिंह ने संतुलित मन से औरंगज़ेब को विवेकपूर्ण एक पत्र लिखा, जिसमें ईश्वर-अल्लाह, मन्दिर-मस्जिद को एक बताते हुए "जज़िया कर" हटाने हेतु निवेदन किया गया था। उस पत्र को पढ़ कर बजाय प्रसन्न होने के खिसियाए क्रूर औरंगज़ेब और अधिक कुपित होकर बौखला गया। परिणामतः वि.सं. १७३७ में एक विशाल सेना भेजकर चित्तौड़, मॉण्डलगढ़, उदयपुर आदि में बहुत से अन्य स्थाने ध्वस्त करवा दिये। उन स्थानों को अनेक मन्दिरों को धराशायी करके उनकी मूर्तियों

---

१. बारह प्रकार की आततायी प्रक्रियाऐं, जिसमें सामयिक सामाजिक समूल गतिरोध उत्पन्न हुए, जिसका "**जजिया कर**" नाम से आगे परिचय करवाया गया है।

को तुड़वायी गई। इस प्रकार राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से पूर्व तेरहवीं से सतरहवीं शताब्दी की अपेक्षा अट्ठारहवीं शताब्दी **भारतीय इतिहास** में काली घटा घोर पतनकारी क्रूर अवस्था में रही। तेरहवीं से अट्ठारहवीं शताब्दी के बीच जो भी शासक हुए लगभग हिन्दु धर्म/समाज पर सभी का दुर्दान्त भयंकर उत्पीड़न काल का बना रहा। उन सब में एक ऐसा कठोर निर्दयी बर्बर हृदयी और क्रूर स्वभाव का औरंगज़ेब हुआ जो अपने भाईयों की हत्या करके वृद्ध पिता को भी जेल में बन्द करके आप स्वयं शासक बन बैठा था। ऐसे भीषण उत्पीड़ित समय में हिन्दु वर्ग पूर्वात्पर शताब्दियों तक निरन्तर संतप्त दुःखी रहता आया, वह सतत विनाश के कगार पर पहुँचता गया। यवन कालीन दुष्कृत्यता पूर्ण बर्बर आक्रमणों से सम्पूर्ण हिन्दु समाज त्रसित और व्याकुल था। जिस पर विविध अत्याचारों के कहर ढाये जाते रहे। उनके साहस की चरम सीमा आ चुकी थी। केवल उनके जीवित रहने की एक मात्र किरण रह गई थी और वह थी **धर्म परिवर्तन की पद्धति**। शासक गण का एक मात्र लक्ष्य भरा परमोद्देश्य था कि - येन केन प्रकारेण **हिन्दुओं को मुसलमान** बनाया जाये और हिन्दू ललनाओं को जबरदस्ती अपने हरम़ की ओर खींचकर नारी उत्पीड़न के साथ उन का सतीत्व नष्ट करना अथवा हिन्दू राजा-प्रजा को शोषित करने में दुर्दान्त कृत्य को करने का। ऐसी कठिन परिस्थितियों में अवध देश के क्षत्रिय शासक एवम् मथुरा के जाट शासकों ने यदा कदा डट कर मुकाबला किया। उन का विपक्षी सैनिक कुख्यात मुर्शिद कुलीन ख़ान था, जो रोज़मर्रा कोई न कोई पंगा खड़ा कर देता। ऐसे ही एक दिन शराब के मदहोशी की उन्मत्त दशा (वि.सं. १६३८) में हिन्दू राजवीरों द्वारा वह मौत के घाट उतार दिया गया। यवन शासन काल में औरंगज़ेब के धार्मिक पक्षपात की राजनीति दुःर्धष संघर्ष की उग्रता को दावाग्नि का तूल देने में वह घटना सार्थक हुई। अब्दुल के द्वारा कई तीर्थ स्थलों के

मन्दिरों को ध्वस्त-नष्ट करवाया गया । बहुमूल्य अनमोल आस्था स्रोत देव प्रतिमाओं को जहाँआरा मस्जिद की [१] सीढ़ियों के नीचे दबाया गया । औरंगज़ेब के अत्याचारों की अति से जब गुरु तेगबहादुर अधीर हो गये, तब उन्होंने आत्मोत्सर्ग का अटल संकल्प लिया पर औरंगज़ेब ने उन्हें पाँच सौ सिखों के साथ विश्वासघात करके गिरफ्तार कर लिया । उनमें से एक भाई मतिदास भी थे, उन्हें मुस्लिम बनाने के लिये बहुत प्रलोभन दिये, फिर कष्ट दिये, वह सब उपाय व्यर्थ (निष्फल) देख कर अन्त में (सन् १७३२) संत मतिदास को आरे से चिरवा दिया तब उन्होंने कहा –

आरा प्यारा लगत है, अब अविलम्ब चलाय ।
शीश जाय तो जान दे, पर प्यारा धर्म न जाय ।।

औरंगज़ेब को **संत मतिदास** के वध से सन्तोष न हुआ तो उसने **गुरु तेगबहादुर** का मस्तक भी काट कर भाले पर टांग दिया । जिसे दो वीर पिता-पुत्रों ने मिल कर निकाला । **गुरु तेगबहादुर के बाद गुरु गोविन्दसिंहजी** के चार बच्चों का मासूम अवस्था में ही दीवार में चुन कर वध कर दिया । संवत १७६९ में एक पठान ने आकस्मिक आक्रमण करके [२] गुरु गोविन्दसिंहजी की हत्या कर दी । फिर **बन्दा वैरागी** को किस प्रकार यातनाऐं देकर मारा गया, वह इतिहास साक्षी है । इस औरंगज़ेब के १७१५ से १७६४ तक रहे शासन में हिन्दु वीरों ने यदा कदा युद्ध किये, किन्तु असंगठित एवं आपसी द्वन्द के कारण सफलता नहीं पा सके । मथुरा के जाट राजाओं और राजस्थान एवं अयोध्या के राजपूत राजाओं ने अन्याय के विरूद्ध जम कर संघर्ष किया, किन्तु असंगठित शक्ति होने के कारण वे अधिक समय तक विजय पताका फहराने में सफल नहीं हो सके । इसी तरह दक्षिण भारत में भी हिन्दु राजाओं के साथ अविराम

१. मध्यकालीन राजस्थान का इतिहास पृष्ठ २०१
२. मध्यकालीन भारत - पृष्ठ ४६६

युद्ध चलते रहने के कारण सैनिक शक्ति के ह्रास एवं जन त्रासदी बढ़ जाने की स्थिति में बुरी तरह से राज्यों की रियासतें तहस नहस हो गई थी। इस तरह प्रति वर्ष युद्ध में लगभग एक लाख लोग मारे जाते और चतुरंगिणि में ऊँट, बैल, हाथी, घोड़े आदि मरने वाले पशुओं की संख्या क़रीब तीन लाख से अधिक पहुँच जाती थी। इस शताब्दी की अराजकता पूर्ण दुर्दान्त स्थिति का पूर्ण रक्त रंजित इतिहास अपने उत्तराधिकार समय को उपहार सुपर्द करके अपनी सफलता पर पश्चाताप करता हुआ भारत से विदा हुआ। इस प्रसंग में भारतीय इतिहासकारों के साथ तत्कालीन भारत का साहित्यक इतिहास भी मर्मस्पर्शी कहा जा सकता है, चूंकि साहित्य समाज का **चरित्र दर्पण** होता है। उस पर समाज की अमिट छाप होती है, तब किंचित वहाँ भी दृष्टिपात किया जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी।

वीर गाथा काल का अध्ययन – साहित्य के इतिहास में सन् १००० से १३२५ (वि.सं. १०७५ से १४००) तक का समय **वीर गाथा** काल का माना गया है। इसमें उपयुक्त रक्त रंजित इतिहास का योगदान रहा है और राष्ट्र की प्रान्तीय रियासतें भी उन ज्वालामुखी समय से अछूती नहीं रह सकी। राजस्थान सहित समूचे देश की[1] दशा अत्यन्त चिन्तनीय थी। यहाँ के राजपूत **सुरा-सुन्दरी और सत्ता** के मद से मदान्ध होकर एक तरफ जहाँ मुग़ल शासकों से लड़ भिड़ कर शोषित दशा में बहिन-बेटियाँ देकर सुखों के ऐश्वर्य को सृजित-अर्जित करते, वहाँ पारस्परिक द्वेष की ज्वाला में भी जल रहे थे। शाहजहाँ के खूनी पंजे समय-समय पर उन्हें लहू-लुहान करते रहते, उसमें अपार जन-धन की क्षति होती रहती थी। धर्मस्थान, पूजास्थल, देवमन्दिरों के स्थान पर मस्जिदों का निर्माण होता रहता और मुसलमान बादशाहों के दरबारों में रह कर चाटुकारिता

१. दरियाव दिव्य वाणी – पृष्ठ २० से २५

करने वाले राजपूत अपना व अन्य राजपूतों के नैतिक दल बल को सदा तोड़ते रहते थे। इनमें केवल **सुरा सुन्दरी** की विलासित सत्ता ही शेष रह गई थी। जिनके लिये आपसी वंश को उजाड़ा जाता, प्रजा की चिन्ता ताक में रख दी गई थी। तत्समय वीर राजपूतों के वंशज अपने समकालीन प्रतिपक्षी मुगल बादशाहों के समान सुरा-सुन्दरी के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पित करने में पीछे नहीं रहे थे। **वीरगाथा काल** की सामाजिक परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण करके तत्कालीन सामन्ती क्षणों में समाज को विभिन्न भागों में विभक्त करके अध्ययन करने से अवगत होगा, जिसे कवि चारण काव्यों, ख्यातों द्वारा अमरत्व पान करवाया गया था।

सामाजिक वर्ग का अध्ययन - (१) समाज का एक निम्न वर्ग था, जिसे गरीब तबक़े का कहा गया है। जो वास्तव में यवन प्रशासन एवं राज खानदानी से शोषित था। ऐसा जनसमूह सर्वाधिक संख्या में होकर भी रोज़ी-रोटी के लिये तृसित और विभिन्न प्रकार से बँटा हुआ असंगठित था। इनकी गाढ़ी कमाई के पैसों से दरबार की सजावटें टिकी हुई रहती थीं। जिनकी मेहनत पर सुगन्धित द्रव्यों आदि में शाही विदूषकों, चापलूसों, मसखरों, छुटभईयों-ठाकरों का खर्चा चलता था। इस वर्ग में कृषक, कलाकार, व्यवसायी लोग थे, जिनसे अत्यधिक बैठ-बेगार आदि के काम लिये जाते थे। उन के श्रम या शक्ति का भरपूर शोषण उपर्युक्त शोषक वर्ग करता था। उनके साथ पशु तुल्य व्यवहार होता था। इतना सब अत्याचार सहने के पश्चात् भी सरकारी अधिकारियों की धौंसपट्टी भी इन्हें विवश होकर सहनी पड़ती थी। शासक वर्ग से किये गये शोषित धन का उपयोग वे सदा सुरा-सुन्दरी के ऐशो आराम व्यभिचारादि दुर्व्यशनों में करते थे तथा उनकी बहु बेटियों को खरीद कर दास-दासियाँ या मुसलमान हुरमें बना दिया करते थे। अपने दुर्गों को सुरक्षित रखने हेतु उनकी नींव में नरबलि के नाम ग़रीबों को क्रय करके जीवित चुने जाने पर भी कोई

बोल नहीं सकता था। ऐसी परिस्थितियों में शोषित एवम् पीड़ित वर्ग की पुकार सुनने वाला कोई नहीं था।

(2) दूसरा मध्यम वर्ग वह था – जो अनेक तरह से व्यवसाय में लगे हुए थे। अनेक प्रकार की विभिन्न कलाओं को जन्म देते तथा हस्त शिल्प के द्वारा अपना जीविकोपार्जन करते थे। इस वर्ग में साहूकार व्यापारियों की हालत पर्याप्त ठीक थी। हस्तशिल्पी निपुण कारीगर अच्छी खासी धन राशि कमा लेते थे और अपनी जीविका-व्यवहार ठीक सुचारू रूप से चलाते थे। ऐसे समाज की सुन्दर बहन-बेटियों का अपहरण राजाओं-अमीरों, खान-खाना, मुसाहिबों द्वारा कर लेना कोई बड़ी बात नहीं थी अर्थात् उस ***मध्यम वर्ग*** की इ़ज़्ज़त भी इस प्रकार सुरक्षित नहीं थी, जिसकी कोई पुकार सुन सके, ऐसा भी कोई समाज में न्याय देने वाला नहीं था।

(3) तीसरा वर्ग वह था – जो सामंती और शोषक श्रेणी का था। ऐसे मुगल परिवारों व राज्याश्रित अमीर धनी लोगों के परिवारों का जीवन वैभव सम्पन्न ऐश्वर्य से परिपूरित होता था। वे अपनी शान शौकत तथा विलासिता पर अपार धन खर्च करते थे। शाहजहाँ के लिये हर वर्ष एक हजार बहुमूल्य वस्त्र बनाये जाते थे। जो प्रतिवर्ष के अन्त में चापलूसों, सभा के अमीरों को भेंट में बख़्शीश कर दिये जाते थे। शाही बेगमों के पास अपना अपार खज़ाना अलग होता था, जिसमें धन की कमी नहीं रहती थी। जिसका अनुमान करना भी कठिन होता था। शाहजहाँ के पास पाँच करोड़ के निजी हीरे जवाहरात रत्न थे। जिससे विभूषित होकर वह राज-तख़्त सिंहासन पर बैठता था। सिंहासन तक जाने के लिये रत्न जड़ित सीढ़ियाँ रहती थी। इनके चारों तरफ विभिन्न चौखटें होती थी, उन सब के बीच केन्द्रीय रत्न के रूप में बहुमूल्य रत्न जड़ित सिंहासन था।

उसके सरदारों व अमीरों सभासदों का जीवन भी शान शौकत से सजा बहुत वैभवपूर्ण था । [१] उन्हें बड़ी-बड़ी तनख़्वाहें मिलती थी । ये लोग निरन्तर व्यभिचार, मदिरा पान, जुआ खोरी आदि सप्त व्यशनों में डूबे रहते थे । ऐसे विलासपूर्ण सामन्तवाद की संस्कृति का कुप्रभाव आम जन मानस को आचार संहिता से भ्रष्ट नष्ट करता जा रहा था ।

रीति-भक्ति काल – हिन्दू समाज की धार्मिक स्थिति **साहित्य इतिहास** में भक्ति काल सन् १३२५ से १६५० अर्थात् वि.सं. १३८२ से १७०७ तक माना गया है । पूर्वात्पर हिन्दु धर्म साहित्य में प्राचीनतम विश्व के इतिहास में ऋग्वेद सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ है, इसके बाद अन्य साहित्य यजु, साम, अथर, ब्राह्मणग्रन्थ, कल्प, ज्योतिष, छन्द, व्याकरण उपनिषद् के साथ आचार संहिताओं में मनुवादि ऋषि-महर्षियों द्वारा २७ स्मृति समीप से पुराण तथा सन्त वाणी सत्साहित्य सिद्धान्त शास्त्रादि का अथाह भण्डार सर्वगुण सम्पन्न सामाजिक मार्ग दर्शन हेतु उपलब्ध होता रहता है । सतयुग त्रेतायुग द्वापुर के इतिहास में कल्पभेद-कालभेद संजोये जाते रहे । प्राचीनकाल में जन्म से केवल चौरासी लाख जाति विधान के अतिरिक्त मानव समाज में कोई जाति विधान नहीं था । केवल मात्र कर्मजनित वर्ण-व्यवस्था ही सामाजिक प्रतिबन्ध था । अतिरिक्त परस्पर छुआछूत (अस्पृश्यता) का कहीं कोई नामो निशान नहीं था । ऐसा प्राचीन इतिहासों से अवगत होता है तथा धर्म ग्रन्थों के उदाहरणों से भी जाना जाता है । इस प्रकार के मानव जीवन के बहुमूल्य सामाजिक, आध्यात्मिक, आर्थिक पूर्ण धर्म अर्थ काम मोक्षादि की प्रगति अवस्था को प्राप्त करने हेतु विश्व को जो कुछ मार्गदर्शन मिला, उसमें सर्वाधिक उपादेय सामग्री श्रीवैष्णव परम्परा के ऋषि, महर्षि, सन्त-पूर्वाचार्यों की ही देन रही है । श्रीवैष्णव धर्म सम्प्रदाय गत वशिष्ठ, पाराशर, वेद व्यास इत्यादिक पूर्वात्पर ऋषि महर्षि जनों से जो कुछ अपूर्व ज्ञान व्यवस्था

१. मध्यकालीन भारत – पृष्ठ ५७१

मिली, वह परम श्रेष्ठ रही । उसी के आधार पर मनोबल संजोये, कठिन से कठिन भीषणतम कठिनाईयों, उपद्रवों, संकटों को सहन करते हुए भी **सनातन हिन्दू समाज** की साम्यावस्था कायम रही ।

प्राचीन से अद्यावधि पर्यन्त के इतिहास में हिन्दु समाज सदैव तामसी पैशाचिक राक्षसी प्रवृत्तियों से शोषित होते हुए भी अद्यतन गौरव से जीवित है । **अन्य धर्मावलम्बियों को सर्वस्व देते हुए भी पूर्ण पराकाष्ठा से पूर्ण अस्तित्व रखे हुए है ।** इस का एक मात्र आधार पूर्वाचार्यों से परम्परा का तपोधन अद्यावधि पर्यन्त धारा प्रवाह से अजस्त्र रूप से सिंचित सृजित है, वह परम आध्यात्मिक शक्ति सन्त कृति है । वही धार्मिक स्थिति बारहवीं शताब्दी से अट्ठारहवीं शताब्दी से आगे भी विविध झकझोरों को सहन करते जीवनाधार शक्ति के सम्बल में रहती रही । जो **वीरगाथा काल** के यवन साम्राज्य के साथ सामन्तवाद में राजाओं द्वारा हुए शोषण में भी समाज का एक सम्बल बना रहा । जिससे बाहुल्य समाज में कुछ व्यस्थाऐं अपभ्रंशित हुई, कुछ मानव बाहुल्य का मानस विपल्व में अवलोड़ित हुआ । ऐसे काल में हिन्दु समाज की धार्मिक स्थिति डाँवाडोल होकर अस्तित्वहीन होने लगी थी ।

इस बारहवीं शताब्दी से लगातार अट्ठारहवीं शताब्दी तक का समय सभी प्रकार से सर्वकालिक ठीक नहीं कहा जा सकता । इस काल में राज्याश्रित धर्म पूरी तरह भ्रष्टाचरण का पर्यायवाची बन गया था । इसमें हिन्दु समाज की धार्मिक व्यवस्था विभिन्न श्रेणियों या कल्पित जातिवाद,पन्थवाद में मानवता को विभिन्न कोटि से अलग-थलग बाँट रही थी ।

(1) प्रथम कोटि – इसके अन्तर्गत वह धार्मिक अमीर लोग थे कि जिनमें शाही-फकीर, राजगुरु, राजसमर्थित मठ-मन्दिरों के महन्त-पुजारी

इत्यादि होते थे। वे दुराचरण पूर्ण कुकृत्यों में लिप्त रहते थे, देवदासी प्रथा में नृत्यांगनाऐं कथित दास-दासी के रूप में दूत-दूतियाँ रखते थे। उनके चरित्र **यथा राजा तथा** प्रजा के अनुसार नीचता की पराकाष्ठा को स्पर्श करने लगे थे। वे राजाओं के अनुकरण से शाही ठाट-बाट का रहन रखते। भक्ति-ज्ञान वैराग्य के वृक्षों की जड़ों में स्वार्थपरता की भोग-लिप्सा के कीड़े लगने से सामाजिकता के साथ भक्तिमार्ग में खोखलापन छा गया था, किन्तु शासन का सम्बल पाकर तलवार के बल पर ये धर्मध्वजी न केवल टिके थे बल्कि अन्य धर्मावलम्बियों मत-पन्थ के उपासकों-अनुयायियों पर जुल्म ढाने में भी व्यस्त रहते थे। मुल्ला-मौलवियों और उलमाओं का जहाँ समाज के विरूद्ध जलवा था। वैसा ही हिन्दु समाज में भी राज्याश्रित धर्म ध्वजियों का शैव-वैष्णवों के विवाद का आपसी युद्ध चरम सीमा पर था। इस प्रकार से किये जाने वाले धर्म-परिवर्तनों व अत्याचारों के कारण एक प्रकार का अनदेखा उग्र विरोध अन्दर ही अन्दर पनप रहा था। भस्मी में दबी आग की भान्ति सुलगती चिंगारियाँ भड़कती दृष्टिगत होती थी। सर्वत्र इन्द्रिय लोलुपता की तृष्णा पूर्ति के उपाय **सुरा सुन्दरी** को प्राप्त करने में निहित मानते थे।

(2) दूसरी कोटि – इसके अन्तर्गत धार्मिक धरातल पर वह लोग थे, जो कि घोर अन्धविश्वासों पर टिके थे। यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, जादू-टोना, भूत-प्रेतों या देवी-देवताओं के द्वारा मन माने उपायों से अन्धविश्वास की जड़ों को गहरी जमा रहे थे। वह विविध भाँति की अफवाहों से अश्लील हरकतों के दुराचरणों द्वारा दशा-बीसा, बड़ा धर्म, निजारीपूजा में भैरवीचक्र के शाक्तक ताण्डव करने में कल्पित मार्गी लीन रहते थे। सर्वथा अनैतिक उत्साह, आध्यात्म नैतिक अशान्ति का वह समय मानव जीवन में दानव दर्शन करवा रहा था। उनमें कई गांजा, भाँग, चण्डू, चरस, अफीम

इत्यादि नशों में उन्मत्त शिव के प्याले के नाम पाखण्ड पूजा, उन्मत्त-स्तम्भन प्रक्रिया से दुराचरण रत रहते थे।

(3) तीसरी कोटि – इसके अन्तर्गत वे सामजंस्य वीर प्रभुत्व पुरुष थे, जो कि उपर्युक्त प्रथम कोटि एवम् दूसरी कोटि को मिला कर अपनी तीसरी पहचान बनाई रखते। जो राजसी ठाट के साथ कुछ वीरता भरी जीवनियों के परे यन्त्र मन्त्र तन्त्र संयुक्त देवी-देव मण्डित सिद्धि आकांक्षाओं की पूर्ति के साथ जीते थे। वह शासन शासित मुस्लिम बादशाहों और हिन्दुत्व के बीच सन्धि प्रक्रियाओं से जन मानस को अपने उपासकों, प्रशंसकों एवं आस्थावान अतिशयोक्तियों के फैलाने वालों को अपने साथ रखते थे। वे दशा बीसा समर्थक होकर जाति-कुजाति (स्पृश्याऽस्पृश्य) के भेद बर्ताव को मिटाने में नया मार्ग मानते थे। मुल्ला-मौलवियों से उत्पीड़ित एवं सामाजिक शोषण से बचने के साथ भौतिक सिद्धियों के लोभ से शारीरिक सुख को चाहते थे, उन की पूर्ति उन वीर-भक्त सिद्धों से होती थी। वे सन्त, सिद्ध या लोकदेवता अथवा अवतारवाद के धनी वीर पुरुष कहलाते थे और वही समय की प्रसिद्धि पाने लगे।

ऐसा समय लगभग वि. सं. १४५० से वि. सं. १७०० के बीच का रहा, इसी समय में मारवाड़ में सन्त, लोकदेवता, वीर जुझारू जैसे जाम्भाजी, रामदेवजी, मल्लीनाथजी, हड़बूजी, पाबूजी, मांगलिया इत्यादि वीर पुरुषों का सिद्धी भरा चमत्कारिक जीवन में अनुयायीगण की रीति ध ारायें पारस्परिक विभिन्नता लिये रही। इसी युग में रामदेवजी का अस्तित्व सिद्धियों से चमत्कृत एवम् शोषित वर्ग में प्रभुत्व भरा अनुशासित जीवन का रहा था, ऐसे ही भारतीय क्षेत्रों में अन्यान्य वीर भक्त स्वयं सिद्ध प्रसिद्धि वाले महामानव भी आये, यह समय उन्हीं के प्रभाव का था।

भक्ति युग का पुनर्जागरण

अर्थात्

भक्ति उद्गम का सूत्रपात

ऐसी सामाजिक दुरूह परिस्थितियों में हिन्दु समाज का सनातन धर्म अपने त्राण की खोज में लगा रहता था। भारत के कुछ विचारवान संतों ने एकान्त जंगल की शरण ली। दूसरे कुछ संतों ने डट कर संघर्ष भी किये। उन्होंने चारों ओर सैनिक संगठन भी बनाने शुरू किये थे। वैरागियों के लिये सैनिक शिक्षा आरम्भ की गई थी। सातवीं शताब्दी से लेकर हिन्दु धर्म का आपसी द्वन्द युद्ध जैनों, बोद्धों, वैरागियों, नाथों का चलता हुआ आपसी उन्माद भरा द्वैष प्रवाह समाज को खोखला और अशान्त बना चुका था। दूसरी ओर नित्य मठ-मन्दिरों में स्थापित पूज्य मूर्तियों को खण्डित होते देख कर सगुण अवतार उपासकों में अपनी आस्था इष्ट पूजा के प्रति उदासीनता की भावनाऐं प्रवेश करती जा रही थीं। उस निराशा से बचने के लिये जन मानस को निर्गुण उपासना की प्रवृति जगाने, योग-ध्यान द्वारा अदृश्य शक्ति की ओर जाने की प्रेरणा प्रदान की जाने लगी। इस प्रकार सामाजिक धार्मिक जन जीवन में बड़ी विषमताओं ने डेरा डाल रखा था। साधु सन्त कठिन साधना से योगसिद्धियों, चमत्कारों के प्रभाव में तथा कई धन-वैभव से, कई तान्त्रिक प्रयोग ओझा (भोपा) के रूप से चमत्कार उजागर थे।

ऐसी विकट परिस्थितियों में श्रेय उपेक्षित भारत भू-भाग में हिन्दु समाज के लिये ईश्वरीय कृपा पूर्ण परम सौभाग्य का द्योतक समय आया। जो पूर्वार्चित पूर्वातपर ऋषि महर्षियों द्वारा त्याग तप से अर्जित प्रचलित सत्य धर्म अपना सनातन स्वरूप अविच्छिन्नता को खो रहा था। प्रायः सामन्तवाद के साथ यवन साम्राज्य में लुप्त प्राय हो रहा था। जिसे पुनर्जागरण

की आवश्यकता थी। युगधर्म का सूत्रपात करते हुए **श्रीवैष्णव धर्म सम्प्रदाय** का नवादर्श उद्गम काल था। वि.सं. १३५६ माघ कृष्णा सप्तमी (१३०० ई.) शकः १२२२ में प्रयाग (त्रिवेणीतट) निवासी अति समृद्ध कान्यकुब्ज वंश के पुण्यात्मा श्री पुण्यसदन गृह (श्रीदम्पत्ति) श्रीमती सुशीलादेवी के घर हिन्दु समाज के सुप्त संस्कार मानो जाग्रत हो गये, ऐसे भाग्यवान पुण्य पुरुष का पावन धरातल पर अवतरण हुआ। जिन्होंने पैतृक संस्कारों से अपने बाल्यावस्था के समय से ही श्रीमठ के महापुरुषों में दिव्य ज्योति की विद्वता प्राप्त की। आप ही थे **आद्यजगद्गुरु श्री स्वामी रामानन्दाचार्यजी** महाराज, जो तरुणावस्था के आते आते हिन्दु समाज में दिव्य ज्योतिर्मान धर्ममय कीर्ति स्तम्भ को स्थापित कर पाये। आप परम योगसिद्ध परम विद्धान होने से **श्रीमठ गुरु परम्परा के श्रीवैष्णव जगद्गुरु समर्थ श्री स्वामी राघवानन्दाचार्यजी महाराज के परम शिष्य होकर** तत्पद प्रतिष्ठित पीठासीन पर अभिसिक्त हुए।

आपने हिन्दु धर्म एवं समाज का उद्धार किया। अपनी पराक्रम शक्ति-सिद्धिबल साहित्य सृजन, विद्वत् मण्डल शिष्यों के साथ भारत दिग्विजय-यात्रा से हिन्दु धर्म जन जागरण करते प्रचल्लित रूढि प्रथाओं में अन्धविश्वास, अस्पृश्यता, योगिनी, दसा-बीसा, भैरवी चक्रादि अनेक पाखण्ड सृजित बुराईयों का खण्डन किया। अशास्त्रीय कल्पित पंथ के खण्डन एवं सत्य समता संयम दया दान दीनता भक्ति-ज्ञान का प्रचार करने के साथ ही सामाजिक स्त्रोत में जाति-पाँति की रूढ़ि मान्यताओं के विरुद्ध जन जागरण की चेतना दी [1] और प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत करते हुए अपने

---

१. सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणः सदा शक्ता अशक्तापदयोर्जगत्प्रभोः।
अपेक्षते तत्र कुलं बलं च नो न चापि कालो न च शुद्धतापि वै।। -श्रीवैष्णव मताम्बुज भास्कर ४/५०
जगतप्रभु रामजी की शरणागति के अधिकारी सभी समान रूप से है। उसमें कुल, धर्म-जाति, वर्ण आदि का विचार नहीं करना चाहिये।

बारह विरक्त शिष्यों को **"द्वादश भागवत"** के नाम से जगत [१] प्रसिद्धि दिलाई । यथा –

1. अनन्तानन्द, 2. सुखानन्द, 3. सुरसुरानन्द, 4. नरहर्यानन्द, 5. भावानन्द, 6. गालवानन्द (ब्राह्मण), 7. पीपाजी (क्षत्रिय), 8. रविदास (चमार), 9. कबीर (मुसलमान-जुलाहा), 10. धनादास (जाट), 11. सेनाजी (नाई), 12. योगानन्द इत्यादि

जहाँ यवन साम्राज्य एवं सामन्तवाद में जात-पाँत से ब्राह्मणवाद की कल्पनाओं से हिन्दु समाज को अशिक्षा, नारी उत्पीड़न, पर्दाप्रथा, वर्ग विशेष को वैदिक मन्त्र शिक्षा-दीक्षा से वंचित रखना, समाज के चतुर्थ वर्ण को आध्यात्मिक साधना के अधिकारों से दूर-शोषित करके रखने इत्यादि सब के लिये सारी दुविधाओं की निवृति करके सर्व सुलभ परमार्थ मार्ग खोल दिये । समाज के सभी वर्गों को अपने **स्वपरिकरों** में मान्यता दी, भक्तिमति **पद्मावतिदेवी** एवम् **सुरसरीदेवी** आदि स्त्रियों को भी साध्वी दीक्षित करके नारी शिक्षा को प्रशस्त किया । आपने हिन्दु धर्म रक्षा के लिये तत्कालीन यवन साम्राज्य के बादशाह से जजिया कर के विरूद्ध बारह शर्तें मनवाई । जो इस प्रकार थी –

१. हिन्दुओं से जन्म-मृत्यु, आवास (गृह)-उद्यम का "जजिया कर" (TAX) **नहीं लिया जाय ।**

२. हिन्दुओं द्वारा मठ-मन्दिर, धर्म स्थान बनाने पर से प्रतिबन्ध हटाये जाएँ ।

३. हिन्दुओं को सवारी पर बैठे व हिन्दुओं की शोभा यात्रा को मस्जिद के आगे से जाने दिया जाए ।

---

१. भावानन्दः सुरसुर धनौ गालवानन्दः पीपानन्तानन्दो नरहरि रमादास युक्तः कबीरः । योगानन्दः जनसुखकरः श्री सुखानन्द सेनौ एते शिष्या विगत कलुषांस्तस्य मुख्य अभूवन ।।

४. हिन्दु धर्म के धर्म-कथा प्रचार में किसी प्रकार की रुकावट न डाली जाए ।

५. गाय की कुर्बानी (गौं वध) को सर्वथा बन्द किया जाए ।

६. हिन्दु धर्म ग्रन्थों के प्रकाशन, प्रचार-प्रसार पर से प्रतिबन्ध हटाये जाएं और उन्हें यवनों द्वारा जलाये जाने पर रोक लगाई जाए ।

७. हिन्दु-देव मन्दिर-मूर्तियों को तोड़ कर वहाँ मस्जिद बनाने को रोका जाए और हिन्दुओं को मस्जिद में इबादत करने के लिये बाध्य करने के व्यवहार को रोका जाए ।

८. मुहर्रम या अन्य मुस्लिम त्यौहार अवसरों पर हिन्दु उत्सवों को न रोका जाए ।

९. शंख, नगारे इत्यादि बजाने पर से सर्वत्र प्रतिबन्ध हटाये जाएं ।

१०. किसी भी हिन्दु मेला-उत्सव, धर्म यात्रा पर हिन्दुओं से टैक्स न लिया जाए ।

११. किसी भी नारी का सतीत्व भंग न किया जाए ।

१२. किसी भी हिन्दु को मुसलमान बनने के लिये बाध्य न किया जाय और न किसी हिन्दु को मुसलमान बनाया जाए ।

इन क्रियाओं का जारी रहना इतिहास में **जजिया कर** के नाम से जाना जाता है, जिसे **आद्य रामानन्दाचार्यजी** ने बन्द करवाये । इसी प्रकार पूर्वाचार्यों का लुप्त सिद्धान्त **विशिष्टाऽद्वैत** पद्धति मण्डन एवं धर्म जागरण, जाति-पाँति भ्रम निवृति के लिये **रविदास** तथा **कबीर** जैसे अपने

समर्थ सिद्ध-सन्त शिष्यों के साथ अखिल भारत साम्राज्य में विद्वानों की सभाओं में राजाओं की मध्यस्थता करवा कर सिद्धान्त-दिग्विजय किया गया । इस प्रकार किये गये समाज के उपकृत व्यवहार को अद्यावधि पर्यन्त कोई भी अन्य धर्म परम्परा का प्रसिद्ध जगद्गुरु/आचार्य नहीं दे पाया । इस प्रभाव से हिन्दू-मुसलमान के समस्त समाज में कई लोगों के विचारों का परिवर्तन होकर **एक चतुर्थ वर्ग** संस्कारित होकर उभर आया।

(3) धार्मिक दृष्टि से चतुर्थ कोटि का वर्ग उन लोगों का उभर कर सामने आया, जो कि समानता वादी था । ये मनुष्य मात्र को एक ही परम पिता की सन्तान मानते थे । सामाजिक वैमनस्यता से होने वाले लहु-लुहान को रोकने के लिये उनके सिद्धान्त में हिन्दु मुसलुमान, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े का कोई भेद नहीं मानता था । ये लोग **आद्यजगद्गुरु श्री स्वामी रामानन्दाचार्यजी** द्वारा बताये पथ के पथिक थे । इन्हीं के प्रभावी प्रचारक महापुरुषों में कई सात्विक शक्तियाँ प्रकट हुई । उन महापुरुषों के नाम से विविध परम्पराऐं अद्यावधि उच्च मार्ग में प्रसारित है । वे कबीर, रैदास, आदि द्वादश भागवत परम्पराओं में हुए समर्थों में और भी नानक, दादू गरीबदास, घीसापंथी इत्यादि सन्तों के द्वारा बताये गये सात्विक मार्ग पर चलते हुए अन्य पथ भ्रष्ट समाज को सत्य पथ प्रदर्शन पर लाने का प्रयास करते रहते थे । इन्हीं के प्रभाव से इस समय मुसलमानों में भी एक उदार धार्मिक विचार धारा प्रवाहित हुई थी, जिसे आज **सूफीमत** के नाम से जाना जाता है । यही **सूफीमत** हिन्दु-दर्शन से प्रभावित था तथा **निर्गुण भक्ति धारा** का एक अंग बन कर प्रेम जल से जन मानस को स्नान करवा रहा था । सूफियों द्वारा की गई समाज सेवा अभिनन्दीय कही जा सकती है, किन्तु यह विचार धारा अपेक्षित सेवा नहीं कर पाई । क्योंकि इनके आस पास भी चिन्तन का घेरा संकुचित और मुल्ला, मौलवियों,

उलमाओं के शरीअती दायरे से बाहिर नहीं जा सका। सूफीमत का प्रभाव हिन्दु समाज में भी उभर आया जो **"सन्तमत"** के नाम से जाना गया जो आज विभिन्न मतान्तरों के नाम से विशेष प्रचारित है।

इस **ज.गु. रामानन्दाचार्य जी** की क्रान्ति सिद्धि ने भारतीय जन मानस में केवल शान्ति संचार ही नहीं अपितु सर्वत्र सान्तवना भी प्रदान की अपितु सामयिक संकट सागर से पार उतारने हेतु एक जलयान का काम किया जो **आद्यजगद्गुरु रामानन्दाचार्यजी से प्रभावित विभिन्न परम्पराऐं आज भी वही कार्य कर रही है।** उनके परम शिष्य सन्त भागवतों की भी परम्पराऐं प्रचल्लित विशाल रूप से **उनके सिद्धान्तों के कार्य ही कर रही है।** कबीर, नानक, तुलसीदास, सूरदास, समर्थ गुरु रामदास, संत तुकाराम, दादू जी, श्री कृष्णपयोहारीजी, अग्रदासजी, सन्तदासजी, हरिराम जी "वैरागी" इत्यादि परम्पराओं में अनेक प्राच्य-अप्राच्य विख्यात-प्रख्यात, ख्यात-अख्यात महापुरुषों ने भारत के विभिन्न्न भू-भागों में समय-समय पर सन्त वेष में अवतीर्ण होकर अपने-अपने नाम रूप लीला धाम से काव्य मय पद्य-गद्य के अद्भुत प्रभाव से सनातन क्षेत्र के धार्मिक जगत में अभूत क्रान्ति उत्पन्न करके जनता को कल्याणकारी मार्ग दिखाया। पन्द्रहवीं से अट्ठारहवीं शताब्दी के काल में अनेक सिद्ध सन्त महात्माओं के वेश-भेष में युगपुरुषों का अवतरित होना हुआ। जिसे साहित्य में **भक्ति काल** संग **रीति काल** के नाम से जाना जाता है, कतिपय सिद्ध महापुरुष इस समय में अधिक हुए जो अपनी विद्वत्-भक्ति सिद्धि क्रियाओं से प्रसिद्ध रहे।

वही **भक्तिकाल** हिन्दी प्रवाह में बह कर जनता को चार प्रकार की काव्य धाराओं से एक साथ प्रभावित करने में सार्थक रहा, जो संसार में आध्यात्मिक शान्ति समता का प्रचारक रहा।

(क) **सन्त काव्य धारा** – अग्रदास जी के शिष्य नाभादासजी से सर्वप्रथम

हिन्दी पद्यात्मक काव्य ग्रन्थ **भक्तमाल** की रचना हुई, ऐसे ही दादू, सुन्दरदास, कबीर, रविदास इत्यादि द्वारा प्रभावित सामयिक धाराऐं भी पद्यात्मक सन्त वाणी कृतियाँ भी बहुतायत से विस्तृत हुई ।

(ख) सूफी काव्य धारा - शेख़ फ़रीद, रसख़ान, रहीम, बुल्लेशाह, मन्सूर, रूयल फक़ीर इत्यादि द्वारा मुस्लिमों एवं हिन्दु सन्तमत के प्रभाव से अनेक भीड़ भरी धाराऐं प्रचल्लित हुई ।

(ग) रामकाव्य धारा - तुलसीदासजी, रसिकबिहारी इत्यादि अनेक सन्तों की कृतियों से प्रवाहित धारा ।

(घ) कृष्ण काव्य धारा - सूरदास जी, मीराबाई, रविदास जी, रसखान की भक्ति भावना से ओत प्रोत पद्य प्रभाव ।

यवन कालीन **"फूट डालो - राज करो"** की नीति से प्रभावित ब्राह्मण वर्ग से हिन्दु समाज में विविध दोषारोपण हुए । शूद्र वर्ग कामगार लोगों को प्रायः तुच्छ समझते, तब बोद्धों ने इस का विरोध किया था और सबको समान भागी माना, फिर समयान्तर बोद्ध धर्म का पतन हुआ तो आद्य श्री शंकराचार्य की पतवार से फिर ब्राह्मणवाद उभर आया । तब फिर उसी प्रकार से मानव-मानव के बीच ऊँच-नीच की दरार देखी जाने लगी । इनकी खींचा तान में कई अन्यान्य नये नये धर्म-पन्थ, मत-मतान्तर स्वयं बनते बनाते गये । एक तरफ मुसलमानों के रोज़ा, नमाज़, हज, ज़कात, ताज़ियादारी से इन्हें ओर चिढ़ थी और दूसरी ओर हिन्दुओं के व्रत-श्राद्ध, तीर्थ-यात्रा से, किन्तु **चतुर्थ वर्ग** जो निर्गुण वाद का प्रचारक था । उनमें निर्गुण मत के आध्यात्म वादी परम-सन्त एवं सूफी थे, उनका मत था कि ये ऊपरी बातें पाखण्ड और धार्मिक झगड़े की जड़ है, इन्हें मिटा कर धर्म का सच्चा रूप मानवता को देख सकते हैं । जहाँ पूर्व कालिक मज़हबे राम-रहीम, अल्लाह-परवरदिगा और गोविन्द हरि नामों

से पुकारते वहाँ सतपुरुष (निर्गुण ब्रह्म), सतगुरु, ईश्वर, नाम, सतसंग, धीरज, क्षमा, दया, साधु इत्यादि के गुणों में सबकी महिमा गायी गयी है। वे जीवन को सरल और सादा रहन-सहन बनाने का उपदेश देते थे। सन्तों में अधिकतर लोग पूर्व ऋषि महर्षिगण की तरह तत्कालिक भक्त-सन्त भी चतुर्थ वर्ण के शोषित वर्ग में अधिक थे। जिन्हें पढ़ने लिखने का अवसर नहीं मिलता था, जो कुछ उन्होंने लिखा, वह किताबों की दूरस्थ यात्राओं के कारण जनता को ग्रामीण भाषा में जो मिला - वह परम धन वेदाचार्य, विद्वान, पाण्डित्य के धनी संस्कृति के बानक ब्राह्मण जन भी संसार को नहीं दे पाये। **रामानन्दाचार्य जी** की परम्परा के प्रचार-प्रसार में सर्गुण-निर्गुण दोनों प्रकार से आधात्मिक भक्ति में मानव मात्र को सर्वाधिकार संस्कार मिले, जिसके परिणाम से खेत-खलिहान में मज़दूरों के मुख से भी **गूढ़ उपनिषद् तत्व** बोलने लगे। **'जाति पाँति पूछे नहीं कोई, हरि भजे सो हरि का होई।'**

श्रीरामानन्द पीठ की मुख्य परम्परा के श्रीमठ पीठाचार्य श्री अनन्तानन्दजी महाराज के परम शिष्य **श्री स्वामी कृष्णपयोहारीजी** का राजस्थान प्रवेश हुआ। जिससे शैव-वैष्णव का आपसी द्वन्द विराम होने के साथ ही सात्विक रामभक्ति धारा का प्रवाह चला और उनके शिष्य श्री **समर्थ अग्रदासजी** का तप प्रभाव सर्व प्रकार से सर्वत्र सामर्थ्य विस्तार कर पाया, जो कि आज सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न भारत में सर्वाधिक आश्रम, स्थान, साधु, ज्ञान-ध्यान शिक्षा=लय, गौ सेवा, स्वास्थ्य औषधि, धर्मशाला, अन्नक्षेत्र, नाना धर्मपथ प्रथा इत्यादि से मानव सेवा का प्रबल बाहुल्य रूप में प्रचारित है। आप की ही देन से वैष्णवाचार्यों के सामुहिक दल में बावन द्वारों, सात अनी-अखाड़ों का प्रतिबन्ध धर्म सम्प्रदाय मर्यादाओं का पुनर्गठन तथा हिन्दु धर्म जन-जागरण का प्रबल दौर चला। उनमें से छत्तीस द्वारों का प्रबन्ध आप की परम्परा में होते अनेक शाखोपशाखा में

विस्तृत हुए । उसी के परिणाम में आज यत्र तत्र सतसंग/धर्म के प्रचार दृश्यमान है । उन **श्री अग्रदास जी** के परम शिष्य **नारायणदासजी (नाभाजी)** ने ही सर्वप्रथम **भक्ति काल** के साहित्य का उद्गम आज से ५५० वर्षाधिक पूर्व हिन्दी काव्य में नव सृजन सूत्रपात करते हुए **भक्तमाल** की रचना प्रस्तुत की थी जो आधुनिक **भक्तिकाव्य** का प्रमुख एवं सर्व **प्रथम प्रधान भाषा पद्य वद्ध ग्रन्थ** है । उनके बाद रामचरितमानस (तुलसी), सूरदास इत्यादि महापुरुषों द्वारा संसार को अद्वितीय भक्ति ज्ञानपथ प्रदर्शन मिला, जिसका विश्व सदैव आभारी रहेगा ।

भक्ति युग का पुनर्जागरण – इस धारा प्रवाह समय के बीच वि. सं. १३०० से वि. सं. १५०० का समय **भक्तिकाल** कहा जा सकता है, जिसमें कई नामीनाम भक्त ज्ञानी सिद्ध साधु एवम् भक्तिमति साध्वियों का सतीत्व सम्पन्न बाहुल्य रहा, जिसे जगद्गुरु **श्री रामानन्द युग** भी कह सकते हैं, जिन्होंने सभी तरह से धरा पर भक्ति आन्दोलन का ज्ञान प्रवाह बहाया ।

वि. सं. ७७० से निरन्तर अतीत समाज का ह्रासोन्मुख पतन होते राजा-महाराजों में जो संस्कार अंकुरित हुए उसका अतिशय प्रभाव उनके पारिवारिक ठाकुरों की मदमस्ती में छाया, जो पतितोन्मुख गर्त तक रुकने का नाम नहीं लिया, वह अद्यावधि पर्यन्त दुराचार भ्रष्टाचार के अनेक रूपान्तरण से बहता जा रहा है । इसी को **सामन्तवाद का युग** कहा गया है । राजा-महाराजाओं में अहं भरा प्रतिशोद्ध कृत्य, दिखावा, शोषण, दासता का युग प्रभाव सदा बढ़ता ही गया । इसमें वैदिक, पौराणिक, विभिन्न स्मृत्यादि काल की आचार संहिताऐं परिवर्तित होती हुई कर्मशीलता ने **वर्ण व्यवस्था में जन्मगत जातीय प्रबन्ध का रूप लिया** और शोषित एवं हीन प्रवृतियों में बहती जन्मगत धन्धे से अनुबन्धित वर्गों में जन्मगत जातियों का बाहुल्य बढ़ने लगा जो तेल पैरने-विक्रय से तेली, चमड़े के निकालने-रंगने या कच्चे माल के व्यापार से खटीक, रेगर या उनसे विभिन्न

उत्पादन करने से मोची, चर्मकार, चमार । लकड़ी के काम से सुथार, खाती, मिट्टी के बर्तन कार्य से कुम्भकार (कुम्भार), हज़ामत करने से हज्जाम (नाई), सोने के कार्य से सोनार (स्वर्णकार), सूत के काम से सूत्रकार, हल्कारे की बॉम्भ से बॉम्भी, कपड़े बुनने की क्रिया से सालवी या बुनकर, पान के व्यापार से पनवाड़ी तथा राजशाही छड़ी लेकर चलने से छड़ीदार, तोप चलाने की क्रिया से तोपदार इत्यादि अनेक जातियों का सृजन/सम्बाधान दिशा, देश, काल, महापुरुषों के वंशज या विविध घटनाओं को लेकर जन्मजातीय, गौत्र इत्यादि के सम्बोधन से जानने में आने लगी और आगे जाकर उनका यही ऐतिहासिक तथ्य बन कर जन्मगत जाति का पैतृक सम्बोधन रह गया, जो **एक शोद्ध का विषय** है ।

इस समय राजा महाराजाओं ठाकुरों में अहंमता वैभवता के दिखावे में दासी-दास प्रथा का चलन हुआ, जो पूर्वात्पर की अपेक्षा हीनता और शोषणता के रूप से अधिक गुलामी के रूप में पसरता जाल था । वे अपनी कन्या के विवाह में अपने दास-दासियों की सन्तान अथवा किसी ग़रीबों की वंशज या अनाथ, ग़रीब व्यक्तियों को, सामाजिक सेवादारों को दहेज में भी देने लगे । शाहंशाही जीवनियों में हीन भाव फलित हुए और शोषित वर्ग का शोषक वर्ग सभी तरह से शोषण करने लगे थे । राजाओं के भय से आतंकित गरीब वर्ग ठाकुरों से भी शोषित होने लगा, जो पहले भौतिक सिक्के आदि तनखाहों उपहारों से पोषित रहते थे, धीरे-धीरे वे लोग रोटी, रोजी, अनाज, कपड़े के बदले सेवादार (दास-दासियों) की जगह रहने लगे थे ।

कई जातियों का उद्भव बहुधा स्थानान्तरण से ही हुआ - जैसे कि उत्तर के लोग दक्षिण में जाकर बस गए और वहीं पर समय से लाभ उठा कर अपने को किसी उच्च्व वर्ग कुल का ब्राह्मण सिद्ध कर दिया तो

उनका वंशज उसी कुल का घोषित हो गया। ठीक इसी तरह पश्चिमीय प्राणी पूर्व एवं पूर्व के उत्तर अर्थात् राजस्थान के बिहार, पंजाब के कन्नौज, विन्ध्य के राजस्थान में मनोकल्पित जाति के नाम से बस करके प्रसिद्धि पाने लगे। देश-दिशाओं मे स्थान-प्रवास से उन्होंने अपने कल्पनाधार पर किसी ने क्षत्रिय तो किसी ने ब्राह्मणादि से विख्यात होकर अपने वंशजों को उसी वंश जाति से कर दिया, मूलतः वह चाहे किसी शूद्र वंश के ही लक्षणात् सन्तान हो। स्वभावतः नवागत मूलरेखा किसी की भी भेद से ज्ञात नहीं हो सकती। इसके साथ ही समय-प्रभाव से भारत पर प्रादेशिक या अनार्य-दस्युओं का आधिपत्य अर्थात् मुगल साम्राज्य के कट्टर शस्त्र की हठधर्मियों ने पढ़े-लिखे पण्डितों द्वारा जो हिन्दू समाज से आर्य सम्बन्ध सन्निकटता रखते थे। **उस वर्ग के पुरुषों से इतिहास व ऋषियों द्वारा प्रणीत शास्त्र, पुराण, नीति, स्मृति आदि ग्रन्थों में प्रक्षिप्त कृत्रिम श्लोक-गद्य-पद्य परिवर्तन घोल कर आपसी मतभेद की फूट का बीजारोपण किया और उस पंडित-समुदाय ने प्रलोभनवश तथा शासन-सत्तान्ध विधर्मियों से अपनी प्राण-रक्षा, धन-लोलुपता व प्रतिष्ठा की पिपासा को तृप्ति देते हुए अपने आर्य-धर्म पर जो कुठाराघात किया,** जिसका प्रतिफल आज तक इन भारतीय सन्तानों को भोगना एक संस्कारित रूढ़ि-रोग हो चुका है। जिसका परिणाम सब को ज्ञात है, किन्तु गूढ़ रहस्य समझ लेना यह तो आज की निरी नेताशाही सभ्यता से बाहर की वस्तु है तथा आद्य जगद्गुरुओं की गद्दी पर बैठने वाले भी धमशास्त्रों से प्रक्षिप्त श्लोक हटाने या हिन्दुत्व एकता का शंखनाद फूँकने की शक्ति प्रदर्शन में केवल चाँदी के सिंहासन पर बैठने के लालायित है।

प्राकृतिक वर्ण-व्यवस्था का आधार

परमेश्वर ने प्रकृति के मानव समाज में ब्राह्मणों, क्षत्रियों को शूद्रों से भिन्न करने का जाति-दर्शक कोई चिन्ह-संकेत जन्म-समय से नहीं रखा, जैसे कि चार आँखें, पाँच-तीन-दो मुख, अष्ठ-दश-चार भुजा, दो पेट या सींग आदि भेद बताने को नहीं दिए और न ही कोई ललाट पर रेखा-अंक ही लिखा तथा न कोई अतिरिक्त जातिसूचक जन्म-स्थान ही निश्चित किया कि ब्राह्मण का मुख से, क्षत्रिय का नाक से, वैश्य का कान से और शूद्र का भग से स्थान हो ? अथवा अण्डे द्वारा से, यह भी नहीं है। देखियें शास्त्र-प्रमाण के प्रत्यक्ष शब्द उद्धरण -

सर्वे वे योनिजाः मर्त्या समांसाः सपुरीषकाः ।
शूद्रोऽपि शील सम्पन्नो गुणवान ब्राह्मणो भवेत् ।। - सुभाषित

सबकी उत्पति योनि से ही माता के गर्भ द्वारा हुई है, सभी मरण-धर्मा है, सब के शरीर में वही माँस-मल-मूत्र है। शीलवान शूद्र भी गुणों से ब्राह्मण [1] हो जाता है।

जन्मानाऽस्पृशता यास्तु नास्ति प्रत्यक्ष लक्षणम् ।
नोत्कीर्णमस्ति कस्यापि भाले तज्जाति नाम वै ।।१।।
न भाले कस्यचिदं दृष्टं प्रकृत्या लिखितं किल ।
क्षत्रियो, ब्राह्मणः शूद्रो म्लेच्छोऽयं वैश्य एव वा ।।२।।

- मानव धर्म सार

जन्म से अस्पृश्यता का कोई प्रत्यक्ष लक्षण नहीं है, किसी के भी मस्तिष्क के ललाट (भाल) पर प्रकृति का लिखा प्रत्यक्ष देखने में नहीं आता कि यह क्षत्रिय, यह ब्राह्मण, यह वैश्य, यह शूद्र या यह चाण्डाल

---

१. तन में गुण तंत वही सप्त धातु जु, गोचर रंग रू रूप सुहाना ।
मल शोणित माँस रू मूत्र भर्यो अघ, मानस भेद न को कृत आना ।।
सार यही गुण ज्ञान विचारक, सो गुण कर्म स्वभाव ते नाना ।
''रामप्रकाश' यूं शास्त्र विवेचित, एक समाज के अंग बखाना ।।१।।

या कोई जाति विशेष का व्यक्ति है।

आचाण्डालादि पर्यन्तानां मनुषाणां पाँच भौतिक त्वैन ।
देहस्यैक रूपत्वात् जरा मरण धर्मादि साम्य दर्शनात् ।।
ब्राह्मणः स्वेत् वर्णः इति नियमाभावात् । - व्रजसूचिकोपनिषद्

चाण्डाल से लेकर सभी मनुष्यों के शरीर पाँच भौतिक तत्वादि से एक ही तरह के है। सर्वत्र ही जरा-मरण-धर्म की एकता दीख रही है। ऐसा तो कोई नियम नहीं दिखाई नहीं देता कि ब्राह्मण श्वेत रंग, क्षत्रिय लाल रंग, वैश्य का शरीर पीला व शूद्र का शरीर काला हो।

सामग्रयानुष्ठान गुणैः समग्राः शूद्रायतः सन्ति समाद्विजानाम् ।
सस्माद्विशेषो द्विज शूद्र नाम्नोनाध्यात्मिकों बाह्य निमितको वा ।।

क्योंकि शूद्र और सामान्य ब्राह्मण, यह दोनों सामग्री और अनुष्ठान में समान ही है। इसीलिए ब्राह्मण और शूद्र में बाह्य या आन्तरिक (आध्यात्मिक) कोई भेद नहीं है।

शूद्र ब्राह्मणोयोर्भेदो मृग्यमाणोऽपि यत्नतः ।
नेक्ष्यते सर्व धर्मेषु संहतैस्त्रि दशैरपि ।। - भविष्यपुराण ४१

अति यत्नपूर्वक सभी देवता मिल कर खोजें तो भी ब्राह्मण और शूद्र में कोई भेद नहीं पायेंगें।

ब्राह्मणश्चन्द्र मरीचि शुक्ला न क्षत्रियाः किंसुक पुष्प वर्णाः ।
न चेह वैश्या हरिताल तुल्याः शूद्रा न चांगार समान वर्णाः।।

ब्राह्मण चन्द्रकिरण के समान शुक्ल नहीं, क्षत्रिय किंशुक पुष्प से लाल नही, वैश्य लोग हरिताल के समान पीले नहीं और शूद्र कोयले के समान काले नहीं।

पाद प्रचारै स्तुन वर्ण कैशैः सुखेन दुःखेन च शोणितम् ।
त्वंग माँस मेदोऽस्थिरसैः समानाश्चतुः प्रभेदाहि कथ भवन्ति ।।

चलना, फिरना, शरीर, वर्ण, केश एवं सुख, दुःख, रक्त, त्वचा,

माँस, मेद, अस्थि, रस, इनमें से सभी समान हैं, फिर चार वर्णों का भेद भी कहां हैं ।

चत्वार एकस्य पितुः सुतश्च तेषां सुतानां खलु जातिरेकः ।
एवं प्रजानां हि पितैक एवं पित्रैक भावन्न च जाति भेदः ॥ -स्मृति

जिस प्रकार एक ही पिता के चार पुत्रों की जाति एक ही होती है, उसी प्रकार सभी प्रजाओं का वह भगवान ही एक मात्र परम पिता है। इन प्रमाण-विचारों से सत्य ही सत्य है, किन्तु साथ ही कई जातियों का नामकरण व्यवसाय वृति में भेद के कारण बनाया गया जैसे- हज्जाम (नाई), महार, कहार, साद, चमार, लोहार, तीरगर, कलाल, स्वर्णकार (सोनार), धोबी, जुलाहा, सूत्रकार, तेली, तम्बोली इत्यादि ।

कई उपजातियाँ देश स्थान भेद के कारण जैसे - गौड़, सारस्वत, सरयूपारीण, वासू, कान्यकुब्ज, पुष्करणा, पूर्वी आदि तथा कई ऋषि कुल के नाम से भृगु, माधवी, कौशिक, मधोक, भारद्वाज, आत्रेय, गार्गेय, पाराशरी, वाशिष्ठेय इत्यादि और इनमें भी अनेक उपजातियों की रचना हो गई । कई सम्प्रदायवाद समर्थकों के भेद से भी बहुत जातियां-उपजातियाँ बनी जैसे - रामावत, लिंगावत, निम्बावत, वैष्णव, जैन, बौद्ध, शैव, गिरि, पुरी, भारती, वन, योगी, यति, नाथ, औगड़-दशनामी, अंगर, फंगर आदि वैविध्य उपासना-भेदों की कल्पना के हजारों पंथों का जंजाल बढ़ा । कुछ काल्पनिक घटनावश जैसे- कड़ेला, भूत, धूत, बोड़ा, बोहरा, भूतड़ा, मूथा, मेहता । ऐसे ही कुछ प्रतिष्ठित महापुरूषों के नाम से जैसे - पीपावंशी, सेन, रविदास, गौतमी, कबीरी, बाल्मीकि, दाशरथि, नानकेय, जोधा, मेघवंशी, वैनवंशी, टेकवाण, हीराणी, भीखाणी आदि । कुछ दिशा-देश से जैसे आग्नेय, पश्चिमी, गुजराती, ईरानी, मकरानी, राजस्थानी, पंजाबी, हिंदी, सिंधी, बंगाली, मद्रासी आदि का रचन चला, जो वस्तुतः आज तक दुःखद परिणाम दोष-रूप अर्थात् आपसी कण्ठीबन्ध बाड़े के फूट

का भंडार हो चला है ।

ऐसा ज्ञात होता है कि जन्मसिद्ध जातिभेद केवल भुलावा मात्र है । इसका प्रचलन निरर्थक अज्ञान रूप की आधार शिला ही है जो सीमा से बाहर तक पहुँची है, जिसका परिणाम अति भयंकर सिद्ध हुआ है ।

हिन्दुनां जातयो जातः त्रिसहस्त्र मतोऽधुना ।

अन्योऽन्यं प्रतिचाऽस्पृश्याः विद्विषत्यः परस्परम् ।। – मानव धर्म सार

वर्तमान काल में हिन्दुओं की तीन हजार जातियाँ उत्पन्न हो गई है । वे एक दूसरे के प्रति अस्पृश्य है, इसीलिए आपस में द्वेष भी रखती है ।

इतिहास की साक्ष्यता में नई-नई तथा नाना प्रकार से विविध तरह की जातियों, उपजातियों का निर्माण हिन्दुओं में लगभग गत पन्द्रह सौ वर्षों के काल से ही होता आया है और वह रूढ़िवाद अब तक चल रहा है । इस अपवाद से ही हिन्दू समाज अत्यन्त असंगठित एवं असुरक्षित होकर इसकी संघशक्ति का ह्रास होकर प्रतिदिन निर्बल होता हुआ समय-समय पर पाश्चात्य विदेशों द्वारा शोषणतापूर्ण क्रन्दित-विनासित ही नहीं अपितु तहस-नहस प्रायः अस्तित्व विहीन होता रहा है, आज उसी का परिणम देशद्रोह, पार्टीवाद, वाम-दक्षिण साम्यवादी दल, अत्याचार-भ्रष्टाचार की रचनात्मक कूटनीतियों व देश-विभाजन की जनसंख्या का व्यास-बाहुल्य हुआ ही है ।

क्षुद्रालोक हिन्दू वर्ग में अपने को ऊँचा और दूसरों को नीचा समझने की ईर्षावृति द्वेष का भाव प्रत्येक जातिवाचक के अल्पज्ञ व्यक्तियों में समाया हुआ है । वह भी आपसी एक-एक के अनगिनती मतवाद है ।

क्षत्रियों में – राठौड़, भाटी, सीसोदिया, राणा, चन्द्रसी, चाम्पावत, चौहान, कूंपावत, सोढ़ा, बानर, पन्नु, पंवार, इणखिया, जयपाल ।

वैश्यों में – ओसवाल, अग्रवाल, धारीवाल, लोढ़ा, माहेश्वरी, जैन, खत्री, सांघी,

सिंघवी आदि ।

ब्राह्मणों में - चतुर्वेदी, त्रिवेदी, द्विवेदी, छब्बे, दुबे, चौबे, साकल्य, श्रीमाली, गौड़, आत्रेय, गार्गेय, आग्नेय, मार्कण्डेय, जांगिड़ आदि ।

शूद्र वर्ग में -सोनार, सुथार, माली, नाई, धोबी, भील भंगी, लोहार, मेगवाल (मारू-जाटा), कुम्हार, चमार, जटिया, जाटव, सरगरा, खटीक, कलाल, मोची, धोबी, किसान आदि ।

इस प्रकार इनमें भी आपसी ऊँच-नीच के एक एक वर्ग में ही सैकड़ों जातियों का जाल है । वस्तुतः हिन्दू समाज की जातिवाद शाखा उपशाखा का छाया चित्रण इस प्रकार पाया जाता है -

ज्यौं चतुरन की बात में, बात बात में बात ।
त्यौं कदली के पात में, पात पात में पात ।।१।।
ज्यौं गदहे की लात में, लात लात में लात ।
त्यौं हिन्दुओं की जात में, जात जात में जात ।।२।।

केवल बात में ही नहीं अपितु कर्त्तव्य में भी अपनी-अपनी जाति में ऐसे-ऐसे भेदों का चलन हुआ कि रोटी-बेटी का लेन-देन व्यवहार भी नहीं हो पाता । ब्राह्मणादि कई वर्गों में कल्पनाचार ऐसा भी पाया जाता है कि बहू के हाथ की बनी हुई रसोई सासू, श्वसुर या पति नहीं खा सकते । विवाहिता बहन के द्वारा बनाया हुआ सूपोदन भाई नहीं खा सकता । शोक है ! महाशोक !! आश्चर्य तो इसमें है कि अपने घर के परिवार से भी छुआछूत है तो सामाजिक ऐक्य-मतैक्य, राष्ट्रैक्य, संगठन हो जाना कब सम्भव है ? यह तो निरा चौका-चूल्हा की प्रांगीणता का दिखावटी मात्र रसोई का ही संकीर्ण धर्म हुआ ।

पण्डित ! देख हूँ मन मँह जानी ।
कहूँ धो छूत कहाँ ते उपजी, तबही छूत तुम मानी ।।१।।
छूत हि जेंवन छूत ही अँचवन, छूत हि जगत उपाया ।।२।।
कहहि कबीर सो छूत विवर्जित, जाके संग न माया ।।३।।

यथा - *कुंटि-क्रोध हांसी-मुकुर, बाल-क्रिया-मद-फाग ।*
होत सयाने बावरे, अष्ठ ठौर चित लाग ।।१।।

इस सीमित बाहरी दृष्टि के प्यारे हिन्दूओं ! जरा अपने आचरणों पर ध्यान दो । समाज के उन पुरूषों को देखो जन्म से अपनी बपौती ठकुराई पूर्ण हम में से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि द्विजाति चाहे कोई हो । घर में रहता हुआ छिपके कितना ही व्याप्त भ्रष्टाचार, अनाचार-पापाचार, व्यभिचार या कन्याओं को दबोच कर दूध पिलाने के बहाने रेती की गठरी उनके नाक के दम पर रख कर उन्हें मार देने के दुष्कृत्य करते रहें । माँस-मदिरा आदि नशों-व्यसनों की चाट का चुस्त हो । जूआ, सट्टा-चोरबाजारी का खेल कर और नीच समझे जाने वाले समाज या जाति वर्ग की बहू-बेटियों से बलात्कार, कुआरी या विधवाओं के सतीत्व को लूट लेता हो अथवा प्रकट ही खुले आम वेश्या (रण्डियों) के पाँवों में शिर मार व सर्वेन्द्रिय शरीर का चुम्बन, चाटन-पाटन का उद्घाटन ही क्यों न करें, किन्तु फिर भी हम ब्राह्मण ही रहेंगे या क्षत्रिय, वैश्य आदि अपने वर्ण में ही रहते है, भ्रष्ट नहीं हो सकते, जाति-बदल नहीं होता । शान, ताव, मान, आन बनी ही रहती है । परन्तु विपरीत में यदि कहीं कोई जन्म से अन्य अछूत समझी जाने वाली जातियों के लोगों में पूर्ण सदाचारी, न्यायोर्चित, उद्यमशील, विद्वान पुरूष हो, फिर भी वह उसी दृष्टि से देखा जाता है और यदि उनके घर या किसी सहभोज में एक साथ पंक्ति में भाग ले लें अथवा कोई द्विजाति नाम का पुरोहित, क्षत्रिय या वैश्य उसके साथ पंगत में भोजन करले या मित्रता से एकान्त-भोज ग्रहण करले तो बस हिन्दू धर्म जाता रहता है और उसी दिन उसकी जाति के स्वामियों द्वारा अर्थात् धर्मध्वजी ठेकेदारों की ओर से उन्हें जाति-भ्रष्ट करके बहिष्कृत कर दिया जाता है । यह सब क्यों ? और आखिर कब तक ? इसका उत्तर अशास्त्रीय लोगों के पास कुछ नहीं

है और न विचार करने की आवश्यकता ही है। आज आवश्यकता है सत्यतापूर्वक दिखावटी धोखे की टट्टी से विरोध करने की। ऐसे नाजुक हिन्दू धर्म का उन्मूलन करके त्यागपत्र देने की और प्राचीन शास्त्रीय परिपक्व धर्म के समर्थन की, जिसके बिना हिन्दू समाज का कल्याण कदापि नहीं हो सकेगा। जिस स्वार्थ-सीमा के धर्म में उच्च कर्म करने वाला पतित भी पतित बना रहे और विपरीत नीच कर्म-वृत्ति अपना कर ठाकुर, ब्राह्मण, महाजन आदि सामान्य ही माई-बाप बने रहें, यह धर्म नहीं ! यह हिन्दुत्व समाज से खिलवाड़ है, जो आज तक मनमाने रूप से नादानीपूर्वक धोखे से खेल चुके है। अब जागों और शीघ्र ही उस पिशाच-कृत्य कृत्रिमता को धिक्कार कर सत्य की खोज में मार्ग लो।

हमारे भू खण्ड के दक्षिणी भारत एवं अन्यान्य प्रान्तों तथा राजस्थान प्रान्त में विशेषतः जातिभेद, दहेजप्रथा, औसर-मौसर आदि भूतों का रोग गौंद-सरेस से भी दृढ़ चिकना व अकाय अकाट्य है अर्थात् नर-नारी बच्चों से लेकर मरणासन्न बूढ़ों तक के चिपटा हुआ है। केवल अशिक्षित अनाक्षर जनता को ही नहीं अपितु बड़े-बड़े सुशिक्षित धनी-मानी, पण्डे, पण्डित, साधु-सन्त, राजा-महाराजा, व्यापारी-पुजारी या अधिकारी, ग्रामसेवक हो या ग्रामरक्षक-ग्रामभक्षक, प्रादेशिक विद्या की शरण लेने वाले, इंगलिश पढ़े-लिखे मदर-फादर की सन्तानों, वकीलों, जज, न्यायाधीशकों एवं नेताशाही, प्रचारक, वर्षाती मेण्डुक की भाँति अवसरवादी और हमारे देश के कर्णधार कहलाने वाले शासन-सञ्चालक भी इस बीमारी के शिकार है।

हमारे प्रकाण्ड पण्डित, महान धर्मावडम्बधारी, शास्त्र-पुराण, वेद-वेदान्त, वेदान्तवक्ता, तत्वज्ञ-मनीषी, वक्ता, महात्माओं आदि महानुभावों के मस्तिष्क भी इस सरगर्मी से चकराए जा रहे है। तब साधारण देहात के रूढ़िग्रस्त अनजान प्राणियों की क्या कही जाय। विशेषतया भारतीय नीति अनुसन्धान वेत्ताओं ने राष्ट्र की सुदृढ़ अटलता को बनाए रखने

तथा इस विचित्र भूत को भगाने के निमित्त **भारतीय संविधान** में मंत्रौषधि वाक्यों की रचना की हैं, जैसे कि -

जातिर्विद्या महत्वं च रूपं योवनमेव व । यत्नेन परित्यस्त्याज्या पञ्चैते भक्ति कण्टकाः ।।

(१) जाति गर्व, (२) विद्या का मद, (३) रूप-मोह और (५) युवावस्था, यह पाँचों भक्ति में सूल के समान खटकने वाले बाधक (शत्रु) हैं । अतः सर्व उपाय करके दूर से परित्याग करने चाहिए ।

यथा - यौवन धन अविवेक, प्रभुता चारों परम रिपु ।
दैत अनर्थ एकैक, जहँ चारों तहँ क्या कथा ।। - भर्तृहरि

समस्त शास्त्रों का सार भगवत् स्मरण है, यहीं सन्तों का जीवन आधार है । शिखा-सूत्र के आधार पादज और अन्त्यज है । हे भाई ! पैरों को काट कर समाज को पंगु मत बनाना ।

- आद्य जगद्गुरु श्री स्वामी रामानन्दाचार्य जी महाराज के अन्तिम उपदेश

चरित्रहीन विद्वान से सच्चरित्र-अनपढ़ अपने लिए उपयोगी है । चरित्र रहित विद्या एवं धन का कुछ मूल्य नहीं है ।

- जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्री स्वामी भगवद्दाचार्यजी महाराज

विरक्त हो जाने के पश्चात् घर के समस्त सम्बन्धों के टूट जाने के पश्चात् और विधि पूर्वक दीक्षा लेने के पश्चात् न ब्राह्मण ब्राह्मण रहता है और न शूद्र शूद्र रहता है । दोनों के वर्ण मिट जाते है और जाति-पाँति के झगड़े से दूर होकर "अच्युत" गौत्र वाला बन जाता है ।

-जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्री स्वामी भगवताचार्यजी महाराज

अस्पृश्यता का अन्त किया जाता है, उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है । अस्पृश्यता से उपजी किसी निर्योग्यता का लागू करना अपराध होगा, जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा ।

- भारतीय संविधान, भाग ३, धारा १७

छुआछूत के पाप से हिन्दू धर्म जितनी जल्दी निकल जाए, उतनी ही उसकी बड़ाई और प्रतिष्ठा है ।

- शान्तिदूत मोहनचन्द करमचंद (महात्मा गाँधी)

कानून से और कुछ हद तक शरीर से अछूतपन हट रहा है । पर दिमाग

से भी निकलना जरूरी है ।

– भारत के सर्वप्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद

अस्पृश्यता हमारे देश व धर्म का सबसे बड़ा काला कलंक है ।

– भारत के सर्वप्रथम गृहमंत्री गोविन्दवल्लभ पन्त

स्वराज्य की चार दिवारें है - राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्रीय एकता, स्वदेशी और अस्पृश्यता निवारण ।

– २२ जुलाई, ४२ अहमदाबाद पत्रकार सम्मेलन में सरदार वल्लभभाई पटेल

अस्पृश्यता तभी दूर हो सकती है, जब वर्ण जन्म जातीय व्यवस्था का समूल नाश हो जाय ।

– भारत के निवर्तित केन्द्रीय रेल, श्रम, खाद्यमंत्री जगजीवनराम

बापूजी ने अस्पृश्यता -नाश करने का जो वचन दिया उसे पूरा करना हमारा कर्त्तव्य है ।

– स्वर्गीय ठक्करबापा

जिसके हृदय में ईश्वर की भक्ति है, वह ईश्वर का प्यारा है, चाहे वह किसी जाति या धर्म का क्यों न हो ।

– आर्चाय विनोबा भावे

''हिन्दूशास्त्रों में भी सामाजिक समानता का उपदेश है, जिसका पालन न करने से ही देश की दुर्दशा हुई है ।''

– भारतीय संविधान के प्रमुख निर्माता बाबा डॉ. अम्बेडकर की कांस्य प्रतिमा के अनावरण–श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए २ अप्रेल ६७ को दिल्ली में भारत के द्वितीय राष्ट्रपति डॉ. राधा कृष्णन ।

हमें अपने सारे भेदभाव भूलकर, एक होकर, संकट का मुकाबला करना है ।

– भारत के द्वितीय प्रधानमंत्री लालबहादूर शास्त्री

भारत में इन शब्दों की सार्थकता कहाँ तक सफल रही है, यह पाठकों को चिन्तनीय है । परन्तु जहाँ तक सही है कि उपयोग में अनुपान नहीं मिलने से दुष्परिणाम रूप एक-एक जाति की रजिस्टर्ड संस्थाऐं बनती जा रही है । यह किसी से गोप्य नहीं है । परिणाम में प्रतिदिन इस सरगर्मी,

बीमारी के भूत का आन्तरिक स्तम्भ अधिकाधिक दृढ़ होता जा रहा है। इन बुराईयों को प्रत्येक व्यक्ति जानता है, परन्तु क्या करें ? कोई भी एक दूसरे की प्रतिस्पर्धा दूर करके मानव-प्रेम से, ऊँच-नीच का भाव भूल कर, अपनाने को कदापि तैयार नहीं, अपितु शनैः शनैः प्रतिशतः दबाने-कुचलने के भाव से अन्य को नष्ट प्रायः रखने को उत्सुक हो रहे है।

आज कल शासन-प्रशासन में राजनीति-पार्टियों या चुनावों में भी जातीय समीकरण से टिकट वितरण होते है, राजनीति शासन-प्रशासन में भी जन्मजातीय प्रमाण-पत्र की मान्यताएं होने लगी हैं।

इस भारत में जब तक जन्म के नाम पर पितृ-दत्त सवर्ण-अवर्ण घृणास्पद भाव देश तथा समाज की अन्तर्भूमि में प्रचलित है, तब तक कभी भी पूर्णत्व रूप से हिन्दू-शक्ति संगठित नहीं हो सकेगी। दक्षिण भारत की शूद्रादि अद्विजाति समझी जाने वाली जातियों की जस्टिस पार्टी के अध्यक्ष अमर कृति न्यायनिधान स्व. डॉ. भीमराव अम्बेडकर आदि महानुभवों ने स्वराज्य प्राप्त-कारक सब आन्दोलनों का इसी आधार पर विरोध किया था कि '**स्वराज्य स्वतन्त्र राज्य का वास्तविक अर्थ ब्राह्मणों अथवा द्विजातिता का स्वार्थसाध्य राज्य होगा, जिसके द्वारा अब्राह्मणों पर महान अत्याचार किया जाना सम्भव है।**'

हमारे विचार से इस सामाजिक भूलों – प्रचलित बुराइयों के नवीनवाद की जड़ अस्पृश्यता को '**इतिश्री**' समाप्त करने का इलाज बतलाने की चेष्टा करनी, सामयिक संगठन में सहायकरूपक शतशः '**शास्त्रीय वर्ण-व्यवस्था**' के आदर्शों का व्याख्यानों तथा पुस्तक-पुस्तिकाओं, पत्र-पत्रिकाओं द्वारा प्रचार करने के साथ ही सार्वजनिक भ्रातृत्व और समानता भाव के उच्च सिद्धान्तों का धर्म सर्व जनता के सामने लाना चाहिए।

समाज की भूल का परिणाम

आज की विद्वद्मण्डलियों व साधुवाद के परमाचार्यों तथा देश के कर्णधार नेताओं, कार्यकर्ताओं से यह निवेदन करना परम कर्तव्य होगा कि यदि आप अपने उद्देश्य की पूर्ति चाहते है, धर्म-स्थापन से विश्व-कल्याण की इच्छा है तो अविलम्ब जातिवाद को समाप्त करके **'जन्म-सिद्ध जाति-भेद'** मानना सर्वथा कपोलकल्पित एवं वेदादि शास्त्र-विरूद्ध कल्पनाजनक जातीयता के नियमों को मूल से तोड़ देना चाहिए । इसी तरह अन्य विकार जो भी शास्त्र-विरूद्ध रूढ़ि-नियम प्रतिबन्ध रखे जाते है, उन्हें प्रकट रूप से विरोध करके तोड़ने का दृढ़ निश्चय करना चाहिए । साथ ही साथ भ्रामक मूल तन्तु अनार्य लक्षण मद्य माँसादि अभक्ष्य सेवन और जूआ, घूस, तस्करी, भ्रष्टाचार आदि अन्य सब सप्त दुर्व्यसनों की नीच आदतों का तथा जातीयता के रूढ़िवाद-चलन, मौसर, मृत्युभोज, नुकता, दहेज-प्रथादि परिस्थितियों के कारण हजारों गरीब पिसे जा रहे है, उनके जीवन तथा नवपीढ़ि-बालक ऋण से दबे-दबे ही रह जाते है । हजारों कन्याऐं दहेज के अभाव में अपने जीवन को इति अर्पितकर दे रही है । आन-मान वाले जीवन को इति अर्पित करने के नियम सर्वथा बन्द करने चाहिएं । सुपक्ष में उद्यम, कला-प्रेमी, पवित्र-सात्विक जीवन से घर-घर में सरस्वती (विद्या) देवी का अर्जन, पूजन, आदर करके व्यक्तित्व का आदर्श उच्चतम कर सकें । इस साहस के पालनकर्ता समर्थकों की जितनी अधिक संख्या बढ़ेगी, उतनी मात्रा में ही यह आपसी फूटपरस्ती की कमजोरी का निवारण होता जाएगा । क्योंकि विद्वजनों की धारणा में दृढ़ है कि व्यक्ति से समाज बनता है, समाज से व्यक्ति नहीं बनता अर्थात् व्यक्ति समाज को बनाता है, समाज व्यक्ति को नहीं ।

यह छूत-अछूत (अस्पृश्यता) का रोग जन्म से जाति-सिद्ध मानने का ही प्रमुख फल है। अब इसके सम्बन्ध में ऐक्यता-सूत्रों का विचार-विमर्श विस्तृत-संक्षेप देना अत्युक्ति न होगी जिससे कि प्रत्येक मानव की शंका-निवृति का विषय सिद्ध हो सकें तथा प्राचीन शास्त्रीय समाज का निर्माण करें। जगद्‌गुरू आद्य रामानन्दाचार्यजी के आदर्शों का पालन/प्रचार करें कि - रविदास, पीपा, धन्ना, कबीर और अनन्तानन्द पृभृत्य को एक पंक्ति में बैठाने का वातावरण समुन्नत हो सकें।

शास्त्रीय भेद या मानवीय भेद

मानव समाज में ईश्वर का दिया हुआ अकांत्कम कोई भेद ज्ञात नहीं होता किन्तु गुण, प्रकृति-प्रभाव से विचार-कर्त्तव्य के विभिन्न भेद अवलोकनार्थ मिलते रहे हैं - इसी आधार को मूल मान कर वेद में चार ही वर्णों का सर्वत्र उल्लेख होता है। वस्तुतः संसार के विश्व साहित्य में ऐतिहासाधार पर ऋग्वेद सर्वप्रथम तथा कई हजारों वर्षों से यजु,साम,अथर्व वेद को माना जाता है। साथ ही मानव सृष्टि के आदि पितामह मनु ने ही मानव-पथ-प्रदर्शक समाज रचना व्यवस्था का ग्रन्थ मनुस्मृति का रचन किया। यह साहित्य विश्व के समस्त शास्त्रों-मतान्तरों एवं धर्मों का मूल रूप सत्य-प्रतिपादक है। अतः यहाँ पर साधिकारत्व से आदि मूल ग्रन्थों के प्रमाणों से वर्ण-व्यवस्था का कुछ सार रहस्यात्मक भेद कथन करने का प्रयास करें तो कोई अत्युक्त नहीं होगा।

मानव समाज के हित में पाँच हजार वर्ष पूर्व के ग्रन्थ महाभारत में कहा है कि-

एकं वर्णमिदं पूर्वं विश्मासीत युधिष्ठिरः ।
कर्म क्रिया विशेषण चातुर्वर्ण्य प्रतिष्ठितम् ।।

हे युधिष्ठिर ! आरम्भ में सारे विश्व में एक ही मानव 'आर्य' वर्ण था, फिर अपनी अपनी क्रिया और विभिन्न कर्मों के कारण चार वर्ण बने । उसके अतिरिक्त 'नास्ति तु पञ्चमः' (मनु० १/४) कोई पञ्चम वर्ण (जाति) नहीं है ।

स्मृताश्च वर्णाश्चत्वारः पञ्चमो नाधि गम्यते ।

– महाभारत, अनुशासन पर्व ७/१८

स्मृति-न्याय के निर्देश में चार ही वर्ण है, पांचवीं कोई जाति नहीं हो सकती, किन्तु आज हजारों की संख्या में जातियाँ है यह क्यों ? क्या इन प्रमाणों से आज का समाज शास्त्रीय कसौटी में सत्य निखर सकता है ? कदापि नहीं । अस्तु, वेदों में कई जगह पर 'पञ्चजन' शब्द का प्रयोग हुआ है, जो कि विवेचना से विचारणीय है –

पञ्चजनाः चत्वारो वर्णा निषादः पञ्चम इत्योप मन्यवः ।

चार वर्ण नागरिकों में ज्ञान-भेद से है और पाँचवाँ निषाद (जंगली) मानव है (यास्क निरूक्त १३/८) इसके विपरीत यह भी अर्थ प्रयुक्त होता है कि जो शूद्र समाज में दो भेद जैसे 'सच्छूद्र' (सत्य व्यवहार की सामान्य भाव-जागृति के लोग) 'असच्छूद्र' (पशु तुल्य-ज्ञानशून्य) का भेद करने से मानना पड़ता है कि मानव जाति पाँच भागों में बाँटी जा सकती है अथवा आचरण-भेद से चार वर्णात्मक जातियाँ ही उचित प्रमाणसिद्ध है, जिसकी स्पष्ट व्याख्या देखिए, निरुक्त ३/२/५ में – **'निषण्णमस्मिन पापकम्'** जिसके अन्दर पाप (विकार-दुर्लक्षण) जमा हुआ हो, ऐसे पापी पुरूष को भी निषाद नाम से कहा है, वह चाहे किसी भी उच्च कुल में जन्मा हो या राज्य घराने का भी क्यों न हो । सन्त-वाणी में तो पद-पद पर ऐसे प्रमाण मिलते है, जैसे कि –

चतुराई चूल्हे पड़ो, भट्ट पड़ो आचार ।
तुलसी हरि की भक्ति बिन, चारों वर्ण चमार ।।

एक और गहन प्रमाण प्रस्तुत है जो उक्त कथित पाँचों वर्णों को वेद भगवान विश्वेश्वर की स्तुति व अग्निहोत्र करने की समान आज्ञा प्रदान करते है ।

तद्द्य वाचः प्रथमं मसीय येना सुरां अभिदेवा असाम ।

ऊजाद् उत याश्रयासः पञ्चजना मम होत्रं जुषाध्वम् ।। - ऋग्वेद १० ५४/३

जिस श्रेष्ठ वेद की शक्ति-वाणी से देवसेना असुरों से विजयशील होती है, उसी वाणी के द्वारा आप सब उत्तम अन्न-रसों को करके पवित्र बनो, अर्थात् यज्ञ से शुद्ध बनो । हे पञ्चजनों ! सब मनुष्य तुम परमात्मा की प्रार्थना करो ।

यहाँ पाँचों वर्णों को यज्ञ व भगवत्स्तुति करने का आदेश है । इसके द्वारा किसी वर्ण विशेष को अछूत-अस्पृश्य नहीं मानना चाहिए अपितु सब प्राणियों को मित्रता की प्रेम-दृष्टि से देखना चाहिए । यह उपदेश मिलता है ।

न विशेषोस्ति वर्णानां, सर्वं ब्राह्ममिदं जगत् ।

ब्रह्मणा पूर्व सृष्टं हि, कर्म भिर्वणतां गतिम् ।। - महाभारत

वर्णों में कोई भी विशेष नहीं है, क्योंकि सारा जगत ही ब्रह्म से उत्पन्न है । पूर्व में सब ब्रह्म ने ही रचा था ।

चत्वारोऽपि हि यद्वर्णाः एकस्य ब्रह्मणः सुताः ।

एतेन रूपकणैव खंड्यते जन्म वर्णता ।। - महाभारत

यह चारों वर्ण एक ही ब्रह्मा के पुत्र है इस रूपक से भी जन्म-वर्णता खण्डित हो जाती है ।

चत्वारो भ्रातरः सर्वे ब्रह्म जाता सहोदराः ।

एको ब्रह्मा पिता तेषां सर्वेषां तु प्रजापतिः ।। - महाभारत

ब्रह्मा से उत्पन्न यह चारों वर्ण सगे भ्राता है । इन सब का पिता एक ब्रह्मा है, वह सभी का प्रजापति है ।

इस प्रकार यदि कोई विचारपूर्वक सर्वेश्वर एक परमात्मा को सब प्राणी मात्र में देखे तो कौन किससे घृणा कर सकता है । कैसे कर सकेगा ? यह गम्भीरता का प्रमुख वेदांग, वेदान्त, योग, सांख्य, न्याय आदि शास्त्रवाद का सैद्धान्तिक विषय है । किन्तु आज भारत में सर्वत्र शास्त्र सिद्धान्तवादी, मनीषी तथा साधु-समाज व विद्वानों में अग्रणीय प्रकाण्ड पण्डितों में ईश्वर व्यापक-जनक ऐक्यतावाद का कथन मात्र **'पोथी के बिन्ताग वर्जित'** केवल वाक्-प्रलाप **'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव कैवलम्'** अथवा महिमन्तापूर्वक, कागजी घुड़दौड़ से दिखावटी हाथी के दाँत के समान व्यवहार करके आचरणशीलता पूर्णतः जीवित कीटाणुओं पशुओं-जैसे भेद मानव समाज के प्रति घृणा-भाव रखते है, जिसके द्वारा प्रतिदिन भारत की आर्यता का खण्ड-खण्ड होकर विनाश की दिशा में अग्रसर हो रहा है । इसमें रञ्चमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता । अच्छा आगे बढ़िए -

'मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे' - यजुर्वेद ३६/१८

समस्त प्राणीगण मित्र की आँख से देखें और मैं भी सब प्राणियों को मित्र की आँख से देखूँ ।

'यस्तु सर्वाणि भूताम्यात्मन्न वानु पश्यति ।
सर्व भूतेषु चात्मनं ततो न बिजु गुप्सते ।।

- अथर्ववेद ४ ११/१६ तथा यजुर्वेद कण्वसंहिता ४०/६

जो पुरुष सब प्राणियों और प्राणरहित पदार्थों को भी परमात्मा पर ही आश्रित (विद्याभ्यास-योगाभ्यास द्वारा) साक्षात् कर लेता है और सर्व प्रकृति आदि पदार्थों में परमेश्वर को व्यापक देख लेता है, तब वह सन्देह में नहीं पड़ता ।

भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व शंस्याः । तस्मिन् इष्ट परावरे - गीता

यस्मिनत्सर्वाणि भूतान्यात्मैवा भूद्विजानतः ।
तत्र को मोह कः शोकः ऽएकत्व मनु पश्यतः ॥ - यजु० ४०/

जिस ब्रह्मज्ञान की दशा में समस्त प्राणी अपने आत्मा के सम ही हो जाते हैं, तब प्रतिक्षण एक ही समानता से देखने वालों को वै मोह, शोक, अज्ञान, संशय रह सकता है ? भेद-निवृति से ही आत्म होता है ।

इन मूल मंत्रों के आधार पर आज तक करोड़ों महात्माओं व साध के मुख से मुखरित पद्य-संगीतमय भाषा, भाव, सौजन्य गम्य भजनों को भार गायक गाते हैं और श्रद्धालु सुनते है । फिर भी वही रूढ़ता-मूढ़ता के में गाढ़ी घुस पड़ी है, और तो क्या ? आज जन्म से सवर्ण जातीय मा वालों में से होने वाले साधुगण जैसे रेण, शाहपुरा, खेड़ापा, सिंहस्थल, दादूप नाथ आदि सब मतवादी अपने पूर्वजों के शब्द-रटन, वाणी-पाठ से कल मान लेते है, किन्तु उनका वस्तुतः तथ्य न जान कर न तो अनुकरण क हैं, न करवाते हैं अपितु जन्मगत जाति की प्रधानता मानकर मानवता के स में सन्त पूर्वाचार्य वाणी के तथ्य भूल जाते है और उनका अपमान करते

उपरोक्त प्रकार के ऐसे विधानकर्त्ता, हमारे ज्ञानदाता वेदों में भी अस्पृश्यता के लिए कुछ आधार नहीं पाया जाता । चाहे कैसी हठधर्मी का कठोर या कट्टर सनातनी प्रकाण्ड पण्डित हो, वह हमारी वेद-वाणी तथा संत-वाणी, भक्ति, तर्क आदि महत्वपूर्ण विषयों के अ पर शास्त्रीय पक्ष द्वारा **'जन्म से जाति'** कोई भी सप्रमाण उद्धृत नहीं कर सकते है और न कर ही सकेंगे ।

इतने स्पष्ट शब्दों में डंके की चोट घोषणा की पृष्ठभूमि गम्भीर है । तब आप ही सोच लें कि अपना आधुनिक अशास्त्रीय में ढ़ला-बदला हुआ चलता धर्म जिसे हम अपने हृदय में ले बै वह कितना चंचल-नाजुक-कमजोर-अस्थिर है । मनोकल्पित नींव पर अ

होकर तर्क की झंझावात में ठहर नहीं सकता । उदाहरण लीजिए - एक ब्राह्मण, क्षत्रिय, जो जन्म से जाति मानने वाले के घर से हो उनके बर्तन, थाली, लोटा, घड़ा आदि किसी श्वान (कुत्ता) मुँह से चाट जाय, पेशाब कर जाय अथवा कौआ अपनी भृष्टा-भरी चोंच से जल, रोटी को स्पर्श कर जाय या कूड़े-कर्कट, पीब-खंगार-भृष्टा (बच्चों की टट्टी पर) से उड़ कर मक्खी यदि भोजन भण्डार थाली पर अथवा अपने हाथ, मुँह, नाक-कान पर भी बैठ जाती है । यह सब कुछ होता हो तब तक बर्तन, रोटी, पानी, और हम सब स्वच्छ पवित्र एवं मजबूत है, कुछ नहीं बिगड़ता, किन्तु उसी रूप में यदि एक समाज के अंग मानव जो लक्षण से चाहे शुद्ध-ब्राह्मण होने पर भी जन्म से अन्त्यज शूद्र है, ऐसे किसी व्यक्ति ने यदि जरा छू लिया या छाया स्पर्श कर लिया तो तुरन्त ही आपका धर्म नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा । बस ! यही है हम उच्च कहलाने वालों में भिरूता पूर्ण धर्म की स्थिरता जो कंकर से चिड़िया की तरह फुर्रर् कर उड़ जाय ।

हिन्दू वीरों ! यह कच्चे धागे से भी गया-बीता नाजुक धर्म हमें नहीं चाहिए । कच्चे धागे के तन्तु से मन्त्रवेता भूतों को बाँध लेते है, देव, यक्ष, किन्नरों को बाँध देते है किन्तु यह धर्म तो उससे भी निर्बल हैं जो मानव समाज को दूर दूर फैंकता है । संगठित रूप में बाँध कर एकतासूत्र में नहीं रख सकता । याद रखिए - प्यारे हिन्दूओं ! यही धर्म एक दिन 'हिन्दू' नाम का सत्यानाश-सर्वपतन करवा देगा ।

ऐसे ही चित्र आमखास सामन्तशाही समय विक्रम संवत् १८१८ से २०२३ के बीच में आम तथा बाद में भी कहीं-कहीं बहुतायत चरित्रहीन राजाओं-नेताओं द्वारा प्रशंसित-वंटित भूस्वामी जागीरदारों के चरित्र-चित्रण में देखने और सुनने को आते रहे हैं । जिस भरमार की छाया अब

तक मिटी नहीं कि वह छद्मवेषी ठाकुरों की औलाद हरिजनों, मेघवालों, भीलों, सरगरों आदि किसी भी नीच तथाकथित अनुसूचित कही जाने वाली जातियों की सुकुमारियों-स्त्रियों (सधवाओं-विधवाओं) से घर के प्रांगण को लिपाते, बाजरे आदि अनाज का खीच कुटवाते और बर्तन मंजवाते, सफाई करवाते, लकड़ियों की भारियाँ मँगवाते, इतने पर भी उन शैतान की सन्तानों को तृप्ति नहीं हो पाती और उनकी इज्जत-लज्जाहरण करके छोड़ते है। यह एक-दो दिन नहीं अपितु उनकी दैनिक जीवन-चर्या इसी ढ़र्रे से बह चली थी, ऐसे ऐसे उनके व्यक्तित्व के नीच कृतित्व-लीलाओं का कहाँ तक चित्र खींचा जाय। उस समय राजपूती कहाँ जाती है? छुआछूत के भाव लोप हो जाते है और अछूतों के तलुवे सहलाए जाते है। मित्रों! उनके विशाल ताण्डव को आचार्य चतुरसेन ने अपने 'गोली' नामक चरित्र प्रधान पुस्तक में वास्वतिक नग्न उल्लेख करके बता ही दिया है कि वह सत्तान्ध शासक भी इससे कभी पीछे नहीं रहते और आज भी है। ऐसे ऐसे प्रेम-व्यवहार तथा बलात्कार कार्य जो हरिजन वर्ग के एक छिछले भ्रष्टा उठाने वाली कन्याओं के साथ धर्म व जाति के ठेकेदार छिप कर मन की मौजी तरंगे करते है, परन्तु उनका धर्म ऐसे कार्यों में अटल बना रहता है। पाठकों से यह छिपा नहीं रहा होगा कि आज पिछले समय सन् १९४७ से भारत राष्ट्र की स्वतन्त्रता के बाद नेता, सम्राट, शासक किस प्रकार की मस्तानी किन्तु कुचेष्टाऐं करते है, विलायती शराब के दौर, वेश्याओं के ताण्डव, नृत्य-गायन में प्रलोभित राजकीय सर्किट-हाऊस, विश्रामालयों को सजावटी कुर्सियों-सोफों और गद्देलों को उल्टियों की बौछार बहाते रहते हैं और वहीं मचाते हैं भ्रष्टाचार की रंग-रेलियाँ और लाते है समाजवाद का कम्युनिज्म उग्ररूप। उनके द्वारा रही-सही व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का लोप किया जाना स्वाभाविक हो जाता

है । क्योंकि भौतिक वाद-प्रभाव से मानव का मन और आत्मा ही अस्तित्व से इन्कार मानकर शारीरिक सुख-साधन के क्षेत्र में उपलब्धि के अर्थ सर्वस्व बलि होने लगता है । यहीं से समाजवाद का शिलान्यास होकर समाज की प्रत्येक गतिविधि पर अपना नियंत्रण रखने में साझी-माझी होने को समर्थ रहेंगे । इस सम्बन्ध में जन-साधारण सर्वथा उदासीन है, परिणामों में रूचि व्यक्त करने में पूर्ण असमर्थ है, जिसके कारण को क्या कहा जाय । अयोग्यता, प्रमादवश अथवा लोभदृष्टि के आगे नतमस्तक होना ही हो सकता है ।

किनके चाहिए धन धाम धरा, किनके लगनी मन मौद बढ़ावे ।
किनके पद-महल झरोखनि की रूचि, लाग रही रंग नेक जमावे ।।
आपने आपने स्वार्थ लाग के, निज गति-देश-समाज भुलावे ।
केतिक लेखनि हाय धरे कह, रामप्रकाश मनो मुरझावे ।।१।।

क्या आपको विश्वास है कि ऐसे नेता विधान-संरक्षक, शासन-सूत्र संचालक भारत की विशाल बहुदेशीय जनता के कल्याण में कहाँ तक सिद्धहस्त सार्थक हो सकते है अर्थात् न तो मध्यपूर्व के जागीरदार एवं राजा सम्राट ही सात्विक राजनीति में रह सके है और न कुछ स्वतन्त्रता के शासक ही सफल हो सके है । इस महत्वपूर्ण प्रयोग की सफलता दर्शक-कुंजी आपके हाथ में दी जाती है, उसे आप अपने जीवन-आचरणों में उतारिए ।

आज के आस्तिक भक्तों द्वारा पूजास्थल में श्वान पहुँच कर मूर्ति को जिभ्या स्पर्श से चाट जाय या देव को निषिद्ध शरीरांकन गंगाजल (मूत्र) चढ़ा जाय या कुछ भी करले, परन्तु फिर भी वह पूज्य पात्र श्रद्धेय है । किन्तु विपरीत पक्ष में यदि समाज के एकांगी एक अछूत या अस्पृश्य कहे जाने वाले व्यक्ति जो मन्दिर में पूजन-प्रवेश चाहता है तो आप सनातन के ढ़ोंग की आड़ में अपनी धर्मध्वजा को व उस उपास्य पाषाण धातु मूर्ति को बचाने में तत्पर होकर लाठी, मुक्के या गालियों के अश्लीलत्व

द्वारा सर्वस्व तक हरण करने में तुल जाते है और उनके जाने आने के रास्ते, पीने के पानी तक को बन्द करने को अग्रसर होने में भी आपको संकोच नहीं होता । क्या उस मूर्तिस्थ मन्दिर के देव, शंकर, राम या कृष्ण, नृसिंह भगवान ने यही धर्मोपदेश आदेश दिया था ? यदि आपका उत्तर हाँ है तो नहीं चाहिए ऐसे भगवान और उनके पुजारी । आगे **'मारो वालों भूखों छे प्रेम नो रे'** आज इन शब्दों के जैसे गाने दुहराने या कथन करने वालों की भी आवश्यकता नहीं है । अर्वाचीन काल में हमें समाज के उस भगवान की जरूरत है जो निषाद-गुह को भी कण्ठ लगालें ! हमें वह ईश्वर चाहिए जो एक अन्त्यजा भीलनी (शबरी) के झूठे बेर भी प्रेम से खाने वाला हो या भक्त भील चक्रिक के उद्धारक और राजा दुर्योधन जैसे राजा को छोड़ कर दासी-पुत्र विदुर के घर बथुआ-घास का भोजन करने वाले और कुब्जा जैसी मूर्ख़ा के भी प्रेमी, राक्षस कुल के प्रहलाद-विभीषण जैसों के गुण-कर्म की परख रख कर अपने में मिलाने वाले हो अथवा ऐसे राम, कृष्ण या शंकर ? साथ ही साथ उन भगवान के जीवनीय अनुकरण पद-चिन्हों पर चलने वाले उपासक, भक्तों-पुजारियों और साधु-सन्त, वक्ताओं की आवश्यकता है ।

सनातनी बन्धुओं ! आज तुम लोग अपने समाज के ही पिछड़े लोगों को मन्दिर-प्रवेश-पूजा अधिकार देने में रोक लगाने हेतु वीरता दिखाने में उद्यत होकर बन्धन डालते हो । वह वीरता उस समय कहाँ गई थी जब कि शताब्दियों पूर्व देश में यत्र-तत्र स्थापित देव-मूर्तियों के नाक, कान, हाथ, पाँव, गर्दनें उड़ाई गई थीं । कई विशाल मन्दिरों को ही मस्जिदों का रूप लेकर बचना पड़ा, जिनके लाखों उदाहरण देश में तथा राजकीय संग्रहलयों, पुरातत्व विभागों, खण्डहरों में दर्शनीय है, वह देख कर हमें लज्जा नहीं आती ? आज सफेद पर्दे में अपनी लज्जा को बचाते हैं । उसकी भूतकालिक स्थिति जब यहाँ के नौ रोजा

नव-विवाहिता वधू के उद्घाटन में लेकर पर्दा से निकाल कर देते, क्या उस समय आपकी धर्मवीरता अमानत में ज़मा दाखिल थी ? वही सम्भवतः आज अपने ही समाज से पुनः प्राप्त करने की व्यर्थ कोशिश हो ? इस प्रकार से इतिहास की अनन्तधारा को भुलाया नहीं जाता ।

प्यारे धर्म प्रेमियों ! घबराइए मत !! आगे बढ़िए !!! क्या उपरोक्त कथित उदाहरणों से स्पष्ट नहीं हुआ कि समाज एवं देशद्रोही एक मात्र छुआछूत करने वाले सवर्ण (द्विजाति) लोग ही है ? उन्हीं की कल्पना के भूत समाज का पतन करते रहें है । वस्तुतः हमारे शास्त्रकारों के आदेश क्या है ? शूद्र कौन है ? इन प्रश्नों का निर्णय हमारे स्मृतिकारों की दृष्टि में तुलनात्मक विचारशक्ति से दृष्टिपात करिए ।

वर्ण-धर्म का परिवर्तन

पिछले प्रकरणों के प्रश्नों को जानबूझ कर प्रत्येक पाठक के हृदय में सबका मूल एक प्रश्न उत्पन्न हुए बगैर नहीं रह सकता । वह यहीं शीर्षक रूप में प्रस्तुत होकर आपकी शंकाओं का सही और शास्त्रीय-प्रमाणों द्वारा पुष्ट उत्तरकर्त्ता है । क्या आप जानने के उत्सुक है ? यदि सावधान है तो लीजिए -

अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता ।
पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुष योनिजम् ।। - मनुस्मृति १०/५८

असभ्यपन और कठोर भाषण, शीलता तथा कर्मानुष्ठानरहित होना यह लक्षण इस लोक में नीच योनिज पुरुष को प्रकट करते है ।

शुद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्या द्वैश्यात्तथैव च ।। - मनुस्मृति १०/ ६५

ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त हो जाता है और शूद्र ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो जाता है । क्षत्रिय से उत्पन्न हुआ भी इसी तरह और वैश्य से हुआ पुरुष भी अन्य वर्ग को प्राप्त कर के पतन हो जाता है ।

जातोनार्या मनार्याय मार्यादार्यों भवेद् गुणैः । - मनुस्मृति

अनार्या (शूद्रा) वैश्य आदि स्त्री में आर्य से उत्पन्न हुआ बालक गुणों से उच्च आर्य कुलस्थ हो सकता है ।

क्रियाहीनश्च मूर्खश्च सर्व धर्म विवर्जितः ।

निर्दय सर्वभूतेषु विप्रश्चाण्डाल उच्यते ।। - अत्रि स्मृति ३८१

ब्राह्मण कुलोत्पन्न पुरुष भी जो यज्ञादि क्रियारहित, मूर्ख, अधार्मिक और भूत (प्राणी) दया से रहित है, उसे ही चाण्डाल कहते हैं ।

जन्मानां जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते ।

वेद पठेत् भवेत् विप्रः ब्रह्म चिन्हाति स ब्राह्मणः ।। - वेदव्यास

जन्म से तो सभी मानव शूद्र ही है, वैदिक धर्म संकारों (दीक्षा) से द्विजन्मा होकर द्विज कहलाता है, वहीं क्षत्रिय, वैश्य वर्ग के अन्येतर वर्ण के गौत्र समूह से समाज में जाने जाते है और ब्रह्मचर्य नियम के साथ वेद पाठ-ऋचा सूक्तों को भली प्रकार पढ़ने से वह शूद्र जन्मा व्यक्ति **विप्र** कहलाता है । ऐसे ही आध्यात्मिक उच्च साधना द्वारा तत्वदर्शन (आत्म साक्षात्कार) करके तत्वदर्शी ब्राह्मण बनता है अर्थात् वेद (ज्ञान) को अध्ययन/चिन्तन करके भली प्रकार उच्चारण पाठ विधान को जानने से ब्राह्मण होता है । वेद शब्द वीर्यरक्षण, आत्मा, परमात्मा और वेद, यज्ञ के ज्ञान हेतु प्रयोग हुआ है ।

पर हिंसा परः क्रूरः पर दारः परायणः ।

पर द्रव्याभिलाषी च स चाण्डालो हि निर्दयः ।। - दक्षस्मृति

जो दूसरों की हिंसा करने वाला, क्रूर, व्यभिचारी और निर्दयी,

चोर है, वह निश्चय ही से चाण्डाल है ।

स्त्रीष्वनन्तर जातासु द्विजैरुत्पादितान्सुतान् ।

सदृशानेव तानाहुर्मातृ दोष विगर्हितान् ।। - मनुस्मृति १०/६

द्विजों में अन्येतर वर्ण से उत्पन्न सन्तान पिता के वर्ण की होती है, माता के वर्ण की नहीं ।

या दृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संजूज्यते यथा विधि ।

ता दृग्गुणा सा भवति समुद्रेणैव निम्नगाः ।। - मनुस्मृति ६/२२

स्त्री विधिवत् जिस गुण वाले पति से विवाही जाए तो वह उस पति गुण वर्ण वाली हो जाती है, जैसे समुद्र में गिर कर नदी समुद्र के गुण ग्रहण कर लेती है ।

प्यारे आर्य हिन्दुओं ! अब तो जरा सोच कर कुछ इन जन्म से उच्च कुल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि कहलाने वालों के आचरणों की तुलना कीजिए कि आज के क्षत्रिय व ब्राह्मण आदि सबके सब इन लक्षणों वाले है या रहित है । किन्तु दृष्टिपात से परिणाम ज्ञात होगा कि आज जो जो अनैतिकता जनक अभद्र व्यवहार, गर्वपूर्णता, भ्रष्टाचार, डाके डालना, गरीबों को व्यर्थ में परेशान करना तो इनका जन्मसिद्ध पितृदत्त शिक्षा का कर्त्तव्य बना हुआ है । रह गई धर्म नाम की चमक जो केवल स्वार्थसिद्धि व दीनों को शोषण के उपयोग हेतु । परन्तु वह भी केवल दिखावे मात्र से । उदाहरण लीजिए -

एक जन्मसिद्ध ब्राह्मणादि के घर स्त्री के प्रसव-संकट हो रहा है । इधर एक जन्म-पतित समझी जाने वाली नीच जाति की बुढ़िया धात्री (दाई) है, तो उसे घर के खास रसोईघर या दौलतखाने तक भी जाने में कुछ रोक नहीं करते, किन्तु साधारणतया में यदि छाया स्पर्श हो जाय या एक आसन पर बैठ जाय, तो भी उसे समाज से ताड़ना मिलने लगती है । तब सह-भोजन की बात क्या होने पाए ? अर्थात् वह तो दरकिनार ही होगी ।

इसके विपरीत स्मृतियों में जन्म जाति जनक कुछ अर्वाचीन प्रक्षिप्त (नकली) श्लोक-प्रमाण पेश आते है, वह पूर्व में बताए प्रसंगानुसार हिन्दू जाति को फूट से बँटवारा कर के बँटाढार में विदेशी विधर्मियों द्वारा दिये सौगात रूप हमारे देशद्रोही स्वार्थी धर्म के ठेकेदारों के बनाये मनोकल्पित श्लोक ही है - इसके भी प्रमाण हमारे पास प्रस्तुत हैं, किन्तु यहाँ पर देने से प्रसंग-हानि व व्यर्थ में पुस्तक पृष्ठवृद्धि मात्र प्रयास ही होगा, साथ ही यह कहना पर्याप्त होगा कि वेद-विरुद्ध होने के कारण वह इस विषय में सर्वथा अमान्य व निष्कर्षविहीन है। साथ ही साथ जहाँ जहाँ स्मृतियों में जिन लोगों के साथ जो सामाजिक व्यवहार का निषैध पाया जाता है, अपितु ऐसे लोगों के लिए है जो कि पूर्वोक्त बताए कुलक्षणीय व्यक्ति हों व जो सदाचार, वैदिक मानव क्रियाओं से च्युत हो चुके हों।

एक बात यह भी ध्यान रखने की है कि समाज को सुरक्षित रखने के लिए और अधार्मिकों को पुनः धर्म के मार्ग पर लाने के वास्ते शास्त्रकारों ने सामाजिक बहिष्कार के साधन को कुछ समय के हेतु काम में लाने की आज्ञा दी थी, किन्तु साथ ही बहिष्कृत पुरुषों को पुनः प्रायश्चित्त करा कर शुद्ध कर लिया जाता था और उनकी सन्तान को पतित नहीं समझा जाता था। परन्तु आज जो कुछ भी इस प्रकार पूर्व के कुछ समय से हो रहा हैं, उसका विवरण हम अगले परिच्छेद में लिखेंगे।



❋ द्वितीय परिच्छेद ❋

कद्व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना । - ऋग्वेद १/१०५/५

क्या उचित है ? क्या अनुचित है ? यह विचार कर जरूरी कार्य पहले करना चाहिए, यह विद्वानों और शास्त्रों का मत हैं ।

हिन्दू समाज की परिस्थितियाँ

"इतिहास, सामग्री में आई परिस्थितियाँ भी अपना विशेष प्रभाव रखती है । पिछले पृष्ठों में प्रसंगवश जहाँ जहाँ भूलों का दर्शन कराया गया है, उसका परिणाम बताना इस परिच्छेद का क्रम है ।"

इन्द्रंवर्ध्दन्तो अप्तुरः कृणवन्तो विश्वमार्य्यम् । - (ऋग्वेद ६/६३/१)

पुनन्तु मा देव जनाः पुनन्तु मन साधियौ ॥ - (यजुर्वेद १९/३१)

"ईश्वर की महिमा बढ़ाते हुए सब संसार को आर्यत्व की शिक्षा से आर्य बनाओं और वैदिक धर्म के प्रसार से सब को पवित्र करो एवं सनातन-मार्ग का दर्शन कराओं ।"

उत देवा अवहित देवा उन्न यथा पुन्नः ।

उतागश्च क्रषं देवा देवा जीव यथा पुनः ॥ - (ऋग्वेद १०/१३७/१)

"जो मनुष्य वैदिक धर्म से गिरे हैं, उन्हें पुनः उठावें । जिन्होंने पाप किया है और जिनका जीवन-मेला (अशुद्ध) हो गया हो, उन्हें फिर से नव जीवन दो और शुद्ध करों ।"

इन मंत्रों में स्पष्ट ही 'शुद्ध धर्म का आदेश है' । इस वेद के सत्य कथनाधार पर प्रस्तुत पुस्तक के उपसंहार में 'अछूतोद्धार' बताया गया है । जो प्रत्येक हिन्दू समाज के व्यक्ति को राष्ट्रीय गीत की भाँति पालन योग्य पठनीय है । इन्हीं मन्त्रों का उपयोग ज.गु. रामानन्दाचार्य के द्वारा हुआ था ।

प्यारे हिन्दूओं ! हमारे वेद शास्त्र तो मनुष्यमात्र को हिन्दू धर्म शुद्ध सनातन कर्त्तव्य की शिक्षा देकर उन्हें शुद्ध मानव बनाने की आज्ञा

करते हैं, परन्तु आप लोग अपने हिन्दू भाइयों को भी हिन्दू धर्म में वापिस मिलाने से क्यों हिचकते हैं ? जब से आर्य जाति-समाज-राष्ट्र पर विदेशियों और विधर्मियों के आक्रमण होने लगे तब से आज चार हजार वर्ष हो गए, अब तक होते ही जा रहे हैं - अन्य जातियों ने हिन्दू जाति को मिटाने के लिए कोई बात उठा कर कसर नहीं रखी । हमारी मूर्खता द्वारा अनुलोम, प्रतिलोम के कारण समाज का ह्रास और उनकी मातृभूमि आर्यावर्त सभ्य भारत अन्य विजातियों का क्रीड़ास्थल बनता गया ।

इतिहास साक्षी है कि सन् २०० ईसवी के पूर्व असीरिया के साम्राज्य-लोलुप राजाओं ने सब से प्रथम इस देश पर आक्रमण किया, उसके बाद ६०० वर्ष पश्चात् मिश्री और उसके ८०० वर्षोंपरान्त ईरानी आक्रान्त हुए । ईरानियों के आक्रमण के २०० वर्ष बाद यूनानी सिकन्दर भारत के उत्तर-पश्चिमी मार्ग से पंजाब पर चढ़ दौड़ा । सन् १५० वर्ष ईसवी पूर्व मध्य एशिया की क्रमशः कई जातियाँ आईं । इसके ५०० वर्ष बाद हूण आ धमके । ८वीं शताब्दी में इल्मो हुनर के दुश्मन अरबियों के आक्रमण आरम्भ हुए । दसवीं शताब्दी के अन्त में मोहम्मद गजनवी का अमीर सुबुक्तगीन हमलावर हुआ और पन्द्रहवीं सदी के अन्तिम वर्षों में यूरोप की जातियों का बनियों (व्यापारियों) के रूप में सभ्यावर्त भारतवर्ष में प्रवेश हुआ और भारतवासियों को असावधान एवं सुखी देखकर उनके घर पर अधिकार कर बैठे । जब अंग्रेज यहाँ से गये तो हमारे चरित्र का भी ह्रास होना प्रारम्भ हो गया । यह ह्रास हुआ अंग्रेजी स्कूल और कॉलिजों की शिक्षा के द्वारा जन-जन के मन में धर्म-बिछोह, देशद्रोह एवं राष्ट्र में झूठ, ठगी, चोरी, नास्तिकता, अश्रद्धा उत्पन्न कर दी तो इधर वैष्णवों ने भक्तजनों को वासनामय बनाया । उन्होनें महाभारत के वीर कर्मयोगी नीतिमान कृष्ण को (भागवतपुराण १०-२९-४५-४६) रसिक अलंकारप्रिय चंचल प्रवृतियों का भगवान कह कर उपास्य को युगलवेषी

बनाया और आप बने अनुकरणधार - इस प्रकार से आगे को निरन्तर ही विदेशियों का सामयिक हमला होता हुआ। सन् १८०० ईसवीं में पूर्णतः गौरों का सामन्त-रसिककाल स्थापित हुआ।

इसमें एक कारण भोगौलिक परिस्थियाँ भी प्रमुख रूप से बनी रही है-जैसे कि भारत पर जो भी, जब भी कोई बाहरी आक्रमण होते रहे वह प्रायः उत्तरी-दक्षिणी भारत से आरम्भित रहे, जब कि एक दो अन्तिम छौर पूर्वी दिशा से भी हुए। किन्तु उन्होनें धर्मनिष्ठा तथा साम्राज्य स्थापन का ही लक्ष्य मात्र रखा। परन्तु दक्षिणी-उत्तरी हमलावरों का लोहा लेते रहने व उथल-पुथल वातावरण के प्रभाव से उनका जीवन निरन्तर उलझे हुऐ समस्याओं का निपटारा करने का रहा, इसी में लगे रहने से उनमें वीरतापूर्ण नीति की कटु कड़ियों का समावेश होता रहा, यह प्रान्त प्रायः पंजाब से देहली तक कहा जा सकता है और दक्षिणी पश्चिमीय प्रान्त मद्रास से राजस्थान तक जो आक्रमणकारियों से दलित शिकार होते रहने से अबोध रूढ़ि प्रथा का स्थल बना, जो आज तक देखने को मिलता है। यही पूर्वी बंगाल की दिशा में इतना नहीं मिलता यह सब समस्याऐं-परिस्थितियाँ भौगोलिक सम्बन्धी ज्ञान से अटूट्य रही है।

पिछले इतने भूतकालिक ईसवी शताब्दियों का उपद्रव स्वदेशियों के मूर्तिमान शहीदों द्वारा शान्त मूर्त होकर देश को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई, किन्तु अब तक वह अंग्रेजों द्वारा दी गई फैशनवाद की बर्बादी-रूढ़ता और विदेशीय गुलामी का भूत निश्चेष्ट नहीं हो पाया। अपितु **''स्वराज्य के काले नाग उन गोरे सर्पो'' की अपेक्षा अधिक जहरीले साबित हो रहे हैं।**

इस प्रकार अपनी भूलों के कारण आर्य जाति विदेशियों और विध ार्मियों के इन अनुक्रमिक आक्रमणों से पद दलित होकर अपने नैष्ठिक गौरव-ज्ञान को खो बैठी और यही हुआ कि ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दू समाज के मानबिन्दू की पतनकारक प्रथाओं का सूचिकरण प्रारम्भिक ज्ञान।

इस पावन-मनभावन भरतखण्ड में वह भी एक समय था कि आर्य जाति और उसके धर्म का झण्डा विश्वव्यापी फहरान से लहराया जाता था। महाभारत युद्ध से पूर्व पांडवों ने दिग्विजय करते हुए जिन-जिन देशों पर अधिकार-स्थापन किया था। **महाभारत ग्रन्थ** के **सभा पर्व** में उन सब का वर्णन है। प्रथम यात्रा में चीन, तिब्बत, मंगोलिया, परसिया आदि और दूसरी यात्रा में अरब, मिश्र आदि देशों पर अपनी विजय पताका पांडवों ने फहरा कर आर्य राजाओं ने सर्वत्र ही अपना चक्रवर्ती साम्राज्य स्थापन किया था। तात्पर्य यह है कि प्राचीन काल में समस्त संसार में आर्य जाति का साम्राज्य था, अन्य देशों में सब क्षत्रिय राजा राज्य करते थे। उस समय आर्यावर्त के विद्वान ब्राह्मण, साधु लोग भी सब देशों में जाकर सब संसार को आर्य (वैदिक) सभ्यता तथा सनातन धर्म का उपदेश देकर अपने आर्य धर्म पर सब को दृढ़ रखते थे। किन्तु दुर्भाग्यवश जब से आर्य जाति का राज्य अन्यान्य देशों में न रह कर केवल भारत के सीमित क्षेत्र में ही रह गया है।

कुछ समय से ब्राह्मण और साधुओं ने भी अन्य देशों में जाकर धर्मोपदेश देना बन्द कर दिया, तब से ही प्रवासी क्षत्रिय जातियाँ हिन्दू धर्म को त्याग कर अन्य मलेच्छादि धर्म-धारण अर्थात् वैदिक क्रियाओं से रहित भ्रष्ट जीवन होकर म्लेच्छ (अनार्य-दस्यु) का अपभ्रंश शब्दबोधक, फिरकावाद, साम्प्रदायिक वाद, यहूदी, पारसी, इसाई, इस्लाम आदि कहलाने लगी है।

किम्वदन्तियाँ व इतिहास का कथन है कि आज से लगभग डेढ़ हजार वर्ष पूर्व जब कि इस भू भाग पर भारत का शासन समय के विज्ञान से अपरिचित रहने से विदेश (काबुल व अरब) से चल कर केवल सात सौ की सीमित सेना लेकर इस पवित्र भूमि में प्रवेश करने को आगे हुए थे। यद्यपि इससे पूर्व कई बार डाकुओं के आक्रमण आक्रान्त किए गए

किन्तु किसी का भी पांव नहीं जम सका। इस बार लाखों की प्रबल सेना लेकर हिन्द सीमा पर आने के पश्चात् हिन्दू-मुसलमान (आर्य-अनार्यों) में आपसी ठन कर संघर्ष हुआ। परिणाम में शत्रु-सेना ने अपना ह्रास होता देखकर ब्राह्मणों के अंगुल्या निर्देश से कई गायों को आगे करके देश में घुस कर आगे बढ़े। उसमें यहाँ के हिन्दू वीरों ने दयापूर्ण गौ-घात करना पाप-अपराध समझा, जिस दया का परिणाम उस समय के सात सौ करीब गायों की हत्यास्वरूप पाप समझा परन्तु उस समय के बचे-खुचे सात सौ के अनुमानतः मुगलों ने देश में प्रवेश पाकर हिन्दू समाज की नींव को खोखला कर दिया। यदि उस समय उनसे आगे होकर प्रतिष्ठा के भूखे ब्राह्मण पांडेजी नहीं मिलते तो उन विधर्मियों को यहाँ के अहिंसावाद आदि रहस्य का कुछ पता नहीं था। फलस्वरूप उसके बाद देश में अरबों तक गौ पशु-धन काटा गया, जिसे यहाँ लेख करना उचित नहीं होगा। यदि पूर्णतः लिखा जाए तो एक स्वतन्त्र विषय की पुस्तक तैयार हो सकती है। यह है हिन्दुओं की झूठी आडम्बरी, दिखावटी भुलावे की दया, उन्हें आपद्धर्म का ज्ञान नहीं रहने के कारण अब भी नहीं है कि वैरी को जीतने मारने में दया-अहिंसा नहीं लानी चाहिए। अगर उस समय सीमित शतशः गायों की रक्षा नहीं की होती तो आज देश पर यह कलंक नहीं चढ़ता और न रह पाता, अपितु गौ-रक्षा का महत्व बढ़ा होता तथा पौष्टिक पंचगव्य - धी, दूध, दही की अवश्य नदियाँ बही होतीं, हर राज्य में कृष्ण-राज्य का समर्थन, गो-पूजन, धन-धान्य सम्पन्न वासुदेव के बाल-सखाओं के दर्शन अवश्य होते और पौष्टिक सुधामय पदार्थों के प्राप्त होने से इतनी निर्बलता रूप बीमारियाँ, कष्टमय अल्पायु की समस्याओं का समाधान नहीं ढूँढ़ना पड़ता।

जैसे पिछले परिच्छेद में बताया गया है, उसी तरह विदेशियों ने भारत में आकर अपनी हठधर्मी की कट्टरता के बल पर हिन्दू एकता को फूट में डालने का उपाय-प्रयास सोचा गया और वह क्या था ? वह था

शास्त्रों को प्रक्षिप्त रूप देना, जन्म के आधार पर बपौती से जन्म जाति मान कर आपसी फूट का बीज, अवसरवाद, अस्पृश्यता और रूढ़िवाद ढ़र्रे, पृथ्वी में दफनाना, दहेज, सती-प्रथा, नाना तरह के भोज, साथ ही अनाक्षरता, भ्रष्टाचारी का प्रचार शराब, कबाब और बहुपत्नि, वेश्या-गमन का अभ्यास, जिससे समाज के स्तम्भ-व्यक्ति प्रायः निस्तेज बने - सबल शक्ति ज्ञान केन्द्रित न रहें। इसमें पढ़े-लिखे वर्ग के पण्डित पुरुषों द्वारा प्राचीन इष्ट (शुद्ध) साहित्य व्यवस्था में हस्तक्षेप करवाया गया और प्रक्षिप्त स्वार्थ-पूर्ति के श्लोकों का रचनात्मक कार्य जो किया गया - खिताब-गाँव, जागीरी, धन के स्त्रोत आदि का व्यापत प्रलोभन या प्राण-धर्म-नाश का भय अर्थात् उनसे साम, दाम, दण्ड, और भेद की नीतियों से यह काम करवाए गए। जिससे प्रतिदिन हिन्दुओं में फूट व छायादोषादि का उद्भव होता चला और तथाकथित समाजवाद दृढ़ बना। यह जो कुछ हुआ वह सब स्वार्थ-साथी व्यक्तियों की कृपा से ही हुआ। वही अपने को उच्च कहलाने की ईर्षा व सेवावृत्ति से छुटकारा पाकर एक वर्ग विषेश को कुचल कर देश को लुटाने में प्रधान रहे थे। यदि वह किसी बन्धन में या ईर्षा-द्वेष का अनुकरण न करते होते तो आज इतना व्याप्त अनिष्ठ नहीं हो पाता। इसका प्रमाण तर्क की कसौटी व ऐतिहासिक पृष्ठों से सिद्ध होता है।

राजस्थान **प्रान्तस्थ नागौर के अमरसिंह राठौड़ को उनके ही साले ने विरुद्ध होकर मरवाया तभी तो अकबर ने कहा था -'यदि इनमें आपसी फूट नहीं होती तो यह भारत (स्वदेश) का राज्य भी कर सकते'** वस्तुतः वहीं कहावत चरितार्थ हुई जो **'घर का भेदी लंका ढ़ाये'** में यदि विभीषण रावण से अलग नहीं होता तो सोने की लंका मिट्टी में नहीं मिलती, **यही महाराणा प्रताप के भाई शक्तिसिंह ने किया।** प्रतिदिन घृणाजनक प्रतिवाद बढ़े, आपसी फूट का बीजारोपण फलीभूत हुआ, जिससे विदेशी शासकों का बोलबाला सत्तारूढ़ रहता रहा, जिसमें

एक एक वर्ग में हजारों वर्ग (जातियाँ-उपजातियाँ) मानी जाने लगी । प्रत्येक वर्ग अपने को ऊँचा तथा अन्य को नीचा मान कर स्पर्श करना भी नहीं चाहते । इस ईर्ष्या के विपरीत मुगलों में सब से नीच जाति माच्छी, बालेशाही, शैख और ऊँच शैय्यद जातियाँ मिल एक हो कर एक अल्ला-इष्ट, मस्जिद व रोटी-पानी एक साथ व्यवहार करके अपना लेते थे । यह देख कर कई हिन्दु जो अपने वर्णों की जातियों में ऐसा होता घृणा से ऊब गए या दुःखी होते । ऐसे सवर्ण विशेष शूद्र कहे जाने वाले समाज के व्यक्ति खिसिया कर अपने उच्च कहे जाने वाले वर्णों के व्यवहार का निरादरतापूर्ण तिरस्कार करके अन्य धर्मों की शरण को अपना लेते थे ।

उदाहरण :- जब एक को हरिजन, चमार या दुबे आदि मान कर उससे घृणित व्यवहार **'दूर दूर रह'** ऐसे दुष्ट वाक्यों का प्रयोग, छायादोष जन्य विकार माना जाय तो वही मुस्लिम धर्म की धर्माड-शरण में जाकर चोटी-जनेऊ (शिखा-सूत्र) को उड़ा कर सुन्नत-कलमा (लिंगेन्द्रिय की अगली चमड़ी-खतना या कुरान आयत) द्वारा धर्म-परिवर्तित कर आने के पश्चात् उसे हिन्दू समाज उच्च दृष्टि में अपना कर मान्य आदर करते । उनसे फिर कोई छूत नहीं करते, किन्तु चोटी रखने व गौ-भक्ति मानने के अधिकारियों से परहेज । इस प्रकार स्पष्ट यह हुआ कि मुसलमान एवं ईसाई प्रथा को बढ़ावा देने वाले भी हिन्दू समाज के सवर्ण बन्धु ही हैं, क्योंकि समाज के प्रमुखों पर ही जिम्मेवारी लादी जा सकती हैं । वह अपने संघ-शक्ति का विनाश करने में हद से ज्यादा बढ़ रहे हैं । यही कारण है कि धर्मशास्त्रों में ब्राह्मणादि सवर्ण पर दण्ड व्यवस्था का अधिक करना लिखा गया ।

वाह वाह प्यारे ! हिन्दू धर्म के ठेकेदार पुजारियों !! यही है आपका धर्म जो भाई-भाई से दूर रहना और करवा (मिट्टी के सिकोरे का टूंटीदार लोटा) से पानी पीने व जंगल (टट्टी) जाकर वजू करने वाले को घर की

रसोई में भी जाने से रोक नहीं करते । केवल इतना ही नहीं उस अपने भाई हिन्दू की छाया-स्पर्श से भी दोष और मुसलमान के हाथ का छुआ-बनाया गया भोजन या हलाल किया, काटा हुआ बकरे-मुर्गे-भेड़ का माँस आदि खाने में जरा भी हिचकिचाहिट नहीं होती - इधर हिन्दुओं के हाथ का बनाया तो दूर स्पर्श किया हुआ भी भोजन वह लोग नहीं करते, किन्तु धर्म के ठेकेदारों को आर्यधर्म की परख है ना ? यह चरितार्थ हवाला मैं स्वयं राजस्थान भूमि के प्रान्तों में महाजनों, क्षत्रियों आदि में देख चुका हूँ । क्या कोई स्वाभिमानी माता का लाल आर्य-सन्तान का रक्त-बूँद रहते इस प्रकार का अपमान-पतन देखने को तैयार रहेगा ? नहीं ! तब वह क्या करेगा ? उनके विपरीत विपक्ष धर्म में जाकर उन्हीं पूर्व पक्ष का समर्थन पाता हैं, तब अपने प्रतिशोध को सफल मान कर वह सुख का अनुभव करता है ।

इसके प्रमाण यही उपयुक्त उपलब्ध होंगे कि काबुल से आये सीमित संख्या की बजाय आज करोड़ों गुणा शैख, शैय्यद, मुगल, पठान आदि विशेष बढ़े ही हैं । जो उनमें कई जातियों के गौत्र हिन्दू क्षत्रियों व शूद्र कहे जाने वालों में मिलते हैं । जैसे भाटिया, तूहर, तँवर, पंवार, जेशन, सोंलकी, मंगलिया, भाटी, परिहार, वानर, गोमटिया इत्यादि के अपभ्रंशित शब्द पाते है या उनकी उपजातियों के नाम सुनने से ज्ञात होता है कि इनके भी लगभग सम्बन्ध द्विजाति के उच्च कुलों से हैं । जैसे - गार्गेय, आत्रेय, कश्यप, विश्वामित्र, जांगिड़, सूर्यातादि । इसी प्रकार कई राजपूतों की जातियों का भी दिग्दर्शन पाया जाता है । जैस यादव (जाटव), पँवार, भौंसले, त्रिभुवन, सोलंकी, खरे, चौहान, परिहार, राठौड़, भाटी, मधोक (माधव), काल, बर, इणखिया, गायकवाड़, मंगलिया, तुँवर इत्यादि सब राजस्थान, गुजरात, बम्बई आदि प्रान्तों में अस्पृश्य कहे जाने वालों में से मिलते हैं । तो क्या हमें यह

मानने में संकोच होगा ? कि यह किसी भी विशेष कारणवश पतन होकर इधर-उधर मिल गये है, जो बाद में जन्म जाति भेद मानने पर यह स्थिरता रहती गई, किन्तु वस्तुतः एक समाज की सन्तान होना स्तम्भ-भूत हैं ।

अच्छा कुछ भी, कैसे भी, किसी प्रकार से इस कलंक का भाव उत्पन्न हुआ हो, किन्तु इसमें संशय नहीं कि इसका परिणाम केवल आर्य जाति या समाज को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न राष्ट्र के लिए भी महान हानिकर घातक तथा अहितजनक हुआ, जो वैदिक धर्म की माननीय हिन्दू जाति का घोरतम ह्रास है । इन दिये उदाहरणों की पुष्टि भारत की जनगणना सांख्यकी विभाग के आंकड़ों द्वारा समझा या ज्ञात किया जा सकता है कि यदि यह दशा बनी रही तो हिन्दू समाज के सनातन शुद्धार्य धर्म का भविष्य विनाशपूर्ण अन्धकारमय होने में कोई सन्देह नहीं हैं । इस प्रकार से भारतीय वर्ण-व्यवस्था का विवेचन करने से पूर्णतः प्रतीत होता है कि पहले जन्म से शूद्र वर्ण की मान्यता हुई, तदुपरान्त कर्मविहीन व्यक्ति उच्च वर्णों में जाने लगें और अन्त में पूर्ण हिन्दू समाज असुरक्षित और पतनोन्मुख हो गया ।

जन-गणना के तुलनात्मक आंकड़े

पाठकों ! पिछले पृष्ठों को पढ़ने से शायद आप लेखक को करोंदने लग गये होंगे, क्योंकि कटु सत्य सदैव खरा होने से अप्रिय लगता हैं, तो लीजिए जरा भारतीय जन-गणना के आंकड़ों को भी देखिए - जिस से आप को सत्य-सत्य ही है का अस्तित्व भान-ज्ञान हो - जहाँ पर सन् १८८१ की कुल आबादी में हिन्दू ७४ प्रतिशत थे और सन् १९११ में ६९ प्रतिशत तथा सन् १९२१ में ६८ प्रतिशत अर्थात् प्रति जन-गणना में ५ व १ प्रतिशतक घटती ही रही हैं । तुलनामय तालिका आंकड़ें :-

(हिन्दू धर्म रहस्य से उद्धृत)

देष का धार्मिक ताना-बाना

	हिन्दु	मुस्लिम	सिख	ईसाई	बौद्ध	जैन	अन्य
कुल जनसंख्या (लाख में)	८२७	१३८	१९	२४	७.९	४.२	६.६
कुल जनसंख्या का प्रतिशत	८०.५	१३.४	१.९	२.३	०.८	०.४	०.६
१९९१-२००१ में वृद्धि दर	२०.४	३६	१८.२	२२.६	३५.३	२६	१०३.१

जनगणना मय तालिका से तुलना (प्रथम)

सन्	१९११	१९२१	
हिन्दू	२१,७३,३७,९४३	२१,६२,६०,६२०	घटे १०,७७.३२३
मुसलमान	६,६६,४७,२९९	६,८७,३५,२३३	बढ़े २०,८७.९३४
क्रिश्चियन	३८,७६,२०३	४७,५४,०६४	बढ़े ८,७७,८६१

तुलनात्मक तालिका (द्वितीय)

आसाम प्रान्त में मुस्लिम जन संख्या का चढ़ाव-उतार दृश्य

सन्	मुस्लिम जनसंख्या	प्रतिशत वृद्धि
१९११	५,२१,४७१	(मूल रूप)
१९२१	७,६७,७७	४७ प्रतिशत
१९३१	११,५२,२८४	५० प्रतिशत
१९५१	१९,९४,८५५	७३ प्रतिशत
१९६१	२७,६५,५२०	७८.५ प्रतिशत

– साप्ताहिक "साक्षी" नई दिल्ली, रविवार २९-०३-१९९४ से

मुसलमानों की सब तबलीगी अनजुमनों ने तीन साल के अन्दर एक लाख हिन्दुओं को मुसलमान किया ।

– रिसाला दरवेश, १५ मई १९२५ से उद्धृत

तथा - मद्रास के एक पादरी लाट ने लिखा था कि "एक हफ्ते में दो हजार हिन्दुओं को बपतिस्मा से ईसाई बनाते हैं ।"

- मिलाप तथा भारतमित्र २३ जुलाई १९२५ से

इस प्रकार से बढ़ती देश में खतरे की घण्टी-नाद के प्रेरक धर्मध्वजी रूढ़िचुस्त तथाकथित द्विजाति (सवर्ण) ही हैं, जिसके कारण ही यह प्रत्यक्ष के उदाहरण प्रस्तुत पेश आते हैं ।

हिन्दू समाज सावधान !

विश्व के सर्व धर्मों से उत्तम हिन्दू धर्म गौरव का प्रांगण हैं । सब प्राणियों का हित चाहते हुए संसार में पूर्वातिपूर्व इस आर्य जाति ही ने सर्व प्रथम सभ्यता के प्रकाश की किरण को पाकर प्रत्येक दिशा के विशाल प्रांगण में ज्ञान-ज्योति का विकास किया था । हिन्दुओं के ही प्रामाणिक व प्राचीन इतिहास-मान्य वेद ग्रन्थों के आधार पर अन्य यहूदी, ईसाई, इस्लाम, बौद्धों आदिकों के मत विकसित हुए, जिसकी तुलनामय सिद्धि लिखने में एक स्वतन्त्र साहित्य की आवश्यकता है, इस भय के कारण ही यहाँ केवल इतना लिखना प्राप्य होगा ।

इस प्रकार एक प्राचीन गौरवशाली सभ्य जाति का शनैः-शनै नाश होना विश्व तथा मनुष्यता के मानव इतिहास में एक महान शोकप्रद घटना होगी । इसका मूल कारण अस्पृश्यता ही है । हम जिन्हें अछूत, अन्त्यज, शूद्र, चाण्डाल इत्यादि मान कर हिन्दू जनता कुत्ते बिल्लयों से भी बुरा शोषित व्यवहार के बर्ताव करते हैं । दक्षिण भारत व राजस्थानादि प्रान्तों में जो समानाधिकारों से वंचित रखते व घृणा करते हैं - वही लोग ईसाइयों, पादरियों के चंगुल में फँस जाते हैं और जिन्होनें आजीवन में ईसा, मूसा, यशु, हजरत मोहम्मद के नाम तक को नहीं जाना था वहीं उन धर्मों की शरण लेते हैं । उपरोक्त आंकड़ों द्वारा ज्ञात होता है कि पिछले वर्षों में

क्रमशः हिन्दू घटते ही गये हैं, वैसे अब भी घटते जाते हैं – विपरीत जब कि दूसरे धर्म-मतान्तर बढ़ते जाते है । इस रफ्तार को देखते हुए एक दिन हिन्दू जाति के हित चिन्तकों को चिंतित ही नहीं अपितु पश्चाताप के साथ साथ अस्तित्वविहीन होकर खून के आँसू बहाने पड़ेंगे ।

हिन्दू वीरों ! क्या यह अपनी मूर्खता नहीं हैं ? जब कि एक व्यक्ति राम कृष्ण या अन्य हिन्दू देवी-देवताओं को मानने तथा गौ-रक्षक, चोटी वालों को अछूत कह कर तिरस्कारपूर्ण घृणाजनक व्यवहार करके दुतकार देते हैं और वहीं जब सनातन धर्म को तिलांजलि देकर अपने से मिलता है तो हम इस्लाम या ईसाई के रूप में उससे हाथ मिला कर प्रेम करते हैं । यह है पतन-द्वार, देश-द्रोह, समाजघातक आत्म-हनन प्रथा का दर्शन । इसका परिणाम प्रत्यक्ष है कि इस्लाम-वृद्धि से हिन्दू जाति का पतन होकर देश का विभाजन रूपांग पाकिस्तान [1] पड़ौसी होने पर भी आज विद्रोह-दृष्टि से ताक लगा रहा हैं और उसके ही इशारों पर अन्य चीनी चूहे नाच रहे हैं । इतने महा भूचाल झंझावात के होने पर भी हमारी चाल वहीं टकटकीपूर्ण सदियों पूर्व की रूढ़ता से चल रहीं है । हम वही मानते है, जाति-छूत, अस्पृश्यता, शोषित वर्ग को छोटे ।

प्यारे भारतियों ! अपनाओं इन्हें और प्यार करो, इनमें अपवित्रता, मद्य-मांसादि दुर्व्यसन-गर्द सेन के संस्कार जो बुरे दोष हों, उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना और प्रेम-बर्ताव से अपनाना । उन्हें ईश्वर-भजन, वेद-मंत्रों का अनुष्ठान करने के लिए प्रेरित करें और अधिकार दें । ऐसा करने

---

१. इसका परिणाम पिछले सन् १९६२ में चीन ने, १९६५ में पाकिस्तान के आक्रमण से तथा १९७१ के आक्रमण काण्ड विकट और क्रूरतापूर्ण की परिस्थिति, आतंकवाद के छद्मयुद्ध । जो भारतीय जनता से छिपा हुआ नहीं है, भोगन पड़ा अर्थात् ताशकन्द समझौते का मूल कारण बना, जिस क्षति की पूर्ति जन-जन के हृदय की खटक तथा धर्ममूर्ति स्व० श्री लालबहादुर शास्त्री के निधन की पृष्ठभूमि से वंचित नहीं ।

से निश्चय ही प्रेमपूर्वक कुछ वर्षों में ही भारतीय समाज का अस्पृश्यता रोग उठ जायेगा, अगर नहीं तो आज इनकी भारत में बहु संख्या ८ करोड़ के लगभग से कम नहीं। जो इस भारी बुराई को दूर किये बिना हिन्दू समाज का भविष्य घोर संकटमय प्रतीत हो रहा है। जो समाज अपने ही अंग को या परको स्वयं काटने पर ताल कर दूर फेंक दे वह सुखपूर्वक देर तक कैसे रह सकता है। जो अपने ही भाईयों को सदा के लिए दासता के बन्धन में जकड़ रखने में लज्जा नहीं खाता, वह किस मुख से भारत के स्वराज्य का नाम लेकर गौरव अनुभव कर सकेगा ?

उदाहरणार्थ - आज १९६१ की जन-गणना के आधार पर विराट भारत के एक प्रान्त राजस्थान में अनुसूचित जाति जन-जाति की जन संख्या को देखते हुए ज्ञात होगा -

१. उदयपुर जिले में	४४१७१०	१४. पाली जिले में	३८२१८
२. बांसवाड़ा जिले में	२९७६०	१५. बाड़मेर जिले में	३४८८३
३. डूंगरपुर जिले में	२४४७४२	१६. भरतपुर जिले में	३२६२७
४. जयपुर जिले में	२१८५६९	१७. सीकर जिले में	२०३६९
५. सवाई माधोपुर जिले में	२०९६३१	१८. जोधपुर जिले में	१८३२८
६. चित्तौड़ जिले में	१२९६४५	१९. अजमेर जिले में	१५५०७
७. कोटा जिले में	१२४५५४	२०. झुंझनू जिले में	११४९५
८. भीलवाड़ा जिले में	८१२२६	२१. झालावाड़ जिले में	६५१२
९. सिरोही जिले में	७४०८९	२२. श्रीगंगानगर जिले में	२२०८
१०. बून्दी जिले में	५९९७३	२३. जैसलमेर जिले में	४५६६
११. अलवर जिले में	६८४५४	२४. चूरू जिले में	३२६२
१२. टोंक जिले में	५७६९९	२५. नागौर जिले में	२८७९
१३. जालौर जिले में	४४१२८	२६. बीकानेर जिले में	१०३४
		कुल महायोग	२३,०९,४४७

(आदिम जाति सेवक संघ जयपुर कार्यालय से उद्धृत आंकड़े)

कसौटी द्वारा तारतम्य निष्कर्ष यह होगा कि जिस स्थान में अनुमान तथा घोषित निर्णय यदि लिया जाय तो -

राजस्थान की सन् १९९१ में जन संख्या	२०१,४५,६०६
जिसमें अनुसूचित जनजाति पिछड़ा वर्ग	२३०,९४,४७
पारसी, यहूदी, ईसाई, मुसलमान आदि अन्य धर्मी	१३६,१६४,८५
हिन्दूत्व के अभिमानी लाल-सवर्ण-जात्य	३६,१९६,७४

जहाँ पर ६ प्रतिशत हिन्दू रह जाते हैं, वहाँ क्यों अपने ही हिन्दू अंग ५ प्रतिशत को अपने में मिलालें जो मिल कर ११ प्रतिशत होने पर अन्य प्रस्फुटित धर्मों के सामने दृढ़ता से जी सकते हैं। अन्यथा न्याय चाहता है शूद्र वर्ग। **जहाँ अल्प सांख्यकी हिन्दू सवर्ण ३९,१९,६७४ अपना अधिकार चाहता हैं, वहाँ शूद्र वर्ग २३,०९,४४७ भी अपना सत्वपन स्वतन्त्र अधिकार चाहता है। यदि उनसे वह वंचित रहे तो एक दिन सम्भवतया वह अन्य धर्मों से साँठ-गाँठ न करलें। अपने अस्तित्व सत्व-नाश के साथ-साथ गौरव गर्वी रूढ़ि हिन्दू वर्ग को भी नाकों चने चबा देंगे।**

हिन्दुत्व विरोधी आवाज, बोद्धधर्म अनुयायी, जैन, ईसाई, मुस्लिम आदि सब लोग धुँआधार प्रचार में लगे हैं। इधर सनातन धर्म के ठेकेदार पण्डित, संत कथावाचक, व्याख्याता अपनी रोजी-रोटी सेकने में लगे हैं, जिन्हें सनातन धर्म रक्षा की कोई चिन्ता नहीं हैं। आज देश की और समाज की परिस्थितियाँ पूर्णतः बदल रही हैं। धर्म निरपेक्षवाद या वोट बैंक के सत्तान्ध बहुसंख्यक होने पर भी अल्पसंख्यक मान कर सुख सुविधाऐं झोली भर-भर कर उन की गोट में उंडेलते हैं।

अतः धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि प्रत्येक दृष्टि में समाज-संरक्षण के लिए अस्पृश्यता के कलंक को दूर करना हमारा कर्त्तव्य है। पूर्व कई शताब्दियों से अच्छी सत्संगति के प्रभावहीन तथा धार्मिक

शिक्षा के नितान्त अभाव से जो दुर्व्यसन इन पददलितों की विविध जातियों के अन्दर आए हुए है, उसके लिए भी उच्च जात्याभिमानी ब्राह्मण व साधु-सन्त ही जिम्मेदार हैं । यदि दलितोद्धार का पर्याप्त कार्य सम्पन्न नहीं हुआ तो हमारे समाज की अपेक्षा एक दिन अधिक विपक्ष दृढ़ संघ बन जायेगा अथवा मुसलमान और ईसाई उन्हें हड़प कर जायेंगे । पीछे के सांख्यिकी आंकड़ों को देख कर आपको ज्ञात हो गया होगा कि यह हिन्दू जाति का पतन जन्म से जाति-वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों के मानने से हुआ । अतः इनका निर्णय भेदरहित होना चाहिए, जिससे कि राष्ट्र सर्वोन्नत प्रतिभाशाली बन सके ।

तृतीय परिच्छेद

भारत में साधु और ब्राह्मण

हम पिछले परिच्छेदों में हिन्दू (आर्य) सनातन समाज के पतन की रूपरेखा की दृष्टि को बता आये हैं । उसमें जो मूल तत्व पाया, उसका कारण खोज करना इस परिच्छेद का ध्येय हैं ।

प्राचीन काल के सतयुग, त्रेतायुग, द्वापुरयुगों तक हमारे देश, जाति तथा धर्म की उन्नति का भार प्रायः गुण-लक्षणीय कर्मशील ब्राह्मणों तथा साधुओं (जिनके स्वरूप का वर्णन हम आगे करेंगे) पर ही निर्भर था, वही भार आज उनकी अपेक्षा जाति व देश पर आ गिरा ! परिणाम क्या हो रहा है ? पूर्व के इतिहास से ज्ञात होता है कि देश का नीति-सञ्चालन कर्मगत ऋषियों व कर्त्तव्यशील ब्राह्मणों के हाथ में ही रहता था, जिससे वर्ण-व्यवस्था कर्म-भेद से रहते हुए भी एक ही समाज के स्पर्श्य अंग अर्थात् छुआछूत का अभाव ही था । मनुष्य ब्रह्मचर्य, गृहस्थ से क्रमशः निवृति पाकर वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रमों में रह कर जन-कल्याण के

कार्य करते और तो क्या प्राचीन ऋषि-प्रणालीय-वेदोक्त शिक्षा भी उज्ज्वल कर्त्तव्य रूप से होती थी ।

राम के वंश परम्परा का राज्य-सूत्र वशिष्ठ के कर में तथा पाण्डवों आदि के समय व्यास, विदुर, भीष्म इत्यादि महात्मा पुरूषों के हस्तगत और हाल ही के नूतन इतिहास के वर्तित भूतकालिक चन्द्रगुप्त मौर्य्य का शासन महाराज नीति-विशारद चाण्क्य के हाथों में रहने के कारण ही बड़ी से बड़ी प्रबल शत्रु-सेना सहित सैल्यूकस को पराजित करके जन-पालन किया । समर्थ गुरु रामदास से शिवाजी, गोरखनाथ से चित्तौड़ सेनापति बापा प्रभृति का सत्ता, ज्ञान, बल, शौर्य्यगुण चमका, इस तरह के धर्म-प्रयाण ग्रन्थों में सर्वसिद्ध प्रमाणिक उदाहरण हैं । देवराज इन्द्र का शासन गुरुराज बृहस्पतिजी के तथा दैत्यों का शासन- सञ्चालन ऋषि शुक्राचार्य के हाथों में था । ऐसे सैकड़ों प्रमाण प्राप्त होते हैं, परन्तु हम उन इतिहासों की भावनागम्य शैली को समझ नहीं रहे हैं ।

इसी प्रकार अब भी जब तक देश का स्वराज्य साधु, ब्राह्मण कर्णधारों के हाथ में नहीं होगा, तब तक यह भ्रष्टतापूर्ण नेताशाही सामन्तवाद एवं अभिनेताओं के शोषण का स्वार्थ नहीं मिट सकेगा और न हीं स्वराजय का स्वप्न साकार होगा, अस्पृश्यता का निवारण व निष्फल मानवोचित वर्ण-व्यवस्था का समाज नहीं बन सकेगा, किन्तु कैसे ब्राह्मण ? और कैसे साधु होने चाहिए ? आज के जैसे पेट-पालक और मान्यता के भूखे नहीं अपितु विद्वान और सन्तोषी, कर्त्तव्यशील धर्म-तत्पर ब्राह्मण, साधु, देव-शिक्षक वर्ग की आवश्यकता हैं ।

भारत में साधु महापुरूषों द्वारा प्रचलित गुरू परम्परा अनेक मत-मतान्तरों को जन्म देने वाली सिद्ध हुई । जिस किसी का भी बस चला वह गुरु बन गया और अपनी शिष्य-परम्परा चला बैठे, उस में

शिष्यों के लिए गुरु-वचन ब्रह्मवाक्य के तुल्य हो गये ।

आज प्राचीन नियमों को अनदेखा करके जगद्गुरु, मठाधीश, महन्त आदि वरिष्ठ पदों पर उत्तराधिकारी चयन पद्धति को छोड़कर हर एक अपनी मण्डली जोड़कर कई पदों की कल्पना कर रहे है - विश्वगुरु, ब्रह्माण्डगुरु, धर्मगुरु, जगद्गुरु जनों की वर्षाती मेढ़कों की भांति बाढ़ आ गई हैं । श्री मद्भागवत महापुराण, रामचरितमानस इत्यादि धर्मग्रन्थों के माध्यम कथावाचन को कमाई के साधन, आयस्त्रोत के साथ प्रसिद्धि संजोने में ही साधु एवं ब्राह्मण अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री मान रहे हैं । भारतीय धर्म संसद सभा का इन पर कोई प्रभाव नहीं चलता । साधु वेष में बढ़ते पाखण्ड को रोकने में भारतीय विद्वत्परिषद् या भारत साधु समाज भी सक्षम नहीं हैं । गुरु परम्पराओं में धर्म साम्प्रदायिक नियमों की खुली अवहेलना हो रही हैं । साधु वेष में विविध नशों, व्यशनों, शराब, माँस, गाँजा, भाँग, अफीम, चरस इत्यादि कुसंग मार्गों से समाज का पतन करने में कई पाखण्ड मार्ग में लग रहे हैं । जिन्हें न सरकार रोकने का प्रयास करती है और न सामाजिक संस्थाऐं ही काम करती हैं । आज का भारतीय समाज ईश्वर के भरोसे पर अद्रश्य शक्ति के न्याय पर ही चल रहा हैं अर्थात् आज के वेष वंचक साधुओं को शिक्षा, सद्कर्त्तव्य, सदाचरण-सादगी के कर्त्तव्यशील समाज की परवाह नहीं हैं । भारतीय साधुओं को सतत सावधान रह कर समाज का सन्मार्ग दर्शन करना चाहिए ।

मुसाई, ईसाई और इस्लाम यहूदी, पारसी एवं बौद्धधर्म भी इसी गुरु-परम्परा की उपज है । इन मतों में एक अन्य विशेषता उत्पन्न हुई जो भारत के मत-मतान्तरों में नहीं पाई जाती, वह विशेषता यह है कि इन विदेशीय मतों के अनुसार अपने गुरु जिसे पैगम्बर मानते हैं, उन के उपरान्त कोई अन्य पैगम्बर नहीं हो सकता, जो कुछ अधिक बता सके । उनका

गुरु संसार और परमात्मा के विषय में जो कुछ बता गया है, वह अन्तिम बात है। यहूदियों के लिए हजरत मूसा, ईसाइयों के लिए हजरत ईसा और मुसलमानों के लिए हजरत मोहम्मद का ज्ञान पूर्ण और अन्तिम हैं। हिन्दू परम्परा में राम-भक्ति व कृष्ण-भक्ति, सूफी काव्य धाराऐं समय की गतियाँ ले कर चल पड़ीं। इसी समय के साथ कुछ गुरुओं ने संसार को मिथ्या, कर्म को मोक्ष में बाधक बताया, इसका परिणाम हुआ कि देश (राष्ट्र) और समाज व्यक्ति के समक्ष गौण हो गये और जातीय संगठन ढ़ीला पड़ गया। समाज और राष्ट्र में स्वरक्षा की सामूहिक भावना विलुप्त हो गई। कुछ गुरुओं ने अहिंसा को परम धर्म मान लिया या भगवान पर अगाध निष्ठा और भरोसा उत्पन्न किया, जिसके परिणाम में देश की सुरक्षा दुर्बल पड़ गई और अपनी ओर से प्रयास करना भी व्यर्थ मान लिया गया।

आज हिन्दू धर्म के सन्त, महात्मा, आचार्य, गुरु, गोसाई, पण्डे, पण्डित, ब्राह्मण और पुजारी, भारत में बहुसंख्यक से बसते हैं अर्थात् लगभग एक करोड़ नब्बे लाख ब्राह्मण वर्ग के सम्बन्धी कहलाने वाले तथा अस्सी लाख के करीब वेषधारी साधु सन्यासी और एक करोड़ के समकक्ष प्रत्येक जाति वर्ग के गरीब, कत्थक, भाट, चारण (बारहठ), तथा बादी, मिरासी इत्यादि गृहस्थी भिखमंगे तन्तु बने हुए अपना पेट पालते हैं। परन्तु वास्तविक वैदिक सनातन पथ-प्रथा के धर्म का प्रचार-पालन नहीं करते हैं। प्राचीन काल में हमारे भारत में प्रचार कार्य प्रायः साधु-महात्माओं (सन्यासी) और ब्राह्मणों के जिम्मे ही था, उनका कर्त्तव्य था कि स्वयं कसौटीपूर्ण गुरुकुल में शास्त्रों का अध्ययन-पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके उसे जनता के कानों तक घर-घर (जनैः-जनैः, गृहै-गृहै) में प्रत्येक मानव के श्रवण विचारों में ज्ञान पहुँचाना व कराना था, किन्तु आजकल तो साधु-ब्राह्मणों का ज्ञान सर्वथा विपरीत केवल उदरपूर्ति एवं जाति-पंगत के अहं में ही

रह गया है, जनता चाहे रसातल में जाये या भट्टी में, किन्तु कोई परवाह नहीं। अपनी निश्चेष्ट क्रिया-भक्ति को कहना ही रह गया और इस दिशा में निरीह राजनेता भी निकम्मे साबित हो रहे है।

वस्तुतः अपनी स्वार्थसिद्धि हेतु ही प्रयास मात्र कथा-कीर्तन का काव्य-छन्दालंकार पढ़ना-कहना ही वाचकतापूर्ण साधनशून्यता के उपदेश तोते की रटन-प्रकार से सुना देने या पुराने सन्तों के भजन-वाणी पद्यों को गाकर सुना देना अथवा ब्रह्म-ज्ञान (वेदान्त) की लम्बी-चौड़ी क्रियाविहीन निष्क्रियता पूर्ण ज्ञान की बातें झाड़ देते हैं। किन्तु कृत्रिमता कहाँ तक रह सकेगी। यथा -

कबीर मेरी जाति को, सब कोउ हँसने हार।
बलिहारी वा दास की, जिन भजियो सिरजणहार ॥१॥
कामी क्रोधी लालची, तिन ते भक्ति न होय।
भक्ति करे सन्त शूरमा, जाति वर्ण कुल खोय ॥२॥
जब तक नाता जाति का, तब तक भक्ति न होय।
नाता तोड़े हरि भजे, भक्त कहावे सोय ॥३॥
बात करे ब्रह्मज्ञान की, चले जीव की चाल।
जम्बुक भूलो परसराम, पहन सिंह की खाल ॥४॥

बहुधा राजनीति-धर्मनीति को भेद पक्ष करके सामाजिक कार्यभार से दूर रह कर त्याग की डिम-डिमी बातों से गुजर करते हैं, परन्तु प्राचीन ऋषि-प्रणाली को भूल करके आज कई नशों-व्यसनों (भाँग, गांजा, चरस, चाय आदि) के सट्टे लगा रहे है। कई अपने-अपने उद्योग-प्रचार करते हुए जातिवाद की नींव दृढ़ कर रहे हैं। इस प्रकार से साम्प्रदायिक प्रथा को बढ़ावा देते हुए *"हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और"* व *"पण्डित जी के बिन्ताग"* या *"औरों को प्रमोद बतावें, गुरुजी बैंगुन खावे"* के सदृश्य ही इन साधु, ब्राह्मणों का रंग-ढ़ंग ऐशो आराम में माया संग्रह

पूर्णादि कार्यों में लग रहा हैं । घृष्ट ! क्या यही है साधुपन या ब्रह्मज्ञान की निष्ठापूर्ण कैवल्य पद अथवा ब्राह्मणपन का जतीय अहं ? कई अपने पन्थ-सम्प्रदाय के झगड़े में, तो कई मुख से व्यापक राम या सच्चिदानन्द कथन करते हुए भी जातीयता मद से पूर्ण निम्नस्तर साधुओं से जाति-भेद मान कर घृणा करते हैं । धृष्ट ! ऐसी साधुता जैसे कि नचिकेतोपदेश उपनिषद् वाक्य में कहा है -

'अविद्यायामन्तरे वर्तमानः स्वयं धीराः पण्डित मन्य मानाः ।
दन्द्रभ्यमाणाः परियन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ।।'

अविद्या में विचरण करने वाले अपने को धीर तथा विद्वान मानते हैं, यह मूढ़ पुरुष अन्धे द्वारा अन्धे को ले जाये गये के मार्ग के समान अनेक कुटिल गतियों में पड़े हुए भटकते रहते है ।

'नीच नीच सब तर गये, सन्त चरण लव लीन ।
जाति के अभिमान से, डूबे बहुत कुलीन ।।१।।

केवल इतना ही नहीं अपितु सब अपने अपने सम्प्रदाय के झमेलों में निजी स्वार्थ-सिद्धि में लग रहे हैं, किन्तु -

'पन्थ पन्थ की खैंचता, पन्थ पन्थ के मांहि ।
बिना पन्थ इक धाम है, जहँ पन्थी पहुँचे नाहिं ।। - हरिसागर

कई कुछ पढ़ते-लिखते भी हैं तो कुछ नाम मात्र कार्य केवल संकीर्ण उद्देश्य से ही करते हैं। कई अनपढ़ रह कर पूर्वजों के नाम पर या इधर-उधर से द्रव्य जोड़ कर किसी कवि या पढ़े-लिखे से अपने नाम की विख्याति हेतु धन देकर लोभ-प्रमाद-वश गद्य-पद्य बनवा लेते हैं या अन्य प्रकार से उद्योग करते है। कैसे भी हो हमारी हिन्दू जनता की अपेक्षा इस स्वार्थपूर्णता ने ही हमारे देश-जाति और वास्तविक वेदोक्त धर्म-समाज का सत्यानाश किया है। कतिपय व्यापार-कृषि या नौकरी पेशा करके खाते हैं, साथ ही प्रायः अधिकांश

हिन्दू समाज के अपने अपने बनाये हुए भिन्न-भिन्न जातीय वर्गों के मंदिरों पर ही गुलछर्रे उड़ाते हैं। यदि कुछ उपकारपूर्ण दृढ़ता से सत्यधर्म का प्रचार कार्य करते तो आज हिन्दू समाज की ऐसी दुर्दशा नहिं होती।

हाँ कुछ वीर-रत्न पूज्यपाद आधुनिक गति काल से भी है जो कुछ कर रहे है या कुछ समय पूर्व श्री रामानन्दाचार्य, श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ एवं महर्षि दयानन्द, तिलक-गाँधी आदि जैसे कई सन्त-प्रचारक-रक्षक हुए भी और उनके द्वारा वाणी या शारीरिक श्रम-विद्वता से जो कुछ हुआ, वस्तुतः हिन्दू जनता उनकी आभारी हैं, किन्तु साथ ही खेद की बात है कि हम हिन्दू भी ऐसे महापुरूष महात्माओं की शिक्षा पर कम ही ध्यान देते हैं। हम उनके महत्व को नहीं समझ कर कोई शिक्षा-दीक्षा धारण नहीं करते हैं। उपेक्षात्मक यही है कि हमारे हृदयों पर सदियों से जमा हुआ गर्द-संस्कार अज्ञान रूप ढ़ेर पड़ा हैं, जिससे सत्य-प्रकाश के दर्शन सहज में नहीं हो रहा है। प्यारे हिन्दुओं ! यह सदियों की निन्द्रा-तन्द्रा छोड़ो ! जागो !! अब सवेरा है !!! अन्यथा एक दिन पश्चाताप ही नहीं अपितु रोना भी दुस्तर होगा।

आजकल कलियुग के प्रभाव से यथार्थ गुरूओं की प्राप्ति होना बहुत कठिन है। बिना योग्य गुरू के शिष्य के कल्याण में संदेह ही हैं। हो सकता है कि शिष्य अपनी उत्कृष्ट भावना से एक साधारण व्यक्ति में भी जगद्गुरू या ईश्वर को प्रकट कर सकता हैं, परन्तु ऐसे आदर्श उदाहरण बहुत कम देखे जाते है। भक्ति एवं श्रद्धा का होना बहुत कुछ गुरु-योग्यता पर निर्भर होता है। **'यह गुण साधन ते नहिं होई, राम कृपा-पावहि कोई कोई''** आन्तरिक प्रेरणा की आवश्यकता है। अतः गुरु बनने से पहले गुरू को अपनों का भी शान्त चित्त से निरीक्षण कर लेना चाहिए। आध्यात्मिक अभ्युदय के लिए ही गुरु शिष्य का दिव्य सम्बन्ध है। सांसारिक

वासनाओं का लेश मात्र भी प्रवेश इस की दिव्यता को नष्ट कर देता है। इस से दोनों का पतन अवश्यंभावी है। यदि मेरे कहने को दुःसाहस मात्र नहीं कहा जावे तो कहना होगा कि आजकल की गुरू-शिष्य प्रणाली उस परमादर्श भाव की बहुत कुछ अंशों में विकृति मात्र ही रह गई है। वैराग्य व भक्ति का अभाव होने से सांसारिक पदार्थों को प्राप्त करने में गुरु-शिष्य की सतत् प्रतिद्वन्द्विता, हमेशा का साहचर्य होने से श्रद्धा का अभाव एवं बिना विचारे ही अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए गुरुओं द्वारा हर किसी को शास्त्रीय विधि रहित दीक्षा एवं शिष्यों का भी केवल स्वार्थ-साधन के लिए हर किसी को गुरु बनाना आदि इस प्राकृत विकृति के प्रमुख कारण है। आचार्योपदिष्ट गुरू-शिष्य-सम्प्रदाय केवल आध्यात्मिक अभ्युदय के लिए ही है। – *(आचार्य चरितामृत)*

निकट-तीर्थ, गुरु पास में, घर द्वारे जो देव।
सेव न होवे ताहि की, सत भाख सहदेव ॥

मैं अपने साधु वर्ग और ब्राह्मण बन्धुओं से क्षमापूर्ण कृपा चाहता हूँ। यह कोई मेरा किसी पर आक्षेप नहीं हैं, किन्तु उनके समक्ष हिन्दू समाज का भीषण पतनमय ह्रास होता हुआ देख कर कुछ कठोर शब्दों के प्रयोग से अपने कर्त्तव्य की ओर ध्यान दिलाते हैं कि इस समय समाज की रक्षा और देश-धर्म का उद्धार आप ही कर सकते है। साधु-ब्राह्मणों के अग्रसर हुए बिना कुछ नहीं होगा। हमारे धर्म पर जब-जब कभी कुछ आघात पहुँचा - तब-तब साधु-ऋषि-मुनि-गणों ने ही उसकी रक्षा की हैं, इस बात का इतिहास साक्षी है। जहाँ जिस समाज में हम गुरू-देवता बन कर पूजा-प्रतिष्ठा, धन-मान आदि महत्व पाते हैं, उस हिन्दू समाज का पतन देख कर रक्षा-जागृति-उन्नति न करना, यह कितने बड़े पाप की लज्जामय द्योतना होगी, जो किसी भर्त्शना से कम नहीं हैं।

आज के समय इस्लाम और ईसाई लोग अपने धर्म का प्रचार तीव्रगति से करते हुए उनके द्वारा हजारों लाखों की संख्या में मुसलमान तथा क्रिश्चियन बनाए जा रहे हैं। हजारों मुल्ला-मौलवी व आम व्यक्ति अपने प्रचार में लगे हुए हैं। इसी प्रकार ईसाई ७२०८ प्रचारक तथा १८७७६ पादरी और ४८०४४ शिक्षक प्रचार करते थे, उन्हें आज बढ़ा कर किस स्तर पर लाया जा रहा हैं - जिसके पिछले ४५ वर्षों से निरन्तर बढ़ते हुए आज इस स्थिति में है। देखिए -

११४ मिशनरी टेण्ट (बाहरी देशों में भेजे जाकर प्रचार करते है) १७३१३ पादरी और प्रचारक, १८६८४ संस्थाओं के कार्यकर्त्ता, ६७४६ गिरीजाघर, १६५८५ सब्बत स्कूल, ३१४१ डोरकस (हितकारिणी सभाऐं चलाते हैं), २६ स्वस्थ भोजन संस्थाऐं, ३६४२ कॉलेज और स्कूल, ६१७७ शिक्षक और १६७ अस्पताल और स्वास्थ्य गृह, ३७६ उच्च शिक्षक डॉक्टर, २३३६ नर्स (परिचारिकाऐं), ७६३८ औषधि सम्बन्धी कार्यकर्त्ता, ८३ छापेखाने, १७४६ कर्मचारी, २६४ पत्र-पत्रिकाऐं, वार्षिक बिक्री ७७,७६,६,४६४ रुपये, पिछले वर्षों में ८०,००,००,००० करोड़ रूपये से अधिक का साहित्य वितरण किया। *(बाइबल पाठ्यक्रम ५८, पूना से उद्धृत)*

हिन्दुओं ! देखो !! देखो यह सब आपके भाईयों (अछूत समझे जाने वाले हिन्दूओं) को हड़प करने के साधन हैं। अब आप अपने हिन्दू समाज में धर्मनिरपेक्ष राज्य सरकार के अतिरिक्त कितने मन्दिर, स्कूलें, आचार्य, साधु, औषधालय, हिन्दू समाज के निजी सत्वाधार पर रह कर सब जातियों, वर्गों को समानाधिकार पूजन, शिक्षा, उपदेश, स्वास्थ्य प्राप्त करवाते हो ? आज भारत में मानव-सृष्टि की १८ हजार जातियां है, २३ सौ धर्म (मतमतान्तर) फिरकों के टुकड़े भिन्न-भिन्न जातिवाद में बंटे हुए है। यह सब हिन्दू जाति और सनातन धर्म के उपांग मात्र ही हैं अर्थात्

आर्य (हिन्दू) धर्म के आभास हैं। यही महान् अणु-विष का विस्फोट एक दिन अवश्य आपके अस्तित्व को स्वाहा कर देगा।

हिन्दू भाइयों ! आओं, आज हम एक उपाय आपको जीवनदान का बतायें जो वैदिक शास्त्र का सत्य-घोष है जिससे आपको प्राचीन वास्तविक वेदोक्त धर्म-बल प्राप्त होगा और इस **वीरभोग्या वसुन्धरा** का उपभोग स्वराज्य-कल्याण के रूप में पाकर **'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** हो जायेगा।

प्यारे भाइयों ! उजड़ रहा है सनातन धर्म ! जो केवल अपनी स्वार्थप्रियता का जनक, अज्ञानान्धकारमय अस्पृश्यता को धारण करने से ही, समझे या नहीं ? आप अपने देश को भी संगठित नहीं कर सकते, अपने ही हिन्दू समाज की जड़े उखाड़ रहे हो। अतिरिक्त कभी विदेशों में भी जाकर हिन्दू धर्म का प्रचार करने की तो आशा ही क्या कर सकते होंगे - इस विषय में एक ही भारतीय वीर गुणज्ञ स्वामी विवेकानन्द ने विदेशों में सनातन वैदिक धर्म-दुंदुभी का सिंहनाद से संजीवन मन्त्र फूंका था, जिसके फलस्वरूप आज तक झनक मात्र चलती रही, किन्तु हिन्दू समाज ने ऐसे ही समाजोन्नति के भावुक अवतार की वाणी का हार्दिक सत्कार खुल कर नहीं किया। इसी प्रकार अन्य भी प्रवक्ता-साहित्यकार, महात्मागणों ने कुछ न कुछ करते हुए आदेश दिए भी जैसे कि महात्मा गाँधी, गोपालकृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक तथा सुभाषचन्द्र बोस, डॉ. भीमराव अम्बेडकर आदि ने बहुत कुछ किया, साथ ही परिणामस्वरूप २६ जनवरी, १९५० को **भारतीय संविधान में भी अस्पृश्यता** को घोर अपराध मान कर विचारकों ने इसे समाप्त करने की घोषणा कर दी हैं। यह है तो अति प्रसन्नता की बात किन्तु **"आज की जनता अन्धेरे में त्रस्त्र, अधिकारी (नेता) अय्यासी में मस्त। अफसर मेहरबान तो गदहा पहलवान"** वाली कहावतें अक्षरशः सिद्ध हो रहीं हैं, जिसका प्रतिफल

आज हिन्दू समाज का पतन होकर रसातल की शरण ले रहा हैं।

प्यारे कर्मचारियों ! अधिकारियों !! हिन्दुओं !! सुनो ! यदि आप अपने समाज का उन्नतिमय अस्तित्व चाहते हैं, तो सर्वप्रथम पिछड़े समाज को अपनाओ और गले लगा कर अस्पृश्यता का अन्त कर दो। यह छुआछूत का भूत भगा कर समाज का रोग जड़ से निवारण करके देश, समाज, जाति, मानव-जीवन की उन्नति करने व वैदिक-प्रथा द्वारा अपने प्राचीन स्वरूप को प्राप्त करने में लग जाओं। आओं ! इस के उपाय सुनों।

भारतीय समाज के संगठित होने के उपाय

(१) अछूतों से छाया-दोष, स्पर्श-दोष, दृष्टि दोष, मानसिक घृणोत्पादक विचार या कार्य आदि जहाँ भी जिस प्रान्तीय भेद से भारतीय भू-भाग में माने जाते हों, उन्हें शीघ्रातिशीघ्र अविलम्ब दूर कर दिया जाय, क्योंकि मनुष्य मात्र में कोई अस्पृश्य नहीं है। अभिप्राय यह है कि शरीर, वस्त्र, पवित्रता के अतिरिक्त आचरण-सुधार करना प्रत्येक मानव मात्र का कर्त्तव्य है। नशा, सप्त व्यशन दोषों आदि को त्याग करना हर व्यक्ति का लक्ष्य होना चाहिए। इस मानव-रूप में भेदाऽभेद, ऊँच-नीच व्यवहार, घृणात्मक सब पतन के इशारे हैं। ईश्वर-सृष्टि में कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्ण की पहिचान सींग, पूंछ या ज्ञानेन्द्रिय अथवा कर्मेन्द्रिय की न्यून विशेषता एवं काले-पीले आदि रंगों द्वारा विशेष पहिचान-चिह्न नहीं हैं और रक्त-दूध या मुख से, भग से भिन्न-भिन्न जन्म-द्वार व शरीर-ज्योति, प्राण-इन्द्रिय-तत्व-गुण आदि सृष्टिगत सामग्री का कहीं कोई जातीयता का विधान नहीं किया गया हैं। हाँ, ईश्वरकृत ८४ लाख जीव-योनियाँ ही जातियों से भिन्न-भिन्न हैं, उनमें से मानव मात्र एक जाति है, इसमें कोई अस्पृश्य नहीं अपितु स्पृश्य ही हैं, किन्तु साँप, बिच्छू, ऊँट, घोड़ा, गधा, सिंह,

ऋक्ष, भेड़िया, वानर, ततैया, मच्छर, चूहा, बर्रे, सूअर आदि भिन्नीय हिंसा-प्रवृति की जातियों से दूर रहना चाहिए ।

मानव-संसार में केवल दो जाति ही ईश्वरीय देन की हैं - एक स्त्री, दूसरा पुरुष, बस इतने में ही युक्ति-संगत प्रमाण है । सोचो और देखों- एक ब्राह्मणी चमार के घर में हो और एक चमारिन, भंगिन, हरिजन कन्या क्षत्रिय के साथ तथा एक ब्राह्मण के साथ महाजन की कन्या का विवाह सम्बन्ध करवा के देखिए - इस में कुछ करने की कोई कृत्रिम आवश्यकता नहीं । आजकल तो ऐसे-ऐसे यौन-आकर्षण मय भ्रष्टाचार के राक्षसी-पिशाची कृत्य देखने में आते ही हैं । फिर उनके सन्तति पुत्र-पुत्री लाभ (गर्भ-धारण) संयोग होता है या नहीं ? यदि हाँ तो एक ही जाति मानव हैं, क्योंकि गाय के भैंस और भैंस के गधा, घोड़ा-ऊँट-ऊँटनी या सिंह, गाय पैदा नहीं होते । क्योंकि विषम जात्य (जाति का) वीर्य-संयोग है, यह प्राकृतिक नियम है कि सम जातीय नरनारी संयोग से गर्भाधान होता हैं, विषम से कदापि नहीं । अगर इसी तरह अपने हिन्दुओं के जन्म से वर्ण-विषमता होती तो शारीरिक पहिचान जरूर रह जाती ।

अतः ऐसे विचारों को तर्क की कसौटी पर कस कर शीघ्र ही जन्म-जाति-वर्ण के भेद-भय को दूर करों । यह आपके हिन्दू समाज के पतन का कारण हैं, चारों वर्णों के प्राणी एक ही हिन्दू समाज का रूप हैं । इससे भिन्न इस्लाम, ईसाई, पारसी, यहूदी आदि एक जाति होते हुए भी वर्ण-गुण भिन्नधर्मी हैं, जिनसे बचने के लिए आप अपनी सात्विक पवित्रता में आपसी संगठन रखिए ।

(२) सार्वजनिक कूआ, बावड़ी, तालाब, प्याऊ आदि जलस्थान तथा नाई की दूकान, होटल, औषधालय, शिक्षालय इत्यादि जहाँ-जहाँ पर जो जो द्वार बन्द रखे हैं, जहाँ ईसाई-इस्लाम आदि गैर समाज के लोग

पहुँच कर लाभ उठाते हैं और जो जलाशयों पर कुत्ते, बिल्ली, काग, घोड़े, गधे आदि पशु-पक्षी जल पीते हैं, उन्हीं सर्वसमानाधिकारों को हम अछूत समझ कर समाज के एक वर्ग को वंचित रखें, यह तो अपने ही समाज के साथ अत्याचारपूर्ण घृणित कर्म हैं। यह समानाधिकार **भारतीय संविधान,** भाग ३, मूलाधिकार अनुच्दछेद १५ के द्वारा घोषित किया, वह पालनीय तथा आवश्यक हैं। **(अ) जितने नाई (हजामत करने वाले) चाहे दूकानदार अथवा फेरीदार अपने पैसे (धन्धे) को करने वाले हैं, उन्हें तथा (ब) जितने होटल वाले जो चाय-रोटी नमकीन या स्वीट होम आदि के संचालक कच्चे सीधे वाले व पक्के भोजन, किराणे वाले दुकानदार सज्जन बन्धु हैं, अब उन सबको हिन्दू समाज की लज्जा को बचानें में अग्रसर होकर दलित 'पिछड़े समाज'' के अनुसूचित लोगों को भाई समझ कर अपनाना चाहिए अर्थात् सेवा का लाभ उन्हें भी दों।**

बन्धुओं ! यह निरी धर्म, व्यर्थ, सेवावृति, पुरानी, खातेशाही की बेगार नहीं हैं। यह तुम्हारा धन्धा हैं, जिसे पेट-पूर्त्यार्थ करना पड़ता हैं तो फिर क्या अपने ही समाज के हाथ का पैसा लेकर काम करते लज्जा आती हैं ? पिंट जाएगी एक दिन यह तूती ! कोई नहीं सुनेगा इसे !! तुम अपने ''खद्योत् जैसे- ठठेरे के बिल्ले'' की भाँति कच्चे धर्म के ठेकेदारों ! छिप जाओंगे, जब कि विदेशी अपने भाईयों को हड़प कर लेगें। देखों वह आज भी (पिछले आँकड़ों के अनुसार नगारे-दुंदुभी की चोट से सूर्य के ऊपर श्रावण के घटा-घन बादल बन कर घिर (छा) रहे हैं। अतः ईश्वर-प्रदत्त जल आदि पदार्थों तथा सरकारी-राज्य सेवा सब जाति-धर्म-मानव मात्र के लिए पूर्ण अधिकारयुक्त हैं। उसे ही हम हड़प रहे हैं ? क्या यही आपका धर्म हैं ?

(३) सर्वसाधारण शिक्षालयों में जहाँ पर हमारे बच्चों के साथ अन्य विषम मतान्तर-धर्मी (गोमाँस-भक्षकों के बच्चे) पढ़ते हैं। ब्राह्मणों के लड़कों से सट कर बैठे रहते हैं तो क्या "गो-भक्त" शिखा-सूत्रधारी (अधिकारी) अछूत कहला कर हिन्दुओं के बालक नहीं पढ़ सकते हैं ?

अति प्रसन्नता की बात हैं कि भारतीय संविधान-प्रदत्त मूल अधिकार प्राप्त करना व शिक्षा-प्रचार सम्बन्धी सबको एक मान कर लेने-देने का उचित कदम उठाया हैं, किन्तु आज वह "वैधानिक धाराएं" केवल "कागजी लेखा-जोखा" होकर वहीं सड़ती हैं। अधिकारीगण ध्यान ही नहीं देते। सच तो यह हैं - **"चोरन कुतिया मिल रहीं, पहरा किसका देय !"** महान् शोक, अफसोस की बात हैं कि जितनी सख्त कानून धाराएं बनते हैं, उतना ही अधिक तीव्र गति से भ्रष्टाचार के मूलमंत्र घूस (रिश्वत) का प्रचार-जंजाल बढ़ता ही जा रहा हैं। उदाहरण लीजिए - **जैसे भारतीय संविधान, भाग ४, अनुच्छेद ४७, पृष्ठ २४ द्वारा नशाबन्दी, राजस्थान मृत्युभोज निवारण अधिनियम १९६० आदि हजारों कानूनीय घोषणात्मक विभिन्न विभागों का खोला जाना, साथ ही भ्रष्टाचार-निरोध विभाग, अस्पृस्यता (अपराध) अधिनियम (१९५५ का २२) एवं भारतीय दण्ड-संहिता की धारा २९२/२९४/२९४ (क) के द्वारा अश्लील कार्य तथा गाने [1], अश्लील पुस्तकों का विक्रय, लॉटरी कार्यालय रखना आदि दण्डनीय हैं।** किन्तु बस सब होता हैं। कौन शक्ति हैं जो ऐसी कथित संवैधानिक रीति को पालनार्थ क्रियान्वित करें। यहीं तो वहीं "दो बिल्लियों के बीच बन्दर का न्याय" की कहावत का ही प्रतिरूप हुआ। आज कोई

---

१. फाल्गुन मास में प्रायः चंग, ढ़ोलों पर खुल्लमखुल्ला अश्लील गान, पूर्ण नग्न तांडव, भद्दी गालियों का बर्ताव देख कर न सरकार रोक लगाती हैं, न ही गायकों को ही लज्जा आती हैं। ऐसी नीच प्रथा प्रचलित हैं कि माता शीतला, दुर्गा या किसी धर्म-स्थान आदि के दर्शनार्थ जाते हैं, परन्तु वेश्या व स्त्री से नहीं कहे जाने वाले शब्दों का माता-बहिनों के सामने प्रयोग करने से भी नहीं हिचकते। यह सब कहा तक उचित हैं ?

विभाग या राज्य-कर्मचारी से उच्चाधिकारी तक का पद ऐसा कोई नहीं कि जहाँ पर गुप्त रूप से **"अशोकचक्र चिओ मुद्रांकित धातु या कागज"** जेब में लाने की कोशिश नहीं होती हों ।

*लिखते-लिखते सहसा हमारी लेखनी रुक जाती हैं, हाँ वाक्-शक्ति भी स्तम्भित रह जाती हैं कि **'कहीं बलि का बकरा न बनना पड़े,** परन्तु फिर भी जन-हित के लिए सम्मति देने में हिचकिचाहट नहीं होना चाहिए । प्रयत्न आगे बढ़ने का साहस देता हैं, क्योंकि लेखक, आलोचक, सम्पादकादि विश्व-कल्याण की इच्छा से गुण-दोष बताने में यत्किंचित् मात्र भी संकोच नहीं करते । वह जनता के सच्चे सेवक, मित्र, गुरु, प्रेरक, रक्षक सब कुछ हितकर भावों से प्रेरित होते हैं, जो **भावी के अन्धेरे में भविष्य को पहले ही प्रकाशित कर देते हैं ।***

अच्छा, जो कुछ हो रहा हैं वह सब आँखों के आगे हैं । विशेष लिखा जाय तो अनुकूलता न रह कर एक स्वतन्त्र पुस्तक बन सकती हैं । छोड़ों इस प्रसंग को, आगे बढ़िए । हाँ, सब सीमा-उल्लंघन शासन-मर्यादा भंग क्यों हो रहीं हैं ? **यह सब पूंजीवादी सामन्तवादी हाथी के दाँतों की भाँति चालों को दिखा कर सत्ता की बागडोर अपने हाथ में ले चुके हैं** अथवा जनता ही "बेताज बादशाह" बन कर घर-घर में स्वार्थ-सिद्धि के पद पर पहुँचती हैं । मारी जाती हैं केवल गरीब, दीन और देहात में बसने वाली पिशाची-सामन्ती घरानों से पिट्टी-दलित हुई अनुसूचित, हरिजन, अछूत इत्यादि कहलाने वाली जातियां, जो समाज के एक अंग रूप हैं, जिन्हें अब तक यह भी ज्ञान नहीं हुआ कि देश में आजादी (स्वतन्त्रता) आई या नहीं आई । भारत में क्या हो रहा हैं ? क्यों ? वहाँ की पाठशालाओं के अध्यापक भी वहीं लगे हुए हैं । रक्षक पुलिस आदि के संरक्षण में भी वही हैं, जिन्हें औरंगजेब आदि बादशाहों की नौरात के बाद नव-विवाहिता वधू को सफेद पर्दा देकर झूठी खिताबें सौंपी

जाती थी, जिसे आज भी वह अपना गौरव समझते हैं। ऐसे नाम मात्र के जन्मसिद्ध हिन्दू केवल सिंह, शर्मा, वर्मा और चन्द। पिट गई और रही-सही चट पिट जाएगी। कुछेक अध्यापक भी रक्षक बन कर भी भेदभाव का व्यवहार करके बच्चों के जीवन में गन्दे वातावरण का प्रभाव डाल रहें हैं।

आज जो प्राचीन गुरुकुलों के विकृत रूप छात्रावास चलाए जा रहे हैं, उनके द्वारा भी सुधार की अपेक्षा छात्रों में उद्दण्डप्रियता, अनुशासनहीनता तथा व्यावहारिक ज्ञान की न्यून शिक्षा दी जाकर उन्हें भविष्य जीवनोन्नति से सर्वथा वंचित रख कर कर्त्तव्यहीन पंगु बनाया जा रहा हैं। इसमें भी सुधार की नितान्त नैतिक आवश्यकता हैं।

ऐसे टीचर/गुरु/लेक्चरार/मास्टर या प्रोफेसर, उपदेशक, अधिकारी चाहे कोई हो। अतः यह रक्षा शिक्षात्मक प्रणाली का अधिकार समहित से विशेष रीति से उपयोग लें और प्राचीन गुरुकुलीय शिक्षा का उच्चतम दीक्षात्मक ज्ञान-प्रचार किया जाय, तभी वास्तविक राष्ट्र-समाज का भविष्य समुज्ज्वल-समुन्नत होना सम्भव हैं।

(४) हिन्दू समाज में बहुत से वर्गीय सम्प्रदाय हैं। सब अपने अपने मतानुसार परम पिता परमेश्वर की आराधना करते हैं, जिनमें से केवल छाया मात्र स्वामी रामानन्दजी महाराज जैसों की सामयिक महत्कृपा से नीच समझे जाने वाले समाज को अपनाया और उनमें पीपा, रविदास, कबीरदास, सेनजी तथा नाभाजी प्रभृति सन्त बनें। इस कारण से भिन्न-भिन्न धर्म-मत को मान्यता देने वाले मनुष्य हैं, जो अपने श्रद्धा-पुष्प देवार्चन में देते हैं।

अतः जो जिस धर्मदेव का पूजन-यजन, अर्जनकर्त्ता अनुयायी हों उन्हें उस धर्म-सम्प्रदाय के देव-मन्दिरों, गुरूद्वारों, तीर्थादि कुटि-स्थलों में जाने की छूट देनी चाहिए। कोई भाई जैन, सिख या सनातन-वैदिक-धर्म का समर्थन करता हो तो खोल दो उनके लिए अधिकार-द्वार। बस वहीं

पर वह बखान सुने, अरदास करे या पंचोपचार-षोडोपचार पद्धति-पूजन से गौरी-शंकर, गणपति, राम या कृष्ण मनावें। **यह बौद्ध, सिख, जैनी, सनातनी हिन्दू, वैदिक-आर्य अथवा इनमें नाना नन्हें-मुन्ने भूल-भूलैया मात्र सब हिन्दू समाज के विभिन्न रूपों से एक अभिन्न अंग हैं। इनकों आपसी भेद मानना पतन होने का कारण हैं।**

हाँ, इसमें तो कोई सन्देह नहीं होगा कि आर्य समाज और ब्रह्म समाज के प्रार्थना-मन्दिर तो सबके लिए खुले हैं, किन्तु फिर भी लेखक आशा करता हैं कि अधिक से अधिक प्रेरणात्मक भावना देकर मन्दिरपट विशेषतः अछूत समाज के हित में खोल देने चाहिए और साथ ही में हिन्दू-शुद्धि की कार्य-गति की तीव्रता से बढ़ाया जाय एवं अछूत वर्ग नाम के भुलावन-भेद की निवृति करके शिखा-सूत्र (चोटी-जनेऊ) पहना (धारण) कर आचरण-शुद्धि का प्रचार बढ़ाना चाहिए। उसे उदार चरित बनादें और अपने संकीर्णोद्देश्य को विशालता दें।

प्यारें हिन्दू धर्म के हितचिन्तक संचालकों! यही हैं दुंदुभी का वाग्निनाद जिसे हम अपनी शक्ति भर लेखनी (गुरु-महापुरूषों की कृपावृत्ति) से प्रयत्नपूर्वक फूँकता हूँ। यदि आप अपने वैदिक (सनातन) धर्म का अस्तित्व गौरवमय स्वाभिमानता का गुरुत्व बचाना चाहते हैं तो आज वर्ग-सम्प्रदाय सब एक हो जाओं और अपना ही छोटा अंग या समाज का हिस्सा, जो एक दों नहीं करोड़ों की संख्या में बहुसंख्यक (असीमान्त) होकर भी अब तक तो **अपने मुँह की ताक में हैं कि हमको अपना लेंगे किन्तु जब निराशा हो जायें तब न मालूम क्या कर बैठें। सोचो! एक कदम उनका पतन की ओर आज से एक हजार वर्ष पूर्व गड्ढे में गिरा था, वही आज सर्वस्व स्वाहा होने जा रहा हैं।** यही कि यह चतुर्थ वर्ग कतिपय शव को कब्र में गाड़ने की भाँति गाड़ते हैं। रोको और रुकवाओं इन्हें! यह प्रथा छुड़ाने की प्रेरणा करके अपने हिन्दू धर्म को गति सिखाओं

इन्हें कि **मरणान्त शरीर का अन्त्येष्टी अग्निसंस्कार करने लगें।**

"फिर पछुताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत।"

यद्यपि कई जाति-वर्ग समुदाय में दाहक्रिया होने लगी हैं परन्तु कई शहरों में विशेषतः राजस्थान के देहात में अब तक गोरों के गुलाम हठधर्मी ले बैठे हैं। अतः हिन्दू मात्र का कर्त्तव्य हो जाना चाहिए कि चोटी-जनेऊ धारण करे-करावे, अग्नि-संस्कार एवं मन्दिरों के द्वार-प्रवेश करने करवाने के लिए पिछड़े समाज को उत्साहित करके अपने में मिला लेने के यत्न में अधिकार समानता से सश्रद्धा लग जायें। जब कि पीछे के आंकड़ों से ज्ञात हुआ होगा कि कितना भारी व्यय करके भी अन्य धर्मावलम्बी हिन्दुओं को हड़पने में तत्पर हैं और आप अपनी स्वरक्षा भी नहीं कर सकते, उल्टे बलि के बकरे बन कर "मूंज जले पर बट न जाय" वाली कहावतों को चरितार्थ कर रहे हैं। ऐसी पिछड़ी-बिखरी हुई हिन्दू धर्म नाम की डिमडिमी बज रहीं हैं। **"उठ जाग मुसाफिर भोर भई, यह कूच की नौबत बाज रहीं।"** १५०० वर्षों तक सोए, अब आँखें खोलों, देखों अगले परिच्छेद में वेद-आदेश के मंत्र-फूंक कर अपनी प्राचीन भारतीय वर्ण-व्यवस्था का विवेचन करके सामाजिक उन्नति की रूपरेखा बताते हैं और धर्म-ग्रन्थों की ललकार क्या हैं? भूलो मत, वेद वाणी देख कर हृदय की शंका का अन्धकार निवृत करें।

धन देकर तन राखिए, तन दे रखिए लाज।
तन दे, धन दे, प्राण दे, एक धर्म के काज ॥१॥

किन्तु आज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में तो पाया जाता हैं -

यौवनं धन सम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता।
एकैकमप्यनर्थाय किं पुनस्तच्चतुष्टयम् ॥ - सुभाषित

सोरठा - *यौवन धन अविवेक, प्रभुता चारों परम रिपु।*
दैत अनर्थ इकेक, जिहिं चारों तिहिं क्या कथा ॥१॥

चतुर्थ परिच्छेद

भारतीय समाज की शास्त्रीय रचना

भारतीय समाज की महत्वपूर्ण वर्णाश्रम धर्म की परम्परा-प्रणाली जो शरीर में रीढ़ की हड्डी के समान रही हैं। जब तक इस समाज में यह व्यवस्था शास्त्रोक्त विधानानुसार प्रचलित रही तब तक समाज सुखी व्यवस्थित और शान्त रहा। व्यक्ति और समाज दोनों की उन्नति से राष्ट्र भी उन्नति करता रहा। ज्यों-ज्यों इसमें त्रुटियाँ आती गई अर्थात् धर्म लोप होता गया त्यों-त्यों समाज में दुर्व्यवस्था, अशान्ति तथा दुर्बलता आती गई। भारतीय समाज में चार वर्णों की प्राचीन शास्त्रीय रचना-शैली तो उनके लिए हैं जो दैवी सम्पति वाले सात्विक तपःशील व्यक्ति हैं। **आसुरी सम्पत्ति वालों के लिए समाज में कोई स्थान नहीं हैं। उनके लिए या तो कारावास में स्थान हैं या फाँसी के तख्ते पर।** समाज जब भी पतित होता हैं, उसका कारण उसकी महत्वपूर्ण प्रथाओं का ह्रास ही होता हैं। जो प्रथाऐं समाज की शक्ति की द्योतक होती हैं, विकृत होने पर वहीं समाज के लिए एक घातक मुसीबत बन जाती हैं। यहीं बात भारतीय समाज की वर्ण-व्यवस्था के साथ हुई हैं। वर्ण और आश्रम दोनों में आज घोर विकृति आ गई और अब ये समाज की शक्ति की अपेक्षा उसके पांवों में बेड़िया बन गई हैं। यह समाज के लिए परमावश्यक बात रहेगी कि उसका बुद्धिमान अंग अपनी बुद्धि के विकास के लिए पूर्ण अवसर पा सके और फिर उसका समाज के हित में प्रयोग कर सकें।

वादी-प्रश्न :- *पिछले परिच्छेद में आपने चारों वर्णों का खण्डन कर दिया हैं। हिन्दू संस्कृति में तो ऊँच-नीच का भेद अनादि शास्त्रीय व्याख्या से है, क्योंकि भगवान के अंग-प्रत्यंग अर्थात् मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, उदर से वैश्य और चरणों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं। जैसे कि -*

वेद के इस प्रमाण से ज्ञात होता हैं -

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।

ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भयां शूद्रो अजायतः ।। - यजुर्वेद ३१/१२

क्या इस मंत्र को प्रशस्य नहीं माना जाय ? जैसे स्पष्ट हैं कि भगवान के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, उदर से वैश्य, पाँव से शूद्र की उत्पति हुई हैं। इस प्रकार से सब मिल कर एक साथ कैसे रह सकते हैं ?

संवादी का उत्तर :- क्या आपने मन्त्र का अर्थ नहीं लगाया कि भगवान के विभिन्न अंगों से चार वर्णों की उत्पत्ति हुई हैं । यदि हाँ तो यह बताने की चेष्टा करें कि परम पिता परमात्मा का स्वरूप सगुण हैं या निगुर्ण ? आप ईश्वर को कैसे मान कर ध्यान-पूजादि करते हैं ?

वादी :- *भगवान तो सर्वत्र व्यापक, अचल, परमानन्दघन, निगुर्ण हैं पर मूल स्वभाव से भक्तों के लिए सगुण भी हैं अर्थात् ईश्वर निगुर्ण-सगुण दोनों रूप से यथावत् रहता हैं ।*

संवादी :- (वादी की युक्ति का विशिष्ट **तर्क-प्रमाण उत्तर**) यह आपका कथन ध्येयोद्देश्य से सर्वथा तथ्यविहीन हैं । यदि ईश्वर को निर्गुण माना जाय तो वह सर्वव्यापी हैं । इस न्याय से अगोचर, अखण्ड विशेषतायुक्त चैतन्य के मुख, हाथ, पेट, पाँव आदि अंगों की कल्पना नहीं हो सकती । ठीक इसके विपरीत पक्ष में यदि हम हाथ, पाँव वाला सगुण भी मान लें तो वह परमेश्वर सर्वशक्तिमान व्यापक न होकर जीव-कोटि में होगा । वह एकदेशी होने से अन्तर्यामी, न्यायकारी, निष्पक्षत्व नहीं हो सकेगा । फिर भारत के ही दूरस्थ शहरों का हाल, प्रकृति-संचालन कार्य नहीं जान सकेगा, तब विदेश के भक्त प्राणियों की घट-घट-व्यापकता, सुभिज्ञता कैसे होगी ? यथार्थ में परमात्मा तो **श्वेताश्वरोपनिषद्** वाक्य के अनुसार हैं --

"सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम् ।"

वह परमेश्वर समस्त इन्द्रियों के गुण-आभास व कर्मों से रहित सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं ।

वादी :- *मननपूर्वक कथन तो उपयुक्त उचित हैं । तब क्या मंत्रोचार वर्णोत्पत्ति का वेद-वाक्य झूठा हैं ? क्या इसे आप नहीं मानते ?*

संवादी :- प्यारे भावुकों ! यह मंत्र सर्वथा सत्य हैं, वेद में कोई शब्द-वाक्य कल्पनाधार पर झूठ नहीं हो सकता । हमारा सृष्टि का प्रथम एवं ज्ञानदाता आदि इष्ट-ग्रन्थ वेद ही हैं । प्रत्येक कला-गुण-विद्या, गोचर या अगोचर सर्वेश्वर्यता प्रदानकर्त्ता रहस्यों का सूत्र-भण्डार हैं । लोग विस्तार से विशेष नहीं कह कर सूक्ष्म अभिप्राय तत्व-सूत्र रूप से होने के कारण अपभ्रंश कर देते हैं और अपने स्वार्थ को सिद्ध कर लेते हैं । यहाँ उस पूर्ण विषय को पुस्तक-कलेवर-क्षुद्रता के कारण स्पष्ट न करके इतना ही लिखना उपयुक्त होगा कि वेद के उक्त उद्धृत मन्त्र का वास्तविक अर्थ आज के पौराणिक पण्डित-कथा पक्ष नहीं जानते तभी तो **"राई की ओट पर्वत रहने"** की कहावत सत्य होती हैं । वस्तुतः भगवान इन्द्रियरहित हैं, जैसे उपनिषद् वाक्यों से प्रमाणित हैं ।

वादी :- *इस यजुर्वेद के ३१/१२ मन्त्र का शुद्ध अर्थ क्या होता हैं ? तुलनात्मक तर्क विस्तार से समझाइए । साथ ही यही अर्थ गीता, भागवत आदि पुराणों में भी लगाया गया हैं, फिर वह क्या अमान्य हैं ?*

संवादी :- वेद-प्रमाण के अतिरिक्त सर्व कथन गौण हैं, इसलिये इस वेद-मन्त्र के मूल अर्थ-सिद्धि में गीता आदि समस्त शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित वर्णोत्पत्ति धर्म इस प्रकार मान्य रहेगा और हैं । सम्पूर्ण विश्वजन अन्तर्हित ही जनार्दन का विराट शरीर (समाज रूप से) हैं, अर्थात् समाज को एक मानव-शरीर के भागों में बाँट कर विभाजन द्वारा व्यवस्था की रचना की गई हैं । यजुर्वेद में आपके उक्त मन्त्र से पूर्व ही (३१/११) में एक मन्त्र

अमेरिका, भारत आदि) नहीं होगा और ऐसा कोई समाज नहीं होगा कि जहाँ जन-समुदाय में इस व्यवस्था की आवश्यकता न हो अर्थात् सर्वत्र सबके लिए अनिवार्य हैं । यही चार प्रकार के व्यक्ति एक समाज-रूप शरीर को चलाते हैं । आज ये अव्यवस्थित और भूल का भण्डार होकर पतन के परिणाम पाते हैं । हमारे पूर्वजों ने इस स्वाभाविक गुण-कर्म-कृत विभाग से लाभ उठाते हुए समाज की रचना, आश्चर्यजनक सुविधामय मानव शरीर के अंगों से गुण-कर्मानुसार आदर्श रचना सभ्यतापूर्वक की थी । लीजिए - अब समाज-व्यवस्था का पूर्ण रूप-कारण - उदाहरण सहित समझिए ।

समाज में व्यक्ति द्वारा वर्ण का वरण अधिकार

प्राचीन काल में व्यक्ति समुदाय द्वारा चातुर्वर्ण में अपने कर्त्तव्य अधिकार से जन्म संस्कार द्वारा वर्ण का वरण (स्वीकार) किया जाता रहा था । राजा हो या रैय्यत, धनी या रंक, अमीर या फकीर सभी गृहस्थ परिवार के बालकों का ब्रह्मचर्याश्रम (विद्यार्थी जीवन) गुरुकुल में व्यतीत होता था । वहीं बाल्यावस्था से ही वर्णोचित कर्त्तव्य शिक्षा की व्यवस्था होती थी । प्रथमतः पाँच वर्ष की आयु में प्रत्येक कुल में जन्में बालक को माता-पिता स्वधर्म सतगुरु (ऋषि) आश्रम में शिक्षार्थ प्रवेश दिलाते थे । वहाँ गुरुकुल में ऋषिवेष (यूनीफार्म) भूषा में विद्यार्थी गायत्रीपाठ सन्ध्या उपासना से सदाचारी जीवन प्रवेश करते एवं स्वाध्याय पठन (अध्ययन) की **प्रथम परीक्षा** आठ वर्ष की आयु में होती थी । उस में सफल उतीर्ण विद्यार्थी प्राप्तांक के बाद उनकी **रेशम से बनी यज्ञोपवीत** के संस्कार (१) **ब्राह्मण वर्ण** में प्रवेश देकर ब्राह्मणोचित कर्मकाण्ड, वेद ऋचा सहित सांगोपांग वेदाऽध्ययन शिक्षा, ईश्वरोपासना, ब्रह्ममर्य धारण करके पच्चीस वर्षायु (गुरुकुल में १७ वर्ष) तक स्नात्कोत्तर बन कर गृहस्थ प्रवेश करते थे ।

आठ वर्ष की आयु में अनुतीर्ण (असफल) होने पर उन्हें आगे पढ़ने का पूरक (supplementary) समय चार वर्षान्तर मिलता था। **दूसरी परीक्षा** बारह वर्ष की आयु में होती थी। उस में उतीर्णांक प्राप्त करने पर **सूत से बनी यज्ञोपवीत** के संस्कार से (२) **क्षत्रीय वर्ण** का वरण मिलता और शस्त्रास्त्र की सम्पन्न युद्ध विद्या का प्रारम्भ होता था। कोई अल्प बुध्दि वाला इस परीक्षा में अनुतीर्ण हो जाता उन्हें चार वर्ष का समय और आगे पूरक परीक्षा (supplementary) का मिलता था। **तीसरी परीक्षा** सौलह वर्ष की आयु में होती थी। उस में सफलता प्राप्त करने पर **ऊन से बनी यज्ञोपवीत** के संस्कार से **वैश्य वर्ण** का चयन किया जाता और तब से आगे की आयु के नौ वर्ष तक गणित, व्यापार पद्धति से लेन देन कला की शिक्षा दी जाती थी। मन्दबुध्दि के कारण **तीसरी परीक्षा** में भी असफल रहने पर उन्हें चार वर्ष का और समय पूरक परीक्षा (supplementary) देने का अवसर मिलता था। **चौथी परीक्षा** बीस वर्ष की आयु में होती थी, उस में सफलता प्राप्त करने पर **मूंज से बनी यज्ञोपवीत** के संस्कार से उन्हें **शूद्र वर्ण** के चयन से वरण करना पड़ता था और तभी से समाज उपयोगी लकड़ी, लोहा, सोना, चांदी, मिट्टी, पत्थर इत्यादि धातु मय सर्व ललित कला कौशल की शिक्षा दी जाती थी, जिस से समाज के चारों वर्ण की आवश्यकताऐं पूर्ण हो। यही समाज सेवा शास्त्रीय स्वरूप से कथन हुई हैं। इन **चारों वर्णो में यज्ञोपवीत से वर्ण व्यवस्था की पहिचान** का प्रमाणिक शास्त्रीय स्वरूप आगे कथन किया जा रहा हैं।

इस प्रकार चौथी परीक्षा में उतीर्ण होने पर पाँच वर्ष तक उन्हें पाँच प्रकार की ललित कलाऐं अर्थात् **विश्वकर्माजी** द्वारा दी गई समस्त कारीगरी की शिक्षा का अध्ययन करवाया जाता था। इस तरह क्रमशः प्रथम, द्वितीय,

तृतीय, चतुर्थ परीक्षाओं में लगातार उत्तरोत्तर बुद्धि मन्दता के कारण पिछड़ापन आता रहा और उनके अनुसार वर्ण कर्त्तव्य का वरण होता रहा, किन्तु चारों परीक्षाओं में उतीर्ण होने के बाद उन्हें दीक्षान्त समारोह मे पच्चीस वर्ष की आयु में सब को अपने अपने घर जाने की अनुमति दी जाती थी और **जो इन सभी परीक्षाओं में अनुतीर्ण रहता, उन्हें वनवासी, आदिवासी आदि कहकर पंचम वर्ण के नाम से अशिक्षित अवस्था में रहना पड़ता था ।**

आजकल **भारतीय संविधान** में संवैधानिक घोषणाओं में राजनीतिक पार्टियों द्वारा वर्णव्यवस्था को **मनुवादी** कहकर कोसा जाता हैं, किन्तु आज की भारतीय व्यवस्था अनुसूचित जाति/जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, ओबीसी, ब्राह्मण, जाट, राजपूत, विश्नोई, घुम्मकड़, वनवासी, आदिवासी इत्यादि ना जाने कितनी तरह से मोहरबन्द जातियों में समाज को बाँट के रखा हैं। भारतीय संविधान में छूआछूत मिटाने की घोषणा के बावजूद ठप्पा बन्द जातियों में विभाजन, जातीय समीकरण से चुनाव टिकट बाँटने इत्यादि के आश्चर्य जनक खेल खेले जा रहे हैं। इन से तो प्राचीन कर्म से वर्ण व्यवस्था की पद्धति से चार वर्ग की मान्यता लाख टक्का सही एवं प्रगतिदायक थी ।

शरीर के अंगों से चार वर्णों की तुलना

प्रथम (ब्राह्मण-मुख)

वेद कहता हैं कि सच्चे ब्राह्मण का आदर्श जानना हो तो अपने **'मुख-मण्डल'** की ओर देखो व सोचो ! कान, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और नाक, यह पाँचों ज्ञानेन्द्रिय एवं एक वाक् (वाणी) जो कर्मेन्द्रिय हैं वह भी इसी भाग में पाई जाती हैं। शरीर के समस्त अवयवों (अंगों) में यदि

स्वार्थ रहित और तपस्वी कोई हैं तो केवल मुख ही ज्ञान-गरिमा का पात्र हैं । सर्दियों में सारे अंगों को सयत्न ढाँपा जाता हैं, परन्तु **मुख-मण्डल** का अवयव ही नंगा रहता हैं । यह तप का गुण तितीक्षा सहन करता हैं, इसके अन्दर कितने भी स्वाद-पदार्थ क्यों न डालें जायें, परन्तु वह अपने स्वार्थ में कुछ न रख कर सारे शरीर में रुधिरादि के रूप में सत्व पहुँचा देता हैं । सन्त वाणी में भी कहा गया हैं -

धीव घणा भक्षण करे, तो भी चिकनी नाहिं ।

निर्लेपता स्वार्थहीनता से ही रहती हैं - देखिये, गोस्वामीजी के शब्दों का निर्णय रामचरित-मानस में -

मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान को एक ।

पाले पोषे सकल अंग, तुलसी सहित विवेक ।। रा०च०मा० २/३१५

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र के मुख से भरत को शिक्षा हो रही हैं कि परिवार या समाज का मुखिया ऐसा ही होना चाहिए । जो सब के रक्षण-पोषण का ज्ञान रखता हो अर्थात् समाज में जो पुरुष सम्पूर्ण ज्ञान का संग्रह करके वाणी द्वारा उसका प्रभावपूर्ण प्रचार करें,जो तपस्वी तथा स्वार्थरहित हों वे ही **सच्चे ब्राह्मण** हों सकते हैं और जिनके अन्दर यह गुण नहीं हो, वह कितने भी ऊँचें कुल में क्यों न पैदा हुए हों, वे ब्राह्मण कहलाने के अधिकारी नहीं हैं । **मनुस्मृत्यादि शास्त्रों में ब्राह्मणों की पूजा का महत्व बतलाया गया हैं, वह इसी अर्थ में प्रयुक्त हैं कि ऐसे सदाचारी, स्वार्थरहित तपस्वी ब्राह्मण है, विद्वान पंच ज्ञानेन्द्रिय की शक्ति को धारण करते हैं,** मस्तिष्क द्वारा विचारकर्त्ता, आचरणशील, ज्ञानी पुरूष जब तक समाज के नेता नहीं, तब तक समाज की यथार्थ उन्नति असम्भव हैं ।

"**ब्राह्मणो ब्राह्मणम्**" (यजुर्वेद ३०/५) में कहकर स्पष्ट किया हैं कि ब्रह्म अर्थात् ज्ञान-प्रचार के लिए मुख्यतः ब्राह्मण की नियुक्ति हों । जो स्वयं ज्ञान से विहीन हैं, वह सच्चे ज्ञान का प्रचार कैसे करेगा ? वह पुरुष

ब्राह्मणोचित सम्मान के योग्य कभी भी नहीं हो सकता ।

"ब्राह्मणं यत्र हिंसन्ति तद् राष्ट्र हन्ति दुच्छुना ।" - अथर्ववेद ५/१६/६

दुर्गति उस राष्ट्र का सत्यानाश कर देती हैं, जहाँ ब्रह्म-ज्ञानी की हत्या हो जाती हैं या कष्ट देकर सताया जाता हैं अर्थात् मान्यता नहीं होती ।

उग्रो राजा मन्य मानो, ब्राह्मणं यो जिघत्सति ।

परातत्सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीवते ।। - अथर्ववेद ५/१६/६

जो अत्याचारी राजा अपनी शक्ति का घमण्ड करता हुआ ब्राह्मणों को सताता हैं, उसके राष्ट्र का शीघ्र ही पतन हो जाता हैं । इस प्रकार के **सब वेद-मन्त्रों में किसी द्विजाति जन्म से ब्राह्मण का कोई निर्देश नहीं** अपितु **'ब्रह्म जानाति स ब्राह्मणः'** इसमें सच्चे ब्रह्मज्ञानी को इंगित किया हैं कि जो साधन-सहित ज्ञानको प्राप्त करें, वहीं ब्राह्मण हैं ।

द्वितीय (क्षत्रिय-भुजा)

शरीर के अवयव में भुजा का महत्व ही रक्षणीय हैं, उसी प्रकार समाज की भुजा के लक्षण जिसमें भुज-बल, वीरता, सामर्थ्य हो । दीनहीन दुःखी प्रजा प्राणीमात्र की, अबला, गौ, ब्राह्मण (ऋषि-साधु) और भूमि, समाज, धर्म, राष्ट्र की रक्षण-वृत्तिकर्ता हो, वही क्षत्रिय हैं ।

जैसे शरीर में कहीं भी चोट लगे या आघात प्रहारादि-पीड़ा, काँटा चुभने का कुछ कष्ट हो जाय, तब तुरन्त ही सर्वप्रथम उस अंग की संभाल, रक्षा, सुश्रुषा-उपचार, पट्टी आदि उपाय की रक्षा में हाथ अग्रणीय होता हैं । उसी प्रकार से कर्त्तव्य करने वाला क्षत्रिय समाज-रक्षिका भुजा हैं अथवा यों कहिये कि जैसे लोहे के तारों से बनी कपड़े आदि की छत्री की भाँति धूप, वर्षादि से रक्षा करें, **वहीं क्षत्रिय है** । यह अर्थ सार्थक प्रतीत होता हैं, जो वेद-मन्त्र में **'बाहु राजन्य कृतः'** शब्द आया हैं ।

तृतीय (वैश्य-उदर)

मंत्र-गत तीसरा पाद हैं ''उरू तदस्य यद्वैश्य:'' इसका अर्थ हैं कि जैसे शरीरगत उदर भोजन पाकर (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चौष्य, पेय) रसादि के रूप को भली भाँति प्राण-विभाग जठराग्नि से पका कर रस-नीरस के विवेक सहित प्राणों के सहयोग से उत्तम भाग वीर्य मस्तिष्क को, मध्यम भाग शरीर के अन्यांग हाथ, पांवादि, नाड़ी सर्व को देकर कनिष्ठ भाग मूल-उपस्थादि द्वार से बाहर डाल देता हैं । इसी प्रकार से व्यापार सेवादि द्वारा कमा कर वस्तु आदि को जन-समाज मे यथासमय निर्पक्षता से वितरण करें, **वहीं महाजन** (वैश्य) व्यापारी हैं ।

चतुर्थ (शूद्र-पाँव)

मन्त्र का चतुर्थ पाद **'पदभ्यां शूद्रो अजायत:'** हैं, इसके संशय-निवृतिजनक **''पदभ्यां''** चतुर्थ विभक्ति ही माननी उचित हैं, इसका अर्थ होगा कि पैरों के काम हेतु शूद्र को बनाया हैं, वह तो नेत्रों, कानों या हाथों की लाठी या अंगुली-इंगित की भावना पर ही चलने का कर्म-यंत्र मात्र करना जानता हैं । उसी प्रकार से जो ज्ञानवान्, रक्षक, पोषक-रूप ब्राह्मण, क्षत्रिय, महाजन वर्ण त्रय की आज्ञा पर चल कर सेवा-कार्य में लगा रहे, उसे **शूद्र कहते है** । जिसमें अपना विवेक न हो, किन्तु दूसरों के बताए हुए पथ पर चलें कि पांवों में ज्ञानशून्यता शक्ति रूप से गोबर या सीरा (हलुआ) की कढ़ाई में घूमे :-

षड्शास्त्रमें चतुर्भि, चतुर्वेद थिति वाक् ।
आतम रस ना जानियों, 'ज्यों दर्वी रस पाक' ॥ -सुभाषित

'सुभाषित' की भाँति, वह मीठे, कड़ुवे, फीके, घी, तेल और पानी आदि की परख नहीं कर सकता । ठीक यहीं गुण-कर्म जिसमें हो **वहीं ''शूद्र''** हैं । तभी तो सनातन धर्म-शास्त्रों में कृत्य यजन-विधानों में यत्र-तत्र उल्लेख हैं कि 'शूद्र मन्त्र-वर्जित कर्म करें' और 'मन्त्रहीन पूजन करें' आदि इन वाक्यों

की द्योतना यहीं हैं कि – वह अनाक्षर बुद्धिहीन होने से मन्त्रोच्चारण कर नहीं सकता। तभी तो उसे पूजा से वंचित रख कर इस प्रकार से कहा गया हैं। ठीक जन्म से चाहे कितना ही उच्च कुल का हो परन्तु गुण-कर्म-कनिष्ठता से उसे 'शूद्र' वर्ण से घोषित किया जाय। इस प्रकार से यह चारों वर्ण का निर्णय एक शरीर के विभिन्न अंगों के गुण-कर्म से तुलनामय निश्चित हुए, जो एक कुशल और सम्पन्न समाज-रचना का रूप हैं।

शरीर के चारों अंगों की समन्वयता

सामज के चारों वर्णों की ऐक्यता

सेवक कर पद नैन से, मुख सो साहिब होय।
तुलसी प्रीति की रीति सुनि, सुकवि सराविहिं सोय॥

–मूल रामचरित-मानस, आयोध्या काण्ड, दोहा ३०६

*इस दोहे में पूर्ण न्याय की झलक हैं। उदाहरण – एक वृक्षस्थ भोग्य पदार्थ की बात **श्रवणों** ने सुनी। प्रेरणा पाकर **पाँवों** ने चलने का कर्म करके लक्ष्य-स्थल पर पहुँचाया। **नेत्रों** ने इष्ट वस्तु फल को देखा, उसकी आज्ञा **भुजा (क्षत्रिय)** ने मान कर नाना क्रिया उद्योगों से या अन्य उपाय से फल प्राप्त करके **श्रवण व नेत्र-प्रेरक मुख शक्ति 'ब्राह्मण'** को सौंप दिया। इस स्थिति में यदि मुँह अपनी धारणा कृपणता जनक लेकर कहे कि **यह इष्ठ-फल-ग्रास मैं कण्ठ में ही रखूँगा** तो क्या दशा हो सकती हैं? जान गए होंगे आप-कि ऐसा ही करदें तो शरीर के पूरे अंगों की क्या शक्ति रह जाती हैं। परन्तु नहीं वह मुख निःस्वार्थ उसे चबा, निगल कर **'वैश्य' पेट** को सौंप देता हैं। वैश्य पूर्व-परिश्रमकर्त्ताओं (श्रवण, नेत्र, पांव, हाथ आदि) सबको पोषण करके यथाशक्य रस पहुँचा ही देता हैं। इसी प्रकार समाज के ज्ञान-प्रमुख ब्राह्मण युक्ति, धर्म-विधि, नीति का व्याख्यान करें। फलतः क्षत्रिय और वैश्य (शूद्र) वीर-कर्मकर्त्ता सेवक साम्रगी का चयन (संग्रह) करके विद्वानों को देवे और वह उन्हें*

यथावत सबको बाँट कर दे दें, जिससे सब समान उपभोग करें । यही उदाहरण एक घर के परिवार पर भी घटित होता हैं ।

जहाँ जिस समाज व देश के राजा व प्रजा (नेता-जनता) द्वारा तथा घर में पूर्णतया इस क्रम-व्यवस्था का एक ही शरीर के अंग की भांति अपने अधिकारपूर्ण कार्य करते हुए ऊँच-नीच के भेद-रहित व्यवहार का पालन होता हैं, वहीं पर सुख-सामग्री, भोग, मर्यादा, अनुशीलन रह सकता हैं, अन्यथा कदापि नहीं ।

पैर में काँटा आदि लगने पर हाथ उसे निकालता हैं या नहीं ? उस **'शूद्र' अंग 'पाँव'** की चोट का अनुभव **'ब्राह्मण' अंग 'मुख'** से सुबकी लेना, रोना-चिल्लाना आदि पीड़ा-दर्शन लक्ष्य करवाता हैं या नहीं ? यहीं बात समाज पर नहीं हो सकती क्या ? एक विद्याहीन, विवेक शून्य, समाज पर दुःख के पहाड़ टूटें और उच्च्व वर्ग-विद्वान्, शक्तिधर सहायता न करें तो अपना ही पतन करने के समान होगा ।

जैसे यह उदाहरण हैं, उसी प्रकार एक ही समाज के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र विभिन्न चार अंग हैं तो कैसे अस्पृश्यता हो सकती हैं। शरीरगत अंगों का जितना गहरा सम्बन्ध निष्पक्ष हैं, उतना ही समाज में आपसी प्रेम, अनुरागमयी आत्मीयतापूर्ण वर्ण-व्यवस्था का गुण-कर्माधार होना सफलता-दर्शक हैं ।

"शिरो बाहुरू-पद्वद् ये संसृष्ठाः नित्यमेव हि ।
अन्योऽन्याऽस्पृश्यता तेषां संभवेज जन्मना कथं ।। - मानव-धर्म-सार

शिर, जंघा, बाहु और पैरों की तरह सब एक दूसरे से सदा ही जुड़े हुए हैं । तब जन्म से उनकी एक दूसरे के प्रति अस्पृश्यता कैसे सम्भव हो सकती हैं ।

"अस्पृश्यता निमित्तेन न जात्या धर्म सम्मता ।
यथा महा पातकिनः यथा संचारी रोगिणः ।।" -मानव-धर्म-सार

न तो निमित्त से और न जाति से, वैसे अस्पृश्यता धर्म-सम्पत नहीं कहीं जा सकती, जैसे कि - महापातकी और संक्रामक रोगी ।

"अस्पृश्यताः विषये पूर्वं मेव विचारितम् ।
अज्मनाऽस्पृश्यता यास्तु नास्ति प्रत्यक्ष लक्षणम् ।।"

अस्पृश्यता के विषय में पूर्व काल में भी विचार किया गया था, किन्तु अस्पृश्यता का कोई प्रत्यक्ष लक्षण नहीं पाया गया ।

हाथ जैसे क्षत्रिय रूप में रहते हुए भी मल-मूत्रेन्द्रिय को धोने में, पांव धोने में या पूरे शरीर की रक्षा-शृँगार से सेवा-सफाई करता हैं, उसी प्रकार वर्ण-भेद का अस्पृश्य भाव दूर करके लग जाओं, अपने-अपने सेवा अधिकार-क्षेत्र के आचार-धर्म में । आज इस समय में जन्म-जातीय कहे जाने वाले उच्च वर्णों के अधिकांशतः ८०% लक्षणों से शूद्र और नीच कहे जाने वाले वर्ग में अधिकांशतः ८०% कतिपय लक्षणों से क्षत्रिय या ब्राह्मण मिलेंगे, किन्तु उस तरफ आज कोई दृष्टिपात नहीं करता हैं । विपरीत अपने सीमित वर्ग के अलक्षणीय जन्म के गर्व में पतित हाने को उद्यत हो रहे हैं । यदि वर्णों को गुण-कर्म-स्वभाव से मान लिया जाय और जन्म से जाति-वर्ण अमान्य घोषित कर दें, इसके सम्बन्ध में बहुत सी आपत्तियाँ निर्मूल हो जाती हैं ।

आरती

आस्थावान् प्रसंग में देवमूर्ति, सतगुरु पूजन में भी आरती (निराजन) में उत्तम मध्यम कनिष्ठ चारों अंगों के लिये शास्त्राज्ञा प्रमाण क्या है? द्रष्टव्य-

आदौ चतुस्वादतले च कृत्वा द्विर्नाभिर्देश मुखदेश एकम् ।
सर्वांग देशेऽपि च सप्तवारान् तथार्तिक भक्त जनेस्तु देवम् ।।

शास्त्र-विधि में सार्थक वर्ण व्यवस्था

गुण-कर्त्तव्य और अधिकार से ब्राह्मण

सामाजिक प्राणी यदि अधिकारों के पीछे न मरे और कर्त्तव्य के ऊपर विशेष दृष्टिपात रखे तो आशा हैं आधे से अधिक निर्बलता जनक बुराईयों का स्वयं ही निवारण हो सकता हैं। भारत में जब से कर्त्तव्य की उपेक्षा होने लगी तभी से **स्वार्थ-बुद्धि-प्रेरित जन्म-सिद्ध जाति-भेद की हानिकर पद्धति की उत्पत्ति हुई** और हमारे देश का अधःपतन होना प्रारम्भ हुआ। हमारे सभी धर्म-ग्रन्थों में ब्राह्मण स्थान सबसे ऊँचा पूजा-प्रतिष्ठा व पुण्य-रूप माना गया हैं। केवल पूजा-पात्र ही नहीं अपितु यहाँ तक श्रद्धेय माना हैं कि -

"सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचज्जगतीगमम् ॥" - मनु० १/१००

विश्व में जो कुछ भी हैं, उसका स्वामी ब्राह्मण ही हैं। दूसरे अन्य प्राणी उनकी दया से ही भोग करते है, इत्यादि। किन्तु **उस ब्राह्मण का तपोमय कठिन आदर्श हैं, उस पर द्रष्टि न करने से ही हम कहा करते हैं कि धर्म-शास्त्रों ने ब्राह्मणों का अनुचित पक्षपात किया !** वास्तव में यही नहीं हैं।

"उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती।
स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥" - मनु० १/९८

ब्राह्मण क्या हैं ? साक्षात् धर्म की मूर्ति हैं। उनका जन्म धर्म के लिए ही हुआ हैं, वह धर्म-पालन करता हुआ मोक्ष को प्राप्त कर सकता हैं। ब्राह्मण की उत्पत्ति धर्म-रक्षा के लिए ही होने से वह भूसुर, महीसुर (पृथ्वी का देवता) आदि नामों से सब का ईश्वर माना जाता हैं।

स्पष्ट ही यहाँ पर **जात्याभिमानी जन्मगत ब्राह्मण भोजन-भट्टों**

की नहीं अपितु धर्म-रक्षक धर्मात्मा **धर्म-मूर्ति ब्राह्मण की पूजा करने का** व्याख्यान **ही बताया गया हैं ।**

"वैशेष्यात्प्रकृति श्रेष्ठायान्नियमस्य च धारणात् ।
संस्कारस्य विशेषाश्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः ।।" - मनु०, १०/३

स्वाभाविक श्रेष्ठता नियम से धारण करने तथा संस्कार की उत्तम अधिकता से **सब वर्णों का ब्राह्मण प्रभु हैं ।** विपरीत लक्षण वाला शोषक नहीं अर्थात् अन्य वर्णों की अपेक्षा ब्राह्मणों में तप, ज्ञानमयी सात्विकता प्रकृति का स्वभाव होने से यही पूज्य हैं । जहाँ इन विशेषताओं सहित गुणों का अभाव हैं, वहाँ ब्रह्मत्व-तेजहीन, ब्राह्मण भी नहीं हो सकता हैं ।

"न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमामू ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ।।" - मनु० २/१०३
"योऽनधीत्य द्विजोवेदमन्यत्र कुरूते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ।।" - मनु० २/१६८

जो प्रातःकाल को सन्ध्या न करें और सायं काल को भी सन्ध्या न करे, वह सम्पूर्ण द्विजों के कर्म से शूद्रवत् बहिष्कार्य हैं अर्थात् वह शूद्र ही हैं । **जो द्विज वेद को पढ़े बिना अन्य कार्य में श्रम करता हैं । वह जीता हुआ ही वंश के सहित शूद्रता को प्राप्त होता हैं ।**

देखिए स्पष्ट आदेश महाभारत, शान्ति पर्व ६३/४,५,६ में हैं कि ब्राह्मण कर्म से पतित शूद्रत्व को प्राप्त करता हैं । तथा -

'ब्राह्मणो रस विक्रेता यदि स्याद्वृषाली पतिः ।
वेदोक्त यज्ञाद् यन्त्र स्वात्मार्थं पशुमारकः ।।२०।।
ब्रह्म कर्म परिभ्रष्टो माँस भोक्ता च मद्यपः ।
उच्छृंखलः स्वभावो यः शास्त्राध्ययन वर्जित ।।२१।।'

- गरुड़पुराण, अध्याय ४

यदि ब्राह्मण घी, तेल, गुड़, खांड, दूध आदि रस-पदार्थों का व्यापार

करें, और शूद्रा-पतिता स्त्री को घर में रखे, वेदोक्त यज्ञों के अतिरिक्त अपने पेट के लिए पशु मार-मार कर मांस खाने लगे, **वैसा ब्राह्मण वैतरणी में पड़ता हैं** । जो ब्राह्मणत्व से भ्रष्ट हो अर्थात् सन्ध्या-वन्दन, सेवा-पूजा आदि नहीं करता तथा माँस खाता [१] , मद्य पीता, किसी की भी आज्ञा पर न चल कर शास्त्र आदि ग्रन्थों का अध्ययन न करें, ऐसे ब्राह्मण ही चाण्डाल हैं, जो वैतरणी में पड़ते हैं ।

आरोप्य दाशी शयने विप्रो गच्छेदऽधो गतिम् ।
प्रजामुत्पाद्य शूद्रायां ब्राह्मणायदेव हीयते ।।३७।।
न नमस्कार योग्याहिते कदापि द्विजोऽधर्मोः ।
न पूज्याः सन्ति ये मूढ़ास्ते वै नरक गामिनः ।।३८।। - गरुड़पुराण ४

अर्थात् जो दासी से दुष्ट-संग, शूद्रा स्त्री से सन्तति-योग करते हैं, वे ब्राह्मणत्व से गिर चुके हैं । उन्हें ब्राह्मण समझना भूल हैं । इसी प्रकार के पर-स्त्री-लम्पट, अधम ब्राह्मण कभी भी नमस्कार के योग्य नहीं होते एवं उनकी पूजा-सत्कार करना महापाप हैं । ऐसे अधम ब्राह्मण निश्चय ही नरक में जाते हैं । अस्तु -

गायत्री न स्मरेद्यस्तु यो न सन्ध्यामुपासते ।
अन्तर्दुष्टो बहिः साधुः सम्भवेत् ब्राह्मणो बकः ।। - ग० पु० ५/१८

जो ब्राह्मण गायत्री-सन्ध्या नहीं करते, मन में दुष्टता रख कर बाहर साधुता दिखाते रहें, ऐसे ब्राह्मण बगुले का जन्म पाते हैं । आज समाज में उपरोक्त लक्षणों वाले ब्राह्मणों की भी कोई कमी नहीं हैं, कई जगह हमे ऐसे ब्राह्मणों के भी दर्शन हुए कि केवल कहने मात्र को श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं किन्तु कपड़े तेलियों के से रंग के, गायत्री जप करना तो दूर की बात किन्तु कण्ठस्थ भी नहीं हैं, परन्तु जनेऊ गले में हैं, अस्पृश्यता में सबसे आगे और

---

१. इस विषय पर लिखी विस्तारपूर्ण पुस्तक **नशाखण्डन-दर्पण** नामक पुस्तक, श्री उत्तम **प्रकाशन, उत्तम आश्रम (आचार्य पीठ)**, कागातीर्थ मार्ग, जोधुपर ।

कार्य-व्यवहार-व्यापार या तस्कर-छल-छद्म को चला रहे हैं ।

लभेद्देवल को विप्रो योनिं कुट संज्ञकाम् ।।३२।।

द्रव्यार्थ देवता पूजां यः करोति द्विजाऽधमः ।

स वै देवलको नाम हव्य कव्येषु गर्हितः ।। -गरुड़ पु० ५/३३

यज्ञ करने के अधिकार न रखने वाले, अपवित्रावस्था में दक्षिणा के लोभ से यज्ञ कराते हैं और बिना निमन्त्रण दिये, बिना बुलाए खा आवें, ऐसे शूकर, गधे और कौओं का जन्म पाते हैं और जो सारे गाँव के यज्ञ-पूजन का ठेका लेने वाला, दूसरों को आचार्य न होने देने वाला, **ब्राह्मण देवलक** कहा जाता हैं । वह मर कर मुर्गे की योनि पाता हैं। जो अधम ब्राह्मण धनार्थ देवताओं का पूजन करते हैं, वे देवलक पितृ कार्य, हव्य-कव्य, श्राद्धादि भोजन के योग्य नहीं हैं, वे महापापी ब्राह्मण नरक में जाते हैं और ऐसे भक्त-पुजारी-यजमान भी नरक के भागीदार होते हैं ।

'ब्राह्मणाति क्रमोनास्ति विप्रे वेद विवर्जिते ।

ज्वलंतमग्नि मुत्सृज्य न हि भस्म निहूयते ।। - गरुड़पुराण ५/४३

अपने पड़ौस में वेद-विद्या न जानने वाला कोई जाति से ब्राह्मण किन्तु स्वभाव से मूर्ख रहता हो तो उसको छोड़ कर दूर रहने वाले विद्वान को बुला कर दान देना चाहिए । **यह ब्राह्मण-अतिक्रमण का दोष नहीं हैं, यह तो वेद-विद्या का सत्कार हैं ।** जैसे प्रज्वलित अग्नि में हवन करने से पुण्य हैं न कि भस्म में हवन करने से । विद्वान् सुपात्र को श्रद्धा से दान देना हितकर हैं, परन्तु मूर्ख कुपात्र को दान कदापि नहीं देना चाहिए ।

देखिए इसी प्रकार के ठोस प्रमाण "नारद पुराण, उत्तर भाग अध्याय २ में" कहा हैं - वृषली स्त्री से सम्बन्ध रखने वाले ब्राह्मण के श्राद्ध में भोजन कर लेने पर उस श्राद्ध और श्राद्ध-कर्त्ता के पुण्य-कृत पुण्य को भी नष्ट कर देता हैं ।" यह हैं जन्म जातिवाद-खण्डन में हमारे शास्त्रीय सिद्धान्त, किन्तु हम धर्म के पक्के हिन्दू कहलाते हुए भी इस पवित्र

आर्ष आदर्शों की ओर ध्यान न देकर ''**बाबा वाक्यं देव वाक्यं**'' ही कर बैठे हैं। इसी से **भारतीय समाज** का पतन द्वार सामने हैं। भृगुजी ने भारद्वाज ऋषि के प्रश्न का उत्तर दिया हैं -

'न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्रह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वं सृष्ठं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्॥' - भृगु स्मृति

पहले वर्णों में कोई विशेषता नहीं थी, सर्व ब्रह्ममय ब्रह्म की रचना थी, बाद में अपने अपने कर्मों से लोग विभिन्न वर्णों की स्थापना करके रहने लगे।

अब हम ब्राह्मण-कर्म के मुख्य तपोमयी आदर्श रूप के प्रमाण बता रहे हैं, जिससे आप ही तुलना कीजिए कि वस्तुतः आज ब्राह्मण नामधारी समाज के वर्ग में कितने आदर्श के पक्के व उज्ज्वल ब्राह्मणों के दर्शन होते हैं और विपरीत में जब कि अन्य वर्णों में कितने लक्षण से ब्राह्मण या द्विज हैं।

अक्रोधः सत्यवचनं संविभागः क्षमा तथा।
प्रजनः स्वेषु दारेषु शौचमद्रोह एव च॥ - मनु स्मृति

जो क्रोध व झूठ से दूर हो, धन बाँट कर खाता हो, क्षमा-भाव से रहे, अपनी पत्नी से सन्तान उत्पन्न करे, बाहर-भीतर से शुद्ध और किसी से द्वेष न कर के रहे, **वह ब्राह्मण** हैं।

संमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव चाऽकांक्षेदव मानस्य सर्वदा॥ - मनुस्मृति २/१६२

ब्राह्मण सदैव सम्मान से विषवत् डरे और सर्वदा अपमान व तिरस्कार की अमृतवत् इच्छा करे अर्थात् मान-अपमान से हर्ष-शोक न होवें। सच्चे ब्राह्मणों की पूजा करना पूरे समाज का मुख्य कर्त्तव्य हैं, परन्तु जिसको स्वयं चिन्ता रहे कि लोग मेरा सम्मान करें, आज वे ब्राह्मण के आदर्शों से बहुत दूर हैं। आज कौन ब्राह्मणत्वाभिमानी इस आदर्श

तक पहुँचने की चेष्टा करते हैं ? केवल इतना ही नहीं, सादगी और स्वेच्छाकृत दरिद्र-नारायण का सत्कार सच्चे सुदामा बन कर करने का आदर्श मनु महाराज **मनुस्मृति** में लिखते हैं ।

कुशूल धान्यको वा स्यात कुम्भी धान्यक एव वा ।
त्र्यहै हि को वापि भवेदश्वस्तनिक एव वा ।।४/७।।

कोठार में धान्य का सञ्चय करने वाला हो या घड़ा भर अन्न-संचय वाला हो या तीन दिन के निर्वाह मात्र का सञ्चय करने वाला हो या कल को भी न रखने वाला हो, आगे (मनुस्मृति ४/८) स्पष्ट हैं, इन चारों प्रकार में से एक से दूसरा उत्तरोत्तर उच्च कोटि का हैं । तात्पर्य यह हैं कि जितना निर्वाह हो उतना मात्र ही सञ्चय करें, अधिक धन-धान्य से कोई सम्बन्ध नहीं हैं, क्योंकि **''असन्तुष्ठा द्विजा नष्ठाः''** असन्तोषी ब्राह्मण नष्ट हो जाता हैं ।

नारूंतुदः स्यादार्तोपि न परद्रोह कर्मधीः ।
ययास्यो द्विजते वाचा ना लोक्यांतामुदीरयेत् ।। २/१६।। - मनुस्मृति

ब्राह्मण चाहे कितना भी आपत्ति या दबाव में पड़े पर किसी का मर्मच्छेदन करने वाली बात, अप्रिय वाणी को कभी न बोले और दूसरे के साथ द्रोह वाली बुद्धि न करें और जिस वाणी से दूसरा डरे, लोक के अहित चिन्तन की कोई बात न बोले । मानव समाज में सच्चे ज्ञान न केवल आध्यात्मिक अपितु व्यावहारिक-नैतिक ज्ञान के भण्डार का अध्यक्ष भी रहे । पूर्ण उत्तरदायित्व के भार-धारण से शान्ति-स्थापन करना ब्राह्मणों का ही कर्त्तव्य हैं । जैसे बताया हैं कि -

सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद् वृत्त्युपायान्यथा विधि ।
प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैव तथा भवेत् ।। - मनुस्मृति १०/२

ब्राह्मण सब वर्णों का जीवनोपाय यथा शास्त्र जाने और उनको बतावें और आप भी यथोक्त कर्म करें अर्थात् अपने कर्त्तव्य में तत्पर रहें ।

अध्यापनमध्ययन यजनं याजनं तथा ।

दानं प्रतिग्रह चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ।। - मनुस्मृति १/८८

पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान लेना-देना, यह षट्कर्म ब्राह्मणत्व के प्राण और धर्म का अस्तित्व रखते हैं ।

शमो दमस्तपः शौचं शान्तिरार्जवमेव च ।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्म कर्म स्वभावजम् ।। - गीता १८/४२

अन्तःकरण का निग्रह, इन्द्रियों का दमन, बाहर-भीतर की शुद्धि, धर्म के लिए कष्ट सहन करना और क्षमाभाव एवं मन, इन्द्रियाँ व शरीर की सरलता, आस्तिक बुद्धि, शास्त्र-विषयक ज्ञान और परमात्म तत्व का अनुभव होना, **यह ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म** हैं, जो जन्म के साथ में लेकर जन्मते हैं ।

केवल इतना ही नहीं अपितु समाज में ज्ञान का क्षय और अज्ञान की वृद्धि हो, धर्म का नाश हो और अधर्म का विस्तार हो तो इस सारे का उत्तरदायित्वता अधिकतर ब्राह्मणों के ही सिर पर पड़ता हैं । सम्भव हैं, इसी जिम्मेदारी को समझ कर ही यह न्याय दिया हो -

अष्टापद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्विषम् ।

षोड्शैव तु वैश्यस्य द्वत्रिंत्क्षत्रियस्य च ।।

ब्राह्मणस्य चतुः षष्टि पूर्णं वापि शतं भवेत् ।

द्विगुणा वा चतुः षष्टिस्तद् दोष गुण विद्धि सः ।। - मनुस्मृति ८/३३७-३३८

जहाँ चोरी या किसी के अन्याय करने पर शूद्र को ८.०० रूपये का दण्ड-विधान हो, वहाँ वैश्य को दुगुना (१६.००), क्षत्रिय को चौगुना (३२.००) तथा ब्राह्मण को आठ गुणा (६४.०० या १००.०० तथा १२८.००) रुपये तक दण्ड होना चाहिए । क्योंकि वह ज्ञान-सम्पन्न होते हुए भी इस पासप-कर्म में प्रवृत होता हैं । इस प्रकार हमारे ज्ञान वाड्मय नीतिशास्त्रों द्वारा एवं समाज में ब्राह्मण को प्रतिष्ठा सबसे अधिक दी हैं । साथ ही

शास्त्रकारों ने उनका जीवन कठिन, तपोमय और सादापन का बताया हैं। अपितु समाज का सत्व सर्वाधिक उत्तरदायित्व उन पर ही माना हैं, जिसके महत्व को न समझने पर वह केवल अपनी उच्च पदवी से च्युत होकर पतित हो जाता हैं। इतना ही नहीं, किन्तु सब से विशेष दण्ड भोगने का भागीदार भी ब्राह्मण बन जाता हैं। साधन-सहित लक्षणीय ब्राह्मण (साधु-सन्त) ही पृथ्वी के देवता, महात्मा, तपस्वी, आराध्य, उपदेशक हो सकते हैं। अन्य सब पाखण्ड मात्र हिन्दू प्रथा से पतन होने के वाग्जाल हैं।

अस्तु ब्राह्मणोचित गुणों पर शास्त्रीय दृष्टि से कुछ विवेचन किया जा रहा हैं। देखिये, **विदुरनीति, प्रथम अध्याय, श्लोक २० से ३४ तक** पण्डित और पाण्डित्यपूर्ण ब्राह्मण-लक्षण - जिन्हें धारण करने वाला ही ब्राह्मण हैं, अन्यथा ब्राह्मण पतित होकर शूद्र (चाण्डाल) हो जाता हैं।

''पुस्तक लिखना-छपाना दरवाजे पर हाथी को बांधना हैं। हाथी कागज नहीं खाता, पीपल के पत्तों से खुश हो जाता हैं, किन्तु पुस्तक कई गड्डियों का समूह (रीमें) कागज चाट जाती हैं, तब भी पतली-दुबली बनी रहती हैं -- अतः विस्तारभय से परे पूरे श्लोक-प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं।''

अनधीत्य यथा वेदान्न विप्रः श्राद्धमर्हति। - विदुरनीति ६/२४

वेदों को पढ़े बिना ब्राह्मण श्राद्ध का अधिकारी नहीं होता **''ब्राह्मणं व्राह्मणे वेद''** ब्राह्मण को ज्ञान से ब्राह्मण ही जानता हैं। - विदुरनीति ६/८

ज्ञान कर्मोपासनार्भिअदेवतावाधने रतः ।

शान्तोदान्तो दयालुश्च ब्राह्मणश्च गुणैः कृतः ॥ -शुक्रनीति १/४०

ज्ञान, कर्म, देवता आदि की उपासना, देवता-परमेश्वर के आराधन में तत्पर और शान्त, संयमी तथा दयालु, ऐसा जो मनुष्य हैं, वहीं गुणों से ब्राह्मण होता हैं - जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता।

न जात्या ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव न ।
न शूद्रो न च म्लेच्छो भेदिता गुण कर्मभिः ॥ - शुक्रनीति १/३८

इस जगत में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ जन्म से नहीं होते, किन्तु गुण और कर्म के भेद से होते हैं। यहीं धारणा श्री पुरुषोत्तम कृष्ण ने गीता अध्याय ४/१३ में स्पष्ट रूप से कही हैं -

चातुर्वर्णं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः ।

साधक या समाज के चारों वर्ण मेरे द्वारा रचित सृष्टि हैं, किन्तु उसका विभाजन गुण और कर्मों के विभाग से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की रचना हुई हैं ।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ - गीता ५/१८

पण्डित के लक्षण बताते हुए कहा हैं कि -- ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में भी जो समान भाव से देखें, वे ही पण्डित (ब्राह्मण) हैं न कि जन्म व अक्षर जानने से। पुनश्चः -

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् ।
सर्व भूतेषु आत्मवित् यः पश्यति स पण्डितः ॥ - सुभाषितसार

जो पराई स्त्रियों को माता के समान, पराये धन को मिट्टी के ढ़ेले (लोहे) के समान और सब प्राणी मात्र को आत्मामय देखते हैं, वहीं पण्डित हैं, विपरीत अक्षर-ज्ञान या जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होते ।

ब्राह्मणस्तु समुत्पन्नाः सर्वे ते किं नु ब्राह्मणः ।
न वर्णं तो न जनकाद्ब्राह्मतेजः प्रपद्यते ॥ - शुक्रनीति

सम्पूर्ण जीव ब्रह्मा से उत्पन्न होने से क्या ब्राह्मण हो सकते हैं ? अर्थात् नहीं । वर्ण से और पिता के तेज से ब्रह्मतेज की प्राप्ति नहीं हो सकती, अपितु गुणों से ही ब्राह्मणादि के तेज को प्राप्त हो सकते हैं ।

कर्म शील गुणाः पूज्यास्तथा जाति कुलेनहि ।
न जात्यान कुलै नैव श्रेष्ठत्वं प्रतिपद्यते ।।५५।।
विवाहे भोजने नित्यं कुल जाति विवेचनम् ।
सत्वान्गुण सम्पन्नस्तथाभि जन बान्धनी ।।५६।।

– शुक्रनीति, अध्याय २

जैसे कर्मशील गुण पूज्य हैं, उसी प्रकार जाति-कुल पूज्य नहीं अर्थात् केवल जाति और कुल से कोई श्रेष्ठता को प्राप्त नहीं होता । विवाह और भोजन में नित्य सावधान रह कर गुणी और कुटुम्बी, धनी, कुल व जाति का विवेक करना चाहिए । गुणहीन एवं जन्म की जाति से कदापि कोई श्रेष्ठ नहीं होता ।

नीति-प्रकाण्डाचार्य महर्षि शुक्राचार्यजी पुरोहित के लक्षण-कथन करते हुए शुक्रनीति के अध्याय २ में लिखते हैं -

दुतस्ततः कमादेते पूर्वश्रेष्ठा यथा गुणाः ।
मंत्रानुष्ठान सम्पन्नस्त्रेविद्यः कर्म तत्परः ।।७८।।
जितेन्द्रियो जित क्रोधो लोभ मोह विवर्जितः ।
षड्ंग वित्सांग धनुर्वेद च अर्थ धर्मवित् ।।७६।।
यत्कोप भीत्या राजापि धर्म नीति रतो भवेत् ।
नीति शास्त्रास्त्र व्यूहादि कुशलस्तु पुरोहितः ।।८०।।
सेवाचार्यः पुरोधा यः शापानुग्रहयोः क्षमः ।
विना प्रकृति सन्मन्त्रादाज्य नाशो भवेद् ध्रुवम् ।।८१।।

मंत्रानुष्ठान में सम्पन्न कुशल, ऋग्-यजु-सामादि वेदत्रय के पूर्ण ज्ञाता, कर्म में तत्पर, जितेन्द्रिय, जितक्रोध, लोभ और मोहरहित के साथ ही वेद, वेदांग, व्याकरणादि छः अंगों का तथा धनुर्वेद (युद्धकला) नीतिशास्त्र, ज्ञाता व धर्मज्ञ होने के साथ ही आत्मिक शक्ति की अधिकता भी होना बतलाया हैं कि जिसके भय से राजा भी धर्म और नीति में तत्पर हो जाय । इस प्रकार से सर्व नीति-शस्त्रास्त्र-शास्त्र के समूह में कुशल हैं **वही पुरोहित होता** हैं । वही

आचार्य-पुरोहित हो सकता हैं, जिसमें शाप/अनुग्रह करने की शक्ति हो।

अन्यद्रजोधिकं तेजस्तेषु सत्त्वाधिकं वरम् ।
सर्वाधिको ब्राह्मणस्तु जायते हि स्वकर्मणा ।।२७३।।
तत्तेजसोऽनुतेजांसि सन्ति च क्षत्त्रियादिषु ।
स्वधर्मस्थं ब्राह्मणं हि दृष्ट्वा बिभ्यति चेतरे ।।२७४।।
क्षत्त्रियादिर्नान्यथा स्वधर्मं चातः समाचरेत् । - शुक्रनीति

ब्राह्मण अपने कर्म में सब से अधिक होता हैं और क्षत्रियादिकों में उसके तेज से न्यून तेज होता हैं । अपने धर्म में टिके हुए धर्म-मय ब्राह्मण को देखकर क्षत्रिय आदि सब डरते हैं, अन्यथा नहीं ! इससे ब्राह्मण अपने धर्म का आचरण करें । इतना ही नहीं, ब्राह्मण-लक्षण के साथ राजधर्म का भी निर्वाह करें । द्रष्टव्य - शुक्रनीति, अध्याय ४ में श्लोक ५३५ से ५३७ तक बताया हैं कि -

दांत कुलीनं मध्यस्थ मनुद्वेग करं स्थिरम् ।
परत्र भीरू धर्मिष्ठ मद्युक्तं क्रोध वर्जितम् ।। - श्रुति

जब राजा न्याय (निर्णय) करें तब वेद के पारगामी, जितेन्द्रिय, समबुद्धि, कोमल वचन, स्थिर बुद्धि द्वारा परलोक से डरने वाला धर्मिष्ठ, उद्योगी, क्रोधरहित हो, ऐसे ब्राह्मण को ही पद पर नियुक्त करें । यदि ऐसा विद्वान ब्राह्मण न मिले तो लक्षणीय क्षत्रियादि को धर्म-शास्त्र ज्ञाता होने पर नियुक्ति दें । क्या आज के न्यायाधीक्षक, वकील या जनतन्त्र द्वारा चयनित/चुने जाने वाले नेता ऐसे हैं ? यह निर्णय पाठकों द्वारा जनता के हाथ में हैं । -

आनृशंस्यं सत्य् वाक्यमऽहिंसा तप आर्जवम् ।
अद्रोहोऽनभिमानश्च ह्रस्तितिक्षा दमः शमः ।।
यस्मिन्नेतानि दृश्यन्ते स पुरोहित उच्यते ।

- महाभारत, शान्ति पर्व, अध्याय ७९/४

अक्रूरता, सत्यवादिता, कृतज्ञता, दूरदर्शिता, अहिंसा, तप, सरलता,

ईर्षा-द्वेष का अभाव, अभिमान-रहितता, उचित लज्जा, सहनशक्ति, मन-संयम और शान्ति, यह गुण जिन में पाये जाय, उन्हें ही पुरोहित, ब्राह्मण व साधु कहते हैं, अन्य को नहीं । क्या आज के ब्राह्मणों या पुरोहित व साधु कहलाने वालों में जन्म जातीयता के अभिवक्ताओं में यह लक्षण मिलते हैं ? यदि नहीं तो वह शूद्र ही हैं ।

सत्यं दान क्षमा शीलम् आनृशस्यं त्रता घृणा ।
तपश्च दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ।।

– महाभारत शान्तिपर्व अध्याय १८६

भारद्वाज द्वारा किये प्रश्न के उत्तर में भृगु ऋषि कहते हैं –

शूद्रेतु यद् भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न दृश्यते ।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो ब्राह्मणो न च ।।२५।।
यत्रेतल्लक्ष्यते सर्व वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः ।
यत्रै तन्न भवेत्सर्वं तं शूद्रमिति निर्दिशेत् ।।

– महाभारत, वनपर्व, अध्याय १८०/२६

सत्य, दान, अद्रोह, अक्रूरता, उचित लज्जा, करूणा और तप, यह गुण जहाँ दिखाई देवें **वह ब्राह्मण** हैं । आगे स्पष्ट कर दिया कि शूद्र-कुलोत्पन्न किसी प्राणी (पुरुष) के अन्दर यह गुण पाए जायें तो वह **शूद्र नहीं, अपतु ब्राह्मण हैं** और जिस ब्राह्मण-कुलोत्पन्न पुरूष के अन्दर या जिनमें इनका अभाव हो, **वह द्विजाति नहीं किन्तु शूद्र ही हैं** । बहुधा ऐसे ज्यादा देखने को मिलते हैं – जिन में विवेकहीनता, विचारशून्यता की कमी नहीं । विचारणीय हैं कि यहाँ गुण, कर्म-कृत कितना महान् आदर्श हैं । वस्तुतः यदि ऐसे ब्राह्मणों का आदर-पूजन या उच्च पद देने से तात्पर्य ५ या १० हजार मासिक वेतन से नहीं, क्योंकि द्रव्य की आवश्यकता से अधिक रखने तक को सच्चे ब्राह्मण पाप समझते हैं । प्रयोजन यह हैं कि ऐसे स्वार्थरहित लक्षणीय ब्राह्मण के **न्याय विभाग** में अधिकारी होने से कभी अन्याय नहीं

होगा। प्रजा की उचित स्वतन्त्रता पर कुठाराघात करने वाले नियम नहीं बनेंगे। क्योंकि पीछे बताये उद्धरणों से ज्ञात होता हैं कि धर्माचरण से विरुद्ध राजा (नेता) को वह गद्दी (कुर्सी) से पदच्युत कर सकते हैं - जैसे राजा वेन को पदच्युत करते देर नहीं लगी। - *द्रष्टव्य श्री मद्भागवत महापुराण*। इस शक्ति से स्वराज्य का संचालन हो तो वस्तुतः ''**स्वर्ण में सुगंध**'' की कहावत घटित हो सकती हैं।

हमने यह पूर्वोक्त संक्षेपतः प्राचीन वर्ण-व्यवस्था का दिग्दर्शन कराया हैं। इस प्रकार से नियम, कानून सर्वथा स्वार्थहीन साधु-ब्राह्मणों के हस्तगत रहता और राजा (प्रधानमंत्री आदि) भी उनकी शिरोधार्य आज्ञा का पालन करते रहते तो आज भारतीय समाज की दुर्गति नहीं होती। राज्य-शासन में संवैधानिक धारा-रचने का अधिकार देते हुए मनुस्मृति में कहा हैं -

दशावरा वा परिषद् यं धर्मं परिकल्पयेत्।
त्र्यवरा वाऽपि वृत्तस्था तं धर्मनं विचालयेत् ।।११०।।
एकोऽपि वेद विद् धर्म यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः।
स विज्ञेय परो धर्मो ना ज्ञाना मुदितोऽयतैः ।।११३।।

इस प्रसंग का स्पष्ट विस्तार—विधान मनुस्मृति में अध्याय १२, श्लोक ११० व ११३ में देखने योग्य है।)

वेद, तर्कशास्त्र, निरुक्त, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि में निपुण, भावीदृष्टा, भविष्यवक्ता बड़े-बड़े विद्वान मिल कर जो नियम बनादें अथवा ऐसे सदाचारी वेदज्ञ तीन व्यक्ति भी जो नियम बना देवें या तीन ही क्यों यदि एक ही पूर्णवेदवेत्ता ब्राह्मण-साधु नियम बना दें तो उसे ही प्रधानता दी जाय, विपरीत जो दस हजार की संख्या में इकट्ठे होकर जो अज्ञानी नियम बनालें तो वह भी माननीय नहीं समझे। यह व्यवस्था कोई पक्षपात की प्रेरणा से नहीं अपितु समाज की हित-दृष्टि से ही लक्षणयुक्त कर्म-गुण ब्राह्मणों के हस्तगत दी हैं। किन्तु आज स्वार्थरहित, न्याय-व्यवस्थापक,

ब्राह्मणों (नीतिकारों) के अभाव से सभ्य कहलाने वाले उन अधिकारियों व देश के कर्णधार नेताओं द्वारा जो न्याय का घातक खून-खच्चर किया जाता हैं, वह केवल गरीबों के शोषण की दृष्टि से ही हैं। क्योंकि आज के फैसले (न्याय) जो होते हैं वे लेखक की दृष्टि से वंचित नहीं हो सकते। इसकों यदि स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो यह कह सकते हैं कि **'धन-शासन' सत्तावान कानून को कुचल कर तहस-नहस अस्तित्वरहित निर्जीव बनाते हैं और कानून गरीब को पीस कर अस्तित्वहीन बनाता हैं।**

आज आये दिन होने वाले जनता के मुकदमों या समाचार पत्रों में घोषित कानूनों का उल्लेख किया जाता हैं। वह निश्चय ही चाहे घातक-भयंकर ही क्यों न हो, किन्तु इस जगह इस विषय का विस्तार अनावश्यक होगा। लेखनी यह बताने की चेष्टा करती हैं कि ब्राह्मणों के उच्च कर्म-गुण-कर्त्तव्य अधिकारों को दृढ़ शासन-दृष्टि में रख कर यदि प्राचीन वर्ण-व्यवस्था पर विचार करें तो सम्भव हैं भारत पर १५०० वर्षों से लगे हुए पिछले सर्व व्याधिरूप मूल कलंक की पाप प्रथाऐं जो दहेज, छुआछूत, अमीर-गरीब, पर्दा-प्रथा, बालविवाह आदि सबका मूल निवारण हो सकता हैं, अन्यथा इसका अंकुर उखाड़ना सहज ही नहीं, अस्वाभाविक हो कर पड़ा रहेगा। अतः -

धर्मेणाधिगतो यैस्तुवेदः सपरिवृंहणाः।
ते शिष्टा ब्राह्मणाज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः॥ - मनुस्मृति १२/१०९

ब्रह्मचर्यादि युक्त धर्म से जिन्होंने षड्वेदांगादि[1] सहित वेद-शास्त्र पढ़े हैं, वहीं श्रुति के पक्ष-प्रत्यक्ष करने वाले लोग ही शिष्ट ब्राह्मण जानने चाहियें, किन्तु जन्म से नहीं। विशेष देखिए महाभारत, वन पर्व, अध्याय १८०/३१२, शान्ति पर्व अध्याय १८९ तथा मनुस्मृति १०/६५ में कहे सिद्धान्त -

१. *टिप्पणी :-* देखिये आध्यात्मिक सन्त वाणी शब्दकोष (परिशिष्ठ भाग), एवं रामप्रकाश शब्दावली, उत्तम प्रकाशन, जोधपुर।

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम् ।

क्षत्रियाज्जातमेव तु विद्याद्वेश्यात्तथैव च ।।

अर्थ यह हैं कि एक **शूद्र कुल में उत्पन्न पुरुष भी गुणों से ब्राह्मण बन सकता हैं,** यदि वह ब्राह्मण के गुण कर्मों को धारण करे और उन गुणों के न होने से **ब्राह्मण पुरुष भी शूद्र बन जाता हैं** । ऐसे ही अन्य वर्ण भी परिवर्तन हो सकते है अर्थात् **जन्म से कोई वर्ण-व्यवस्था (जाति) का विधान भारतीय धर्म ग्रन्थों में वैधानिक नहीं हैं** ।

गुण-कर्त्तव्य और अधिकार से क्षत्रिय

पिछले प्रकरण में हम गुण-कर्त्तव्य और अधिकारमय ब्राह्मण वर्ण का स्वरूप वर्णन कर आये हैं, यदि पूर्णतः विद्वत दृष्टि से हम सोचते हैं तो आज के वर्ण अपरिवर्तन सम्बन्धी कपोल-कल्पित अतथ्य युक्त प्रमाणों से बनाये विधानों का वेदोक्त विधि से निष्कर्ष सिद्ध हो जाता हैं कि निश्चय ही वर्ण-परिवर्तन हो सकते हैं । प्रचलित विवादास्पद प्रश्नों के उत्तर सहज ही में प्राप्त होते हैं । इसी प्रसंग में अब क्षत्रियोचित गुण-स्वभाव पर चर्चा करेंगे ।

वेद मन्त्र में वाक्य हैं "**बाहु राजन्य कृतः**" मानव शरीर में भुजाओं का महत्व महान् कर्म-प्रधान हैं । जैसे कि पूर्व बता कर आये हैं कि "सारे शरीर की बाह्यज और आन्तरिक आक्रमणों से रक्षा हाथ करता हैं अर्थात् जब कभी कोई शत्रु हमें मारने के लिए उपस्थित होता हैं तो यह हाथ ही आत्म-रक्षार्थ आगे बढ़ते हैं ।" इसी प्रकार मैला-धोना, गृह-वस्त्र-शरीर की सफाई, दान, मान और शस्त्रास्त्र आदि सर्व कृत्य-कर्म करने में हाथ का भाग ही अधिक फुर्तीला हैं । इसी प्रकार से जो मनुष्य समाज अथवा राष्ट्र की आन्तरिक और बाह्य शत्रु सेना के आक्रमणों से रक्षा करे, वही शूरवीर व्यक्ति क्षत्रिय कहलाते कहलाते हैं ।

क्षत्रिय शब्द का पर्यायवाची शब्द ''**क्षत्र**'' हैं, जिसे कवि-कुल-शिरोमणि कालिदास ने बड़े आकर्षक शब्दों में व्युत्पति मूर्त्त करके कहा हैं -

क्षत्रात् किल त्रायल इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढ़ः ।

-रघुवंश महाकाव्य, सर्ग २

जो क्षत अर्थात् आक्रमणजनक प्रहार या आपत्ति से रक्षा करता हैं, वहीं संसार में क्षत्रिय कहलाता है । युक्तिसंगत से क्षत्रिय को रजपूत या राजपूत भी कहा जाता हैं, जिसे स्पष्ट हैं कि माता के ''**रजपूतेन् रजपूतः**'' रज से जिनका शरीर बना हो उसे ही रज का पूत लाघव से रज+पूत कहते हैं । और जिस राज्य में निवास हो, उस राष्ट्र पदाधिकारी राज का समर्थक हो, उसे राजपूत कहते हैं, विपरीत जन्म-आधार से कदापि नहीं । प्रजा का राजा पितावत् हैं तो सब प्रजा ही राजपूत है, इसमें कोई भेद नहीं हो सकता ।

वस्तुतः वीरता का पोषक ही क्षत्रिय हैं, किन्तु जो कायर, आलस्य से पूर्ण, खटिया पर रात-दिन पड़े रहें । चाय, शराब, अमल, तम्बाखू आदि नशों में पड़े बकते रहे । रण्डियों के नाच, ऐशो-आराम में लगे रहें, दिन चढ़े तक सोते रहें, दीन जनता की बहू-बेटियों का सतीत्व लूटने-लुटाने में आगे रहें । गरीबों के ऊपर शेर बन कर, डरा-धमका कर बेगार-काम लेवें और घर में चूहे की कटकटाहट सुन कर या गोली का धड़ाका सुन कर मूर्च्छित हो जाते हैं, वे पुरुष चाहे कितने ही उच्च कुल में क्यों न पैदा हूए हों किन्तु वे जन-शोषक क्षत्रिय कहलाने के अधिकारी नहीं होते ।

समाज की सैन्य-शक्ति का पूर्णतया सदुपयोग गुण, कर्म, स्वभाव से क्षत्रिय-प्रकृति वालों की प्रवृति अर्थात् जीवन-कार्य भी क्षत्रिय जैसा

होना चाहिए । आज विज्ञापन और प्रचार द्वारा सेना में भर्ती की प्रेरणा दी जाती हैं । भर्ती करने के लिए भारी प्रलोभन भी दिखाये जाते हैं । यह सब उपाय गलत हैं, इन प्रलोभित और प्रचार के प्रभाव में सेना में प्रायः ऐसे लोग भर्ती हो जाते हैं जो गुण और स्वभाव से क्षत्रिय वर्ग के न होकर हल्दी-धनिये बेचने के अधिकारी ही होते हैं । ऐसी अवस्था में सेना का देश और जाति का नहीं प्रत्युत् शासन का भक्त बनाये रखने के लिए इसको बाहरी वातावरण से सुरक्षित रखने और सेना छोड़ने वाले को कठोर दण्ड का भय बताने की आवश्यकता अनुभव की जाती हैं । यह अस्वाभाविकता इसी कारण हैं कि सेना में क्षत्रिय गुण और स्वभाव-रहित व्यक्ति भी 'येन-केन-प्रकारेण" भर्ती हो रहे हैं ।

भारत में कर्त्तव्यहीन व्यक्ति के लिए कोई अधिकार नहीं हैं । अधिकार का स्त्रोत कर्त्तव्य-पालन हैं, यही शास्त्रदत्त विवेचन हैं ।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।

दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।। - गीता १८/४३

शूरवीरता, तेज (क्रान्ति), धैर्य, चतुरता और युद्ध में भी न भागने का स्वभाव एवं दान और ऐश्वर्य-सम्पन्न, स्वामिभाव अर्थात् निःस्वार्थ भाव से सबका हित सोच कर शास्त्राज्ञानुसार शासन द्वारा प्रेम-सहित पुत्रतुल्य प्रजा-पालन करने का भाव, यह सब क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं ।

लोक संरक्षणे दक्षः शूरो दांतः पराक्रमी ।

दुष्ट निग्रह शीलोयः सर्वैः क्षत्रिय उच्यते ।। - शुक्रनीति १/४१

जो लोक रक्षण की रक्षा करने में चतुर एवं शूरवीर, आत्मसंयमी, पराक्रमी और दुष्टों को दण्ड देने में समर्थ हो, वहीं क्षत्रिय कहलाता हैं । यह गुण शुक्राचार्यजी बताते हैं ।

प्रजानां रक्षणं दान मिज्याऽध्ययनमेव च ।

विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ।। - मनु० १/८९

प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, विद्या पढ़ना और विषयों के अन्दर न फंसना, संक्षेप में यह क्षत्रिय धर्म हैं। यदि ऐसा न हो तो नीतिकार उचित न्याय बताते हैं।

उत्तमो नीच संसर्गाद्रवेन्नीचस्तु जन्मना। - शुक्रनीति ६/१४

जो जन्म से उत्तम है, वह नीच के संसर्ग से नीच हो जाता हैं।

कर्मणोत्तम नीचत्वं कालत्तस्तु भवेद् गुणैः।
विद्या कलाश्रयेणैव तन्नामाजाति रूच्यते॥ - शुक्रनीति ६/१५

अप्रयोजनीय कर्म के द्वारा उत्तम भी नीच हो जाता हैं, विद्या और कला के आश्रय से नीच भी उत्तम जाति (वर्ण) का कहलाता हैं। किन्तु जन्म से कोई उच्च नहीं। पुनश्चः -

सद्रक्षणं दुष्ट नाशः स्वांशा दानं तुक्षत्रिये॥ - शुक्रनीति ६/१७

सज्जनों की रक्षा, दुष्टों का नाश, अपने भाग का लेना और दान देना, यह क्षत्रिय के कर्म हैं।

योऽधीत विद्यः सकलः स सर्वेषां गुरुभवेत्।
न च जात्यानधीती यो गुरुर्भवितुमर्हति॥ - शुक्रनीति ६/२२

जिसने सम्पूर्ण विद्या पढ़ी हो, वह सब प्रकार का गुरू होता हैं, जो पढ़ा हुआ न हो, वह जाति से गरु (बड़ा) नहीं होता।

इज्याध्ययन दानानि कर्माणि तु द्विजन्मनाम्।
प्रतिग्रहोध्यापनं च याजनं ब्राह्मणोधिकम्॥ - शुक्रनीति ६/१६

यज्ञ करना, पढ़ना, दान देना यह कर्म करने वाले द्विजाति क्षत्रिय, वैश्य होते हैं। और जो प्रतिग्रह, यज्ञ कराना और पढ़ाने का कर्म करें वहीं ब्राह्मण होने का अधिकार रखता हैं।

सर्वास्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थ स महाद्युतिः।
मुखबाहुरूपज्जानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत्॥ - मनु० १/८७

उस महातेजस्वी ने इस सब सृष्टि की रचनार्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्मों को मुख और बाहू के गुण-धर्म रूप से पृथक्-पृथक् बनाया । **इस श्लोक में स्पष्ट ही कर्म से वर्ण की स्थापना का मूल मिलता हैं न कि जन्म से ।**

इस प्रकार से ब्राह्मण और क्षत्रियों की प्रकृति में बड़ा भेद यह हैं कि जहाँ ब्राह्मण में शुद्ध सात्विक भाव प्रधान हैं, वहाँ क्षत्रिय-स्वभाव में सत्वगुण से रजोगुण का अंशभाव न्यूनाधिक मिला रहता हैं । ब्राह्मण केवल कर्त्तव्य-भावना से प्रेरित होता हैं, परन्तु क्षत्रिय में कीर्ति प्राप्त करने की भी प्रबल आशा रहती है, ब्राह्मण कीर्ति-शक्ति का भूखा नहीं । क्षत्रिय में यही दोनों प्रवृतियाँ विशेष रूप से रजोगुण-सतोगुणमय होती हैं ।

प्रधानतः संस्कार-सम्पन्न ब्राह्मण और क्षत्रिय में गुणकृत-कर्म भेद मात्र हैं । इनका आपसी प्रेम इतना ही अनिवार्य है, **जितना कि दिमाग से हाथों का ।** हस्त जो जो कार्य करता है - पूर्णतः मस्तिष्क की प्रेरणा से ही करता हैं । पेट में क्षुधा-पिपासा लगती हैं तो **उस वैश्य भाग से भी मस्तिष्क का पूर्णतः सम्बन्ध है** - जल, भोजन के गुण-दोष विचार करके गन्धाऽगन्ध आदि का निर्णय लेने के पश्चात् ही पेट भरने की कर्म **आज्ञा हाथ (क्षत्रिय) को भी मस्तिष्क (ब्राह्मण) ही देता हैं** । चलने, उठने, बैठने आदि की क्रिया करने के लिए **पाँव (शूद्र) को भी उत्तमांग (ब्राह्मण) ही आज्ञा देता है** । तात्पर्य यह है कि समस्त शरीर मनेन्द्रिय, सुख-दुःख के अनुभव सहित सब मस्तिष्काधीन ही हैं । पूरे शरीर का संचालन-केन्द्र मस्तिष्क ही है, जब कभी मस्तिष्क विकारित, पीड़ा या मदात्य के कारण ज्ञानशून्य हो जाता हैं तो पूरा शरीर हानिकारक उधेड़बुन में गड़बड़-झमेला बन जाता हैं । बस यही स्थिति वैराट शरीर रूप समाज (वर्ण-व्यवस्था) के शरीर में भी घटित होती हैं । जब तक सच्चा, त्यागशील विद्वान ब्राह्मणकर्मी मार्गदर्शन कर्त्ता न हो तब तक क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र

भी अपने-अपने कर्त्तव्य को नहीं जान सकते ।

इसी स्वरूप का विवेचन हमारे महत्शास्त्रों में बड़ा रोचक और सत्यता से हुआ हैं कि -

द्विधाहि राष्ट्रं भवति क्षत्रियस्य ।

ब्रह्मक्षत्रं यत्र विरूध्यतीह ।। - महाभारत, शान्तिपर्व ७/४६

जो जहाँ ब्राह्मण और क्षत्रियों का परस्पर विरोध होता हैं, उस राष्ट्र के दो टुकड़े हो जाते हैं यानि उस राष्ट्र की सत्ता देर तक टिकी नहीं रह सकती ।

नैषामर्थो वर्धते जातु गेहे ना धीयते तत्प्रजा नो यजन्ते ।

अपध्वस्ता दस्युभूता भवन्ति ये ब्राह्मणान् क्षत्रियाः संत्य जन्ति ।।

- महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ७३/४८

जो क्षत्रिय ब्राह्मणों (विद्वानों) का परित्याग कर देते है, या सच्चे ब्राह्मणों की आज्ञा का पालन नहीं करते, उनके घर में ऐश्वर्य की वृद्धि नहीं होती और उनकी प्रजाओं में उत्तम शिक्षा तथा यज्ञादिक धार्मिक कृत्यों का प्रचार नहीं रह सकता और वह सब दस्यु (अनार्य-भ्रष्ट-म्लेच्छ) हो जाते हैं ।

ब्रह्म वृक्षो रक्ष्यमाणो मधु हेम च वर्षति ।

अरक्ष्यमाणः सततमश्रु पापं च वर्षति ।। - महा० शा० ७३/५२

यदि ब्राह्मण रूपी वृक्ष की रक्षा करो तो यह शहद और स्वर्ण के समान उत्तम गुण तथा ऐश्वर्यों की वर्षा करने वाला होता हैं । यदि रक्षा नहीं करोगे तो वह आँसू व पाप की वृष्टि करता हैं । इतना हीं नहीं -

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह ।

तं पुण्यं लोकं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ।। - यजुर्वेद २०/२५

वही देश पुण्य-रूप है, जहाँ सब ज्ञानी लोग मिल कर एक उत्तम राजा (नेता) के साथ रहें । जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एक ही उद्देश्य

रखते हुए अविरोध से साथ-साथ विचरण करें, वहीं पर देव (ईश्वर) प्रकृति के साथ सहयोग में रहता हैं ।

मिथ्यो भेदाद ब्राह्मण क्षत्रियाणां प्रजादुःखं दुःस्हं चा विशन्ति ।
एवं ज्ञात्वा कार्य एवेह विद्वानर पुरोहितोऽनेक विद्यो नृपेण ।।

ब्राह्मण और क्षत्रियों के विरोध के परिणाम में सारी प्रजा को दुःखी होना पड़ता हैं । जब निःस्वार्थ सदाचारी नियम बनाने वाले न हों तो राजा (नेता) प्रमुख स्वार्थ को सिद्ध करने हेतु मनमाने कानून बना लेते हैं, जिससे प्रजा को कष्ट भोगना पड़ता हैं । वस्तुतः यथार्थ-परक अमात्य (विद्वतमण्डल) ही कल्याणकारी व्यवस्था का संचालक हो सकता हैं ।

एकं शास्त्र मधीयानोन विंद्यात्कार्य निर्णयम् ।
तस्माद्बह्वागमः कार्यो विवादूषूत्तमो नृपैः ।। - शुक्रनीति ४/५५६

एक शास्त्र पढ़ा हुआ मनुष्य कार्य के लिए निर्णय को नहीं जान सकता, जिससे विवादों के निर्णयार्थ ऐसे उत्तम मनुष्य को नियम करना चाहिए, जिसने बहुत शास्त्र पढ़े हैं, उनका विवेक-तर्क बढ़ा हो एवं सार्वदेशिक निर्णय लेने में सक्षम हो । सनातन धर्म के आर्ष ग्रन्थों में ऐसे प्रमाणों का अथाह भण्डार हैं, किन्तु आज का समाज उसे अनदेखा करते हुए अन्धभक्त बन रहा हैं ।

गुण-कर्त्तव्य और अधिकार से वैश्य

समाज के तीसरे अंग के विषय को यजुर्वेद ३१/१२ के मंत्र में जो स्पष्ट किया है "**उरू तदस्य यद्वैष्यः**" इसका ही प्रतिरूप अथर्ववेद में १०/६० के अन्तर्भाग में आया हैं **"मध्यं तदस्य यद् वैश्यः"** इन सबका तात्पर्य यही हैं कि शरीर के मध्य भाग पेट से जंघा तक है । उनका कार्य तत्सम रूप वैराट शरीर समाज में वैश्य वर्ण का ही है । यही भाग शरीर के दूसरे अंगों की अपेक्षा अधिक कोमल व विश्राम-इच्छुक तथा भोग-प्रिय हैं । अन्न-फलादि का संचय करके रस-परिपाक, रुधिरादि

धातुओं के रूप में परिणित कर फेफड़ों आदि में देता हैं और सम्पन्न शरीर को पुष्ट करता हैं।

इस प्रसंग में चैतन्य का भाग न्यून ही हैं। इतने शरीरावयव पुष्टि के अतिरिक्त एक स्थान से दूसरी जगह तक आने-जाने में शरीर का भार वहन करके सार्थक होना भी कर्त्तव्य हैं। इसी प्रकार से जो समाज मे उच्च ज्ञान-विहीन केवल मात्र धन-अन्नादि संपति-सामग्री संग्रह करके अन्य ब्राह्मण, क्षत्रिय व शूद्रों तक के उपयोग हेतु जो विभाग कर देते है और देश-प्रदेश में यात्रादि व्यवहार-व्यापार करते हैं, उन्हें ही **वैश्य** कहा करते हैं।

इस शरीर के उदरस्थ अंग में जितनी उच्चता हैं उतनी ही मलादि त्याग, दुर्गंधि, कृमि आदि जन्तु व बीमारियों के उद्भव का मूल कारण कब्जादि होने से सिद्धान्त में महानीच भी कहला सकता हैं, किन्तु कोई अन्य उच्च या निम्न अंग की भिन्नता नहीं दर्शाता। इसी तरह वैश्य समाज में लोभ, कलम-कसाईपन तिगुने-दुगुने लिखने व विवेकशून्यता की मात्रा रहने से ही कवियों ने शायद यह कहा हो कि

बाणिया की बाण, जाने कोईक बाणियो।
पाणी पीवे छाण, लोहू पीवे अणछाणियो ॥१॥ तथा -
तुलसी कबहूँ न कीजिये, वणिक पूत विश्वास।
धीरज दे अरू धन हरे, रहे दास का दास ॥२॥

बाणिया अपने बाप को, ठगत न लावे वार।
निशि वासर जननी ठगे, जहाँ लेत अवतार ॥
जहाँ लेत अवतार, मास दश उदर में राखे।
गुरु से करे विवाद, आप पण्डित है भाखे ॥
कहै "गिरिधर" कविराय, बेचे हल्दी अरू धनिया।
मित्र जानि ठगि लेहि, जब लगि भक्ता बनिया ॥३॥

गुण ज्ञान समादर्श भूल गये, अरु बेच रहे हलदी धनिया ।
बन्धु सम्बन्ध को नेक न मानत, लैन रु दैन लियो पनिया ।।
छल झूँठ-ठगी उर ठोस भरी, मन दो गुन ब्याज लगावत जनिया ।
भक्ति रु ज्ञान में "रामप्रकाश" हो, को विश्वास न है बनिया ।।४।।

किन्तु निरामात्र ऐसा ही नहीं ? इसके लिए शास्त्रों में महान् सिद्धान्त बताए हैं, वह कर्म-धारणकर्ता ही महाजन (वैश्य) हैं ।

कृषि गौरक्ष्य वाणिज्यं वैश्य कर्म स्वभावजम् ।। गीता १८/४४

खेती करना, गौरक्षा-पालन-सेवा, क्रय-विक्रय रूप सत्य-व्यवहार करना अर्थात् वस्तुओं के खरीदने-बेचने में तौल-नाप और गिनती आदि कम देना अथवा अधिक लेना एवं वस्तु को बदल कर या एक वस्तु में दूसरी (खराब-हल्की) वस्तु मिलावट कर देना अथवा अच्छी ले लेना तथा नफा, आढ़त और दलाली ठहरा कर उससे अधिक दाम लेना या कम देना या झूँठ, कपट, चोरी और जबरदस्ती से एवं अन्य किसी भी प्रकार से दूसरे के हक को ग्रहण कर लेना इत्यादि दोषों से रहित जो सत्यतापूर्वक पवित्र वस्तुओं का व्यापार हैं, उसका नाम **'सत्य व्यवहार'** हैं ।

-गीता प्रेस, गीता टिप्पणी से उद्धृत

ये वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं अर्थात् जिसमें ये जन्मजात गुण हों, **वह वैश्य है,** जन्म का कोई कारण नहीं अर्थात् -

क्रय विक्रय कुशला ये नित्यं पण्य जीविनः ।
पशु रक्षा कृषि करास्ते वैश्याः कीर्तिता भुविः ।। - शुक्रनीति १/४२

वस्तु खरीदने-बेचने (लेने-देने) में निपुण होकर निरन्तर अपनी आजीविका व्यापार के व्यवहार से करते हैं और पशुओं की रक्षा और खेती करने वाले जीव हैं, वे समाज में **वैश्य** कहलाते हैं ।

भूत्वा महाधनः सम्यक् पोष्य वर्ग तु पोषयेत् ।
अदत्त्वायत्किचिद् पिन नये द्दिव संबुधः ।। - शुक्र० ३/२०७

महाधनी होकर पालन करने योग्य पुत्र-परिवार आदिकों का भली प्रकार से पालन और सत्यदान के बिना एक दिन भी व्यतीत न करें।

कृषि गो गुप्ति वाणिज्य मधि कंतु विंशास्मृतम् ॥ - शुक्र० ४/५८

खेती, गौओं की रक्षा करना, व्यवहारपूर्ण होना, **यह वैश्यों के गुण** कहे गये हैं।

पशूनां रक्षणं दान मिज्याऽध्ययन मेव च ।

वाणिज्यं च कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥ मनु० १/९०

पशुओं का पोषण, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, व्यापार करना, ब्याज लेना, खेती करना इत्यादि **यह वैश्य के लक्षण** हैं। इसमें ब्याज पर शास्त्रीय विधान हैं कि -

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिं नैव प्रयोजयेत् ॥ मनु० १०/११७

ब्राह्मण और क्षत्रिय-कर्मीय व्यक्ति ब्याज से धन बढ़ाने को न दें, ब्राह्मणों को प्रतिग्रह जनित पाप की निवृति में त्याग और तपस्या का महत्व हैं। जैसे कि -

प्रतिग्रह निमित्तं तु त्योगेन तपसैव च । मनु० १०/१११

वैश्यों के लिए ब्याज का विधान निम्न प्रकार से किया गया हैं -

नाति सांवत्सरीम् वृद्धि चा दृष्टां पुनर्हरत ।

चक्र वृद्धिः काल वृद्धि कारिका कायिता च या ॥ मनु० ८/१५३

ब्याज पर ब्याज और माहवारी ब्याज और ब्याज के दबाव से ऋण लिखवा कर के उस पर सूद और शरीर से कोई काम सूद में न ले, अर्थात् **बन्धुवा मजदूरी या दासत्व भाव का अनुचित लाभ नहीं लेवें**। साथ ही मूल धन के सिवाय कितने भी समय के बाद मूलधन के बराबर से अधिक ब्याज लेने का अधिकार कदापि न रखें। - *शुक्रनीति*

अभिप्राय-रूप निष्कर्ष यह हुआ कि ब्राह्मण और क्षत्रियों के लिए अधिक धन संग्रह करना निषिद्ध माना गया हैं। ब्राह्मणों को तो अगले

दिन के लिए आवश्यक भोजनादि सामग्री भी पास न रखने वाले को अति श्रेष्ठ माना हैं । इसलिए इन **ब्राह्मण-क्षत्रिय** दोनों को तथा गरीब-अज्ञानी शूद्रों को जिन्हें काम में लगाना, यह सब तीनों का आर्थिकाधार पूर्णतः वैश्य पर ही निर्भर हैं, परन्तु फिर भी **ब्राह्मणों और क्षत्रियों** के समान इन पर कोई विशेष भार नहीं, अपितु तपोमय या कठिनता रूप उत्तरदायित्व न होकर कुछ भोग-लालसाजनक विलासी जीवन की भी छुट्टी मिली हुई हैं । सम्पूर्ण ऐश्वर्य के साथ-साथ सम्मान-शक्ति को हस्तगत रखना चाहे तो उस प्रांगण में धर्म-शास्त्र मना नहीं करते हैं । क्योंकि धन, कीर्ति, शक्ति, प्रतिष्ठा, यह सब इकट्ठी नहीं मिल सकती । अब यदि वह वैश्य (वैश्यवृतिक) कहें कि सम्मान भी चाहिए तो भोग्य सामग्री का त्याग करके तपस्या रूप निःस्वार्थ जीवन अपनाना पड़ेगा और यदि भोग-लालसा-तृप्ति करनी है तो लोक-संरक्षण में धन का मोह छोड़ना ही कल्याणदायक हैं, अन्यथा पाप रूप अनिष्ठ हो जायेगा ।

विशेष बताने की यहाँ आवश्यकता नहीं, अपितु इतना ही भाव ग्राह्य हैं कि गुण, कर्म, स्वभाव-कृत, किसी भी द्विजाति मात्र को अस्पृश्य के भेदभाव का अधिकार रखने व कहने मात्र को भी अधिकार नहीं हैं, किन्तु एक ही समाज में गुण-कर्म की पूजा का विधान पालन है । सब अपने पूर्वकर्म कृतानुसार स्वभाव-गुण, कर्म को प्राप्त होते हैं । जैसे कि -

प्राक्कर्म फल भोगार्हा बुद्धिः संजायते नृणाम् ।

पाप कर्माणि पुण्ये वा कर्तुं शक्तो न चान्यथा ।। - शुक्रनीति १/४५

पूर्व कर्म के फल भोगने योग्य मनुष्य की बुद्धि पाप कर्म अथवा पुण्य कर्म में प्रवृत्त होती हैं, तब ही बुद्धि के अनुसार कर्म कर सकता हैं । यथा -

कर्म प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करहि तसहि फल चाखा ।- (मानस)

इस अर्द्धाली में आप चाहे जहाँ घटित कर सकते हैं, लोक या

परलोक की रूपरेखा में, वहीं निष्कर्ष यहीं पर भी होगा ।

इस प्रकार से हमारे मूल प्राचीन शास्त्र-पद्धति में हजारों प्रमाणों की बाहुल्यता हैं, किन्तु हमने शूक्ष्मातिशुक्ष्म संक्षिप्त संकलन करके प्रस्तुत किए हैं । अब विशेष न लिख कर **चतुर्थ शरीरांग चरणवत्** समाज के पिछड़े **शूद्र वर्ग** के लिए भी कुछ बताना उत्तम रहेगा ।

गुण-कर्त्तव्य और अधिकार से शूद्र

पिछले प्रकरणों में हम ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य वर्ण निश्चिततया के लक्षण-कर्त्तव्यों के गुणों पर विचार करके आये हैं । इन तीनों वर्णों के लिए शास्त्रीय परिभाषा में **द्विज या द्विजन्मा** शब्द का प्रयोग होता आया हैं क्योंकि -

जन्मानां जायते शूद्रः ***संस्कारात्*** *द्विज उच्यते ।*
वेदपाठी भवेद् विप्रः ब्राह्म जानाति सः ब्राह्मणः ।। - व्यास स्मृति

जन्म से सब शूद्र हैं, वेदोक्त यज्ञोपवीत सतगुरू मंत्रदीक्षा सहित ईश्वर शरणागति, गायत्री संस्कार से वीर्य-दोष-निवृत्ति द्वारा **पुनर्जन्मी द्विज** और वेद-पाठ करने पर **विप्र** तथा ब्रह्म-स्वरूप तत्व, वेद विधि का ज्ञान प्राप्त करने वाला ही **ब्राह्मण** कहलाता हैं ।

इस स्मृति-नीति के अनुसार मानव मात्र सभी जन्म से शूद्र ही होते हैं । आगे के जीवन में धातृ-माता के अतिरिक्त विद्या (सरस्वती) माता और आचार्य पिता के द्वारा करवाये गायत्री दीक्षा-वेदाध्ययन तथा उपनयन-संस्कार अर्थात् जनेऊ (यज्ञोपवीत), सतगुरु शरणागति ईश्वर आराधना से इनका **द्वितीय जन्म** होता हैं, जैसे कि मनुस्मृति में कहा गया हैं -

ब्रह्म वर्चस कामस्य कार्य विप्रस्य पंचमे ।
राज्ञो बलार्थिनः ***षष्टे*** *वैश्यस्ये हार्थिनाऽष्टमे ।।२/३७।।*

अषोड्साद् ब्राह्मणस्य सावित्री नाति वर्तिते ।
आद्वाविशात्क्षत्र बन्धो रा चतुर्विंशते विशः ।।३८।।
अतऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथा कालमस्संस्कृताः ।
सावित्री पतिता व्रात्या भवन्त्यार्य विगर्हिताः ।।३६।।
नैतरे पूतै विधि वदापद्यपि हि कर्हिचित् ।
ह्या ह्यान्यो नांश्च सम्बधाना रचेथ् ब्राह्मणः सह ।।४०।।

वेदाध्ययन के अर्थ में ज्ञानादि से बढ़ा तेज **ब्राह्मण-वर्चस्व** कहलाता हैं, उस की इच्छा करने वाले **विप्र** का पांचवे वर्ष में उपनयन (जनेऊ धारण) करे । बलार्थी क्षत्रिय का छठे वर्ष और कृष्यादि कर्म की इच्छा वाले **वैश्य** का आठवें वर्ष में उपनयन करे । सोलह वर्ष पर्यन्त ब्राह्मण की सावित्री नहीं जाती और क्षत्रिय की २२ वर्ष पर्यन्त, वैश्य की २४ वर्ष पर्यन्त अर्थात् **उपनयन काल की यह परमावधि है,** इसके उपरान्त **तीनों वर्ण पतित हो कर शूद्र बन जाते हैं,** तब उनके साथ विवाहादि सम्बन्ध नहीं करना चाहिए, जब तक कि वह विशेष प्रायश्चित करके शुद्ध न हो जावें ।

समाज को धर्म के मार्ग पर स्थित रखने के लिए ही यह **प्रायश्चित** का दण्ड-विधान हमारे तत्वज्ञ शास्त्रकारों ने समय-समय पर सामाजिक बहिष्कार के लिए प्रबल शासन की आज्ञा दी हैं, जिससे पतित होने के भय से प्राणी सदैव डरते रह कर उच्चभाव प्राप्ति हेतु धर्माचरण करते रहें ।

परिचर्यातमकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ।। - गीता १८/४४

पुरूषोत्तम भगवान् श्री कृष्ण ने स्पष्ट ही शूद्र धर्म का वर्णन किया हैं कि सब द्विजाति विद्वान, रक्षक तथा पोषकों की सेवा करना मात्र स्वाभाविक कर्म हैं, क्योंकि वह वैदिक उच्च संस्कारों से पतित होकर विद्या, वीरता,

चतुरता-विहीन होने से विचार-शक्ति की न्यूनता के कारण से गृह-सम्बन्धी कार्य-परिचर्या कर सकता हैं। तभी तो यजुर्वेद में **''तपसे शूद्रम्''** (३०/५) कह कर स्पष्टीकरण किया गया हैं कि श्रम के कार्य हेतु श्रमशील शीघ्र गति वाले पुरुष को नियुक्त करों।

सनातन धर्म-शास्त्र तो प्राणी के **'यथा प्रकृतिस्तथा स्वभावः'** रूप को मान कर समाज रचना का आदेश देता हैं, जिसका विवेचन विदुष-मण्डल ने जो प्रसारित किया है, उसे देखने से सम्भव हैं कि इसी लक्ष्य पर आज भी वर्ण-विभाजन हो जाय तो **कोई शूद्र नहीं मिल सकेगा** अर्थात् आज जिनकों शूद्र माना जाता हैं व सब शुद्धि के पात्र व उच्च वर्ण-गम्य प्रवेश कर सकते हैं अर्थात् आज के शूद्रों में प्रत्येक कला-विद्या जानने वाले भी मिलते हैं, जो द्विजाति-शुद्धि को पा सकते है तथा शेष अन्य वर्ण मानव मात्र की आचरण-शुद्धि से कोई पतित नहीं होगा। सब अपने-अपने कर्त्तव्य में तत्पर रह कर कार्य में लगे रहने से राष्ट्र का उत्थान होता रहेगा तथा व्यवस्थित समाज-राज्य का संचालन भी होता रहेगा।

कर्त्तव्य से वर्ण-व्यवस्था होने से शतप्रतिशत यह सिद्ध ही हैं कि **कोई भी नीच बनना या पतित होना नहीं चाहता हैं**। इस पतित होने के भय से सब स्थिर उच्च कर्म में लगे रह कर शान्ति-स्वराज्य प्राप्त करेंगे। अपने-अपने गुण-कर्मों के स्वभाव से **द्विजाति वर्ण** के अतिरिक्त कोई विरले ही तप-वीरता, विद्या, गुण, खेती, पशु-पालन क्रियादि विहीन शूद्र बने रहेंगे। उन्हें कार्य-सेवाओं में नियुक्त कर दें। बस ! फिर कोई ऊँच-नीच की अड़चन ही नहीं रहेगी।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥ - गीता १८/४१

कर्म-स्वभाव से उत्पन्न गुणों द्वारा विभक्त किए गए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण हैं। इस प्रकार से वर्ण-परिवर्तन होता आया है, होता है। इसमें हमने यथासम्भव प्रमाण कथन किये हैं, वे पठनीय एवं दर्शनीय हैं।

मद्यः पतित मांसेन लाक्षया लवणेन च ।

व्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीर विक्रयात् ।। - मनुस्मृति १०/९२

शराब, माँस, लाख और लवण के बेचने से ब्राह्मण उसी समय पतित हो जाता हैं और दूध बेचने से तीन दिन में शूद्रता को प्राप्त होता हैं।

इतरेषां तु पण्याणानां विक्रयादिह कामतः ।

ब्राह्मणः सप्त रात्रेण वैश्य भाव नियच्छति ।। - मनुस्मृति १०/९३

ब्राह्मण उक्त कर्त्तव्य से अतिरक्ति पुण्यों को इच्छापूर्वक बेचने से सात दिन में वैश्य हो जाता हैं तो **क्या जन्म से शूद्र सात दिन में वैश्य या ब्राह्मण नहीं हो सकता ?** शूद्र-कर्म के सम्बन्ध में कहा गया हैं -

अशक्नुवंत शुषा शूश्रुद्रः कर्तु द्विजन्मनाम् ।

पुत्र दारात्यय प्राप्तो जीवोत्कारूक कर्म भीः ।। - मनुस्मृति १०/९९

द्विजों की शुश्रुषा (सेवा) करने में असमर्थ शूद्र क्षुधा से पुत्र व पत्नी आदि को कष्ट में देख कर कारुक कर्मों को करें, साथ ही शिल्पादि कार्य द्वारा आजीविका करें, इससे भी द्विजों की सेवा ही होती है। इस श्लोक में द्विजों की सेवा करना शूद्र का स्पृश्य होना सिद्ध कारता हैं। **'कारुक'** कर्मों का विधान शूद्रों के लिए इस प्रकार से किया गया हैं कि -

यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रुष्यन्ते द्विजायतः ।

तानि कारुक कर्माणि शिल्पानि विविधानि च ।। - मनुस्मृति १०/१००

जिन जिन प्रचरित कर्मों से द्विजातियों की श्रुषुसा (सेवा) करते हैं। जैसे लकड़ी का, लोहे का, मिट्टी तथा धातु मात्र सोना, चांदी, ताम्बा,

पीतल, रांगादि नाना प्रकार के **शिल्पों को कारुक कर्म कहते हैं** । इस श्लोक से प्रत्यक्ष ज्ञात होता हैं कि सुथार (बढ़ई), लुहार, सोनार, कुम्हार, माली, जाट, ठठेरा आदि मात्र कारीगर शिल्पकार उद्यमी **सब शूद्र वर्ण** के वर्ग में सम्मिलित होते हैं । ऐसे ही कई श्लोक नीति-सार में शुक्राचार्य आदिकों ने भी कहे हैं । जो धर्म का स्वेच्छा से पालन करता हैं, वह शूद्र नहीं कहा जा सकता हैं । शूद्र सेवक मात्र होने से अपने कर्त्तव्यों से पराधीन होता हैं, अतः उसके कर्मों का दोष या श्रेय-प्रेय उसके स्वामी को होता हैं ।

विभिन्न उद्योगवेता परिश्रम-सेवा रत होकर लेखन-पठन में प्रयुक्त साम्रगी में कागज, कलम, श्टेशनरी (शास्त्र) सम्बन्धी उमस्त उत्पादन करने वाले विद्वानों (ब्राह्मणों) की सेवा में लगे हैं । युद्ध, कसरत विविधता के शस्त्रास्त्र तोप, तीर, तलवार, वैज्ञानिक उपकरण, युद्धपोत, पनडुब्बियों इत्यादि के निर्माता सभी शूरवीर योद्धाओं (क्षत्रिय) की सेवा में लगे हैं । गृह-व्यापार के प्रयोगार्थ ललित कलाओं से विविध उत्पादन, भवन निर्माण, लकड़ी, सोना, चाँदी, पीतल, मिट्टी, पत्थर इत्यादि समस्त शिल्प कलाओं में श्री विश्वकर्मा द्वारा दिये गये सभी उद्योगों से वैराट शरीर (समाज) के तीनों वर्णों सहित अज्यान्य वर्णों की सम्पन्न सेवा होना प्रमाणित हैं ।

एक मेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रुषा मन सूयया ।। - मनुस्मृति १/९१
द्विज सेवार्चन रताः शूराः शांताजितेन्द्रियाः ।
सीर काष्ट तृण वहास्ते नीचाः शूद्रा संज्ञकाः ।। - शुक्रनीति १/४३

ब्राह्मण की सेवा और पूजन में तत्पर रह कर शौर्य (शूरता) वीरता तथा शान्ति, जितेन्द्रियता आदि धारण करने का यत्न करते हुए हल, काष्ट (लकड़ी) और तृण (घासादि) इनको ले जाने वाले जीव हैं, वे शूद्र कहलाते हैं । स्पष्ट कर दिया कि श्रमजीवी पाचक (भोजन बनाने, परोसने

वाला रसोइया आदि) शिल्पी तथा बुनकर, चमार, नाई, धोबी, मेहतर आदि सब का समावेश **एक कारुक वर्ग (चतुर्थ वर्ग)** में होता हैं ।

शूद्रो वर्ण चतुर्थोऽपिवर्ण त्वाध्दर्मर्महति ॥ - शुक्रनीति ८/३३

चौथा वर्ण शूद्र भी एक वर्ण होने से धर्म के योग्य है । यह मन्त्र स्पष्ट ही शूद्र को भी धर्म के योग्य घोषित करता हैं । उसी हिन्दू समाज के अंग को हम अस्पृश्य, पिछड़ा, दलित या नीच आदि कहते हैं । क्या हिन्दुओं की आस्थामय शास्त्र निर्देश पर यहीं दृढ़ता हैं ?

स्वर्गार्थमुभयार्थं वा विप्रानाराधयेतु सः ।

जात ब्राह्मण शब्दस्य साद्दयस्य कृतकृत्यता ॥ - मनुस्मृति १०/१२२

कितना स्पष्ट आदेश हैं - स्वर्ग सुख और अपनी वृत्ति (आजीविका) की इच्छा वाला शूद्र ब्राह्मण की सेवा करें, इसमें ही कृतकृत्यता (कल्याण) हैं ।

ऐसे ही निर्गुणी-बुद्धिहीन हों और उनके द्वारा कोई अपराध या गलती हो जाय, उन्हें शास्त्रीय न्याय की छूट दी हैं कि ''**न शूद्रे पातकं किंच्चिन**'' सेवक को कोई पाप नहीं होता हैं ।

आर्याधिष्ठता वा शूद्राः स्कर्तारः स्युः ॥ - धर्मसूत्र

इत्यादि वचनों के द्वारा वेद-स्मृतियों में पाक यज्ञ का विधानहोने से उन्हें **पाचक** नाम से सम्बोधन किया गया हैं । केवल इतना ही नहीं अपितु कई कर्मजन्य जाति वाचक शब्द भी मिलते हैं ।

ये धीवानो रथकाराः कर्माराः कर्मारा ये मनीषिणः ।

उपस्तीन पर्ण महयं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ॥ - अथर्ववेद ३/५/६

धीवर, रथ बनाने वाले, तर्खान इत्यादि हैं, उनको भी हे प्रभु ! तू मेरे चारों ओर समीप बैठने वाला बना । इसमें सेवक-वृत्ति का वर्णन हैं,

जो सेवकों का चतुर्थ वर्ण में समावेश करता हैं। हम सदैव कथाओं, सतसंग में सन्तवाणी राग [१] रागिनियों में गाते और पढ़ते हैं व सुनते हैं -

मारो वालो भूखो छे प्रेम नो रे, प्रेम देखे जठे जीमले रे।
जाति पाँति हरि देखे नथी रे, झूँठा खाय गयो भीलनी रा बोर ॥

- अचलराम भजन प्रकाश एवं धर्म कथाओं में भक्ति-भक्त चर्चा विशेष से इत्यादि - फिर भी हम किस गर्त में जा रहे हैं। आज इस प्रकार से शास्त्रसम्मत विधान के विरुद्ध बन कर लेखक व कवि आदि से साधारण प्राणी तक भी उन महापुरूषों की प्रणाली तथा वाक्य-प्रमाणिकता को अलग मान कर अपना पतन करने में लगें रहे और आज भी लग रहें हैं। जन्म से नीच या ऊँच मान लेना महान् भूल हैं, क्योंकि यह विधि शास्त्रसम्मत पद्धति की नहीं हैं। यदि वैदिक प्रथा से **'भारतीय समाज दर्शन'** वर्ण-व्यवस्था की रचना हो तो क्या सुन्दर भारत का भविष्य उज्ज्वल चमक सकता हैं, यह तथ्य कदापि कोई गोपनीय नहीं रहेगा। ऊँच हो या नीच - जन्म से चाहे क्रियाविहीन कुलस्थ ही क्यों न हो। हमारे शास्त्र सब को समानोन्नति का अवसर देने पर तत्पर हैं, किन्तु हम उन शब्दों को अवहेलना से आच्छादित कर रहे हैं।

---

१. छः राग और तीस रागिनियों के नाम इस प्रकार हैं -

(१) भैरव	=	भैरवी, बंगाली, मधु, माधवी, सिंधुवी।
(२) मालकोश	=	टोडी, गौरी, गुणकली, खंभावति, कोकिल।
(३) हिण्डोल	=	रामकली, पटमंजरी, देसाख, ललित, बिलावल।
(४) मेघ	=	नट कल्याण, कान्हड़ा, केदारा, कामोद, परमोद।
(५) दीपक	=	धनाश्री, आसावरी, मारू, बसंत, मालसिरी।
(५) श्री (लक्ष्मी)	=	भूपाली, गूजरी, जैश्री (जयश्री), मलार, वियोगिन।

दोहा- *जग में सब सुर जा कहै, बाजे साढे तीन।*
खाल, तार अरू फूंक पुनि, अर्ध ताल स्वरहीन ॥

प्राचीन काल में वर्ण-व्यवस्था यह थी कि व्यक्ति के शिक्षा [1] काल में ही गुरू यह निश्चय कर देता था कि अमुक बालक अथवा बालिका गुण, कर्म, स्वभाव उसको **अमुक वर्ण** के योग्य बनाता हैं और उसके अनुसार जीवन में प्रवेश कर सकता हैं। इसमें छूट यह थी कि शिक्षा-काल के अनन्तर भी यदि किसी मनुष्य में गुण-कर्म-स्वभाव बदल जाय तो भी वर्ण बदला जा सकता था। अब यदि समाज-व्यवस्था हेतु सेना में शूरवीरों को प्रवेश देना हैं, तो अध्ययन कार्य के लिए विद्वान, त्यागी और तपस्वी स्वभाव के लोग चाहिए और व्यवसाय में वाणिज्य-बुद्धि के लोग चाहिए तो **भारतीय वर्ण-व्यवस्था** का सा ढ़ंग प्रचलित करना ही पड़ेगा। नाम कुछ भी रखें, समाज में श्रेणियाँ बाँधनी पड़ेगी और उनमें जाने वाले विद्यार्थियों का निर्वाचन गुरूजनों के हाथ में देकर ऋषि-प्रणालीय गुरूकुल शिक्षा का महत्व बढ़ाना ही होगा, तब भारत राष्ट्र के लिए प्रभुत्व सम्पन्नता का सत्यार्थ दर्शन होगा।

आज सारी सामाजिक व्यवस्था का दोषारोपण ब्राह्मण समाज पर थोपा जाता हैं, किन्तु सामाजिक व्यवस्था देने वाली स्मृतियों के रचयिता गण में - वशिष्ठ, पाराशर, व्यास पृभृत्य ब्राह्मण नहीं थे। सृष्टि में आदि **मानव समाज के व्यवस्थापक मनुजी ब्राह्मण नहीं थे**। प्राचीन धर्म ग्रन्थों में तो गुण-कर्म स्वभाव के आधार पर केवल चार वर्ण की व्यवस्था देते हुए भी परस्पर मैत्रीभाव से ''संगच्छध्वम्, संवद्दध्वम्'' के सैद्धान्तिक आदेश देकर अस्पृश्यता का अभाव कायम किया हैं।

---

१. मैकाले की आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली भी महान् विकृत है, जिसमें सह-शिक्षा, आचारहीन व्यसनी व अध्यापको, फैशनेबल के प्रभाव से लुम्बित विद्यार्थियों का जीवन भोगप्रिय, श्रमहीन, खर्चीला, भड़कीला प्रायः होने से वंचित नहीं रह सकता जो भारतीय परम्परा के आदर्श जीवन, विद्यार्थी-मानव के सर्वथा विरूद्ध ले जा कर दुःखमय बनाएगा, इसमें सांस्कृतिक सुधार अवश्य होने चाहिए।

आज का नेतृत्व प्रधान संविधान चार वर्णों की अपेक्षा समाज को कई भागों में विघटित करता हैं - अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, घुमक्कड़, आदिवासी, वनवासी, ओबीसी (अन्य पिछड़ा वर्ग), ब्राह्मण, क्षत्रिय, जाट, विश्नोई, वैश्य वर्ग के साथ अन्यान्य कई नये नये नामों की **मुहुरबन्द** जातियों में समाज को बांटकर दिन प्रतिदिन (जातिवाद के पक्षधर) विविध खेमों में बाँट रहें हैं। यह दूषित प्रणाली निश्चित राजनैतिक अखाड़ों के मायाजाल का रूप धारण करते हुए पतनकारी व्यवस्था दे रहीं हैं, जिन का सुधार होना नितान्त आवश्यक हैं।

पंचम परिच्छेद

समाज का महत्वपूर्ण एक अंग - स्त्रीत्व

मानव का जीवन-निर्माण सर्वप्रथम माता की भूमिका से शिक्षित-विकसित होता हैं। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि मानव अपनी बाल्यावस्था में पूर्व के पाँच वर्ष [1] तक जो कुछ माता के विचार-आचार से प्रेरित होकर अनुभव पाता हैं, वह जीवन के शेष नैसर्गिक विकास में प्रयत्नपूर्वक श्रम से नहीं पा सकता। तभी तो नीतिकारों ने **'मातृदेवोभव'** कह कर श्रेय-पदक गौरव दिया हैं अर्थात् राष्ट्रनायक से जन-साधारण तक के भविष्य-निर्माण की संस्कार नींव

१. भारतीय परम्परा में माता मदालसा द्वारा पुत्रों को ज्ञान तथा ध्रुव, अभिमन्यु, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी इत्यादि को ज्ञान, शौर्य्य, यशादि गुण-समूह माताओं द्वारा ही प्राप्त होता रहा हैं। इसी प्रकार तुलसीदास, कालिदास, भर्तृहरि, सुलतान बादशाह, स्वामी हरिरामजी महाराज आदि महापुरुषों को स्त्री, दासी या सास आदि स्त्री-समाज के रूप से भाग्योन्मुख होना पड़ता रहा हैं। यह इन महापुरुषों के ऐतिहासिक जीवन का श्रेय स्त्री-समाज को उज्ज्वलता प्रदान करता हैं।

में माता ही प्रथम गुरु हैं ।

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः ।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वोमूर्तिरात्मनः ।।२२५।।
इमंलोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्ययममू ।
गुरु शुश्रुषया त्वेवं ब्रह्मलोक समश्नुते ।।२३३।।
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्व समाप्यते ।।२२८।।

– मनुस्मृति, अध्याय २

आचार्य वेद की मूर्ति हैं, पिता ब्रह्म की मूर्ति और माता पृथ्वी की तथा भ्राता आत्मा की मूर्ति हैं । माता की, पिता की और सतगुरु की भक्ति से मानव क्रमशः इस लोक, अन्तरिक्ष तथा ब्रह्मलोक की प्राप्ति कर सकता है अर्थात् कर लेता हैं । अतः माता, पिता और गुरु का सर्व कार्य में नित्य प्रिय करें । इन तीनों की प्रसन्नता होने पर सम्पूर्ण तप पूरा होता हैं । तभी तीनों को सजीव देव मानने का उपनिषद् वाक्य दिया हैं कि – **मातृदेवो भव, पितृदेवो भव,आचार्य देवो भव** के अतिरिक्त अतिथि देवो भव कह कर जीवन की सार्थकता दी हैं । माता की भगिनी, मामी, सास और पितृभगिनी और अपनी ज्येष्ठा बहिन, इनका माता के समान आदर करें, परन्तु माता का गौरव अधिक प्रतिभा-सम्पन्न [1] हैं ।

---

१. आज युग-प्रभाव-विकृति के कारण माता का वात्सल्य प्रेम, पिता का रक्षण-प्यार और गुरु अथवा भाई द्वारा वास्तविक ज्ञान, जो प्राचीन काल से कुछ समय पूर्व तक बालक के संस्कारों में पोषक मिलता रहा हैं, वह अपेक्षाकृत हीनता ही ओर बढ़ता जाता हैं । कहा नहीं जा सकता कि समय किस तरह पतनोन्मुख से बच कर शान्ति की ओर कब और कैसे पा सकेगा । शास्त्रीय महत्व को जान कर प्रत्येक मानव को सन्तान-शिष्य को आश्रय-ज्ञान का पोषण देना चाहिए और नवयुवकों तथा बालकों को भी वृद्ध-गुरुजनों की मर्यादा का अवश्य पालन करना चाहिए, जो जीवन का अनिवार्य भाग है ।

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।

सहस्रं तु पितन्माता गौरवेणाचारोच्यते ।।१४५।। - मनु० अध्याय २

दश उपाध्यायों के तुल्य गौरव एक आचार्य में तथा एक सौ आचार्यों के समान पिता में और पिता से हजार गुणित माता की बड़ाई में होते हैं।

पितृर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते ।

मातुर्दशागुणा मान्या विमाता धर्मभीरूणा ।। - स्मृति वाक्य

धर्मात्मा पुरुष के लिए पिता से माता का गौरव दश गुणा अधिक ओर अपनी माता की अपेक्षा विमाता को दश गुणा अधिक गौरव-प्रभा माना हैं। इसी इष्ट के लिए मर्यादाशील श्री राम और भीष्म पितामह को कष्ट सहना पड़ा, जिनकी प्रतिष्ठा आज तक प्रत्येक नागरिक के लिए कर्त्तव्य-प्रतिबिम्ब की भाँति अखण्ड हैं। इस दृष्टि से प्रत्येक वर्ण-जाति में सम्मान्य-स्वरूप भारतीय समाज की सभ्यता का दर्शन मानव के एक अंग रूप स्त्री की स्थिति से भी होता हैं। पाश्चात्य तथा राजस्थान के इतिहास लेखकों का सर्वसम्मत विचार हैं कि किसी भी वर्ण-जाति की सभ्यता का बोध कराने वाला स्त्रियों की स्थिति से बढ़ कर कोई साधन नहीं हैं। अतः कुछ इस सम्बन्ध में भी पुष्ट सन्तुष्ट विचार करना ठीक होगा।

चोदयित्री सुनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ।

- ऋग्वेद, १/३/११

उत्तम सलाह देना, मधुर और सत्य वचनों की प्रेरणा करना एवं यज्ञ करना, यह देवियों का कर्त्तव्य हैं। इसी प्रकार और भी -

गृहान् गच्छ गृह पत्नी यथासो ।
वशिनी त्वं विदथमावदासि ।।
साम्राज्ञी श्वसुरे भव साम्राज्ञी श्वश्रुवां भव ।
ननान्दरि साम्राज्ञी भव, साम्राज्ञी अधिदुवेषु ।।

- ऋग्वेद १०/८५ २६-४६

यथा सिन्धुर्नदीनां, साम्राज्यं सुषुवे वृषा ।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधिपत्युरस्तं परेत्य ।।
पात्नी त्वमसि धर्मणा अहं गृहयतिस्तव ।।

-अथर्ववेद १४/१/४२-५६

वेदोक्त स्त्रियों की स्थिति सम्मानजनक हैं, जो विवाह-विषयक मंत्रों में राजा-रानी, स्वामी-स्वामिनी का समानाधिकार पद मान कर शब्द आये हैं।

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महिं विश्रुति ।
एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ।।

-यजुर्वेद ८/४३

इस मन्त्र की देवता पत्नी हैं - उत्तम वाणी युक्त, रमणीया, पूजनीया, कामना करने योग्य, आह्लाद देने वाली, घर में ज्योति के समान अज्ञानान्धकार हर्ता, दीनता-हीनता के भावों से रहित, परम्परा से प्राप्त उत्तम ज्ञान-सम्पादन करने वाली, महान् उदार भावों से युक्त, बहुश्रुत, जिसकी हिंसा करना योग्य नहीं हैं। यह ११ विशेषण विदुषी महिला के लिए प्रयुक्त हैं। ऐसे ही पुरूषों के समान स्त्रियों को भी उच्च ज्ञान प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार दिया हैं।

ब्रह्मचर्येण कन्या युवान् विन्दते पतिम् ।। - अर्थववेद, ११/१८/५

कन्या ब्रह्मचर्य के द्वारा युवक पति को प्राप्त करती हैं। उपरोक्त शब्दों से अति स्पष्ट हैं कि स्त्री-समाज के लिए सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में वैदिक विचार बहुत ही पवित्र और ऊँचे हैं।

वेद के अनुसार विवाह युवावस्था में स्वयंवर रीति से होना चाहिए। वेद में बहुधा वर-वधु के अपने चुनाव और प्रसन्नता पर सम्बन्ध निश्चित किया जाना श्रेष्ठ माना हैं, क्योंकि उनमें नाना प्रकार के विकार जो आज देखने को मिलते हैं - तलाक, मनमुटाव, घरेलू झगड़े, तूतू-मैंमैं, व्यभिचार, अन्यत्र लगाव इत्यादि इन्हें कोई स्थान नहीं हो सकता। आज प्रायः स्वार्थी पंचों

या नाइयों-पुरोहितों, सामाजिक पंचों या स्त्रियों द्वारा किये गये तय सम्बन्धों अथवा ताने-तबके या शोषित वृत्ति के अन्य कारणों आदि द्वारा वर का ढूँढ़ना होता हैं, वह अवैदिक प्रणाली हानिकर सिद्ध हो रहीं हैं ।

अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम् ।
इह प्रजामिह रयिं रराणः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकाम ।।

- ऋग्वेद १०/१८३/१

इस मन्त्र में युवती कन्या किसी सुन्दर ब्रह्मचारी युवक को सम्बोधन करती हैं कि मैंने मन की कामना वाले तप की विभूतियुक्त तुझ युवक को देखा हैं । हे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके पुत्र की कामना करने वाले युवक ! तू गृहस्थ में ऐश्वर्ययुक्त प्रजा के भोग का आनन्द लेकर मेरे साथ वृद्धि को प्राप्त हो । इस मन्त्र से प्रतीत होता हैं कि नारी-शिक्षा का वेद प्रतिपादित विधान शास्त्रीय मान्यता का आधार हैं । इसके उत्तर में युवक के मुख से कहलाया हैं ।

अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वयां तनूं ऋत्व्ये नाधमानाम् ।
उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकामे ।।

- ऋग्वेद १०/१८३/२

हे युवती कन्ये ! मैंने भी चिन्तन करती हुई, मेरे साथ सम्बन्ध की इच्छा करने वाली तुझ को देखा हैं । उच्च भावयुक्त मेरे साथ विवाह सम्बन्ध से उत्तम सन्तान द्वारा वृद्धि को प्राप्त हो । इस प्रकार से प्राप्त गृहस्थ स्त्रियों के लिए आदर्श पतिव्रता धर्म का प्रांगण तथा पतियों की अनुव्रता होने का गृहस्थ कर्त्तव्य दृढ़ रहता हैं ।

पत्युरनव्रता भूत्वा संनह्यस्वामृतायकम् ।। - अथर्ववेद १४/१/४२

अपने पति के अनुकूल रह कर उनके द्वारा क्रतित यज्ञादि शुभ कर्मों में, सार्वजनिक मनोरथों की पूर्ति में यथाशक्ति सहायता करके अमृतमय सुख को अपने वश में करें अर्थात् पति जिस गुण-कर्म-स्वभाव से वर्ण-धर्म

का पालक हो, उसे पूर्णतया निभाना स्त्री का भी कर्त्तव्य हो जाता हैं। तभी तो ऋग्वेद १०/८६/१० में कहा हैं-

सं होत्रं स्व पुरानारी समनं वाव गच्छति ।
देधा ऋतस्य वीरिणीन्द्र पत्नि महीयते ।।

- वश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

इत्यादि मन्त्रों में इन्द्र (शूरवीर) सेनापति की पत्नी के लिए उसी प्रकार **'वीरा'** और **'समन'** युद्ध में और 'हौत्र' हवन यज्ञ में पति के साथ जाने के शब्दों का विधान हैं। अनुव्रता शब्द विवाह-संस्कार में, सप्तपदी करते हुए के समय सातवां पग का मंत्र-वाक्य उच्चारण में लेते हैं।

इष एकपदी भव सा मामनुव्रता भव ।
सखा सप्तपदी भव ।। - पारस्कर सूत्र
स्योना सर्वस्यै विश्स्योना पुष्टायैषां भव ।। - अर्थववेद १४/२/२७

यहाँ वर-वधू को 'सखा, अनुव्रत' इत्यादि शब्दों से सम्बोधन-संकेत हुए हैं। सम्पूर्ण जनता के लिए कल्याणदायिनी और पुष्टिजनक उन्नति-क्षेत्रों में सहायिका होने का भाव हैं। इसी तरह मनुस्मृति (अध्याय ३, श्लोक ५५ से ५६ तथा ६/२६-२८ और ४५) में मर्यादाजनक वर्णन आता हैं। ऐश्वर्य, उत्सव, कल्याण को चाहने वाले पिता, भ्राता, देवर, पति आदि को चाहिए कि स्त्रियों को यथावत् पालन-पोषण सामग्री से योग्य पूजन द्वारा प्रसन्न रखें। जहाँ स्त्रियों की मर्यादा पालन होती हैं वहाँ दिव्य गुण, सुख, आनन्दादि से देव-रमण होता है और जहाँ पर स्त्रियों की अप्रसन्नवृत्ति हो, प्रतिष्ठा न हो, वहाँ की हुई समस्त धार्मिक क्रियाऐं निष्फल हो जाती हैं, क्योंकि वह सौभाग्ययुक्ता, बहुत उपकार करने वाली, पूजा योग्य, घर की लक्ष्मी-शोभा (गृहलक्ष्मी) हैं। सन्तान की उत्पत्ति, उत्पन्न सन्तान की उचित संस्कार-पालना, अतिथि-सत्कार आदि लौकिक व्यवहार,

धर्म-कार्य अग्निहोत्रादि, उत्तम-सेवा [1] द्वारा अपना तथा पितरों का स्वर्ग स्त्री वर्ग (माता-बहिन, स्त्री आदि) पर ही निर्भर हैं। पुरुष अपनी देह, पत्नी और सन्तान, इन तीनों के मिलने से ही सम्पन्न बनता हैं, वस्तुतः पति-पत्नी में शरीर दोनों के भिन्न-भिन्न होते हुए भी आत्मा **एक पति ही पत्नी हैं या पत्नी ही पति का आत्मीय अंश हैं**। यही भाव महाभारत (अनुशासन पर्व, अध्याय ४६) और कुलुक ने शतपथ ब्राह्मण (५/२/१/१०) में कथन किये हैं। इस प्रकार के प्रतिष्ठित वाक्यों के विशेषण युक्त प्रयोगों को मनन करने से स्पष्ट हो जाता हैं कि भारतीय शास्त्र-विवेचन स्त्रियों के लिए तुच्छतापूर्ण एवं घृणाभाव या नीचता का कुछ भी संकेत नहीं करता, प्रत्युत सन्मान, उन्नति, वैदिक शिक्षा, मन्त्रोच्चारित शोभाजनक दिव्यता का वर्णन करता हैं।

शुध्दाः पूता योषितो यज्ञिया इमा। - अथर्ववेद ११/१/१७ तथा २७

यहाँ स्त्रियों को शुद्ध, पवित्र और पूजनीया माना हैं। स्त्रियों के अधिकार में **"वैवाहिकोविधि स्त्रीणाम्"** (मनु० २/६७) विवाह-विधि सम्बन्धी शास्त्रानुकूल संस्कार हो तथा गुरुकुल में वास करके वेदाध्ययन, गृहकार्य, अग्निहोत्र, पति-सेवा यह सब वेदानुकूल पद्धति से स्त्रियों के कर्त्तव्य में माने जाते हैं। जैसे पुरुष का पुनर्जन्म यज्ञोपवीत-वेदाध्ययन [2] द्वारा गुरुकुल में होता हैं, उसी प्रकार स्त्रियों का पुनर्जन्म विवाह-संस्कार ही कहा गया हैं [3]। इस सम्बन्ध में मनुवादि स्मृतिकारों ने सम्बन्ध का निश्चय साधारण रूप स्थिति से पिता के ही अधिकार में दिया हैं, किन्तु स्वयंवर का दायित्व कन्याओं के हस्तगत सौंपा गया हैं। ऋतुमति होने के ३ वर्ष बाद तक

---

१. पं० धर्मदेव के भारतीय समाज-शास्त्र द्वारा बहुधा संकलित-उद्धृत।
२. यहाँ स्त्री शिक्षा, अग्नि हौत्र एवं वेदाध्ययन (प्रणव गायत्री जप) का स्पष्ट ओदश है।
३. कन्या के सुश्री काल (अविवाहित) काल में पिता श्री का गौत्र तथा विवाह संस्कार के पश्चात पति का गौत्र ही महिला का द्विजन्मा संस्कार हो जाता हैं।

कुमारी पिता द्वारा कार्य किए जाने की प्रतीक्षा करें। उस समय पर्यन्त यदि माता-पिता योग्य वर की तलाश न कर सकें तो कन्या को स्वयं वर का चुनाव कर लेना चाहिए। ऐसा करने से उसे कोई दोष (पाप) नहीं लगता (मनुस्मृति ९/९०-९१)। सब कुछ संकट-कष्ट को सहन करने पर भी स्त्रियों को पतिव्रत धर्म का पालन करना महत्वपूर्ण, कल्याणकारी तथा आवश्यक बताया गया हैं।

स्त्रियों को पति-आज्ञा बिना यज्ञ, दान, व्रत, उपवास भी नहीं करना चाहिए। केवल पति-सेवा से ही नारी स्वर्गलोक में पूजित होती हैं। विशेष प्रसंग मनुस्मृति ५/१५५, ३/५५-५६, ९/२६-२८व ४५ पर देखा जा सकता हैं।

यह सर्वसम्मत हैं कि पति चाहे कितना ही नीच, पतित, गरीब, भ्रष्ट या अंगहीन क्यों न हो, परन्तु उसे परमेश्वर के समान जान कर उसकी सेवा करनी चाहिए और संस्कारिकत सुधार करना चाहिये।

नारी के लिए पतिव्रत धर्म ही सच्चा और बहुमूल्य का शोभाजनक शृँगार हैं। पीछे पृष्ठ ३० पर टिप्पणी में जो १६ शृँगार बताए हैं वे केवल मात्र शरीर स्वच्छता के लिए ही बाहरी दिखावे मात्र कृत्रिम साधन हैं। जो हाथों से सामग्री बंटोर कर बनाए जाते हैं। वस्तुतः ईश्वरीयप्रदत्त अकृत्रिम सोलह शृँगार स्वतः नारियों के पास होते हैं। वास्तविक सौन्दर्य का प्रसाध्य वहीं हैं।

तिन काले, दो ऊजले, पतले पाँच प्रकार।
चार करण, दो सघन हैं, सोलह रह शृंगार ।।

अर्थात् - नेत्र, केश, कुचाग्र, यह तीन काले। दाँत और नख, यह दो सफेद हो। नाक, होंठ, गर्दन, अंगुलियाँ और कमर, यह पाँच पतले और दो ऊरू, दो बाहु, यह चार करण (कोमल) तथा दो स्तन आम्रवत सघन (कठोर) हो, प्राकृतिक शृँगार है।

अतिरिक्त आन्तरिक शृंगार सद्गुण-धर्म ही हैं, जिसके द्वारा जीवन सुख-साध्य, गौरवप्रभ बन जाता है । अतः ऐसे गृहस्थ में गुण-कर्म धर्म को अवश्य धारण करना चाहिए ।

विशीलः कामवृत्ता वा गुणैर्वा परिवर्जितः ।

उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः ।। - मनु स्मृति ५/१५४

माता-पिता भ्राता हितकारी । मित प्रद सब सुनु राजकुमारी ।।
अमित दान भर्ता वैदेही । अधम सो नारि जो सेव न तेही ।।
धीरज धर्म मित्र अरू नारी । आपति काल परखिअ हिं चारी ।।
वृद्ध रोग वश जड़ धनहीना । अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना ।।
ऐसे हु पति कर किएँ अपमाना । नारि पाव यमपुर दुःख नाना ।।
एकइ धर्म एक व्रत-नेमा । काय वचन मन पति पद प्रेमा ।।
पति वंचक पर पति रति करई । रौरव नरक कल्प शत परई ।।
क्षण सुख लागि जन्म शत कोटी । दुःख न समुझ तेहि सम को खोटी ।।
बिनु श्रम नारि परम गति लहई । पतिव्रत धर्म छांड़ि-छल गहई ।।
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई । विधवा होय पाइ तरूणाई ।।

सो. ~~दो०~~ - *सहज अपावन नारि, पति सेवत सुभ गति लहइ ।*
जसु गावत श्रुति चारि, अजहु तुलसिका हरिहि प्रिय ।।

- रामचरित मानस, अरण्यकाण्ड, अनुसूयोपदेश ५ (क)

तनु धन धाम धरणि पुर राजू । पति[1] विहीन सब सोक समाजू ।।
भोग रोग सम भूषन भारू । यम जातना सरिस संसारू ।।

इसी तरह शुक्रनीति (४/१-४) में पतिव्रता का आदर्श अत्युत्तमता से कथन किया है कि स्त्री मन, वाणी और कर्म से सदा शुद्ध एवं पति का साथ देने में छाया की तरह अनुसरण में रहें । स्वच्छ तथा हितकारक कार्यों में मित्र के समान आज्ञा में रहें । स्वच्छ तथा हितकारक कार्यों में

१. पाँच मंगलसूचक चिन्ह, जो विधवा स्त्री धारण नहीं कर सकती, सो यह हैं - माँग, मेंहन्दी, काजल, टीकी, मजीठ, यह सोलह शृंगार के अन्तर्गत है।

मित्र के समान, आज्ञापालन में तत्पर सेविका (दासी) और संगीतादि से प्रसन्नता जनक रहे । इसी प्रकार महाभारत (आदि पर्व, अध्याय ७४/४२ से ४५ शकुल्तलोपाख्यान) में निष्पक्ष उच्चतापूर्ण, महत्वदायक शब्दों का प्रयोग हुआ हैं । **पत्नी पुरुष का आधा अंग हैं**, वह संसार में सब से श्रेष्ठ मित्र और धर्म, अर्थ व काम का मूल साधक, सहयोगी, प्रयाणिका हैं । **गृहस्थ पुरुष की विशेष शोभा, आनन्द, कीर्ति स्त्री ही हैं** । जीवन के पथ में जन-शून्य स्थान पर मित्र, धर्म-युक्त कार्यों में पिता की तरह समान सेवा करने वाली हैं और दुःखित या रोगी पुरूष की माता के समान सेवा करने वाली हैं । पत्नी के विद्यमान होने से प्रायः लोग प्रदेश में भी विश्वास करते हैं, इससे संकट में भी एक बड़ा सहारा हैं । यही शब्द (शान्तिपर्व अध्याय १४५ महाभारत में) पुनः पुनः दुहराये जाते हैं ।

गृहिणी सचिवः सखीमिथः प्रिय शिष्या ललिते कलात्रिधौ ।
करुणा विमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मेहृतम् ।।

– महाकवि कालिदास कृत रघुवंश महाकाव्य, सर्ग ८

यहाँ राजा अज, अपनी पत्नी इन्दुमति को गृहस्वामिनी, सलाह देने वाली मन्त्री, मित्र और शिष्या के रूप में स्मरण करते हुए विलाप करते हैं कि निर्दय यम ने उसे हरण करके मेरा सर्वस्व हर लिया हैं । तभी तो कहा गया हैं –

दमयन्ती, सीता ,गार्गी, लीलावती, विद्याधरी ।
विद्योत्तमा मदालसा थी, शास्त्र शिक्षा से भरी ।।
ऐसी विदुषी स्त्रियें जो, भारत की भूषण हो गई ।
धर्म व्रत छोड़ा नहीं, जो जान अपनी खो गई ।।

शास्त्रीय विवेचना में जब कि नारी समाज के द्योतनार्थ शब्द भी प्रचुर मात्रा में पढ़ने-देखने को मिलते हैं । उनका विस्तार-भय से लेख न करके इतना अवश्य कहा जा सकता हैं कि कतिपय युगधर्मियों ने

पुरूष समाज के साथ-साथ स्त्री समाज को भी अज्ञान-गर्त में पतित करने के लिए यत्न किए हैं, जैसे कि शुक्रनीति (३/१६४) के (संस्कृत प्रक्षिप्त) अंश का अनुवाद किया गया।

नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं ॥
साहस, अनृत, चपलता, माया। भय, अविवेक, असौच, अदाया ॥

- रामचरित मानस, लंका काण्ड १५-१६

इत्यादि अवगुणों का विशेष आक्षेप बहुधा घृणोत्पादक प्रक्षिप्त अंशों (मनु० ६/१४-८, मित्र-भेद १६६/२०१-२०३) में विपरीताभास प्राप्त होने पर बड़ा लज्जास्पद, खेद और आश्चर्य से विचारणीय यह होता हैं कि यह प्रायः वैदिक काल के बाद क्वचित् स्वार्थतत्पर अबोध लेखकों द्वारा मिलित प्रक्षिप्त अंश हैं अथवा विदेशी शासन प्रभाव में लोभ या तलवार-भय के कारण धर्म-नीति शास्त्रों में बहुधा प्रक्षिप्त शब्द डाले गये हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं। ऐसे ही उत्तरमीमांसा प्रतिपादक तथा विविक्त साधु महापुरूषों के निष्ठा-साधन पद पर विघ्न रूप मान कर अपनी वाणी के अंशों में जो कुछ भी नारी के सम्बन्ध में लिखा हैं, वह परमार्थसाधी, निवृति पथ-साधकों के लिए सर्वथा उचित होने के अतिरिक्त नैतिक गृहस्थ समाजाश्रम की वंचना ही कहा जा सकेगा, क्योंकि गुणावगुण मिश्रित विधाता की युग्मसृष्टि द्वंद्व में यह सर्वथा सुनिश्चित विवेचन देखने को मिलता हैं कि दोषावगुण प्रायः स्त्रियों की अपेक्षा स्वतन्त्र विधायक परुषों में अधिक अथवा सामान्य रूप से समाज के अंग स्त्री-पुरूष दोनों में ही पाए जाते हैं। न्याय-तर्क-संगत दृष्टि से पत्नी को जब पतिव्रता धर्म-पालना आवश्यक है तो पति को भी पत्नीव्रत नियमों का पालन करना अत्यावश्यक हो जाता हैं। शास्त्रीय भाव-विचार से नारी समाज को नैतिक अधिकार की स्वतन्त्रता देते हुए भी उनमें उच्छृंखलता न आने देने हेतू अर्थात् रात और दिन बाजारों, पड़ौस के घरों, नाच-नाटक घरों आदि में जाकर धन-मान,

स्वास्थ्याचार को पतित होने से बचा कर अपनी प्रतिष्ठा, तपशीलता की रक्षा बनाए रखने के लिए व्यवहार पावनता हेतु कुछ प्रतिबन्ध भी रखे हैं।

_पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।_

रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वतन्त्र्यमर्हति ।। - मनुस्मृति ९/३

कौमार्य अवस्था में पिताधीन, यौवन में पति और वृद्धावस्था में पुत्र उसका रक्षक रहें अर्थात् स्त्री जीवन-संघर्ष में अकेली कभी न रहें। इसका मतलब यह तो कदापि सह्य नहीं होगा कि रात-दिन बन्द पर्दे में बाँध कर रखा जाय, किन्तु ऐसा भी न हो कि जैसे आजकल अनेक पाश्चात्य जगत की स्त्रियों की भाँति उनके भी आन्तरिक महिलोचित गुणों का नाश हो जाय। ऐतिहासिक दृष्टि पर परखा जाय कि महिला समाज का परिवर्तन कब-कब कहाँ तक होता रहा, तब स्वतः आधुनिक तथ्य पर वास्तविक निणर्य हो जाएगा।

प्राचीन काल में जब कि वेद-विधान ही प्रशस्य था, उसे हम वैदिक काल से कथन करेंगें। उस समय का विशिष्ठ क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध न होने पर भी, आज वैदिक ऋषिकाओं के नाम अवलोकनार्थ मिलते हैं, जिससे निर्विवाद यह स्पष्ट होता हैं कि उस समय में स्त्रियां भी पुरूषों के समान उच्च ज्ञान प्राप्त प्रसार किया करती थीं। सनातनीय विद्वान वेद को ईश्वरीय ज्ञान, अपौरूषेय तत्व मान कर ऋषि शब्द को अर्थ मन्त्रों के यथार्थ अभिप्राय को समझने वाला मानते है, जब कि पाश्चात्य विद्वान उन्हें कवि मानते हैं। किसी भी तथ्य से निष्कर्ष यह सिद्ध होता हैं कि प्राचीन काल में सैंकड़ों ऋषिकाऐं भी हुई है। ऐसे कुछ नाम वृहद्देवता (२/८४) में जैसे श्री लक्ष्मी, सार्प, राज्ञीवाकू, सावित्री, श्रद्धा, मेधा, दक्षिणा, ब्रह्मवादिन्या, ब्रह्मजाया, वेदमाता, इन्द्राणी, गार्गी, सरमा, लोपामुद्रा इत्यादि के नाम आते हैं। **उस समय बालकों के समान ही बालिकाओं का यज्ञोपवीत-संस्कार और ब्रह्मचर्य जीवन में वेदाध्ययन होता था।** यह

भान करवाते है शास्त्र प्रमाण, जैसे -

प्रावृतसं यज्ञोपवीतिनीमभ्यूदानयन् जपेत सोमोऽदद् गन्धर्वाय ।

- गोभिल गृहसूत्र १/१/१६ विवाह प्रकरण

इसमें स्त्रियों के यज्ञोपवीत धारण किये जाने की अति स्पष्ट घोषणा हैं ।

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्पतसे ये निषेरदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणास्यापनीता दुर्धां दधाति परमें व्योमन् ।।

- ऋग्वेद १०/१०६/४

ऐसे मन्त्रों में **'उपनीता, जाया'** शब्दों से कन्याओं के जनेऊ-संस्कार की सूचना मिलती हैं अर्थात् वेद मन्त्रों, प्रणव साधना में अधिकारों की घोषित स्पष्ट घोषणा हैं । पार्वती द्वारा की गई **तपस्या** का उल्लेख भी शिवपुराणादि में पाया जाता हैं ।

समन्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानिवो ।। - ऋग्वेद १०/८५/४७

ऐसे प्रार्थना-मन्त्र स्त्री-पुरुष दोनों द्वारा मिल कर बोले जाने को हैं । हारीत स्मृति (२१/२३) के आधार पर प्राचीन ब्रह्मचारिणी ऋषिकाओं का विभाजन दो श्रेणियों में किया जाता था । **पाराशर संहिता के अनुसार एक ब्रह्मवादिनियों का उपनयन, अग्न्याधान, वेदाध्ययन करते हुए अपने सम्बन्धी जनों के घरों से भिक्षा लाकर निर्वाह करतीं** और दूसरी सद्य जो वधू स्त्रियों को साधारण गृहस्थ धर्म निर्वाह सम्बन्धी ज्ञान-दक्षता को पाती ।

पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जी बन्धन मियसते ।
अध्यापरं च वेदानां सावित्री वाचनं तथा ।।

- यमाचार्य- यमस्मृति

यहाँ प्रमाण पुष्ट होता हैं कि प्राचीन काल में कन्याओं का ब्रह्मचारियों के समान मौजी, मेखलादि धारण और गायत्री उपदेश, वेदाध्ययन किया

जाता रहा था। इत्यादि स्मृति-वाक्यों का सिद्ध होना भी सहज हैं, क्योंकि **वेदों में कई मंत्र ऐसे भी हैं जिन्हें केवल स्त्रियाँ पढ़ सकती हैं,** किन्तु पुरुष नहीं पढ़ सकते हैं। जैसे कि-

अरिष्टाऽहं सह पत्या भूयासम् ॥ - यजुर्वेद ३७/२०

स्त्री कहती हैं मैं अपने पति के साथ आरोग्यतापूर्वक रहूँ।

त्र्यम्बक यजामहे सुगन्धिन पतिवेदनम्।

उर्वारूकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥ - यजुर्वेद ३/६०

विवाहिर्थिनी कन्या कहती हैं - हे परमेश्वर ! मैं पितृलोक के बन्धन से मुक्त हो जाऊँ और उस पतिलोक के बन्धन से न छूटूं। यही भाव शतपथ ब्राह्मण (२/६/२/१२/१४) में आये हैं। ऐसे स्त्रीलिंग की प्रार्थनाऐं पुरूष कर सकेंगे ? कदापि नहीं। इत्यादि समष्टिज्ञान से विवेचित करने से ज्ञात होता हैं कि प्राचीन काल में स्त्री-समाज वैदिक ज्ञान साहित्य से वंचित या अनभिज्ञ थी ? यह कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसके आगे मर्यादापुरूषोत्तम राम के समय (त्रेतायुग) में पूर्वकथित स्वाभाविक तथा शास्त्रीय गुण-अधिकार स्त्रियों को था, यह भी रामायणादि प्राप्य इतिहास-सामग्री में मिलता हैं। वैदिक अनुष्ठानों के अतिरिक्त समय-समय पर अपने पतियों के साथ रणक्षेत्र में जाती और उनके साथ सहयोग में युद्ध करती थी। बाल्मीक रामायण (अयोध्याकाण्ड, सर्ग २०/१५ तथा ४/१६/१३) में बाली की पत्नी तारा के लिए व्रतपरायणा, मंत्रवित् आदि शब्द आये हैं। सीतादेवी के द्वारा सन्ध्या-कर्म का अनेक स्थानों पर वर्णन हैं, जैसे की सीता की खोज में गये हनुमान अशोक में कहते हैं- यदि सीता जीवित हैं तो इस नदी तट पर सन्ध्यार्थ जरूर आयेगी (बाल्मीक रामायण, सुन्दरकाण्ड, १४/४६)। कैकयी का अपने पति दशरथ के साथ युद्ध भूमि में जाना और रथ हाँकने व रथ की धुरी-संरक्षण से दशरथ की प्राण-रक्षा का फल-वरदान प्राप्त करना लोक-साहित्य में सर्वत्र प्रसिद्ध

हैं । वशिष्ठ द्वारा कहे गये शब्द (बाल्मीक रामायण, अयोध्याकाण्ड, ३७/२१ से २४ तक) कि राम की अनुपस्थिति में सीता राज-कार्य करें । इससे सीता की योग्यता का भान होता हैं । आर्या सुमित्रा अपने पुत्र लक्ष्मण को उपदेश देकर कहती हैं,

पुत्रवती युवती जग सोई, रघुपति भक्त जासु सुत होई ।

राम और सीता वन को जाते हैं तो तुम्हारा अयोध्या से कोई प्रयोजन नहीं । इसी प्रकार आगे वनदेवी अनुसूया द्वारा सीता को धर्मोपदेश करना । हनुमान को लंकिनी द्वारा ज्ञान-दान का प्रसंग, जो महत्वपूर्ण विचारणीय हैं ।

समाज की भाँति स्त्री-समाज में भी परिस्थितियों से युग-प्रभाव पड़ते रहने के कारण कई अवगुणों का उत्पन्न होना संकोच या अभाग्य ही माना जाता हैं । कई प्रान्तों में पिछली शताब्दियों से आज तक पश्चिमी राजस्थान और दिल्ली के आस-पास तो कन्या का जन्म भी अशुभ माना जाता रहा है । जबकि पुत्र के जन्म पर बधाइयाँ बाँटी जाती हैं, परन्तु कन्या को जन्मते ही मार दिया जाता या नाराजगी होती हैं । ऐसे-ऐसे कई अत्याचार नारियों पर होते हैं । क्या नारी समाज की माता-बहिनें आए हुए विकारों को निराकरण कराने में आगे होकर योगदान दे सकती हैं ?

इस प्रकार की वीरांगनाओं, विदुषियों के चरित्र सुनने से स्पष्ट ज्ञात होता हैं कि बगैर शिक्षा-अधिकार के इतने गुणों का गुणत्व प्राप्त करना कल्पना नहीं कहला सकता, शिक्षा का अभावभान नहीं होता । उनके विकास पर शास्त्रीय या सामाजिक प्रतिबन्ध का प्राचीन काल में कोई आभास नहीं आता ।

इस प्रकार विवेचन-दृष्टि से ऐसा ज्ञात होता है कि प्राचीन शास्त्रीय पद्धति के विपरीत आज के परिचलन में दम्पति-समाज के बीच भी बहुत कुछ कुप्रथाऐं आई हैं, जिनका होना अनावश्यक मात्र ही नहीं प्रत्युत समाज

पतन में सहायक भी हैं। यहाँ केवल गणना मात्र से संकेत कर के यह बताना ठीक होगा कि नर-नारी के बीच में क्या-क्या दोष आए हैं, जिन्हें जानना और निवृत किया जाना आवश्यक हैं।

विधवा – समाज में आज विधवाओं की अवस्था अत्यन्त चिन्ताजनक हैं। देश-दिशा, वर्ण-जाति-भेद से वर्तित उनके साथ नाना अत्याचार होते हैं, बहुधा पारिवारिक उत्सवों में भाग न लेने देना, अच्छा कपड़ा न पहनने देना, कहीं-कहीं पर हर पन्द्रहवें दिन सिर के बाल मुंडवाना, एक समय भोजन करवाना अेर प्रातःकाल विधवा दर्शन अपशकुन माना जाना। ऐसे ही वैधव्य के लिए भूषणादि का तो नाम भी लेना मना ही है। धन्य हैं ऐसे आत्मसंयम पूर्वक तपो-जीवन में रह कर पति देवता के विरह में ईश्वरार्पण उपासना-कर्म करने वाली माता-बहिनों को। इसका सुधार किया जाना परम आवश्यक हैं - **विधवा विवाह का चलन होते हुए यह नियम होना चाहिए कि सती-साध्वी अपनी इच्छा से सात्विक शील जीवन को सहन करके बिताने में प्रसन्नता से रहे,** उसे पोषण सुविधऐं दी जाय अन्यथा समाज में अपनी कामनाओं को संयमपूर्वक निर्वाह न कर सकें उन्हें, विधुर पुरुष से विवाह करवा दिया जाना उचित रहेगा।

आसीतामरणात्क्षान्तां नियता ब्रह्मचारिणीम्।
यो धर्म एक पत्नीनां काक्षन्ती तमनुत्तमम्॥

- मनुस्मृति, अध्याय ५, श्लोक १५८

क्षमायुक्त नियम वाली और पवित्र एक पति-धर्म की इच्छा करने वाली, शीलवृत्ति से मरणपर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करती रहें। ऐसी अपुत्रा भी स्वर्ग को जाती हैं। इस प्रकार पति के जीते जी तक मन, वाणी, देह से पति की सेवा करें, धर्म का पालन करें और विधवा होने पर देह का संयम, मन को वश करने वाली स्त्री साध्वी यहाँ श्रेष्ठ कीर्ति और परलोक में पति-लोक (स्वर्ग) सुख को प्राप्त होती हैं।

बहु-विवाह – यह प्रथा आज भयंकर स्थिति में देखी जाती हैं, जब शास्त्रीय तथा समाज का प्रतिबन्ध केवल नारी के ऊपर कठोर रूप से शासित हैं कि वह एक बार ही विवाही जाय, एक पति का [1] व्रत ही पालन करें, पति के देहान्त के बाद विधवा जीवन का कष्ट संयम में सहन करे। इसके विपरीत देखने को मिलता हैं कि पुरूष दो-दो, तीन-तीन, राजाओं के समय में रईस दस-दस या अज्ञात रूप से न मालूम अनगिनत से अपने भोग्य साधनों का चयन कर लेते रहे हैं। यह कहाँ तक उचित कहा जा सकता हैं। शास्त्रों से पुरूषों में इस प्रथा का लगभग महाभारत काल में चलन होना सिद्ध होता हैं जैसे कि राजा शान्तनु का नाम है और भीष्म पितामह ने पाण्डु के साथ कुन्ती और माद्री का विवाह करवाया। अर्जुन के कम से कम ४-५ विवाह हुए, भीम के दो के करीब। इसी प्रकार की प्राचीन कथाऐं भी मिलती हैं। राजा सगर के केशनी और सुनीति नामक दो पत्नियाँ थी, उत्तानपाद के सुरूचि और सुनीति दो पत्नियाँ और कश्यप ऋषि के आठ, दशरथ के तीन कौशल्या, कैकयी, सुमित्रा थी, राजा खटवांग और कृष्ण के भी बहुपत्नियों के होने इत्यादि का इतिहास मिलता हैं। आधुनिक समाज में कई बार ऐसी घटनाओं का देखना मिलता हैं कि एक ही कन्या की दो या अधिक बरातें विवाह मुहूर्त में आ टपकती हैं अथवा द्विरागमन पर वधू को लेने वरों का तांता सा आ लगता हैं। यह किसके कर्त्तव्य से- यह कहा नहीं जा सकता, परन्तु बहुधा ऐसे कन्या, भाई, पिता, काका, मामा आदि के मतभेद से ही हो पाता है। पाश्चात्य वायु से प्रभावित नारियाँ भी पति-सूचक धर्म का सांकेतिक द्योतन चोटियाँ भी दो या अधिक रूप में प्रदर्शित करती हैं। भारतीय पद्धति में एक ही पतिव्रत दर्शक वृत्ति-केन्द्र

---

१. बहुपत्नीकता के अतिरिक्त द्रौपदी के ५ पति होने का विधान मिलता हैं, जो महान गम्भीर विषय तथा महाभारत में स्पष्ट विषय होने से कारणवश मान्य हो सकता हैं, इतने पर भी द्रौपदी के एक ही पति को, पाँच पतियों से पाँच पुत्र जन्मे थे, यह भी कहा कहा जा सकता हैं।

हेतु नारियाँ एक ही वेणी में धारण करती रहीं हैं।

वर्तमान रवैये और विकृत लोक-दृष्टि में कम्यूनिज़्म, समाजवाद का भविष्य लोकतन्त्र (डेमोक्रेसी) के नाम पर शास्त्रीय व सामाजिक हनन से पतित श्रेणी पशु तुल्य ही रह जाना सम्भाव्य हैं अर्थात् पिता-पुत्री, भाई-बहिन का बन्धन भी आर्यों की भाँति रहेगा या नहीं। प्रचलित वातावरण की अनुमान-सीमा पर पूर्ण कलियुग के लक्षण होना आश्चर्यजनक न होकर अनाचार पशु जीवन का दर्शक हो सकेगा। प्राचीन शास्त्रीय इतिहास-समता की दृष्टि से आज का समय महापतित, क्रूर और कलि प्रभाव का झुकाव ही कहा जा सकता हैं। यह कहाँ तक सही हैं। इसका न्याय पठन स्वयं बुद्धि-तर्क की कसौटी पर करें। आज के समाज में कठोर शासक, सत्य कर्मशील अभियन्ता (Engineer), नियामक, साधु, वेद-मार्गी नेताओं की आवश्यकता हैं, जो समाज को भारतीय-पथ, शास्त्रीय नियमों में बाँध सके और भावी पतन से बचावे।

इसके सम्बन्ध में शास्त्रीय नीति-स्मृतिकारों का विधान अति स्पष्ट हैं जिसके अनुसार महाभारत के पूर्वकालिक पात्रों की परिस्थिति अध्ययन से उन्हें रसिक नहीं माना जा सकता और यदि आज भी ऐसा होता या कोई कर लेता हैं तो भी नियम से शास्त्र-संगत ही माना जा सकता हैं। जैसे कि -

संवत्सरं प्रतीक्षेत द्विषन्ती योषितं पतिः।
उर्ध्वं सम्वत्सरात्त्वेनां दायं हृत्वा न संवसेत ।।

- मनुस्मृति, अध्याय ९, श्लोक ७७

द्वेष करने वाली स्त्री की एक वर्ष पर्यन्त पति-प्रतीक्षा करें, तब तक यदि कोई सुधार नहीं हो तो फिर उसके अलंकारादि सब छीन लें और उसके साथ न रहें।

मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत् ।
व्याधिताबाधिवेत्तव्या हिंसार्थघ्नी च सर्वदा ।।

- मनुस्मृति, अध्याय ६, श्लोक ८०

मद्य पीने वाली, दुराचारिणी, पति प्रतिकूल चलने वाली और सदा बीमार रहने वाली स्त्री हो तो उसके होते हुए भी उनकी सम्मति से पुरुष दूसरा विवाह कर सकता हैं ।

बन्ध्याऽष्टमेधिवेद्याव्दे दशमे तु मृतप्रजा ।
एकादशे स्त्री जननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ।।

- मनुस्मृति, अध्याय ६, श्लोक ८१

आठ वर्ष तक कोई सन्तान न हो तो दूसरा विवाह करले और जो सन्तान होकर मरती रहें तो दश वर्ष में और लड़कियाँ ही होती हो तो ग्यारहवें वर्ष में (ऐसी दशा में वैद्य या किसी विद्वान् से उचित परामर्श लेना हितकर रहेगा) पूर्व पत्नी की अनुमति से दूसरा विवाह करें और अप्रिय बोलने वाली हो तो तुरन्त उसका परित्याग करें और पुरूष दूसरा विवाह कर सकता हैं। तात्पर्य यह हैं कि विवाह करने का मूल प्रयोजन सन्तान-प्राप्ति से हैं, जिसके लिए पुरूष को सचेत, सुनीतिपूर्वक कार्य करने चाहिए ।

नवयुवकों द्वारा आज के युग में विवाह के भिन्न-भिन्न अर्थ निकाले जाते हैं। कई जीवन का साथी खोजते हैं, कई ऐशो-आराम के लिए, कई रोटी आदि गृह कार्य से मुक्त्यर्थ, कई अपने दादा-पिता की पीढ़ि परम्परा को बनाऐं रखने के लिए, किन्तु यह सब जीवन में नीरसता देने वाली भावनाएँ हैं, वस्तुतः श्रेष्ठ सन्तान प्राप्ति के साधन तथा परमार्थ जीवन-रूप से भी सम्बन्ध है । जिसके बिना गृही का लोक-परलोक, वंश-गृहस्थी शून्य हैं, जीवन, कर्म-योजनाएँ शून्य हैं । धन, परिवार सब व्यवहार नीरस हैं ।

वस्तुतः आज की पाश्चात्य सभ्यता की देन के कारण आधुनिक शिक्षा प्रणाली से पाश्चात्य सभ्यता में ढलने वालों के लिए विवाह नामक

संस्कार एक जीवन का खेल मात्र बना हुआ है, जो रास्ते में, होटल, यात्रा अथवा स्कूल में ही नैन कटारी के शिकार होना तो क्या अपितु वाग्दान शर्त से ही यौनाकर्षण-प्रेम हो जाता हैं। इसके परिणााम भी त्वरित देखने को मिलते हैं - तलाक, मनमुटाव, अन्यत्र लगाव आदि विकार विभिन्नता के रूप में मिलते हैं। इसकी अपेक्षा शास्त्रीय सभ्यता भारतीय प्रणाली द्वारा यदि स्वयं रीति को अपनाया जाय तो विद्वत् सभा, कुलवृद्ध सभा, लोकनीति, वेदरीति के अनुसार निर्वाह रूप कार्य हो, उसमें ऐसे विकारों की रंचमात्र भी सम्भावना नहीं रह सकती।

बाल-विवाह – भारत में प्रादेशिक मुगल-शासन तथा आचरणशीलता के अभाव की परिस्थियों वश ऐसा करना समाज ने उचित समझा था कि १३ वर्ष से पूर्व ही कन्या का विवाह कर देना चाहिए चूँकि बाद में योग्य वर का मिलना/ढूँढ़ना एक समस्या हो जाती हैं। कन्या के सुधार-बिगाड/ अपहरण इत्यादि का भय भी बना रहता था। अब तो भारतीय विचारशील सज्जनों तथा हरविलास शारदा के प्रयत्न से **"शारदा एक्ट"** के नाम से बाल-विवाह-निषैध कानून के जारी होने पर भी उसी प्रकार रूढ़ि-नियम चलाया जाता है। हमारे विचार से बाल-विवाह आदि भयंकर अपवादजनक प्रथाओं से न केवल समाज की अपितु राष्ट्र की भी विशेष हानि होती हैं। नागरिकता के साथ व्यक्तित्व के नाश का तो मूल कारण ही हैं। ऐसे सामाजिक उपयोगी विषयों में कानून-नियम बनाने सर्वोचित उन्नतिशील होंगे जब कि दो से बारह वर्षों के बीच की अवस्था में कन्या को बोलना-चलना कैसे ? यह कुछ मालूम नहीं होता, इतने पर भी गुड्डे-गुड्डियों की तरह पकड़ कर स्वांग रचना में इकट्ठे कर देते हैं। इतने में तो पति का देहान्त भी हो जाय, तब तो आजन्म तक कुमारी रहने को बाधित की जाती है या कुलटा अथवा अपशुकना, अभागिन मानी जाती हैं। जहाँ धर्म के नाम पर ऐसी निक्कमी प्रथाएँ प्रचलित हो और समझदार

पढे-लिखे शास्त्रीय समर्थकों को शिर झुका कर ही रहना पड़े, उस समाज का भविष्य कौन बता सकेगा ? बाल-आयु के विवाह से वर-वधू के जीवन में विकसित होने वाले भावी गुण-कर्म अंग स्वभाव से अपरिचित रहने से तथा बाद में अनमेल होने से तलाक, झगड़ा-विषाद का कारण बन जाता है । यदि अकस्मात लड़के का मरण हो जाय तब तो कन्या के जीवन का सब मामला चौपट हो जाता हैं अर्थात् विधवा का संसार ही दुःखी बन जाता हैं । आज यत्र-तत्र समाचार पत्रों और दृष्टिगत संसार में आँकड़े देखने को मिलते हैं तब आश्चर्यचकित होना पड़ता हैं कि इसके कारण एक मात्र बाल-विवाह और विषम विवाह में से ही बहुधा होते हैं ।

विषम-विवाह - शास्त्रीय नियमानुसार कन्या का विवाह-संस्कार न्यूनतम १८ वर्ष से, अधिकतम २५ वर्ष के मध्य तथा पुरूष का विवाह २५ से ३५ वर्ष के बीच की आयु नियमविहित हैं । शासन, संचालकों को यह नियम विशेष रूप से प्रबन्धित करना चाहिए । उलंघन करने वालों को दण्ड से वंचित नहीं रखना चाहिए ।

दहेज - भारत में दहेज की कुप्रथा के कारण कई माता-पिता बहुधा कन्या की छोटी आयु में उनसे पाँच गुनी, छः गुनी आयु वाले वृद्ध पुरूषों से अनमेल किन्तु धन के लोभ में पड़ कर कन्या का विवाह कर देते हैं । ऐसी स्थिति में निःसन्तान, अल्पवयस्क कन्याओं का जीवन भी नष्ट-भ्रष्ट हो जाता हैं ।

जैसे कि चरक संहिता में स्पष्ट बताया हैं कि १६ वर्ष से कम कन्या में २५ वर्ष से कम आयु का पुरुष गर्भाधान करता हैं, तो गर्भ गिरता हैं, सन्तान जीती नहीं या अति दुर्बल रहेगी । कन्या का नारीत्व नष्ट हो जाता हैं, सन्तति के अभाव में बाँझपन होना, प्रदर (ल्यूकोरियादि) विविध रोगों से स्वास्थ्य हनन हो जाता है । जब कि आज ऐसा होता

है, और देखने को मिलते हैं ।

इन प्रथाओं के कारण भारत में निःसन्तान बालविधवाओं की संख्या तथा साधारण सन्तान की विधवा माताओं के रूप में भी निरन्तर वृद्धि होती जाती हैं । इनमें अक्सर अशिक्षित, धर्म विमूढ़ और कठोर हठधर्मी लोगों की बाल-विधवाओं का वयस्क युवकों से गुप्त प्रेम-सम्बन्ध हो जाने से व्यभिचार प्रतिक्रियादि आपद्धर्म-पाप कर्म भी चलते हैं ।

प्राचीन काल में भारतीय शासक प्रजा सहित पूर्व वर्णित सोलह संस्कारों का पालन करते थे, जिससे मानव जीवन में ऐसे विकार उत्पन्न नहीं होते थे । नियमतः माता, नानी, दादी, पिता, पिता की दादी, नानी के गौत्रों को टाल कर योग्यतम शिक्षित बालक न्यूनतम २५ वर्ष की आयु का और शिक्षित बालिका की न्यूनतम आयु १८ वर्ष अवस्था पर घर-शहर से बाहर-दूर विवाह संस्कार सम्पन्न करवाने चाहिए । किन्तु आज तो बहुधा अपनी माता और दादी की ही गौत्र टालते हैं । कहीं कहीं तो एक ही परिवार के मनमेल लड़का-लड़की माता-पिता की अनिच्छा होने पर ही अथवा अन्तर्जातीय विवाह बिना सोचे समझे करते देखें जाते हैं, जिनका अन्तिम परिणाम तलाक या दुःखद होता हैं ।

सन्तान-सेवा – आजकल मध्य तथा निम्न वर्ग की माताएँ प्रायः प्रजनन से सन्तान उत्पन्न तो कर देती हैं, किन्तु उनकी पालन-पोषण-वृत्ति, उनके मनोविज्ञान का विकास तथा संस्कृति के उत्तम संस्कारों का भारतीय भाव, शास्त्रीय ज्ञान उत्पन्न करना अपना कर्त्तव्य नहीं मानतीं । देखा जाता हैं कि बच्चे कूड़े-कर्कट पर गलियों में मल-मूल से भरे, नाक में रेंट, आँख में गीड़ भरा, मुख में लार टपकतीं, शरीर पर मक्खियों की भिनभिनाहट, कपड़े मैले-कुचेले, हाथों पांवों पर मैल की धाराएँ बहती नजर आती हैं, जिससे सहज ही पता लग जाता हैं कि माँ घर में कैसी सफाई रख सकती हैं ? भगवान् ही बचावे ऐसे परिवार से, आज लगता हैं ऐसी माता या

बहिनें केवल आठ-दश बेटा-बेटी समाज को देकर मानों पशुवृत्ति कुत्ती-बिल्लियों की श्रेणी से तुलना या होड़ कर रहीं हैं । क्या इसी में औलाद के प्रति माता का दायित्व पूरा हो जाता हैं ? कदापि नहीं । बालक का भविष्य उन्नत बनाना माता के अधिकार-कार्यों में प्रथम और प्रमुख कार्य हैं । अतः बालकों की स्वच्छता, भाषा-भाव, व्यवहार-चेष्ठाओं पर संयम, आचरणों सम्बन्धी देखभाल, शिक्षा-योग्यता का प्रबन्ध- सुधार-व्यवस्थापन मुख्य रूप से माता को ही करना चाहिए । गृहस्थ में उतने ही बालकों को जन्म देना हो जितने तक का पालन-पोषण, शिक्षण और व्यवहार की पूर्ति कर सकें । संयमित ब्रह्मचर्य जीवन को धारण करना चाहिए, विपरीत में जब कि लूपादि का प्रयोग किया जाता हैं । यह तो गृहस्थ जीवन को असंयमितता के गढ्ढे में ढ़केल कर निर्बलतादि दुःखों का सागर बनना ही परिणाम हैं । दूसरी ओर समाज में जबकि उत्तम-वर्ग के घराने की माता बच्चे को जन्म देकर धाय या नौकर-नौकरानी पर आधारित छोड़ देती हैं । उनमें भी तो राष्ट्रीयता के संस्कारों की न्यूनता ही पाई जाती हैं, क्योंकि जब तक माता या धाय-सेविका सुशिक्षित-ज्ञान संस्कारों-विहीन होगी तो उनके द्वारा पलित बालक कैसे विदुष हो सकेगा । अतः स्त्री जाति में मातृत्व भाव के लक्षणों में बालक के मौन अन्तस्थ-ज्ञान को परखने-जानने की मनोवैज्ञानिकता भी उत्पन्न करना आवश्यक हैं ।

आजकल की माताएँ बहुधा अपने बालक-बालिकाओं को झूले-गोद में झुलाते-खिलाते हुए पुचकारती, लोरियाँ गाती कहती हैं - 'मेरे पप्पू के बहू लायेंगे, विवाह करेंगे, वधू आयेगी, मौज करेगा ।' इनके साथ खेलते समय कहती है ले लाठी, बाप को मार, माँ को पीट.... हैठ, गाली दे, लात-थप्पड़ मार, बीड़ी-चाय पी । अन्धेरे में मत जाना, हाऊड़ा खा जायेगा, यहाँ भूत-प्रेत हैं, बाबा झोली में ले जायेगा । ले उठ उठ.....चीटियाँ मर गई इत्यादि । यह सब कायरता जनक अपवाद के कुसंस्कार ही बोना हैं -

और क्या ? इन संस्कारों में पला बालक बड़ा होकर कब माता-पिता और समाज की सेवा कर सकता हैं। यह बिल्कुल नहीं होना चाहिए, अपितु अच्छे वीरता-भक्ति-भरे महापुरूषों की कहानियाँ, लोरियाँ सुना कर संयम-संस्कार देने चाहिए जिससे वह बालक बड़ा होकर अपना भविष्य सुधारे और अपने आप (माता-पिता) की सेवा करना स्वयं का कर्त्तव्य समझें।

माताओं के प्रति – माताओं को अपनी सौत की सन्तान के साथ भी उतना ही प्रेम, सेवा-व्यवहार रखना चाहिए जितना और जैसा कि अपने पेट की औलाद के साथ बरता जाता हैं। कन्याओं को शील-स्वभाव तथा नारी-गुणोचित पूर्व कथित स्वभाव-संस्कार देने चाहिए। कभी भी उन्हें ऐसी शिक्षा हो कि ससुराल में धर्म पतिव्रत-सेवा से परिवार-समुदाय को प्रसन्न रखें। घर वालों की बुराई या भेदभरी बातें बाहर जाकर न कहें। नारी जाति का कोई वर्ण-आश्रम आदि सामाजिक अंग नहीं हैं। उन की मान्यता पुरूष वर्ग में पिता या पति के साथ जुड़ी हुई रहती हैं, बालिका, सधवा या विधवा इत्यादि अथवा साध्वी का जीवन पुरूष समाज के साथ पहिचाना जाता हैं।

शास्त्रीय विवेचन से अति स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री भी समाज का महत्त्वपूर्ण एक अंगभूत हैं। हमारे वैदिक साहित्य में दिये सर्वोच्च अधिकार-गुण निश्चय ही प्रशंसनीय और उन्नतिदायक हैं, जिनसे बराबर उत्तम संस्कारों में पली हुई महिलाऐं गौरव-प्रभ होती रहीं हैं। अब भी सब माता-बहिनें अपना विकार-दुर्गुण दूर करके गुणवती बनने का प्रयत्न करें। राष्ट्र के भावी सम्राट, सेनापति, सामन्त या होनहार विद्वान-साधु, ब्राह्मण आदि उन्नतिशील बालकों का संस्कार-पोषण आप से ही होता हैं। ध्रुव, प्रहलाद, मदालसा के पुत्रों का, गोपीचन्द, महाराणा प्रताप प्रभृति माताओं के ही ज्ञान-बल के मुर्त्त रूप थे।

स्त्री को सतगुरु करना चाहिए या नहीं

(समीक्षात्मक विवेचन)

वास्तविक तथ्य पर विचार मन्थन करने से यही पाया जाता हैं कि स्त्री जीवन में सतगुरु की परमावश्यकता है, वह भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी पुरुष वर्ग के लिए या गरु गीता में शिवा के प्रति शिव प्रबोध के अनुसार मानव समाज में सतगुरु होना परम महत्वशील हैं। तब नारी वर्ग के हितकारी जीवन का विचार करने में सर्वप्रथम हमें प्रसिद्ध रूप में प्राचीन से मध्य कालीन सनातन धर्म प्रांगण के इतिहास गवैषणा का चिन्तन करना अनिवार्य होगा। भक्तमाल का स्वाध्याय करने पर पाया जाता हैं कि नारी जीवन के प्रधान दो पहलुओं से वर्ग विशेष का वर्ताव रखते हुए आयु का सर्वभाग पूरा करना होता है।

१. सधवा, २. विधवा या साध्वी के रूप में बालिका, तरुणी, यौवना, प्रौढ़ा और वृद्धा चाहे किसी. अवस्था से आयु व्यतीत करती हो। सर्वत्र जीवन में शिक्षाजन्य विचारोत्पादक प्रेरणा प्राप्त करना प्रत्येक मानव की तरह उन्हें भी आवश्यक हैं। ऐसी अवस्था की विभिन्न परिस्थितियों में यदि पति को ही गुरु माना जाये तो वह कब-कब और कहाँ प्राप्त होंगे ? केवल एक मात्र सधवा को ही वह सौभाग्य होगा अन्य अवस्था को कदापि नहीं। नैतिक जीवन में उन का जीवनाधार बाल्यकाल में पिता या पैतृक परिवार, युवाकाल में पति या जेठ/देवर, सास-ससुर, पुत्र-पुत्री (सन्तति) इत्यादि के अधीन पोषण वृत्ति से रहना होता हैं। ऐसा नीतिकारों द्वारा अपने विभिन्न शास्त्रों में स्मृतिकारों, पुराणों के अनेक प्रसंगति स्थलों पर आलेख मिलते हैं, किन्तु जीवन के भक्तिमय आध्यात्मिक तथ्यों से आत्म कल्याणकारी जीवन में कोई कहीं आल्लेख नहीं के बराबर मिलते हैं, किन्तु सजीव इतिहास क्षेत्र के उदाहरणों में भण्डार भरे मिलते हैं,

जिनमें यहाँ स्थाली पुलाक न्याय दर्शाते हुए प्रस्तुतीकरण का प्रयास करते हैं। पति सेवा में होने वाले लाभ या पतिव्रत्य धर्म की महिमा पति नहीं बतला सकता, यदि पति अपनी पत्नी से अपनी सेवा के लिए कुछ कहता भी है तो अतिश्योक्ति पूर्ण स्वार्थ तत्परता का प्रतीक कहा जा सकेगा। निश्चित ही यह धर्म स्तम्भ सतगुरु द्वारा प्रदत्त प्रभाव माना जा सकता हैं। माता-पिता या अन्य परिजन/पति/ससुराल में रहन सहन की गृहस्थ नीति, काम-काज सिखाते हैं तो उन्हें प्रमाणित सतगुरु या गुरु कहीं नहीं माना गया हैं। कतिपय पति स्वयं गृहस्थ धर्म से अजनवी या लोलुप-व्यशन वृति के पशुत्व के धारक पाये जाते हैं, तब उन्हें गुरुत्व का पद प्राप्त नहीं हो सकता। उपर्युक्त तथ्यों को देखते हुए, ***नारी को सतगुरु शरणागति*** *या नामदान, उपदेश लेने में नकारात्मक आलेख नारी अंक कल्याण वि. संवत् २००४ सन् १९४८ वर्ष २२ पृष्ठ २१३ में दिये अनेक तर्क युक्त* शास्त्रीय प्रमाण केवल एकाकी जीवन में पाखण्ड जाल से बचने का प्रमुख प्रयास कहा जा सकता है, जो सत्यशः सत्य हैं।

सांसारिक जीवन में पति-पत्नी के माता-पिता को परस्पर पति पक्ष और पत्नी पक्ष दोनों में सास-ससुर को भी माता-पिता माना जाता हैं और मानते हैं।

इसी तरह ऐतिहासिक तथ्यों की शोद्ध के पुष्ट प्रमाणों से यहीं माना जाता हैं कि पतिदेव के सतगुरु ही पारम्परिक रूप से स्वाभाविक प्रतिव्रता पत्नी को वही सतगुरू रूप में मिल जाते हैं, जिन्हें छोड़कर उन्हें अन्य गुरु/सतगुरु की शरण लेने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। परिस्थितियों के आधार पर पति के शिक्षा गुरु गुरुदेव और दीक्षागुरु से ही साध्वी को सम्प्रदाय भेष मन्त्र-दीक्षा दाता को भी प्राप्त करना होता हैं। सब तथ्यों का प्रमाणिक रहस्य यहीं है कि स्त्री को इहलोक-परलोक के कल्याण हेतु शिक्षा-दीक्षा हेतु सतगुरु की परमावश्यकता हैं, किन्तु देश

काल परिस्थिति को देखना भी अति आवश्यक हैं ।

यदि स्त्री को सतगुरु करने की आवश्यकता नहीं होती तो इतिहास ज्योति में चमकती किरणें प्राचीन/अर्वाचीन काल में देखी जा सकती है । उमा (पार्वती) एवं सीता के गुरु नारद, पाँच पांडवों के गुरु धौम्य ऋषि का द्रौपदी द्वारा सेवा-सम्मान एवं सीता द्वारा वशिष्ठ, वामदेव का आदर हुआ । राजा शान्तनु के घर में गंगा, कुन्ती, द्रौपदी जैसी नारियों के गुरु हुए हैं, ऐसे अनेकों प्रमाण दिये जा सकते हैं । जोधपुर गुरुपीढ़ी में श्रीराम जी की सुपुत्री एवं स्वामी देवीदान जी के पूर्वभावज श्री विरक्त विदुषा **अंजनेश्वर जी की गद्दी शिष्य परम्परा अद्यावधि पर्यन्त महिला साध्वी महन्त ही रहती आई हैं ।** ऐसे अनेक पूज्या साध्वियाँ, विदुषाएँ, माताएँ हुई या हैं । ऋतम्भरादेवी, उमाभारती, शिवासरस्वती आदि अनेकों जो अर्वाचीन काल विद्वत् श्रृंखला में सतगुरु पद को भी शोभित करती है और समाज को सम्बोधन देती रही हैं ।

शास्त्रकारों के प्रासंगित उदाहरणों के अनुसार यदि पति को ही गुरु माना जाता है तो एतिहासिकता को परखने से अवगत होगा कि हिरण्यकश्यप के घर में प्रहलाद की माता क्याधू, रावण के घर में हरिभक्ता मन्दोदरी, जरासन्ध के घर में कोटरा का होना, मतंग शिष्या शिवरी, चुड़ाला रानी से राजा शिखरध्वज को उपदेश देना नहीं होता ? ऐसे ही योगीराज गोपीचन्द की माता मैनावती एवं रानी कृष्णावती, विरक्त बहिन चन्द्रावलि को ज्ञान नहीं होता ? जो योगी जलन्धरनाथ एवं गोरखनाथ की शिष्याऐं रही हैं । वेदान्त मार्तण्डा गार्गी, मैत्रैयी देवी, कात्यायनी, अनुसुयादेवी, उभयाबाई (दो बहिनें-भक्तमाल कथा) ऋतुध्वज के पुत्रों में चिक्रान्त, सुबाहू, शत्रुमर्दन, अलर्क की माता (रानी) मदालसा द्वारा उपदेश देना, ऐसे ही आधुनिक इतिहास में सुरसरिदेवी, पदमावती देवी के सतगुरु जगद्गुरु आद्य रामानन्दाचार्य जी थे । मीराबाई एवं उनकी सासु झाली रानी के

गुरुदेव रविदासजी महाराज थे । सहजाबाई के गुरु चरणदासजी, रूपां-मलीनाथ के गुरू उगमसिंह रहें । ऐसे ही ऐतिह्य चन्द्रिका कर्मेति बाई, अमानाबाई, रानाबाई, कर्माबाई, फूलीबाई, इन्दौर की महारानी अहल्याबाई, शिवाजी की माता जीजाबाई इत्यादि की जीवनियाँ भी दर्शनीय पठनीय हैं । इतिहास साक्षी हैं कि उपर्युक्त प्रमाणित बिन्दुओं में सब के सतगुरु आकाशीय नक्षत्रों के समान रहें हैं, उनके सतगुरु पति कदापि नहीं रहे थे । ऐसी कथाओं से नारी अंक कल्याण - भक्तमाल/संत इतिहास साध्वी भक्त वीरांगनाओं के प्रमाण भरे ग्रन्थ स्वंय साक्ष्य हैं । जो राणियाँ राजाओं को उपदेश दे सकती हो, वहाँ पर कौन-कैसे ? **''पति गुरुणां गुरु''** हो सकते हैं अर्थात् इस सूत्र का सत्यार्थ होगा कि - **जो पति का गुरु हैं, वहीं पत्नी का गुरु हैं,** तब एकाकी पति से भिन्न अन्य गुरु की शिष्या बनने में पावनता के लिए अपने पतिदेव के सतगुरू ही गुरूदेव मान्य हैं । पति के सतगुरू ही पत्नी के सतगुरू हो, इस शब्दांश से होने वाली शंका का समाधान भी एक उत्तर के रूप में पठनीय होगा ।

क्या पति-पत्नी के एक सतगुरु हो सकते है ?

आधुनिक परिवेश में आस्थावन गुरुभक्तों में विशेष प्रकार की शंका यत्र तत्र उभर रही है, जिनका समाधान भी आवश्यक है । आइये जरा चिन्तन करें -

(१) अखिल ब्रह्माण्ड सृष्टि की उत्पति एक ब्रह्मा के द्वारा उत्पन्न होने के कारण प्रत्येक जीव-जन्तु या मानव जाति में नर-नारी (स्त्री-पुरूष) के एक ही ब्रह्मा पितामह हैं । ऋषि-महर्षि जन के स्मृति विधान से सांसारिक व्यवहार में गृहस्थ जीवन को व्यतीत करने हेतु जब एक ही ब्रह्मा द्वारा रचित/सृजित नर-नारी का सम्बन्ध स्थापित करते गृहस्थ बनते वंश बढ़ाने में कोई संकोच या शर्म का अनुभव नहीं होता, तब एक सतगुरु की

शरण जाने में, नामदान, प्रभु सुमिरण/शरणागति के विरोध या विवाद का कोई कारण प्रतीत हो, यह कदापि उचित नहीं होता ।

(२) संसार के नर-नारी में एक जीव तत्व की मान्यता वेदान्त सिद्धान्त के तत्ववेताओं ने दी है । जब पुरूष वर्ग में जीव और स्त्री वर्ग में कोई ईश्वरीय रचना की जीवली तत्व की भिन्नता नहीं कही गई, अपितु सब में स्त्री-पुरुष मात्र में एक जीव तत्व चेतन स्वरूप कहा गया हैं ।

(३) भट्ट ग्रन्थों के आधार पर अथवा पौराणिक सृष्टि या भारतीय धर्म इतिहास तथा मानव वंशावली की आद्य सृष्टि में **१. सूर्यवंश, २. ऋषि (अग्नि) वंश और ३. चन्द्रवंश के प्रति वंश से सृष्टि में बारह गौत्र प्रस्तार से कुल छतीस वंश गौत्रकी उत्पति कहीं गई हैं** । जो आज लगभग साढ़े तीन हजार से अधिक गौत्र-वंश मानव समाज में विस्तृत प्रस्तार में विविध प्रकार से कथन करते हुए सृष्टि का वृहद् व्यापार कहा गया हैं । यह जानने के लिए उत्सुकता की शान्ति पुष्टि में **भट्ट बही ग्रन्थों का** प्रमाणीकरण सभी मानव वर्ग के सामाजिक लोग निर्विवाद रूप से मानते है और जाने जा सकते हैं । जबकि पूर्वज ऋषि-महर्षि मानव समाज के विधि वेताओं ने वंश-गौत्र की शुद्धता बनाये रखने के लिए या बनी रखने के लिए **बही भट्ट वर्ग की नियुक्ति की गई थी** । जिसके द्वारा मानव समाज के प्रत्येक सूर्य, अग्नि, चन्द्र वंश के प्रबुद्ध लोगों को वंश शुद्धता के लिए नैतिक सूत्र बनाकर उसकी शुद्धता जतलाने-बतलाने के लिए गौत्र, खॉप, निकास की प्रणाली का आलेख वद्ध भट्ट ग्रन्थ (बही) रखने का विधान प्रबन्धितकिया गया था कि - समय-समय पर उसके आधार पर बही वाचन करके भट्टजन प्रत्येक तीनों वर्ग (वंश) के गौत्रज लोगों को जानकारी देते रहते थे । जिसके द्वारा समाज के सभी लोगों को समय-समय पर सूर्य, अग्नि, चन्द्र वंशज के सामाजिक मानव को वंश की शुद्धता का ज्ञान मिलता रहें, ताकि कोई भी मूल वंश की अपावन पद्धति से उसका अतिक्रमण करके विवाह सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकें । चूँकि

मूल सूर्य वंश के सभी बारह गौत्र एक परिवार से हैं। ऐसे ही अग्नि (ऋषि) वंश के सभी बारह गौत्र एक वंशज के हैं अर्थात् सब अपने-अपने मूल के निकास वंश में उत्पन्न होने वाले बालक-बालिका, नर-नारी स्त्री-पुरुष स्मृत सृष्टि विधान से **सभी बहन भाई** ही हैं। जैसे कि एक परिवार के सदस्य माने जाते हैं **(उसी तरह प्रत्येक वंश के सम गौत्रज सभी सूर्यवंशी गौत्रज के लोग एक परिवार के होते हैं। अग्नि वंश गौत्रज के लोग एक परिजन और चन्द्रवंश गौत्रज के लोग एक परिवार के सदस्य ही होते हैं।)** समयान्तर भट्ट (भाट) लोगों ने अपने कर्त्तव्य को रोज़ी रोटी कमाने का धन्धा बना दिया, अब केवल उनका भट्ट बही में पूर्वज वंश प्रणाली के लोगों के नव नामांकित करना मात्र कर्त्तव्य रह गया। सामाजिक लोग भी कर्त्तव्य विमुख हो गये कि नया सगाई-विवाह सम्बन्ध करते समय कन्या पक्ष और वर पक्ष के वंश-गौत्र की शुद्धता का मिलान देखना भूल रहें हैं। बालकों का नव सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता-अयोग्यता के विचार से रिश्ता करना अवश्य समझ लेना चाहिए। **१. भट्ट लोगों द्वारा बही वाचन की कर्त्तव्य विमुखता से रोजी-रोटी का धन्धा उत्पन्न हुआ। २. ऐसे ही जनसमूह के सामाजिक वंशज के लोगों ने सामाजिक अतिक्रमण से स्वार्थ तत्परता एवं नियम उल्लंघन करके अपनी निष्क्रियता पूर्वक नास्तिकता का परिचय दिया।** इन दोनों कारणों से आज ज़ब समाज में बहुधा लोग एक ही (सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि) वंश के गौत्र-खाँप की मर्यादा का उल्लंघन करते अपने ही वंश के विभिन्न गौत्रोत्पन्न खाँपों में लड़के-लड़कियों के सगाई-विवाह सम्बन्ध करते नहीं शर्माते, तब पति-पत्नी को एक सतगुरु की शरण लेने में कैसा संकोच होता हैं ?

सतगुरु, आध्यात्मिक शिक्षक, धर्मपिता, उपदेशक तथा व्यवहारिक-धार्मिक, लौकिक पारलौकिक शिक्षा के दाता हैं, तब उनकी शरण लेने में स्त्री-पुरुष सच्ची सत की भावना से बँधते हैं। तब वह गरु भाई नहीं अपितु गुरुभावी शब्द से सम्बोधित होते हैं। लोग अपभ्रंशित शब्द का

गलत प्रयोग करते हैं ।

जब एक विद्यालय में, एक कक्षा में और एक ही अध्यापक से शिक्षा ग्रहण करते समय गुरुभाई नहीं होते और विवाह करते नहीं शर्माते, तब एक ब्रह्मतत्व के उपदेशक सतगुरु शरणापन्न होने में लोग कैसे भ्रान्ति उत्पन्न करते हैं ? उन्हें इस तत्व को समझने में संकोच नहीं होता, तब क्यों शर्माते हैं ? एक ही ब्राह्मण (वेदज्ञ) द्वारा वैवाहिक यज्ञ मण्डप की भावरी (मन्त्र-सम्बन्ध) करवाने पर संकोच-शर्म नहीं आती । तब सतगरु शरणापन्न (मन्त्रदान) लेने में कौन से विधान से कैसा नियम उल्लंघन होता हैं ? अतः पति का गुरु ही पत्नी का गुरु होना उचित हैं ।

(४) पति के सतगुरु भिन्न और पत्नि के सतगुरु भिन्न वे चाहे किसी मत पन्थ सम्प्रदाय के भिन्नाभिन्न कैसे भी हों । दम्पति के अलग-अलग सतगुरु होने से मन्त्र भेद, सेवाभेद, सम्प्रदाय अथवा भाव-प्रेम मर्यादा-श्रद्धा का बिगाड़ हुए बिना नहीं रह सकता । एक दूसरे के अन्यान्य सतगुरु के प्रति मन मुटाव या विकृति आये बिना नहीं रह सकती । पति-पत्नि के अलग गुरु-सतगुरु होने में भेंट या सेवा की न्यून-विशेषता हो जाने अथवा बार-बार पधारने या अधिक प्रवास-निवास होने इत्यादि में व्यवहार बाधक होना स्वाभाविक होगा । अपने-अपने मन की श्रद्धा का टकराव, इष्ट-उपासना का भटकाव सताता रहता हैं । किसी भी पति-पत्नी के एक सतगुरु होने अर्थात् दोनों को एक ही तत्वज्ञ सन्त से उपदेश लेने में इष्ट-उपासना, सेवा-भाव, श्रद्धा-सम्प्रदाय के साथ आर्थिक बोझ के बिना, पारिवारिक मतभेद की निवृत्ति के साथ, मन्त्र-साधना इत्यादि की एकता बनीं रहने से घर की सुख सम्पति में साधक समता बनी रहती हैं ।

(५) पति-पत्नी के जब भाट एक, कपाल गुरु एक, पूजा मन्दिर एक, समाज गुरु एक, सास-ससुर को माता-पिता की मान्यता एक होनेमें कोई सन्देह नहीं रहता । तब एक सतगुरु की शरण लेने से क्या संकोच

और कैसी शर्म या शंका हो सकती हैं, **पति के माता-पिता, पत्नी के सास-ससुर हैं, जिन्हें चार माता-पिता के रूप में पत्नी के भी माता-पिता ही माने जाते हैं । तब सास-ससुर को माता-पिता मानने में शर्म नहीं, संकोच नहीं । ऐसे ही पत्नी के माता-पिता को पति भी माता-पिता (सास-ससुर) ही मानते हैं,** जिसे कोई नहीं टोकता, किन्तु मन्द बुद्धि के गँवार आदमी कह देते हैं कि पति-पत्नी के एक सतगुरु होने में वे "गुरुभाई" हो जाते हैं। अतः सम्बन्ध मन की भावना से हैं, आत्मा-परमात्मा के अटूट अक्षय भाव से है, जो सतगुरु के माध्यम से गुरू भाव या गुरु भावी (वृहद् ज्ञान के भविष्य) शब्द का द्योतक हैं । जिसका सांसारिक जाति-पांति, वर्ण-गौत्र या बाहरी व्यवहार से कोई लेने देने का सम्बन्ध नहीं हैं। जिसे मूर्ख लोग या दुष्ट बुद्धि के लोग मनमुखी शब्दों की जोड़ तोड़ से अनर्गल विचारों का पोषण कर देते हैं ।

वस्तुतः एक घर में, एक परिवार में, एक दाम्पत्य जीवन के पति-पत्नी को एक ही इष्ट-उपासना धर्मसम्प्रदाय निष्ठ मर्यादित जीवन में लोक-परलोक कल्याण हेतु एक ही सतगुरु की शरण लेनी चाहिए और निर्व्यशनी पाखण्ड रहित विद्वान सन्तों की सेवा-सतसंग करते रहना चाहिए ।

पति-पत्नी एक सतगुरु के शिष्य हो सकते हैं क्या ?

यह अखिल सृष्टि के सृजेता स्त्री-पुरुष के भी एक ही सृजेता हैं फिर लोग दाम्पत्य सुख की गृहस्थी सम्बन्ध से जुड़ते हैं। ऐसे ही इतिहास एवं भट्ट ग्रन्थों या वंश गत बहियों से प्रतीत होता हैं कि सम्पूर्ण मानव सृष्टि की उत्पति बारह-बारह के क्रम से कुल ३६ वंशों के गौत्र विस्तार से आधुनिक समाज के विस्तृत चार हजार से ऊपर गौत्रोत्पन्न संसार के मानव हैं । इसमें विवाह संस्कार से पूर्व कुल गौत्र का परिचय में यह

नहीं पूछा जाता कि वर-कन्या के वंश भिन्न हैं या एक ही हैं ? जबकि नियमानुसार स्त्री-पुरूष (वर-कन्या) के वंश भिन्न होने चाहिए, किन्तु ऐसा विचार नहीं होने से ९८% भिन्न-भिन्न गौत्र होते हुए भी एक ही वंश शाखोच्चार में सम्बन्ध करके गृहस्थी बाँधी जाती हैं।

उपर्युक्त दोनों बिन्दुओं में सृष्टि उत्पति के उपक्रम होते हुए सर्वथा पूछने-जानने योग्य और त्याग करने के मूल मन्त्र हैं, किन्तु कोई यह जानने या त्याग करके पावनता का प्रयत्न नहीं करते हैं।

जबकि सतगुरु द्वारा अध्यापक की भाँति केवल प्रणव मन्त्र दीक्षा, मानव जीवन की मूल लोक शिक्षा, सामाजिक मर्यादा, धर्म शिक्षा द्वारा परलोक (पुनर्जन्म) के सुधार उद्धार की वेदोक्त-शास्त्र विहित उपेदश दिया जाता है। इससे शरीर के संसर्ग रहित वाणी-मन एवं खान-पान व्यवहार शुद्धि की शिक्षा, कथा, नारी धर्म-पुरुष का पौरुषेय कर्म जागृत करनेकी प्रेरणा होती हैं। उसमें ऐसी शंका करना सर्वथा निर्मूल हैं। स्त्री-परुष दोनों का एक ही सतगुरु होने से धर्म विरोध, उपासना का तिरोधान, मत-भेद के इष्ट का अभाव होकर गृह संकट की निवृति होती हैं। दम्पति में सम्पति का साम्यभाव होने से घरेलू समस्या का समाधान प्राप्त करने में अति सुविधा रहती हैं। ऐसे कई दृष्टान्त एवं आँखों देखे प्रत्यक्षानुभूति के उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं कि दोनों के अलग-थलग भिन्न सतगुरु होने से आचार संहिता का पतन, दुर्भाव की स्थिति से घरेलू समस्या उजाड़ की तरफ जाती हैं। यह प्रथा सूफीमत की देन हैं तथा ऐसे प्रश्न भी उन्हीं के कारण से हैं। ऐसे ही अनेक उदाहरण प्रत्यक्ष हैं कि दोनों के पूज्यपाद एक सतगुरु होना निर्भय भाव का सुखी जीवन हैं। इष्ट-उपासना, पूजा-भेंट-सेवा आदि का स्त्री-पुरुष में सर्व एक्यभाव का मत रहता हैं।

सतगुरु शरण प्रत्येक के लिए आवश्यक क्यो ?

मानव का जीवन अपना होता हैं, प्रत्येक के लिए लोक-शिक्षा, प्रकृति-स्वभाव, संग-दोष, मनोवृति के भाव अपने ढ़ंग से अलग ही होते हैं । अवस्था के साथ विचार बदलते हैं । माता-पिता से प्राप्त संस्कार संग दोष से आयुगत क्रिया के साथ बढ़ते/बदलते रहते हैं। ऐसी परिस्थितियों में घर के एक मुखिया द्वारा सतगुरु शरण लेने मात्र से परिवार के अन्य सदस्यों को अपनत्व का भान नहीं होता ।

प्रत्येक बाल, वृद्ध, युवा तथा कन्या सधवा या विधवा, स्त्री-पुरुष मात्र का सतगुरु शरण मन्त्र दीक्षा की शिक्षा आवश्यक हैं और वह भी पूरे घर के सदस्यों को एक ही इष्ट-पूजा उपासना सेवा से जुड़ना चाहिये । गुरुधाम, इष्ट द्वारा एकनिष्ठ रहना चाहिये । प्रत्येक माता-पिता का परम कर्त्तव्य होता हैं कि सद् शिक्षार्थ सुसंस्कार पोषित करवाने के लिए एक निर्व्यशनी धर्म सम्प्रदाय से अपनी सन्तान पुत्र-पुत्रियों, बहुओं को जोड़ना चाहिये ताकि सत शिक्षा की आचार संहिता, लौकिक जीवन का सुधार एवं पारलौकिक जीवन का उद्धार हो सकें ।

जैस भोजन-वस्त्र, जल-विश्राम स्वास्थ्य की मूल सुविधाऐं आवश्यक हैं । वैसे ही सतगुरु शरण भी सबके लिए आवश्यक हैं । अपने जीवन के सम्बन्ध में सामाजिक, आर्थिक, व्यवहारिक, बौद्धिक, लौकिक एवं पारलौकिक सुविधापूर्ण दुविधाओं के निवारण हेतु पुरुषार्थ करना प्रत्येक को अलग-अलग आवश्यकता प्रतीत होती है । उसी प्रकार सतगुरु की शरण से लोकहित, परलोक साधन की व्यवहार शिक्षा के लिए प्रणव पालक तारक मन्त्रराज हेतु दीक्षा लेना परम आवश्यक हैं ।

घर के मुखिया के उपदेशी होने के साथ उस परिवार के सदस्यों से ऐसा अलगाव कारक पक्षपात का बर्ताव क्यों ? यह हितकारी मितकारी लाभ से वंचना क्यों ? अतः मानव मात्र तथा घर के छोटे-बड़े सबके लिए सतगुरु-शरण, सतसंग, आध्यात्मिक स्वाध्याय अति आवश्यक हैं ।

चारों वर्णों के स्त्री-पुरुषों को
वेद पढ़ने का समानाधिकार हैं

आज यत्र-तत्र हिन्दू समाज में वंश के वैरी रूढ़िवाद से मूर्ख (अनपढ़) समाज के अभिनेताओं में काना-फूसी होती देख कर या सुन कर उनकी अज्ञानपूर्ण हृदय-संकीर्णता पर हँसी के साथ दुःख भी होता हैं कि इन्हें शास्त्र-अनभिज्ञता और कट्टरता का संस्कार अन्ततोगत्वा पतन के गड्ढे में गिरा ही देगा। शास्त्रकारों का निष्पक्ष न्याय-रूप देखिए -

न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति ।
नास्याधिकारोधर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् ॥

- मनुस्मृति, १०/१२६

शूद्र कोई बड़ा पाप नहीं कर सकता, उसका संस्कार नहीं हो सकता, क्योंकि निर्बुद्धि होने से धर्म में उसका अधिकार नहीं अपितु धर्म-पथ से उसे कोई रोक भी नहीं सकते, यदि वह योग्य है। **धर्म-विवाह-पद्धति** के मन्त्रोच्चारण में भाँवरी मन्त्र मध्ये **'इमं मन्त्रं स्त्री पठेत्'** आया हैं, यदि स्त्री जाति अशिक्षित रहे तो वह मन्त्रोच्चारण कैसे कर सकेगी। इस सम्बन्ध में पहले ही विवेचन कर लिया गया हैं।

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः ।
मन्त्रकर्जं न दुष्यन्ती प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ॥१२७॥
यथा यथा हि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः ।
तथा तथेमं चामुं च लोकं प्राप्नोत्तऽनिन्दितः ॥१२८॥

- मनुस्मृति, अध्याय १०

शूद्र-कुलोत्पन्न भी यदि सदाचारी, धर्म-प्रेमी और धर्मज्ञ हो तो वेदों के पण्डित न होने पर भी उसकी निन्दा नहीं होती अपितु सदाचारादि सुशीलता के कारण प्रशंस्य ही होगा। जैसे-जैसे शूद्र-कुलोत्पन्न परुष ईर्ष्या-द्वेष का त्याग करके सद् आचरणपूर्वक जीवन व्यतीत करता हैं - वैसे ही वह

इस लोक में उन्नत (उच्चवर्णता) तथा परलोक में उत्तम गति को पाता है। स्पष्ट ही हैं कि किसी को भी धार्मिक अधिकारों से वंचित करके दासता की अवस्था में रखना शास्त्र-अभिप्राय नहीं हैं। अपने पैरों को काट कर फेंक देने की भाँति शूद्र-कुलोत्पन्न से घृणा करें तो वह कैसी महान् मूर्खता होगी और समाज की दुर्गति भी।

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उत्तार्ये ॥

– अथवर्वेद, काण्ड १६, अनुवाक ७, सूक्त ६२

हे अग्ने ! मुझे देवताओं और राजा का प्रिय बनाओं। मैं शूद्रो-आर्यों का और सब देखने वालों का भी स्नेह-पात्र होऊँ। **इस प्रकार से यहाँ चारों वर्णों की प्रीति से बरतने का आदेश हैं।**

'व्रज कृणुध्वम्' (अथवर्वेद १६/५८/४) में स्पष्ट हैं कि समाज के शरीर से संगठन कर के रहो। **'धर्म प्रयज्ञा'** (ऋग्वेद, ३/१७/५) धर्म का व्यवहार धारण करो। **'मा भ्राता भ्रातरध्वम्'** (वेद) भाई-भाई से द्वेष (घृणा) मत करो। **'संगच्छध्वम् संवद्दध्वम्'** (वेद) सब वर्ण के मनुष्य मिल कर चलो और मिल कर एक वाणी में बोलो। **'उत्तिष्ठत जाग्रतप्राप्यवरान् निबोधत्'** (उपनिषद्) सब उठो ! जागो !! और श्रेष्ठ पुरुषों से ज्ञान प्राप्त करों। **'कृणवन्तो विश्वमार्यम्'** (वेद) संसार को वेद के ज्ञान से उज्ज्वल बनाओं।

इत्यादि पद-पद पर स्पष्ट रूप से अस्पृश्यता का खण्डन, सब वर्णों को समान शिक्षामय जागृति की प्रेरणा प्राप्त होती हैं। अतः वेद को पढ़ने-धारण करने की बुद्धिजीवी स्त्री-पुरुषों, चारों वर्णों का पूर्ण अधिकार हैं। इस प्रसंग को आगे और भी सप्रमाण पुष्ट व स्पष्ट किया जायेगा। अस्तु –

अब तो जन देख जरा मन में, धर ध्यान समाज के नेक भले को ।
खोटि बुराई के काम तजो सब, आचरणशील तो रंच छले को ।।
आपस फूट के द्वेष को त्याग के, संघ शक्ति बल देख पले को ।
शास्त्र वेद पुराण पुकारत, रामप्रकाश जो मान चले को ।।

पुराणों में नकली मिलावट के नमूने

प्रसंगवश पूर्व-कथन किया गया है कि आज के समय से १००० अथवा १५०० वर्ष पूर्व से हमारे शास्त्रों में कई प्रक्षिप्त (नकली-मनमानी) स्वार्थसिद्ध अंश जोड़ कर हिन्दूधर्म-आर्यता को अवनति मे पतित करने का पथ किया था - विद्वानों की दृष्टि में तर्कपूर्ण, अमान्य तथा कई विरोधाभासपूर्ण विषय है । जो उज्ज्वल सनातन धर्म के सर्वथा विपरीत घोष हैं किन्तु जन-साधारण हम अब तक नहीं जान कर संशयात्मक भाव से प्रमेयगत-प्रमाणगत संयुक्त असम्भावना एवं विपरीतभावना में बन्धित मुक्ति-पथ में भ्रमित हो रहे हैं । यहाँ पर दर्शनार्थ कुछ नकली (मिलावटी) श्लोकों के कुछ नमूने (एक दो) उद्धृत करते है । सब का पूर्ण कलेवर छांटा जाय तो यही प्रसंग एक महापुराण के रूप में सहस्त्रों पृष्ठों का भोजन कर लेगा । इसलिए यहाँ केवल उदाहरण प्रस्तुत करते है ।

अतः ऐसे विरुद्ध प्रसंग श्लोकों का प्रतिकार कर के बुद्धि से त्याग देना चाहिए और अपने तर्क-कसौटी-विचार से शुद्ध परिमार्जित आर्य-सनातन-कल्याणकारी धर्म की धारणा द्वारा प्रत्येक पारिवारिक प्रेम रखें । अस्तु -

आदम नाम पुरुषः पत्नी हव्यावती तथा

★ ★ ★ ★ ★

अदान नगस्यैव पूर्वभागे महावनम् ।
ईश पुत्रं च माम विधि कुमारी गर्भ संभवम् ।।
मोहम्मदः इतिख्यातः शिष्य शाखा समन्वितः ।

लिंग छेदी शिखाहीनः " " " ।।
नगर्याम कालिकातायाम् " " " ।
विकटे पश्चिमे देशे तत् पत्नी विकटावती ।।
रविवारे च सण्डे फाल्गुने चैव फरवरी । - भविष्यपुराण, ३-१-५

देखिये - क्या ? आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व वेदव्यास ऋषि-रचित पुराण-काल में आज से गत १५०० शताब्दियों में होने वाले ऐतिहासिक प्रमाणनीय नाम (शब्द) जो आज हैं वे थे ? नहीं ! यह हैं प्रक्षिप्त (नकली) मिलावट के श्लोक जो स्पष्ट ही झलक रहीं हैं । आदम-हवा, अदान, कुमारी कन्या पुत्र ईसा, मोहम्मद, कलकत्ता का प्रतीक अपभ्रंश और सण्डे, फरवरी इत्यादि सब मध्यकालीन के ऐतिहासिक भाषामय नाम आये हैं । इसी प्रकार मनुस्मृति में ६० श्लोक प्रक्षिप्त हैं, नीति शास्त्रों में १०५७ के लगभग श्लोक हैं, धर्म शास्त्रों में एक लाख के लगभग प्रक्षिप्त श्लोक मेरी पाठ्य-शास्त्र-सामग्री में दृष्टिगोचर हुए हैं । इसी प्रकार मोटे तौर पर एक प्रमाण और लो । जैसे -

अथ हास्य शूद्रस्यवेद मुपश्रण्वतः धारणे शरीर भेदः ।
जातुत्रपुभ्यां कर्णं परिपूर्णमुच्चारेण जिह्वाच्छेदः ।।

- बुद्ध-गौतमस्मृति

यदि कोई शूद्रकुलोत्पन्न वेदमन्त्र सुन ले तो कानों में शीशे व लाख को भरदो, उच्चारण करें तो जिभ्या काट दो, याद करे तो शरीर को काट कर टुकड़े कर दो इत्यादि । यह मन्त्र आगे पृष्ठ २२४ में दिये गए मन्त्र का प्रतिरोधाभास हैं जो एक ही रचयिता के शास्त्र में विपरीत पड़ते हैं ।

कन्यायां दत्तशुल्कायां म्रियेत यदि शुल्कद ।
देवराय प्रदातव्या यदि कन्याऽतुऽमन्यते ।।

- प्रक्षिप्त मनुस्मृति, अध्याय ६, श्लोक ६७

कन्या का शुल्क देने पर यदि शुल्क देने वाला मर जावे तो देवर को कन्या दे देनी चाहिए । यह श्लोक अगले ही श्लोक ६८ के विरोधाभास

में प्रक्षिप्त हैं, देखिये शुद्ध -

आददीत न शूद्रोऽपि शुल्कं दुहिंतर ददन् ।

शुल्कं हि गृहणकुरूते छन्नं दुहितृ विक्रयम् ।। - मनुस्मृति, ९/९८

द्विजों की तो कथा ही क्या है, शूद्र भी लड़की देता हुआ शुल्क ग्रहण न करें । शुल्क ग्रहण करने वाला छिपा हुआ कन्या का विक्रय करता हैं । **"नानुशुश्रम जात्वेतत्पूर्वेष्वपि हि जन्मसु ।"** पूर्व के जन्मों में भी लड़की को बेचते नहीं सुना क्योंकि यह महापाप हैं ।

नानुशुश्रम जात्वेतत्पूर्वेष्वपि हि जन्मसु ।

शुल्कसंज्ञेन मूल्येन छन्न दुहितृविक्रयम् ।।

- मनुस्मृति अध्याय ९, श्लोक १००

न शूद्रायमतिं दद्यान्नेच्छिष्टं न हविष्कृतम् ।

न चास्योपदिशेद्धर्म न चास्य व्रतमादिशेत् ।।

- मनुस्मृति, ४/८०-१

शूद्र को बुद्धि और उच्छिष्ट व हविष्कृत अर्थात् होम के शेष भाग को न दें और उसको उपदेश न करें, व्रत भी न बतावें । जो शूद्र को धर्मोपदेश और प्रायश्चित का उपदेश करें, वह उसके साथ बड़े अंधकार वाले नरक में गिरता हैं - यह दोनों श्लोक मनुस्मृति १०/१२६-१२७ में बतलाये धर्म के सर्वथा विपरीत में हैं जो पीछे **वेद पढ़ने का** सर्वाधिकार **नामक शीर्षक में उद्धृत किए गये है ।**

न माँभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ।

प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ।।

- मनुस्मृति, प्रक्षिप्त ५/५६

माँस-भक्षण में और मद्य-पान तथा मैथुन में दोष नहीं और इसको छोड़े तो बड़ा पुण्य हैं । जब कि सनातन धर्म के सर्वथा विपरीत में यह कथन आया हैं (जिसका सविस्तार खण्डन हमारे *उत्तम प्रकाशन* के नशा

खण्डन-दर्पण में द्रष्टव्य है ।) जब कि इसी के विपरीत में मनुस्मृति में (५/५५ पर) आया हैं कि इस लोक में जिसका माँस भक्षण करता हूँ, परलोक में वह मुझे खायेगा । ऐसे ही (मनु० ८/१०० में आया हैं) जो सर्वथा दोषपूर्ण हैं कि यवन-वशिष्ठ की शपथ-धारण-कथा मनु ने कही, इसमें **असामयिकता दोष आता है कि यवन द्वापुर में होने वाला, वशिष्ठ त्रेतायुग में होने वाला जिसकी कथा मनु सर्वादि पूर्व में कह डालता है, यह कहाँ तक संभव हैं ? पाठक ऐसे मिलावटपूर्ण धोखे को पहिचाने, जिसका उत्तरदायित्व हमारे ब्राह्मण पण्डितों की कृपा पर ढ़ोया जाना सत्य हैं,** जिन्होंने विदेशी प्रशासन के दबाव में तलवार के बल पर मृत्यु भय अथवा चन्द सोने-चाँदी के सिक्कों के लालच वश होकर अपनी विद्वता का दुरुपयोग करके समाज को पतन/विघटन करने का काम किया । अस्तु -

रामायण का प्रसंग देखिये जो लोकों में एक शंकात्मक प्रतिभास लेकर पड़ा है कि राम के राज्य में एक शूद्र का तपस्या करते पाया जाने पर उसे जान से मार देना बताया गया हैं किन्तु यह कथा प्रक्षिप्त है । वस्तुतः मूल रूप वास्तविक नहीं हैं । ***यदि सत्य होती तो चाण्डालयोनिज मतंग व वेश्यापुत्र वशिष्ठ आदि शूद्रयोनिज होकर भी महत्पद कैसे पा सकते ?*** *किन्तु वह एक शूद्र नहीं - यह प्रसंगातिरेक विवादास्पद केवल नैतिक कथा है जो कई पक्षपातियों के द्वारा कही जाती है ।*

अस्तु जहाँ से यह प्रसंग लिया गया हैं - उस पर चिन्तन करें, कि बाल्मीकीय रामायण उत्तरकाण्ड पचहत्तरवाँ व छिहत्तरवाँ सर्ग में लिखा गया हैं -

तब राजर्षिनन्दन रघुनाथजी दक्षिण दिशा की ओर गये । वहाँ शैवल पर्वत के उत्तर भाग में उन्हें एक महान् सरोवर दिखायी दिया ।।१३।।

उस सरोवर के तटपर एक तपस्वी बड़ी भारी तपस्या कर रहा था । वह नीचे को मुख किये लटका हुआ था । रघुकुलनन्दन श्री राम ने उसे देखा ।।१४।।

देखकर राजा श्री रघुनाथजी उग्र तपस्या करते हुए उस तपस्वी के पास आये और बोले – 'उत्तम व्रत का पालन करने वाले तापस ! तुम धन्य हो । तपस्या में बढ़े-चढ़े सुदृढ़ पराक्रमी पुरूष ! तुम किस जाति में उत्पन्न हुए हो ? मैं दशरथकुमार राम तुम्हारा परिचय जानने के कौतूहल से ये बातें पूछ रहा हूँ' ।।१५।।

'तुम्हें किस वस्तु को पाने की इच्छा है ? तपस्या द्वारा सन्तुष्ट हुए इष्टदेवता से वर के रूप में तुम क्या पाना चाहते हो – स्वर्ग या दूसरी कोई वस्तु ? कौन-सा ऐसा पदार्थ हैं, जिसके लिए तुम ऐसी कठोर तपस्या करते हो, जो दूसरों के लिए दुष्कर हैं' ? ।।१७।।

'तापस ! जिस वस्तु के लिए तुम तपस्या में लगे हुए हो, मैं उसे सुनना चाहता हूँ । इसके सिवा यह भी बताओं कि तुम ब्राह्मण हो या दुर्जय क्षत्रिय ? तीसरे वर्ण के वैश्य हो अथवा शूद्र ? तुम्हारा भला हो । ठीक-ठीक बताना' ।।१८।।

महाराज श्रीराम के इस प्रकार पूछने पर नीचे सिर किये लटके हुए उस तपस्वी ने उन नृनश्रेष्ठ दशरथनन्दन श्रीराम को अपनी जाति का परिचय दिया और जिस उद्देश्य से उसने तपस्या के लिए प्रयास किया था, वह भी बताया ।।१९।।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्डमें पचहतरवाँ सर्ग पूरा हुआ ।।७५।।

छिहत्तरवाँ सर्ग

श्रीराम के द्वारा शम्बूक का वध, देवताओं द्वारा उनकी प्रशंसा, अगस्त्याश्रम पर महर्षि अगस्त्य के द्वारा उनका सत्कार और उनके लिए आभूषण-दान

क्लेशरहित कर्म करने वाले भगवान् श्रीराम का यह वचन सुनकर नीचे मस्तक किये लटका हुआ वह तथाकथित तपस्वी इस प्रकार बोला – ।।१।।

'महायशस्वी श्रीराम ! मैं शूद्रयोनि में उत्पन्न हुआ हूँ और सदेह स्वर्गलोक में जाकर देवत्व प्राप्त करना चाहता हूँ । इसलिए ऐसा उग्र तप कर रहा हूँ ।।२।।

'ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम ! मैं झूठ नहीं बोलता । देवलोक पर विजय पाने की इच्छा से ही तपस्या में लगा हूँ । आप मुझे शूद्र समझिये । मेरा नाम शम्बूक हैं' ।।३।।

वह इस प्रकार कह ही रहा था कि श्रीरामचन्द्रजी ने म्यान से चमचमाती हुई

तलवार खींच ली और उसी से उसका सिर काट लिया ।।४।।

उस शुद्र का वध होते ही इन्द्र और अग्निसहित सम्पूर्ण देवता 'बहुत ठीक, बहुत ठीक' कहकर भगवान् श्रीराम की बारंबार प्रशंसा करने लगे ।।५।।

उस समय उनके ऊपर सब ओर से वायुदेवता द्वारा बिखेरे गये दिव्य एवं परम सुगन्धित पुष्पों की बड़ी भारी वर्षा होने लगी ।।६।।

वे सब देवता अत्यन्त प्रसन्न होकर सत्यपराक्रमी श्रीराम से बोले - 'देव ! महामते ! आपने यह देवताओं का कार्य सम्पन्न किया हैं' ।।७।।

'शत्रुओं का दमन करने वाले रघुकुलनन्दन सौम्य श्रीराम ! आपके इस सत्कर्म से ही यह शूद्र सशरीर स्वर्गलोक में नहीं जा सका हैं । अतः आप जो चाहे वह वर माँग ले' ।।८।।

- बाल्मीकीयरामायण, उत्तरकाण्ड, ७५/१३-१६ तथा ७६/१-८ से उद्धृत

समीक्षा - *यही घटना रामराजा के ६ पीढ़ि पूर्व में हुए नहूष राजा एवं ३० पीढ़ि पूर्व में हुए राजा त्रिशंकु के साथ भी* ***प्रकृति विरुद्ध सदेह स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा रखने के कारण*** *अधोपतन होकर सारे पुण्यार्जन का नाश हो गया था । ऐसे प्रकृति से विपरीत सदेह स्वर्ग प्राप्ति के कारण तामसी प्रक्रिया से विरुद्ध शम्बूक का वध किया गया था, किन्तु अन्य जाति के विरोध के कारण यह नहीं हुआ ।*

ऐसे अमानुषिक क्रूर-कर्म जो निशाचर-राक्षस-पिशाचों (माँसाहारी दस्युओं) के जैसे लेख्य करके बनावटी डाले गए जो निश्चय ही वेद-विरुद्ध तथा प्रतिपाद्य शास्त्र के मतविरोध-विपरीताभास पतनकारक हैं । अतः ऐसे इने-गिने शब्दों के विरोध (ताड़न) में असंख्य (हजारों) वेद के प्रमाण प्रस्तुत हो सकते हैं । साथ ही हमारा सनातन धर्म का वैदिक साहित्य प्राचीन सत्य प्रमाणित तथ्यों का भण्डार हैं । उसमें मिलावट कदापि सम्भव नहीं हो सकती । जहाँ-जहाँ पर मिलावट भी हैं, बुद्धिमानी की नहीं **'शेखचिल्ली की कहावत'** के प्रकार से हैं, जिसे विद्वान सत्य-असत्य विचार

लेते हैं, क्योंकि उसी पुस्तक में पूर्व या भावी दश-पाँच प्रमाण प्रसंगात् ऐसे मिल ही जायेंगे जो उस एकाध प्रक्षिप्त के विरूद्ध तथा शास्त्रादि बहुसम्मत न्याय-तर्क पर सत्य हो सकेंगे, परन्तु मूर्ख या निरक्षर केवल साक्षर, कथाजीवी पाण्डे-पण्डित, साधु, महन्त जिनकी बुद्धि स्थूल पक्ष की हैं, वह कदापि ऐसे विषय की पहिचान नहीं कर सकते। देखिये बुद्ध-गौतम स्मृति का विरोधाभास (प्रस्तुत पुस्तक के पृष्ठ २१३ से २१५ में आए श्लोक) एक दूसरे से उलट अर्थ के हैं। इसी तरह अन्य पुस्तकों में भी हजारों उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

चारों वेदों का प्रबन्ध परिचय

'वेदस्य सर्वविद्यानिधानत्वम्' अर्थात् वेद सब विद्याओं का खजाना हैं। **'वेद'** शब्द का अर्थ हैं - ज्ञान। प्राचीन ऋषियों ने ज्ञान अर्जित किया था, उसका संग्रह वेदों में है। गुरु वेदों के मन्त्रों का शिष्यों को पढ़ाते थे और शिष्य उन मन्त्रों को स्मरण करते थे। वेद वास्तव में भारतीय संस्कृति के आधारस्तम्भ, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के अवबोधक, शुभ-अशुभ कार्यों के निदेशक, जीवन में उन्नतिदायक, सुख-शान्ति तथा सदाचार की स्थापना करने वाले, निराशा का विनाश कर आशा के प्रवर्तक धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चतुर्वर्ग प्राप्ति के एकमात्र साधन हैं। वेदों को प्राचीन वैदिक धर्म का सर्वस्व एवं पवित्र-ज्ञान का मूल स्रोत कहा गया है। प्राचीन हमारे कई महर्षि, प्रबुध मनीषियों ने मूलधर्म शास्त्र को एक लोहे की जंजीरवत प्रबन्धमय महानियमों से जकड़ रखे हैं, उन्हें आज तक **कोई विदेशी काले या गोरे, हब्शी या पाण्डे प्रमाद से प्रक्षिप्त-प्रसाद नहीं दे सके है** और न कभी दे सकने की आशा ही हैं - ऐसे और भी भाषा, मूल-ग्रन्थ छोटे-मोटे कई हैं, जैसे भाषा में नीति सारुक्तावली (सभाजित), वैराग्यशतक पृभत्यादि

हैं, ऐसे ही मूल उपवेद, उपनिषद् या संस्कृत में महाभारत, बाल्मीकि रामायण, गीता, रघुवंश महाकाव्य, भर्तृहरि शतक इत्यादि हैं ।

इसी प्रकार सृष्टि के अनादि ज्ञानदाता वेद भी ऋषियों द्वारा प्रबन्धित हैं । उनमें मन्त्रादि की शृँखलाबद्ध योजना हैं । देखिये उदाहरण-रूप में -

(१) **ऋग्वेद** - अग्नि ऋषि के द्वारा पूर्व में प्रचारित, १० मण्डल, ८५ अनुवाक, १०२८ सूक्त और १०५२१ कुल मन्त्र हैं । ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य ग्रन्थ हैं । यहीं अनादि पूर्वाति सनातन व विशाल धर्मप्रतिपाद्य ग्रन्थ हैं ।

(२) **यजुर्वेद** - वायु ऋषि के द्वारा दक्षिण में प्रसारित, ४० अध्याय, १६७५ मूलमन्त्र गान हैं । महर्षि पतंजलि ने महाभाष्य में यजुर्वेद की ११ शाखाओं का उल्लेख किया हैं, इनमें से केवल ५ शाखाऐं उपलब्ध हैं - (१) काठक संहिता, (२) कपिष्ठल कठ संहिता, (३) मैत्रायणी संहिता, (४) तैत्तिरीय संहिता तथा (५) वाजसनेयी संहिता । इनमें से प्रथम चार संहितायें कृष्ण यजुर्वेद से और अन्तिम शुक्ल यजुर्वेद से सम्बन्धित हैं । भाष्य ग्रन्थ शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ हैं । यजुर्वेद को याज्ञिक-विधान तथा दर्शनशास्त्र दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण माना जाता हैं ।

(३) **सामवेद** - सूर्य ऋषि द्वारा पश्चिम में प्रचारित, प्रथम पूर्वाचिक भाग, चार काण्ड, छः प्रपाठक तथा छः अध्यायों में विभाजित हैं । भाष्य साम व ताण्ड्य महा ब्राह्मण, दूसरे महानाम्न्यार्चिक, तीसरे उत्तरार्चिक भाग में नौ प्रपाठक, इनमें इक्कीस अध्याय, पूरे में १८७५ कुल मन्त्र हैं, इनमें से अधिकतर ऋग्यजुर्वेद के ही पुनरावृत्ति प्रयुक्त मन्त्र हैं, तथा ८० मन्त्र नए हैं ।

(४) **अथर्ववेद** - अंगिरा ऋषि के द्वारा उत्तर में प्रसारित । २० काण्ड,

१११ अनुवाक, ७३१ सूक्त और ५९७७ मन्त्र हैं। भाष्य ग्रन्थ गोपथ ब्राह्मण आदि।

कुल चारों वेदों की मन्त्र संख्या २०३४८ हैं, जिनमें से कई मन्त्र दो या अधिक बार भी प्रयुक्त हुए हैं। यह चारों वेद यजुर्वेद ३१/७ के अनुसार और मनुस्मृति प्रथमोध्याय के कथन से परमात्मा की तपोमयी शुद्ध प्रेरणामयी क्रमशः अग्नि, वायु, सूर्य, अंगिरा आदि प्रतिभाशाली ऋषियों द्वारा ख्याति में प्रकट हुए हैं। भाष्य गन्थ महीदास, ऐतरेय, याज्ञवल्क्य आदि ऋषियों ने प्रसिद्ध किये। अस्तु-ऐसे ज्ञान-भण्डार मूल वेद के प्रमाण सर्वमान्य व ग्राह्य हैं, अतः यहाँ उसी के आधार पर कुछ लिखा जाता हैं।

यथेमां वाचं कल्याणी मावदानी जनेभ्यः।
ब्रह्म राजन्याभ्या शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च ॥

– यजुर्वेद २६/२

मैं परमेश्वर या राजा जिस प्रकार से सब को सुख देने वाली वाणी को समस्त उत्पन्न लोकों के हित के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अपने व पराये, प्रिय-अप्रिय, सब जनों के लिए सर्वत्र उपदेश करूँ।

फलार्थ त्वात्कर्मणः शांस्त्रं सर्वाधिकारं स्यात् ॥ – पूर्व मीमांसा ६/१

फल की कामना करने वाले पुरुषार्थशील व्यक्तियों के लिए शास्त्र में सब का समानतापूर्ण अधिकार हैं।

श्रावयेच्चुतरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः।
वेदस्याध्ययनं हीदं तच्च पुण्यं महत्स्मृताम् ॥

– महाभारत, शान्ति पर्व ३२७/४८

'चारों वर्णों के लोकों को यह वैदिक आदेश सुनाओं' इत्यादि विधानों तथा वेदव्यास जैसे अद्वितीय विद्वानों द्वारा स्पष्ट ही मानव मात्र के चारों वर्णों को वेद पढ़ने का अधिकार प्राप्त हैं। कुछ प्रमाण आगे प्रस्तुत हैं –

वेद पढ़ने का अधिकार किनको नहीं !

हम जहाँ पर एक शूद्र अधिकार पर केवल शूद्र के लिए ही वेद-शास्त्र-मन्त्र पढ़ना निषेध करते हैं, वहाँ हमारे शास्त्र तो चारों वर्णो के लिए तथा दुर्लक्षणी ब्राह्मणों को भी स्पष्टतया निषेध करते हैं कि -

सर्व भक्ष रतिर्नित्यं सर्व कर्म करोऽशुचिः ।

त्यक्त वेदस्त्वनाचारः स शूद्र इति संज्ञितः ।।

- महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय १८, पर्व ६७

जो सब प्रकार से (माँस, मदिरा, बीड़ी, तम्बाकू, चरसादि) अभक्ष्य-भक्ष्य का सेवन करने वाले, सब तरह के काम करने वाले तथा अपवित्र रहने वाले, **सदाचार विहीन, वेद-शास्त्र का परित्याग करने वाले पुरूष हैं, वहीं शूद्र हैं** । जब तक वे सदाचारी न बन जायें, मद्यादिक हिंसक तामसी वृत्तियों का परित्याग नहीं करें, तब तक **वास्तव में ऐसे लोगों को उच्च सनातन-वैदिक ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार न देना चाहिए** । क्योंकि वह मलीन बुद्धि होने के कारण उन्हें समझाने पर ठीक समझने में असमर्थ होंगे ।

इतना हीं नही, इनमें शूद्र के लक्षण बताते हुए प्रस्तुत मन्त्र में जो **'त्यक्त वेदः'** शब्द आया हैं, इस विशेषण का अर्थ है कि जिसने स्वयं अपने आप ही वेदाध्ययन का त्याग कर दिया है, दबाव या रुकाव से नहीं छुड़ाया । **जब कि स्वयं उसने वेद-पाठ छोड़ दिया है तो श्रद्धापन स्वयं ही उसे आरम्भ करके उन्नत हो सकता हैं । इसमें कोई संशय की बात नहीं रही,** और भी जिस गीता शास्त्र को महान् गौरव-सम्पन्न, सम्मान-ख्याति प्राप्त है कि -

सर्वोपनिषदो गावौ दोग्धा गेपाल नन्दनः ।

सुधिर्भोक्ता पार्थो वत्स गीतामृतं महत् ।।

उसी कृष्ण भगवान की शब्द-वाग्मयी में अध्याय १८, श्लोक ६७ में ज्ञान-प्रसंग के विषय को स्पष्ट ही वर्ण-रहित सबके लिए अधिकारयुक्त कहा हैं -

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न न मां योऽभ्यसूयति ।। - गीता १८/६६

इस गीता-रूप परम रहस्य को तप-रहित, भक्ति-रहित, प्रीति, श्रद्धा से विहीन हो या मेरी निन्दारत हो, उन्हें न कहना चाहिए और इन दोषों से रहित हो उसे भक्ति, प्रेम, उत्साह-सहित कहिए ।

हिंसानृत प्रियालुब्धाः सर्व कर्मोपजीविनः ।
कृष्णाः शौच परिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः ।।

- महाभारत, शान्ति पर्व १८८, भृगु-वचन

जो ब्राह्मण अपने धर्म का परित्याग करके हिंसा और असत्य के प्रेमी, लोभी, सब प्रकार के मध्यम और निंदित कामों से अपनी आजीविका करने वाले तमोगुणी और पवित्रतारहित हो गए हैं वहीं शूद्र कहलाए ।

अब विचारणीय प्रसंग हैं कि यदि इस प्रकार से कुलक्षण-प्रेमी को वेद पढ़ने का अनाधिकार दिया गया हो तो यह कोई जाति का विशेष पक्षपात नहीं हुआ । अब घृणा का भाव ही नहीं आ सकता और भी यदि स्पष्टता चाहिए तो देखिए -

इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरं गताः ।
धर्मो यज्ञः क्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते ।।
इत्यते चतुरो वर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती ।
विहितस ब्रह्मणा पूर्वं लोभात्त्व ज्ञानतां गताः ।।

- महाभारत, शान्तिपर्व १८८

तात्पर्य यह हैं कि इस प्रकार ब्राह्मण भिन्न-भिन्न कर्मों के कारण से दूसरे वर्णों में मिल गए हैं । इन चारों वर्णों में से किसी वर्ग या वर्ण के हेतु भी धर्म और यज्ञ, यागादि का कोई प्रतिबन्ध नहीं हैं । ईश्वरीय

वाणी प्रारम्भ में सब के लिए समान रूप से दी गई थी ।

शूद्राणामदुष्ट कर्मणामुपनयनम् । - पारस्कर गृहस्थसूत्र, काण्ड २, हरिहरभाष्य

अति स्पष्टीकरण कर दिया है कि शूद्रकुल में उत्पन्न होने वाले के लिए यदि वह सदाचारी हो तो उपनयन (जनेऊ-यज्ञोपवीत) संस्कार कर सकते हैं । **जब कि जनेऊ का अधिकार दिया हैं तो वेदाध्ययन का खुलासा पूर्णत्व रूप में स्वतः प्राप्त होना स्वाभाविक हैं ।**

पंचयज्ञ विधानं तु शूद्रस्यापि विधीयते ।
तस्य प्रोक्तो नमस्कारः कुर्वन नित्यं नहीयते ।।

- विष्णुस्मृति १/६

शूद्रकुलोत्पन्न को भी अध्यापन (ब्रह्मयज्ञ), पितृतर्पण (पितृयज्ञ), देवयज्ञ (हवन-सन्ध्यादि), बलिवैश्वयज्ञ (भूतयज्ञ), अतिथि-पूजन (नरयज्ञ) आदि पांचों यज्ञों को नमस्कार व शास्त्रानुकूल कृत्य नित्य करना चाहिए ।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा चरित व्रतः ।
गायत्री मम वा देवी सावत्रीं वा जपेत्ततः ।।

- बुद्ध-गौतम स्मृति

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि जो भी व्रतधारी हों, उन्हें गायत्री के मन्त्र का जप करना चाहिए । इसमें स्पष्ट ही शूद्र को भी गायत्री जप का अधिकार हैं । देखिए -

ऊर्जादउत यज्ञियासः पंचजना मम होत्रं जुषध्वम् ।

- ऋग्वेद १०/५३/४

तुम 'सब' केवल निरामिष (सात्विक, फल, शाक, अन्नादि) भोजन का सेवन करते हुए पवित्र होकर मेरी स्तुति और हवन आदि करो ।

इस मन्त्र में **'पंचजनाः'** शब्द स्पष्ट ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा जंगली (निषाद) जन्म-कुल में उत्पन्न होन वाले आदिवासी आदि सब के लिए अर्थ में प्रयुक्त हुआ हैं ।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च कृत लक्षणाः ।
कृतेयुगे समभवन् स्वकर्म निरताः प्रजाः ।।
समाश्रयं समाचारं समज्ञानं च केवलम् ।
तदाहि समकर्माणो वर्णा धमनिवाध्नुवन ।।
एक देव समायुक्ता एक मन्त्र विधि क्रिया ।
पृधग्धर्मास्त्वेक वेदा धर्मामेक मनुव्रताः ।।

– महाभारत, वन पर्व १४६/१८-२३

सतयुग के वर्णन में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब का आचार पवित्रता-युक्त-ज्ञान-सम्पादन का अधिकार-सहित था । सब एक ही ईश्वर (देव) व सब वैदिक-विधि-क्रिया (षोड्श संस्कारादि) में लगे रहते । उन सब का धर्म, गुण, कर्म-कृत अलग-अलग होते हुए भी सब एक वेद के संस्कार से वेदोक्त (सनातन) धर्म पर चलते थे । एक ही मनु के आदेश मानव-धर्म पर चलते थे । यदि ऐसा होता तो निम्न-मन्त्र का कथन नहीं होता –

वसन्ते ब्राह्मणमृपनयीत, ग्रीष्मे हेमन्ते वा राजन्यम् ।
शरदि वैश्यं, वर्षा सु रथकारकम् ।। – भारद्वाज, गृह-सूत्र, १/१

इस मन्त्र में स्पष्ट ही चारों वर्णो का जनेऊ धारण करने में ऋतु का वर्णन किया गया हैं अर्थात् वसन्त ऋतु में ब्राह्मण, गर्मी व हेमन्त ऋतु में क्षत्रिय, सर्दी में वैश्य तथा वर्षा ऋतु में शूद्र वर्गीय यज्ञोपवीत धारण करें ।

तयै वा वृता निषादस्थ पति याजयेत् ।

– आपस्तब श्रोत, सूत्र प्र० ६ का ६४

इत्यादि में निषाद और स्त्री आदि को भी यज्ञ करने का विधान हैं । केवल इतना ही नहीं पुराणों में भी इसका पूरा समर्थन मिलता हैं ।

ब्राह्मणः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये शुचयोऽमलाः ।
तेषां मंत्राः प्रदेया वै न नु संकीर्ण धार्मिणाम् ।।

– भविष्य पुराण उत्तरपर्व ४, अ० १३, श्लोक ६२

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकुलोत्पन्न जो भी शुद्ध और पवित्र हैं, उनकों मंत्रों का उपदेश देना चाहिए तथा अपवित्र और संकुचित धर्म-कर्म वालों को नहीं, क्योंकि उनमें वेदों के ज्ञान को ग्रहण करने की पवित्र योग्यता नहीं, उनके धर्म में विशालता नहीं है। जैसे आज के समय में ब्राह्मणादि का धर्म दूध में खटाई से दही बनने की भाँति तुरन्त नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। ऐसी संकीर्णता वालों को कोई वैदिक अधिकार नहीं हैं, ऐसे मंत्रों या श्लोकों को स्वर्णाक्षरों में लिख कर घर-घर में रखना चाहिए और भी आगे पढ़िये -

कुश सूत्रं द्विजानां स्याद् राज्ञां कौशेय पट्टकम् ।
वैश्यानां चीरणं क्षोमं शूद्राणां शण वल्कजम् ॥

– गरुड़ पुराण, आचार खण्ड

दर्भ सूत्र ब्राह्मण के, वस्त्र सूत्र क्षत्रिय व वैश्य के तथा शण या भ्रुज-पत्रादि का सूत्र शूद्र के जनेऊ में पुण्यदायक हैं, यहाँ कम-स्वभाव जन्य वर्णों की सार्वजनिक पहिचान उजागर करते हुए सब के लिए जनेऊ को आवश्यक माना हैं।

यज्ञोपवीत-धारण, वेदाध्ययन का बाह्य चिह्न हैं। सम्भवतः बताने की आवश्यकता नहीं रही होगी। उक्त मन्त्र में '**क्षण वल्कजम्**' (सन आदि से बनी हुई मूंज) से यज्ञोपवीत का विधान हैं। ऐसे विषय में निर्बुद्धि, स्थूल-बुद्धिता, अपवित्रावस्था को ही शूद्र माना हैं। अनके शुभ में वेदाध्ययनादि कृत्य को माना है, **किन्तु जन्म से कोई शूद्र नहीं माना हैं**। केवल इतना हीं नहीं अपितु हमारे यहाँ 'प्राचीन काल में कुमारियों (कन्याओं, स्त्रियों) के लिए भी ब्रह्मचारियों के समान मौजी-मेखलादि का धारण, वेदांग का पठन-पाठन और गायत्री का उपदेश यह सब होता था।'

इस सम्बन्ध में पूर्व लिखा जा चुका हैं। साथ ही शास्त्रों में संस्कार समय पर '**इमं मंत्रं पत्नि पठेत्**' ऐसे शब्द व मन्त्र आये हैं वे इसी समर्थन के बोद्धक हैं। और भी प्रमाण स्थानाभाव से बाहुल्यता प्रस्तुत

नहीं कर सकते। बुद्धिमानों को अंगुल्य-निर्देश ही बहुत है। पुनश्च रामचरित मानस में -

सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुरवर मानस अधिकारी ।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्व धर्म निरत श्रुति नीती ।।
चारिउ वर्ण धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहूँ अघ नाहीं ।।
राम भगति रत नर अरू नारी। सकल परम गति के अधिकारी ।।
* * * *सादर सुनहि परम अधिकारी ।।*

सो कुल धन्य उमा, सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्री रघुबीर परायन, जेहिं उपज बिनीत ।।

- रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड, १२७

यह न कहिय सठहि हठ शीलहि, जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि।
कहियन लोभिहि क्रोधिहि कामिहि, जो न भजइ सचराचर स्वामिहि।
*द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ, **सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ।***
राम कथा के तेइ अधिकारी, जिनके सतसंगति अति प्यारी ।।

यहाँ भी कोई जाति-वर्ण विशेष का उल्लेख न करके लक्षणीय अधिकारी को ही उत्तम कहा हैं, चाहे वह जन्म-जात किसी भी कुल का क्यों नहीं हो ।

समस्त शास्त्रों का सार भगवत स्मरण हैं, यही सन्तों का जीवन आधार हैं। शिखा-सूत्र के आधार पादज और अन्त्यज हैं। हे भाई ! पैरों को काट कर समाज को पंगु मत बनाना।

- जगद्गुरु आद्य श्री स्वामी रामानन्दाचार्यजी महाराज के अन्तिम उपदेश

चरित्रहीन विद्वान से सच्चरित्र अनपढ़े अपने लिए उपयोगी हैं। चरित्र रहित विद्या एवं धन का कुछ मूल्य नहीं हैं।

- जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्री भगवताचार्यजी महाराज

विरक्त हो जाने के पश्चात् घर के समस्त सम्बन्धों के टूट जाने के पश्चात् और विधि पूर्वक दीक्षा लेने के पश्चात् न ब्राह्मण ब्राह्मण रहता हैं और न शूद्र-शूद्र रहता हैं। दोनों के वर्ण मिट जाते हैं ओर जाति पाँति के झगड़े

से दूर होकर 'अच्युत' गौत्र वाला बन जाता हैं।

- जगद्‌गुरू रामानन्दाचार्य श्री स्वामी भगवदाचार्यजी महाराज

बरषतां ऊगे नहीं, मारग मांही घास ।
राम कह्या ते सन्तदास, होय कर्मों का नास ॥१॥
मिल कर मरिये राम से, फिर मरणा नहीं होय ।
मरे अमेला राम से, फिर फिर मर है सोय ॥२॥

- स्वामी सन्तदासजी महाराज की अनुभव वाणी

❋ षष्टम् परिच्छेद ❋

भारतीय समाज-शुद्धि दर्शन

पिछले प्रत्येक प्रकरणों में यथावत् प्रमाण बता कर स्पष्टता करते आये हैं कि कर्म, गुण, स्वभाव से वर्ण सदैव परिवर्तित होते आये हैं। अब हम कट्टरपंथी औरंगजेबी मतावलम्बी हिन्दू समाज में तन्तुओं के प्रति धर्म-इष्ट **आर्ष शास्त्रों के प्रमाणों से 'शूद्र-शुद्धि' अर्थात् 'वर्ण-परिवर्तन'** विधि का उल्लेख करने जा रहें हैं जिसके द्वारा प्राचीन शास्त्रीय समाज-व्यवस्था का वास्तविक स्परूप-दर्शन होगा, जो समाज का सार-तत्व रूप है।

धर्मचर्यया जघन्योः वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्ण मापद्यते जाति परिवृतो ।
अधर्मचर्यया उत्तमः वर्णः अपरमपरं वर्ण मापद्यते ॥

धर्म के आचरण से नीच-वर्ण का व्यक्ति भी अपने से ऊँचे वर्ण को प्राप्त होता हैं और **अधर्म पथ-रत रहने से उच्च वर्ण भी अपने से नीचे वर्ण को प्राप्त होता हैं।**

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैव शूद्रताम् ॥ - मनुस्मृति

शूद्र ब्राह्मण बन जाता है और ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता हैं

। यही वैदिक '**वर्ण-व्यवस्था**' का रूपान्तर पाश्चात्य देशों में अब तक भी पाया जाता है। उदाहरणार्थ, जैसे - इंगलैण्ड के विद्वान शिक्षक और धर्मोपदेष्ठा (Missionary) ब्राह्मण के रूप में, सेना के सिपाही (Military Man) क्षत्रिय के रूप में, व्यापारी (Merchants) वैश्य के रूप में हैं, और मजदूर या कला-कौशल वाले लोग (Mechanics) शूद्र रूप में हैं। ठीक यही व्यवस्था भारत में भी लाभदायक थी और अब होगी तब सुखी समाज होगा, जो कि प्राचीन भारतीयता का गौरव-स्वरूप है और महर्षि दयानन्द की भी यही दुंदुभिक नादमय चेतना थी, जिसे आज के आर्य कहलाने वाले भी भूल रहे हैं।

अफसोस ! आज के ब्राह्मण, साधु, प्रचारकों, शिक्षित वर्ग के महाशयों के नटवर रूप को देख कर लगता हैं कि वह जनता के ही भोजन पर आधारित रह कर उन्हें सत्यता का वस्तुतः उपदेश नहीं देते अपितु स्वार्थमय अन्धकार मात्र भुलावे की साधना-विहीन वेदान्त या दिखावे की ईश्वर-भक्ति का कथन ही करते है। वास्तविक ज्ञानधन परमानन्द स्वरूप से अनभिज्ञ रहने से भारत का भविष्य पतन होगा। स्मरण हो कि इतने प्रमाणों के आगे काल्पनिक डिमडिमी की कपोलता का आधार सर्वथा निराधार ही रहेगा, जिसे विचार कर सम्भव है, द्विजाति-सवर्ण कहे जाने वाले विदुष सज्जन अपने हृदय-पटल का द्वेष-आवरण दूर करके सनातन ग्रन्थों के आदेश को सर्वोपरि मान कर धारण करेंगे।

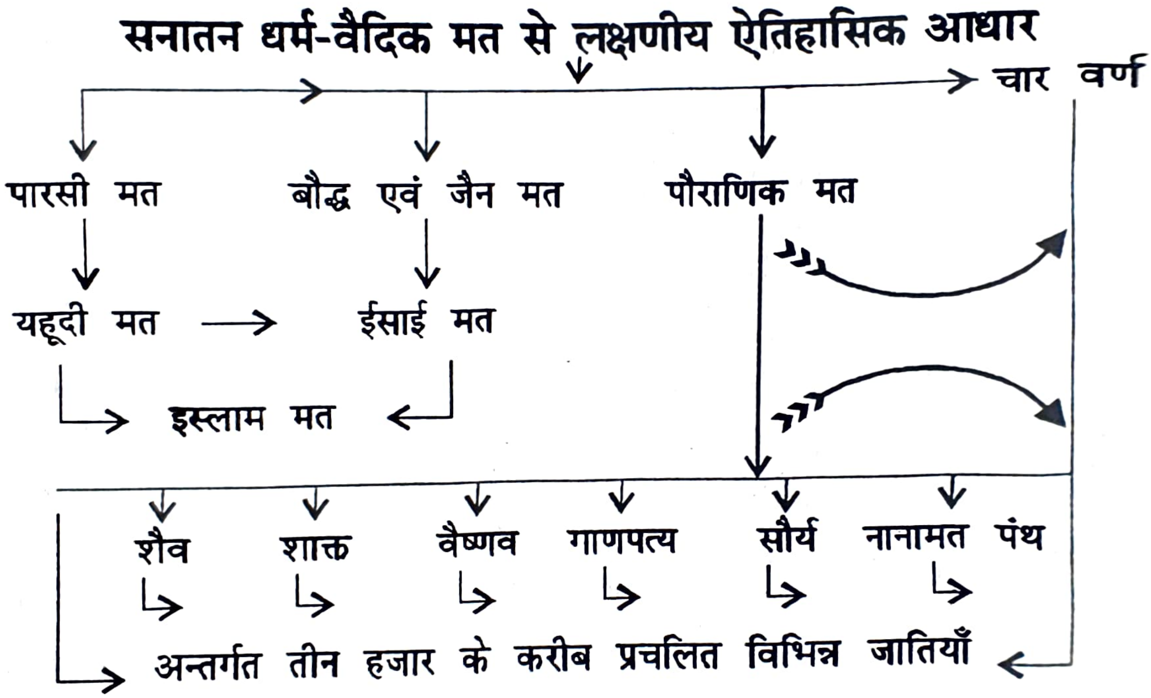
विश्व के प्रमुख मतान्तरों की परिचयात्मक तुलना

साभार - धर्मध्वनि

हमारा वैदिक सनातन धर्म विशाल व अनादि हैं, जब से विश्व की रचना हुई, उसमें सर्व प्रथम यही एक मात्र प्रिय तरणतारण आधार था और हैं। अब तुलनात्मक प्रसिद्ध मतान्तरों के जन्म इतिहास वर्ष-प्रमाण देखिए कि किस धर्म को कितना समय हुआ तथा उन के भिन्न-भिन्न सिद्धान्त क्या हैं ? भारतीय धर्म की विशालता एवं शुद्धता का प्रमाण

स्पष्ट करने हेतु प्रस्तुत है -

विश्व में प्रचलित प्रतिष्ठित मुख्य धर्म सम्प्रदायों का आपस में आत्मीयात्मज (अंशा-अंशी तादात्म्य) सम्बन्ध हैं और इसमें वैदिक धर्म सबका पूर्वज हैं। चार्ट द्वारा प्रतिभास प्रस्तुत करते हैं - जो समझने में सरलता पूर्वक सहायता दे सकता हैं -



१. वैदिक-हिन्दू धर्म-मत

समय से - वैदिक धर्म इतिहास मानव-सृष्टि से विक्रस संवत् २०२४ तक १ अरब, ६ करोड़, २६ लाख, ४६ हजार वर्ष।

स्थान - विशाल आर्यावर्त-भारत वर्ष (जम्बू द्वीप)

विशेषता - सम्पूर्ण कला, धर्म, योग्यता का मूल अथाह स्रोत जिनमें सब धर्मांगों, गुणों तथा विशेषताओं का समावेश है। गुण-धर्म-कर्म से वर्ण-व्यवस्था से समाज-रचना एवं उपनिषद् सिद्धान्त आदि।

मोक्ष मार्ग - वैविध्य, औचित्य कर्म, उपासना, ज्ञान द्वारा अज्ञान-निवृति से सब

दु:खों की निवृति, साधन सहित अविद्या (अज्ञान) निवृति से परमानन्द ब्रह्म की प्राप्ति करके धर्म-प्रयाण शरीर का गौण करना और जन्म-मरण से निवृति लेना ।

धार्मिक सिद्धान्त - गणपति, विष्णु, रूद्र, सूर्य, शक्ति आदि पंचतत्त्व के रूप में प्राकृतिक देवताओं की उपासना तथा धर्मांगों का अनुशीलन-पालन करना ।

विश्व को देन - ब्रह्म-निर्विकल्प, ईश्वर, जीव, प्रकृति अनादित्य, कर्त्तव्य, जड़ से चैतन्य, मिट्टी से स्वर्ण अर्थात् निर्जीव-प्राय अज्ञानियों को ज्ञान, धर्मांग, कलांग, वेदांग, ज्ञानांग, योगांग आदि सर्वांगों का विस्तार जो सर्व सम्पन्न अभिभूत विश्व को ज्ञान दिया उसका संसार सदैव ऋणी रहेगा ।

विशेष - धार्मिक, नैतिक, बहुप्रांगणीय आर्ष ग्रन्थों का अथाह विवेचन, ऋषि, मुनि, सन्त, विरक्त, योगेश्वर आदि अनन्त हुए हैं । निधि [1] सिद्धि [2] का चमत्कारिक शक्तियों का द्वार प्राप्त करने के साधन युक्तायुक्त प्रभाव ।

२. पौराणिक सनातन मत

समय - यह हिन्दू धर्म का प्रत्यंग मात्र ५००० वर्ष पूर्व ऋषियों के द्वारा प्रणीत ।

स्थान - आर्यावर्त भारत वर्ष ।

प्रणेता - वेदव्यास जी के द्वारा, परिशुद्धिकर्ता समयानुसार सरल सरसता पूर्ण ।

विशेषता - • व्यापक निराकार निरवयय ऐकेश्वर की २४ अवतारों के रूप में उपासना व बहु देवताओं के पूजन की सर्व साधारण प्रक्रिया से मन्द बुद्धि के लोगों को प्रवृत्ति देना तथा शास्त्राध्ययन-साधनरत सिद्धिकरण ।

---

१. निधि नौ प्रकार की हैं, यथा - पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील, वर्च्च ।

२. सिद्धि मुख्य आठ प्रकार की हैं, यथा - अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व और वाशित्व का प्रभुत्व ।

मोक्ष मार्ग - देवोपासना तथा वेदोक्त पवित्र कृत्यों द्वारा ज्ञानार्चन साधनाऐं ।

धार्मिक सिद्धान्त - धर्मांगों का पालन, पंच महायज्ञ, व्रत, संक्रान्ति, एकादशी, पूर्णिमा का पालन - तन, मन, वाणी को निर्दोष करने हेतु नाना तीर्थादि अनेक कृत्य ।

विश्व को देन - निर्गुणोपासना ऐकेश्वरवाद के साथ नाना अवतारों के सगुण स्वरूप, सिद्धान्तवाद, आध्यात्मिकवाद द्वारा समाजोत्थान में सिद्धिकरण, आत्मिक शक्ति का विकास करना ।

विशेष - विभिन्न पुराणों द्वारा कथित इष्ट देवोपासना द्वारा विविध फलों को पाते रहने से उनको श्रेष्ठ व अन्य को हेय दृष्टि के कारण आपसी नाना मत-सम्प्रदाय, जाति, धर्म इत्यादि वादों का सृज्य, जिसके द्वारा हिन्दू धर्म का आपसी द्वेष प्रतिदिन बढ़कर ह्रासमय परिणित होता चला ।

३. जैन और बौद्ध मत

समय - आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व से अधिकाधिक ५००० वर्ष ।

स्थान - भारतवर्ष (मगध देश) में प्रसारित ।

प्रणेता - महावीर जैन धर्म व गौतम बुद्ध । उनकी माता का नाम किसलादेवी । जन्म ईसा पूर्व ५९६ तथा मृत्यु ५२७ ई० पूर्व में । गौतम के पिता सिद्धार्थ, जन्म लूम्बी वन में, ५६३ ईसवी पूर्व में हुआ ।

विशेषता - सिद्धान्त सरल और सामान्य थे । इन्होनें कर्मकाण्ड व यज्ञों को कुछ महत्व न देकर साधारण धर्मों का प्रसार किया ।

मोक्ष मार्ग - उनके कथनानुसार शरीर को कष्ट देना श्रेयस्कर हैं । कर्म-विधि पालन से इन्द्रियों में स्थिरता आ जाय ।

धार्मिक सिद्धान्त - दया, अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि । सूक्ष्म दया को विशेष महत्व देते है । जिनमें चौबीस तीर्थंकरों की मान्यता-पूजा की जाती हैं, जो अवतार हैं, जिन महात्माओं का जैन एवं बौद्धों भन्ते (सन्तों) द्वारा प्रचार ।

विश्व को देन - सूक्ष्म व बाह्य अहिंसापूर्ण सत्य नियमों को धारण करना ।

विशेष - (१) जैन धर्म के दिगम्बर व श्वेताम्बर दो फिरके हो गए और (२) बौद्ध धर्म भी भिक्षुक (आचारहीन) तथा शुद्धाचारी दो मत में विभक्त हो गया। इन्होनें हिन्दू धर्म से द्वेष बना कर एकता को निर्बल बनाया, यद्यपि सनातन धर्म के एकांगीय पाँच प्रकार के यम-संयम-साधन के पूजार्थी ही हैं ।

४. पारसी मत

समय - आज से लगभग ४५०० वर्ष पूर्व से ।

स्थान - फारस देश (फ्रॉस) ।

प्रणेता - फारसी स्त्री 'जरुथुस' थी, जिनका जन्म फारस में ६०० वर्ष ईसा पूर्व में हुआ था ।

विशेषता - काफी प्रभावशाली, उच्च नियम-पालन में सुविधाजनक ।

मोक्ष मार्ग - सत्कर्म करने वाला स्वर्ग (भिस्त) में और दुष्कर्म करने वाला नरक (दोजुग) गामी ।

धार्मिक सिद्धान्त - मानव के लिए कर्म करना ही उच्च श्रेय हैं ।

विश्व को देन - ईश्वर निराकार हैं । ऐकेश्वरवाद का कथन ।

विशेष - कुछ धार्मिक पुस्तकें भी हैं, जिनमे मुख्य जरस्थू ने अपने विचार प्रकट किये हैं, अतिरिक्त अन्य विचारधाराऐं भी कथन की गई हैं। अगियारी में अग्नि की पूजा करते हैं ।

५. यहूदी मत

समय - आज से लगभग ३००० वर्ष पूर्व से ।

स्थान - फिलस्तीन या इजराइल देश में ।

प्रणेता - मूसा महात्मा, जिनका जन्म इज़राइल में हुआ ।

विशेषता - ईश्वर एक हैं, सत्यस्वरूप सच्चिदानन्द हैं ।

मोक्ष मार्ग - ईश्वरीय समाधि द्वारा ईश्वर-पूजन, जोह्या (जहोवा) नामक देव ही सर्वस्व हैं ।

धार्मिक सिद्धान्त - उनकी धर्म-पुस्तकों में वर्णित (१) ओल्डडेस्कामेन्ट जिसमें धार्मिक विचार कथित हैं । (२) तालसमन्द जिनमें ३९ अध्याय हैं ।

विश्व को देन - ऐकेश्वरवाद, सामाजिक भावना, एकता, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का ज्ञान तथा मूर्ति-पूजा का खण्डन किया गया हैं ।

विशेष - अपनी धर्म-पुस्तकों की मान्यता विशेष हैं, जिसमें सृष्टि-रचना पर आचार, भजन आदि वर्णित हैं ।

६. ईसाई मत

समय - आज से लगभग २१०० वर्ष पूर्व से ।

स्थान - जूड़िया का वैथलम नगर ।

प्रणेता - महात्मा ईसा का जन्म आज से १९७० वर्ष पूर्व **बैथलन** नगर में माता **मरियम** के घर हुआ था । **यूसुफ** के द्वारा पालन-पोषण हुआ ।

विशेषता - प्राणी मात्र में दया व सेवा-भाव की स्थापना तथा स्वार्थ त्याग कर परमार्थता ही जीवन का लक्ष्य हैं ।

मोक्ष का मार्ग - ईश्वर एक हैं, जिसकी पूजा और अहिंसा द्वारा जीव-रक्षा करना । उनका कथन हैं कि तुम जैसा दूसरों से व्यवहार करोगे, तुम्हारे प्रति वह भी वैसा ही बर्ताव करेंगे । **गिरिजाघर** में पूजा-प्रार्थना करते हैं ।

धार्मिक सिद्धान्त - इनके ९ उपदेश सर्वमान्य थे और दूसरा अहिंसावाद जिसको इन्होनें मरते दम तक निभाया ।

विश्व को देन - इन्होनें समाज में स्त्री के स्तर को उच्च रखने, कुरीतियों का खण्डन व सेवाभाव का पाठ पढ़ाने में विशेष रूचि रखी ।

विशेष - ईसा के बाद उनका मुख्य पात्र सन्तपाल आया । उसने धर्म-प्रचार किया । धीरे-धीरे लोग मूर्ति-पूजा में लगे । अन्तिम मूर्ति के स्थान पर क्रॉस (✝) का चिन्ह मान्य हुआ ।

७. इस्लाम मत (मुसलमान)

समय - आज से लगभग १४०० वर्ष पूर्व से २००० तक मान्यता ।

स्थान - मक्का व मदीना, काबुल-ईरान ।

प्रणेता - तेबीस हजरतों द्वारा प्रचारित होकर चौबीसवें हज़रत मोहम्मद के द्वारा विस्तारबद्ध, जिनका जन्म सन् ५७० ईसवी, माता **आमना**, पिता अब्दुल्लाह के घर मक्का में हुआ ।

विशेषता - संसार में वह भ्रातृत्व व एकता रूप होना चाहते थे । उनमें मतभेद का लेश मात्र भी नाम न था और न हैं । **शेख, सैय्यद, मुगल, पठान** नामों से चार जातियों का परिचलन तथा अन्य कई रूपान्तर हिन्दूवाद की नकल में भी मिलते हैं । जैसे सप्त भूमिका को सात **सहूद, शिव-पार्वती को आदम-हव्वा कहना आदि ।**

मोक्ष मार्ग - इनकी दृढ़ता ऐकेश्वरवाद अल्लाह की उपासना मात्र हैं। मस्जिद में दिनभर में ५ बार नमाज, साल में रमजान माह में ३० रोजे, यकात देना इत्यादि प्रधानता हैं ।

धार्मिक सिद्धान्त - धर्मात्मा को महान अर्थात् धर्मी **भिस्त** (स्वर्ग) में और अधर्मी **दोजुक** में जाता हैं, यह उनके सिद्धान्तानुसार मान्य हैं, सर्वोपरि ग्रन्थ **कुरान** है, जिसमें २८ पारे हैं ।

विश्व को देन - जन्नत-दोज़ख का ज्ञान, इबादत (पूजा) मय सादे परहेज का जीवन व्यतीत करना तथा मूर्ति का विरोध करना ।

विशेष - मोहम्मद साहब के मुख्य सिद्धान्त उनके उपदेशों पर चलना हैं । (१) जीवन में नित्य अपने आप की कमाई का ¼ हिस्सा दान में खर्च करों अर्थात् जकात देना । घर की सम्पति में से ४० वां भाग प्रति वर्ष दान में देना । (२) जीवन में एक बार मक्का की यात्रा करना । (३) रमजान के महिने दिन में रोजा (व्रत) रखना (रात को रोटी पानी खाना-पीना) (४) दिन में ५ बार नमाज पढ़ना ।

विश्व के प्रमुख नववर्षों का तुलनात्मक अध्ययन

वर्तमान समय दरशाने की प्रक्रिया कई प्रकार से मत मतान्तर देशान्तरों में काल प्राचीनता चल रहीं है । यथा -

नव वर्ष (ई०)	कौन किस का वर्ष	कहाँ-कहाँ पर	पुराना
२४.०२.१५२८	ग्रेगेरियन कैलेण्डर (पोप ग्रेगरी १३ द्वारा)		
०१.०१.२००४	गनतन सांई/ओशोगत्सू		जापानी
०७.०१.२००४	मिश्र	मिश्र	
११.०१.२००४	प्राचीन स्काटिस		
१२.०१.२००४	इवाम वेली	वेल्स	
१४.०१.२००४	सोवियत रूस	रूढ़िवादी चर्च	
२१.०१.२००४	सेल्टिक		
२२.०१.२००४		चीन, लेबनान, कोरिया वियतनाम	
२२.०१.२००४	हिजरी (मोहर्रम से)	इस्लामी	१४२५वाँ
१४.०३.२००४	नानकशाही	सिख	५३६वाँ
२१.०३.२००४	ज्योतिष	सनातनी हिन्दू	२०६१वाँ
२१.०३.२००४	जोरोस्ट्रियन (जमशेदी)	तेलगू, पारसी, इरानी बाहाधर्म, जमशेदी	१६०वाँ
२२.०३.२००४	शकः	शकाब्द (शाका)	१९२६वाँ
०१.०४.२००४	अप्रेल फूल	पुराना फ्रांस	
०५.०४.२००४	बौद्ध धर्म	थाईलेण्ड, वर्मा, श्रीलंका, कम्बोडिया, लाओके बेरादिन, बोद्धी दक्षिण/पूर्व एशिया	

०६.०४.२००४		भारत, वैशाखी, बाँग्ला, श्रीलंका, थाईलेण्ड, कम्बोडिया	
१४.०४.२००४	नेपाली	नेपाल	२०६०वाँ
१४.०४.२००४	राष्ट्रीय नववर्ष	श्रीलंका	
२२.०४.२००४	पारसी		
२४.०४.२००४		बेबीलोनियन	२७५२वाँ
२५.०४.२००४	बुद्ध		
२१.०६.२००४	अयमारा	प्राचीन ग्रीक	५०१२वाँ
२६.०६.२००४	रियूनिक		
०६.०७.२००४	अरमीनिया		५५२वाँ
१६.०८.२००४	मलयालम	केरल	
२३.०८.२००४	एलेक्जैड्रियन	मिश्र	
०१.०६.२००४	रूढ़िवादी ईसाई	रूढ़िवादी गिरिजाघर (रूस)	
१०.०६.२००४	अफ्रीकन		
११.०६.२००४	इथोपियन		१६६७वाँ
१४.०६.२००४	बीजनटाउन		७५१३वाँ
२३.०६.२००४	ग्रेशियन (प्राचीन मिश्र)२३१६वाँ		
०३.१०.२००४	मोरक्कन		
३१.१०.२००४	डियूइड/शमहेन		
१३.११.२००४	जैन		२५३१वाँ
१२.१२.२००४	सिक्किम		
२५.१२.२००४	किसान क्रिसमिस	इटली/पपल राज्य	

इन सबसे सनातन (आर्य) सम्वत् की प्राचीनता हैं। २१.०३.२००४ से विक्रम संवत् २०६१ वाँ वर्ष चालू होता हैं।

श्री (राम) सम्प्रदाय का काल दर्शन

अर्थात्

आर्यावृत (भारत) का व्यास कौन ?

भारतीय सनातन पद्धति में प्रत्येक विषय पर तात्विक रूप से सूत्रबद्ध रचनामय वर्णन हुआ हैं, किसी भी शंकास्पद स्थिति का समाधान पाया जा सकता हैं । उसी सूत्र शृँखला में यहाँ हम कल्प शब्द का स्वरूप समयावधि का वर्णन करते हैं ।

सृष्टि के प्रवाह एवं उस में युक्त पदार्थों के सम्बन्ध में यह ऋग्वेदीय ऋृचा पूर्ण प्रकाश डालती हैं -

सूर्या चन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वकल्पयत् ।
दिवंच पृथ्वी चान्तरिक्षमथो स्वः ।।

परमात्मा ने जिस प्रकार से प्रति कल्प में सूर्य, चन्द्र, द्यौ, भूमि, अन्तरिक्ष एवं उन में स्थित पदार्थों की रचना की है, उसी प्रकार वर्तमान कल्प में भी उन सब की रचना हुई । अतः यह सृष्टि प्रवाह अनादि हैं। ऐसे अनेक प्रमाण देखे जा सकते हैं । सृष्टि भी ईश्वर द्वारा रचित एवं उसी में समाहित होती हैं । तब स्वाभाविक ही यह प्रश्न होता हैं कि सृष्टि जिस में समाहित होती हैं, वह ईश्वर कितना विशाल होगा ? ईश्वर की विशालता इस मन्त्र द्वारा भली भाँति प्रकट होती हैं ।

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चैत्यंश पंचकम् ।
आद्य त्रयं ब्रह्म रूपं विश्व रूपं ततोद्वयम् ।।

दो शब्द नाम और रूप के द्वारा ही संक्षिप्त से संक्षिप्त शब्दों में हम सृष्टि का वर्णन कर सकते हैं, किन्तु ईश्वर (ब्रह्म) की विशालता का वर्णन सत, चित और आनन्द इन तीन शब्दों से निर्मित शब्द द्वारा ही प्रकट हो सकता हैं । सृष्टि की उत्पति के सम्बन्ध में प्राचीन एवं अर्वाचीन

विद्वानों मे प्रायः सामंजस्यता ही हैं। समस्त पिण्ड-ब्रह्माण्ड (भूगोल-खगोल) में व्याप्त ग्रह स्थिति, योजन विस्तार, दूरी, ऊँचाई एवं विश्वस्त सात प्रकार की वायु-आवह, प्रवह, उद्वह, संवह, सुबह, परिवह प्रभृत्य का लेखा जोखा भारतीय काल गणना [1] के गणितज्ञों ने विस्तृत रूप से वैविध्यता पूर्ण शास्त्रों में उल्लेख किया हैं। अतः यह स्वतन्त्र साहित्य का विषय होने से केवल इंगित मात्र दरसाते हैं कि - सामुहिक प्राणियों एवं पदार्थों का विनाश हो कर, नव सृष्टि की उत्पति के साधनों का प्रस्तुत होना ही प्रलय कहलाता हैं। प्रलय अनेक प्रकार की भिन्न-भिन्न परिस्थितियाँ उत्पन्न करके होता हैं। मुख्य प्रलय निम्न हैं - (१) साधारण प्रलय, (२) अवान्तर प्रलय, (३) नैमितिक प्रलय, (४) प्राकृतिक महाप्रलय और (५) आत्यन्तिक प्रलय, इन का विस्तृत कथन कई शास्त्रों में किया गया हैं।

दिनं दिनशस्य यतोत्र दर्शने, तमी तमो हन्तुर दर्शने सती ।।

सूर्य दर्शन से दिन और अदर्शन से रात्रि का क्रम चलता हैं, मुहूर्त तीन प्रकार के होते हैं - (१) वैदिक, (२) पौराणिक तथा (३) नाक्षत्र, प्रकार से दो घटी (४८ मिनिट) के समय का एक मुहूर्त माना जाकर समय का विभाग किया गया हैं। मुहूर्त का आरम्भ प्रातः वार प्रवृति के होरा काल (समय) से (दिन को प्रातः ६/३० बजे से) और रात्रि के आरम्भ (शाम ६/३० बजे) से होता हैं। संसार का सम्पूर्ण कार्य मुहूर्त काल गणना से होता हैं। जिसके दिन-रात के होरा या दुघड़िया आदि से कई भेद हैं, भरतीय परम्परा के अनुसार क्रमशः निम्न तालिका दी जाती हैं।

(१)	६ प्रमाण	=	१ अणु		(२)	२ अणु	=	१ त्रिसरेणु
(३)	३ त्रिसरेणु	=	१ त्रुटि		(४)	१०० त्रुटि	=	१ वेध
(५)	३ वेध	=	१ लव		(६)	३ लव	=	१ निमेष
(७)	३ निमेष	=	१ क्षण		(८)	५ क्षण	=	१ काष्ठा

१. पं० देवकीनन्दन खेड़वाल द्वारा लिखित ज्योतिष ''काल गणना'' साहित्य से उद्धृत।

(९) १५ काष्ठा = १ लघु (१०) १५ लघु = १ नाड़ी
(११) २ नाड़ी = १ मुहूर्त (१२) १५ मुहूर्त= १ अहोरात्र
(१३) ७ अहोरात्र= १ सप्ताह (१४) २ सप्ताह= १ पक्ष
(१५) २ पक्ष = १ मास (१६) २ मास = १ ऋतु
(१७) ३ ऋतु = १ अयन (१८) २ अयन= १ वर्ष

३० मानव वर्षों का = १ पितृवर्ष

३६०	मानव वर्षों का	=	१ देव (दिव्य) वर्ष
४,३२,०००	मानव वर्षों का	=	१ कलियुग
८,६४,०००	मानव वर्षों का	=	१ द्वापुरयुग
१२,९६,०००	मानव वर्षों का	=	१ त्रेतायुग
१७,२८,००	मानव वर्षों का	=	१ सतयुग
४३,२०,०००	मानव वर्षों का	=	१ चतुर्युगी (चौकड़ी) चारों युग

अति [1] तिक्षण सूचिका (सूई) की तिक्षण नौक द्वारा कमल पत्र को छेदने में जितना समय लगे उसे १ त्रुटि कहते हैं।

(१) ६० त्रुटि का १ रेणु (४) ६० लीक्षक का १ प्राण
(२) ६० रेणू का १ लव (५) ६ प्राण का १ पल
(३) ६० लव का १ लीक्षण (६) ६० घड़ी का अहोरात्र (रात-दिन)

---

१. सूच्या भिन्ने पद्म पत्रे त्रुटिरित्यमिधीयते ।
तत्षष्ट्या च भवेद्रेणु रेणु षष्ट्या लव स्मृतः ॥
तत्षष्ट्या लीक्षकं प्रोक्तं ततषष्ट्य प्राण उच्यते ।
षड्भिः प्राणै र्विनाड़ी स्यात् तत्षष्ट्या नाडिका स्मृता ॥
नाडी षष्ट्या तु नाक्षत्र महोरात्रं प्रकीर्तितम् ।

नोट :- इन में त्रुटि से लीक्षक पर्यन्त शूक्ष्म काल है, इन को समझना या व्यवहार में लाना दुर्घट है तथा प्राण से आगे काल को स्थूल काल (मुहूर्त) माना हैं।

विश्व की दीर्घाति दीर्घ काल गणना यहीं हैं ।

१ प्राण में १० गुरु अक्षरों का उच्चारण होता हैं । अर्थात् १ प्राण में मानव १० बार ॐ या राम का उच्चारण कर सकता हैं । जितने समय में १ बार ॐ या गरु अथवा राम अक्षर का उच्चारण होता हैं, उसे १ विपल कहा गया हैं एवं ६० विपल का १ पल, ६० पल की एक घड़ी, २।। घड़ी का १ होरा, और ६० घड़ी या २८ होरा का एक अहौरात्र (१ दिन-रात) होता हैं ।

कालमान

भारतीय/ज्योतिष	=	यूरोपीय/आधुनिक
२।। विपल	=	सैकेण्ड
२।। पल	=	१ मिनट
२।। घड़ी	=	१ घण्टा
६० घड़ी	=	२४ घण्टा

काल गणना में कल्प, मन्वन्तर, युगादि के पश्चात् सम्वत्सर का प्रयोग होता हैं । युगभेद से सतयुग में ब्रह्म, सृष्टि, प्रजापति और वृहस्पति सम्वतों का आरम्भ हुआ था, त्रेता में बलि बन्धन से बामन, सहस्त्रार्जुन के वध से परशुराम तथा रावण विजय से श्री राम संवत् चला था । द्वापुर में श्री कृष्णावतार से कृष्ण संवत् और महाभारत काल से युधिष्ठिर संवत् का प्रचलन हुआ था । कलियुग में विक्रम और शक संवत् प्रचलित हुए और कुछ आर्ष ग्रन्थों के अनुसार विजय्, नागार्जुन आदि संवत् भी चले थे ।

कल्कि अवतार नाम के सम्वत् प्रचलित होंगे। शास्त्रों में इस प्रकार भूत एवं वर्तमान काल के सम्वतों का वर्णन तो है, परन्तु भविष्य में होने वाले संवतों का भी वर्णन हैं। इन संवतों के अतिरिक्त अनेक राजाओं तथा सम्प्रदायाचार्यों के नाम पर भी सम्वत् चलाये गये हैं। भारतीय सम्वतों के अतिरिक्त विश्व में और भी जाति, देश तथा धर्मों के सम्वत् हैं। तुलनान्तरों से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय सम्वतादि काल गणना अत्यन्त प्राचीन है एवं गणित काल प्रबन्ध की दृष्टि से अत्यन्त सुगम और ठीक प्रमाणित पद्धति निश्चित हैं।

नवीन सम्वत् चलाने की शास्त्रीय पद्धति यह है कि जिस नरेश को अपना सम्वत् चलाना हो, उसे संवत् चलाने के दिन से पूर्व अपने पूरे राज्य में जितनी प्रजा के लोग किसी के ऋणि हैं, उन का ऋण तथा एक वर्ष भर प्रजा का पोषण-भत्ता अपनी और से राज्य कोष से चुका देना चाहिए। कहना ही होगा कि भारत में महापुरुषों के संवत् उन के अनुयायियों ने श्रद्धावश ही चलाये हैं, किन्तु वर्तमान भारत क़ा सर्वमान्य शास्त्रीय संवत् विक्रम संवत् हैं। जिसे राजा भृतहरि के भाई महाराज विक्रमादित्य ने देश के सम्पूर्ण ऋण को चाहे वह किसी भी व्यक्ति का रहा हो, स्वयं ने ऋणधारियों को देकर/चुका करके चलाया था।



भारतीय काल मान

क्रमांक	ब्रह्म सवंत्	वर्तमान वर्ष
१	ब्रह्म संवत्	१५,५५,२१,६७,२६,४६,०,८६
२	कल्पाब्द	१,६७,२६,४६,०८६
३	सृष्टि	१,६५,५८,८५,५८६
४	वृहिस्पत्य	क्रोधी ३८
५	सप्तर्षि	आर्द्रा २८
६	श्री कृष्णावतार	४०३६
७	श्री वामन	७,६१४
८	श्री परशुराम	६,६१४
९	द्वापुर	५,६१६
१०	दिव्य कलियुग	५०८६
११	महाभारत युद्ध	३,६५१
१२	युद्धिष्ठिर	३,६५०
१३	मानव कलियुग	३,८६४
१४	विक्रम	उक्त काल गणना २०४५ तक

मानव वर्षों से तुलनात्मक

ब्राह्म संवत्

ब्रह्म सम्वत् विश्व का सबसे पहला सम्वत् हैं, क्योंकि इस का आरम्भ विश्व की उत्पति, स्थिति और लय के कारण रूप ब्रह्मा की उत्पति के साथ होता हैं। इस सम्वत् में १८००० कल्पान्त प्रलय और कई लक्ष अवान्तर प्रलय हो चुके हैं। इस संवत् की वर्ष गणना ब्रह्मा की आयु

से आरम्भ होती हैं । ब्रह्माजी अपने मान से सौ वर्षों तक सृष्टि की रचना करते हैं । मानव वर्षों में ब्रह्मा काल की तुलना इस प्रकार हैं :- २४,००,००० मानव वर्षों से ब्रह्मा का एक पल होता हैं । इसी प्रकार चौदह करोड़, चालीस लाख वर्षों की घटी, चार अरब, बतीस करोड़ वर्षों की एक रात्रि होती हैं । आठ अरब, चौसठ करोड़ वर्षों का एक अहोरात्र (रात-दिन), दो खरब, उन्नसठ अरब, बीस करोड़ वर्षों का एक महिना और इक्कतीस खरब, दश अरब, चालीस करोड़ वर्षों का एक वर्ष तथा पन्द्रह नील, पचपन खरब, बीस अरब वर्षो का ५० वर्ष या एक पूर्वार्द्ध (परार्द्ध) होता हैं तथा इक्कीस नील, दश खरब, चालीस अरब का एक पर (पूर्वार्द्ध-उतरार्द्ध सहित) अर्थात् ब्रह्मा के १०० वर्ष की पूर्णायु । इस के बाद ब्रह्मा पदाधिकारी बदलता हैं [1] और एक महाशंख, छय्यासी शंख, बासठ पदम, चालीस नील, वर्षों के बाद विष्णु पदाधिकारी बदलता हैं । ऐसे ही ४४,७८,९७,६०,००,००,००,००,००,००,००,००,००० पर मानव वर्षों के बाद शिव पदाधिकारी बदलता हैं । **ब्रह्म पुराण** में परार्द्ध, पर या विष्णु के दिन की संख्या में जो अन्तिम संख्या होती हैं, उसे परार्द्ध कहा जाता हैं । जैसे कि - एक, दश, शत, सहस्त्र, अयुत, लक्ष, अयुत, कोटि, अयुत, अर्बुद, अयुत, खर्व, निखर्व, पद्म, महापद्म, शंख, अयुत, समुन्द्र, अन्त्य, मध्य और परार्द्ध, **परार्द्ध का दुगुना करने पर 'पर' होता है ।** जिसे विष्णु का एक दिन कहा जाता हैं, फिर इतनी ही बड़ी विष्णु की एक रात्रि भी होती है ।

---

१. विश्व में शूक्ष्मायु, अल्पायु से वृहत् आयु, परमायु अर्थात् संसार में सबसे बड़ी आयु किस की हैं । इस सम्बन्ध में पूर्णतः जानकारी के लिए कथानक रूप में पद्यात्मक रचना लेखक द्वारा रचित **'विश्वोऽपक्रम उपसंहार अर्थात् त्रिकाल रहस्य'** नामक ग्रन्थ का पठनावलोकन करेंगे । पता - उत्तम आश्रम, जोधपुर-९,
(अभी प्रकाशनार्थ विचाराधीन पाण्डुलिपि उपलब्ध हैं)

उपर्युक्त प्रकार से जब शिवायु पाकर शिव पदधारी बदल जाय तब महाविष्णु (रमता पुरुष, सर्व समर्थ) रामजी के निखिल समयान्त एक दिन की घोषणा की गई हैं । इस प्रकार से वर्तमान समय तक अबकी सृष्टि से युगधर्म के आद्याचार्यों द्वारा निर्धारित-प्रसारित वैष्णव दिव्य सम्वत्सर १०,८७३ वर्तमान (विक्रम संवत् २०४६ तक) व्यतीत हुए हैं । ऐसी सृष्टि अनन्तवार उत्पति-प्रलय से हुई हैं ।

कल्प निर्णय

ब्रह्मा के एक दिन को कल्प या सृष्टि काल की रात्रि को प्रलय काल कहते हैं । ब्रह्माजी के पक्ष और मास के तिथि मय दिनों के नाम इस प्रकार हैं :-

तिथि क्रम	नाम तिथि शुक्ल पक्ष में		नाम तिथि कृष्ण पक्ष में		
१.	श्वेतवाराह	कल्प	१.	नारसिंह	कल्प
२.	नीललोहित	कल्प	२.	समान	कल्प
३.	वामदेव	कल्प	३.	आग्नेय	कल्प
४.	रथन्तर	कल्प	४.	सौम्य	कल्प
५.	रौरव	कल्प	५.	मानव	कल्प
६.	प्राण	कल्प	६.	तत्पुरूष	कल्प
७.	वृहत	कल्प	७.	वैकुण्ठ	कल्प
८.	कन्दर्प	कल्प	८.	लक्ष्मी	कल्प
९.	सत्य	कल्प	९.	सावित्री	कल्प
१०.	ईशान	कल्प	१०.	अधोर	कल्प
११.	व्यान	कल्प	११.	वराह	कल्प
१२.	सारस्वत	कल्प	१२.	वैराज	कल्प
१३.	उदान	कल्प	१३.	गौरी	कल्प
१४.	गारूड़	कल्प	१४.	महेश्वर	कल्प
१५	कूर्म	कल्प	३०.	पितृ	कल्प

उपर्युक्त कल्पों के अतिरिक्त ब्रह्मा के प्रथम परार्द्ध के पूर्व महाप्रलय काल के अन्त में **ब्राह्म नामक कल्प** था, जिस में **ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे,** जिस को शब्द ब्रह्म (राम) कहते हैं ।

ब्रह्मा के द्वितीय उतरार्द्ध के अन्त में जो कल्प होगा उस को **पाद्म** कल्प कहते हैं । **कल्पाब्द को वैदिक सम्वत्, आर्यसम्वत् और सनातन सम्वत् भी कहते है,** जो वास्तव में ब्रह्म सम्वत् का एक भाग है । इस सम्वत् का आरम्भ और समाप्ति ब्रह्मा के दिन की आयु के साथ होती हैं । ब्रह्मा के एक मास में ३० कल्प होते है । ब्रह्मा के दोनों परार्द्धों के आदि और अन्त में क्रमशः **ब्राह्म** और **पाद्म** नामक दो विशेष कल्प होते हैं । इस प्रकार सब कल्प ३२ हुए, ब्रह्मा के प्रथम परार्द्ध कल्पों की गणना **रथन्तर कल्प** से होती थी, परन्तु ब्रह्मा के द्वितीय परार्द्ध के आदि का कल्प **श्वेत वाराह** होता है ।

अतः वर्तमान कल्प को श्वेत वाराह कहा जाता है । यह द्वितीय परार्द्ध का प्रथम कल्प हैं, इस में सात मन्वन्तरों के सात अवान्तर अल्प जोड़ कर अष्ठम श्वेत वाराह कल्प कहा जाता हैं । ब्रह्मा का एक दिन चार अरब, बतीस करोड़ मानव वर्षों का होता हैं । इस में १५ सन्धि सहित १४ मनवन्तर होते है । इन में से प्रारम्भ और अन्त की सन्धि सहित ६ मनवन्तर व्यतीत हो चुके हैं । एक मनवन्तर में ७१ महायुग (चतुर्युग) होते हैं । जिनमें २७ महायुग बीत चुके हैं, २८वें महायुग के सत्य, त्रेता और द्वापुर युग बीत कर २८वां कलियुग बीत रहा हैं । इस कलियुग के चैत्र शुक्ल १ शुक्रवार सम्वत् २०४६ तक ५०९० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं । अर्थात् कृष्णावतार को गताब्दा ५२१५ वर्ष कुरू-पाण्डव युद्ध को गताब्दा ५०९०, रावण युद्ध को गताब्दा ८,८०,१३१ व्रर्ष हुए हैं ।

उपयुक्त कल्पाब्द के पश्चात् ब्रह्माजी को देव, दैत्य, दानव, ग्रह, नक्षत्र, मानव, पशु, पक्षी, पर्वत और वृक्षादि समस्त चराचर की रचना में १ करोड़, ७० लाख, ६४ हजार वर्ष लगे । इतने वर्षों को कल्पाब्द में से घटा देने से **सृष्टि सम्वत्** होता हैं ।

प्रजापत्य वर्ष को मन्वन्तर काल से भी जाना जाता है, जिस का आरम्भ मन्वन्तर के साथ होता हैं । ब्रह्मा के एक दिन में १४ मनु होते हैं, जिन में अब (१) स्वाम्भुव, (२) स्वारोचिष, (३) उत्तम, (४) तामस, (५) रैवत और (६) चाक्षुष, यह छः मन्वन्तर बीत युके हैं । साठ सम्वतसरों को ऐतिहासिक घटनाओं में प्रयोग किया जाता था । जैसे कि - कल्प के आदि में प्रमाथी सम्वत्सर था । इसी प्रकार मत्स्यावतार प्रकट काल में प्रभव, कूर्मावतार के समय शुक्ल, नरसिंह अवतार के समय अंगिरा, वामन के समय सर्वजित, परशुराम के समय पार्थिव, रामचन्द्रजी के समय 'तारण' और श्रीकृष्ण के जन्म से समय में साधारण था । सत्ययुग के प्रथम चरण में मत्स्यावतार, द्वितीय चरण में कूर्मावतार, तृतीय चरण में वाराहवतार और चतुर्थ चरण में नृसिंहावतार हुए । इसी प्रकार त्रेतायुग के प्रथम चरण में वामन, द्वितीय चरण में परशुराम और तृतीय चरण में श्री रामावतार हुए । इन सातों अवतारों के बीच का अन्तर प्रति अवतार १००० वर्षों को न्यूनतम माना जा सकता हैं ।

अभी पुराणों में लिखित वंश परम्परा का मिलान इसी गत सत्ययुग से वर्तमान मानववंश का आरम्भ माना जाता हैं, जिस में श्रीवैष्णव राम सम्प्रदाय की प्राचीनता स्वतः सिद्धि जनक महत्वपूर्ण हैं ।

विश्व का अनादि धर्म-शास्त्र वेद हैं

इस विषय को प्रसंग पाकर पीछे भी बताते आये हैं, तथापि स्पष्ट करने हेतु एकाध प्रमाण प्रस्तुत कर देते हैं ।

प्रसिद्ध इतिहास-लेखक प्रोफेसर मैक्समूलर ने कहा था - **'संसार के पुस्तकालयों में ऋग्वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं'** इसी प्रकार शास्त्रकार भी कहते हैं -

बुद्धि पूर्वावाक्य कृतिर्वेदे - *स्मृति शास्त्र*

अर्थात् वेदों की वाक्य-रचना बुद्धिपूर्वक हैं ।

धर्म जिज्ञासा मानानां प्रमाणं परमश्रुतिः ॥ - मनुस्मृति २/१३

धर्म को जानने वालों के लिए वेद ही सबसे बड़ा प्रमाणपुष्ट हैं ।

भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति ॥ - स्मृति

यह जो कुछ हुआ या हो रहा हैं अथवा होगा, वह सब **त्रिकाल-रहस्य** वेद से ही प्रसिद्ध होता हैं । वेद शब्द 'विद् धातु' से सिद्ध होता हैं, जिसका अर्थ हैं - **'मन बुद्धि चितेन्द्रिय से संकल्पादि अनुभवजन्य वस्तुगत जानने के ज्ञान को ही वेद कहा जाता हैं ।'**

हमारे आदर्श मीमांसा शास्त्रों ने वेद को परमात्मा (ब्रह्म) का रूप ही माना हैं, इसीलिए तो गीता में कथित ४/३२, १७/२४ श्लोकों में वेद का बोधक ब्रह्म शब्द ही उच्चारित हुआ हैं, जिसके द्वारा विवेचित नैष्ठिक ज्ञानार्जन किया जा सकता हैं । इसी तरह सर्वसम्मत हैं कि मनु ने अपनी स्मृति वेदों के भावों से ही कथित की हैं ।

वेदोऽखिलो धर्म मूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ॥ - मनुस्मृति २/६

वेद को धर्म का मूल और वेदानुकूल स्मृति सदाचार-शास्त्रों को प्रमाण माना गया हैं । स्मृति-शास्त्रों में परस्पर विरोधाभास विषय पाये जायें वहाँ वेदसम्मत बहु-प्रमाण को स्वीकार करके न्याय करना उचित

होगा और विरोधाभास को विक्षिप्त। यदि ऐसा न किया गया तो ग्रन्थकर्ताओं को बुद्धिशील कहना हास्यसिक हो जायगा।

वाल्हिका पलवश्चीनाः शुलीका यवना शकाः ।
माष गोधूम शस्यादाः शास्त्र वैश्वानरोचिताः ।। - चरक संहिता

महात्मा अत्रि ऋषि ने बलख, ईरान, चीन, अरब, यूनान और उसके पूर्वी भागों में भ्रमण किया और वहाँ पर उन्होनें अंगूर, उर्द और गेहूँ को खाने वाले तथा शास्त्र के अनुकूल अग्निहोत्र (यज्ञ) करने वाले मनुष्य देखें।

प्यारे धर्म-प्रेमियों ! समाज-सेवियों !! पाठकों !!! अपने धर्म को जानों और अन्धकारजनक इस अपनी सामाजिक फूट का अन्त कर दो। जन्म से जाति मान लेना या अस्पृश्य मान कर भेद-बर्ताव करना हानिकारक हैं। आज हम जिन्हें उत्तम वर्णिष्ठ महर्षि मानते हैं, उनके कुल का परिचय जानने को सम्भवतः आप उत्सुक होंगे, तो लीजिए -

शास्त्रीय वर्ण-व्यवस्था का विवेचन

विश्वामित्रो वशिष्ठश्च मतंगो नारदादयः । - शुक्रनीति ८/४०
तपो विशेषैः संप्राप्ता उतमत्वं न जातितः ।। - शुक्रनीति ८/४१

विश्वामित्र, वशिष्ठ, मतंग, नारदादि विशेष तपस्या से ही उत्तम पदवी को प्राप्त हुए हैं, जन्म-कुल से नहीं। इनके जीवन सम्बन्धी स्पष्टीकरण भागवत, ब्रह्मवैवृत्यादि पुराणों में विशेषाति रूप से आया हुआ हैं।

बाल्मीक नारद घट योनी। निज निज मुखन कही निज होनी।

जिनकी स्तुति स्वयं गोस्वामी ने मान्यतापूर्वक की हैं -

व्यास आदि कवि पुँगव नाना, जिन्ह सादर हरि चरित बखाना।
चरण कमल बन्दउं तिन्ह केरे, पुरवहु सकल मनोरथ मेरे ।।

जान आदि कवि नाम प्रतापू, भयउ सिद्ध करि उलटा जापू ।
उलटा नाम जपत जग जाना, बाल्मीक भए ब्रह्म समाना ।। – मानस

तभी तो स्पष्ट ही आया हैं कि –

न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतं च सन्ततिः ।
कारणानि द्विजत्वस्य वृतमेव तु कारणम् ।।
वृते स्थितश्च शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं स गच्छति ।

– महाभारत, शान्ति पर्व, अनुशासन पर्व, १४१/५०-५१

यही श्लोक 'ब्रह्मपुराण' में भी आया हुआ हैं । तात्पर्य यह हैं कि ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न होना, संस्कार, वेद-श्रवण, ब्राह्मण पिता की सन्तान होना – यह सब ब्राह्मणत्व के कारण नहीं हैं अर्थात् इनके कारण कोई ब्राह्मण नहीं बन सकता किन्तु यदि 'ब्राह्मणोचित सदाचार' हो तो ब्राह्मण बन सकता हैं ।

न कुलेन न जात्या वा क्रियाभिब्राह्मणो भवेत ।
चाण्डालोऽपि हि वृतस्थो ब्राह्मणः स युधिष्ठिर ।।

– महाभारत, अनु०, वनपर्व, अध्याय २१६

स्पष्ट ही जन्म-कुल का खण्डन हैं कि चाण्डाल-कुलोत्पन्न पुरुष के अन्दर भी सदाचारादि हैं, वह ब्राह्मण ही हैं ।

यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्मे च सततं स्थितः ।
तं ब्राह्मण महं मन्ये वृतेन हि भवेद् द्विजः ।। – महाभारत, वन पर्व, ३१२

जिस शूद्र-कुलोत्पन्न पुरूष के अन्दर संयम, सत्य, धर्म आदि पाए जाएँ, उसे मैं ब्राह्मण ही मानता हूँ । क्योंकि निश्चय से सदाचार के द्वारा ही पुरूष ब्राह्मण बनता हैं । इस प्रकार के हजारों प्रमाण शास्त्रीय या लौकिक प्राचीन किम्वदन्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं । जैसे – क्षत्रिय-कुलोत्पन्न विश्वामित्रजी अपने ज्ञान-रूप तपो-बल से ब्रह्मऋषि ब्राह्मण बन कए । हाल ही कुछ शताब्दियों के पूर्व तीस-इकतीस पीढ़ी से पहले 'यह

पुष्करणा ब्राह्मण' कहे जाने वाले बेलदार (ओड मिट्टी खोदने वाले) जाति से थे। पुष्कर तीर्थ कुण्ड के खुदने के समय न्योतेदार विप्रों की न्यूनता-पूर्ति हेतु वहाँ के उपस्थित मजदूरों की शुद्धि की जा कर ब्रह्मभोज में स्थान दिया गया, आज वहीं ब्राह्मण कहलाते है। यह कतिपय भारत के विभिन्न प्रान्तीय भू-भाग या राजस्थान में अत्यसंख्यक से है, यह जीते-जागते ज्वलन्त उदाहरण है।

अर्वाचीन या प्राचीन जिस भी दृष्टि-पुष्ट प्रमाणीय दंगल में चाहो उसी प्रकार दिए प्रमाण उदाहरणों को सोच-विचार कर अब तो अपने रूप को सम्भालों। **आप शुद्ध सनातनी पक्के धर्म से आर्य हिन्दू है।** बनने-बिखरने वाला या छूतछात-स्पर्श से नष्ट-भ्रष्ट होने वाला आपका धर्म नाजुक नहीं बल्कि शुद्ध और दृढ़ है।

शूद्रचेतद् भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भवच्छूद्रो ब्रह्मणो ब्रह्मणो न च ॥

– महाभारत, शान्ति पर्व, १/६

यदि सत्य, दान, अद्रोह, अंहिसा इत्यादि ब्राह्मण में नहीं पाए जाते तो वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं और शूद्र में यह हो तो वह शूद्र नहीं हो सकता। ऐसे प्रमाणों के रहते हुए भी प्राचीन के लगभग पाँच हजार वर्षों से सामाजिक व्यवस्था-पद्धति में विदेशीय आक्रमणात्मक शासन-वश अनुवंशिक ब्राह्मणों में भोजनभट्टता, भोगप्रियता एवं प्रतिदिन की लोभादि प्रवृति के रहने से पतन-छिद्र बने, उनका सुधार करना भावी रक्षा-कार्य हैं।

मध्यकालीन शूद्र कायस्थादि कई कुलों में विद्या-शिक्षा का समावेश होते रहने से आज उच्च परिणाम में हैं। इस प्रकार से स्वभाव-गुण (सत्व, रज, तम) प्रकृति की न्यूनाधिकता के कारण ही गुण-कर्म-प्रेरित होकर **वर्ण परिवर्तन** माना जाना स्वतः सिद्ध तथा प्रमाण-पुष्ट अतर्क्य है।

बहुधा पिछले छः सात सौ वर्षों में कतिपय विदेशीय शासन

सामन्त तथा प्रक्षिप्त शास्त्रीय स्वरूप का अदृष्ट-अश्रुत धर्म एवं अशिक्षित समाज में रूढ़िवाद का दृढ़ीकरण प्रचलन इत्यादि कारणों के मेल से भी कई जातियों का जन्म हुआ जैसे कि जातीय-बन्धन और यौनाकर्षण-स्वरूप एक ब्राह्मण ने क्षत्रिय, वैश्य या किसी शूद्र कन्या से प्रेम-सम्बन्ध गान्धर्व विवाह कर लिया । उसकी सन्तान और वर्ण की हो गई । जैसे कि गधी और घोड़े के संयोग से खच्चर जाति का पशु वर्णसंकर पैदा हो जाता हैं, उसी प्रकार एक बनिए ने शूद्रा से प्रेम कर लिया तो उसकी सन्तान अन्य कोई वंश में चली गई, क्योंकि गुप्त में चाहे किसी भी प्रकार के किसी से भी यौनाकर्षण-प्रेम या वैवाहिक तालमेल चलता रहे तो कुछ नहीं परन्तु यदि खुले में आम प्रकट में ऐसे कोई व्यक्ति अन्य वर्ण की कन्या से प्रेमालाप संगम कर लेता हैं तो उस वर्ण (जाति) वाले सामाजिक नियम से उन्हें जाति-बहिष्कृत कर देते हैं और उनकी सन्तान तीसरी जाति लेकर जीवन-पथ में चल देती हैं । जैसे एक ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि वर्ण का व्यक्ति विरक्त भाव साधु रूप में होकर काषाय वस्त्र धारण करले । संयोगवश यौवनाकर्षण से कहीं किसी अन्य वर्ण की कन्या से विवाह कर ले सब उसकी सन्तान साधु, साद, गिरी, पुरी, कामड़ अथवा अन्य नाम या गोत्र आदि की गृहस्थी भेष से जाति चल पड़ी, इसी तरह कई जातियों का उद्भव होना सर्वसिद्ध गाथाएँ हैं । प्राचीन काल में ऐसे नहीं होता था, क्योंकि कन्या जिस वर्ण के पति से विवाह करती थी, उसी वर्ण की कहलाती थी, जिससे धर्म-भ्रष्ट वर्ण संकरात्मक तीसरी जाति को स्थान नहीं मिल पाता था । अस्तु -

वस्तुतः सब प्राणी मानव मात्र एक ही परम पिता परमात्मा की सन्तान होने से सब एक ही समान हैं, इसमें ऊँचता या नीचता नहीं दी गई या मानी गई हैं । चारों वर्णों की स्थापना समाज-शरीर की उत्तम व्यवस्था हेतु वेद भगवान ने गुण-कर्म के कारण अत्यावश्यक मान कर प्रेम-व्यवहार करने का आदेश दिया हैं । **भारतीय समाज-दर्शन** का

आधार-स्तम्भभूत चार वर्णों की रचना हैं, जो ब्राह्मण को प्रतिष्ठा, क्षत्रियों को शक्ति-शासन, वैश्यों को धन-धान्य का उपभोग तथा अज्ञानी किन्तु सबल शरीर वालों (शूद्रों) को विश्राम-जीवन देता हैं। ऐसी वर्ण-व्यवस्था से समाज में एकव्यक्तिक स्वतन्त्रता और परस्पर प्रेम-समानता, स्वार्थसहित पुरुषार्थ, परमार्थ-पथ का साम्राज्य प्राप्त होता हैं। साथ ही ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास-मय आश्रमों में व्यक्तिगत जीवन रख कर अपने सर्व सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक, नैतिक आदि शक्तियों का बल प्राप्त करके प्रत्येक को कल्याण (मुक्ति) प्राप्त कराता हैं। शास्त्रीय दार्शनिक सिद्धान्तों से यह गुण कर्माधार से समाज-रचना स्वतन्त्रता दायक होकर राष्ट्र-समाज-व्यक्ति को पतन होने से बचाता हैं। कोई भी व्यक्ति ऊँच या नीच अपनी मानसिक प्रकृति-प्रवृति की कल्पना को साकार रूप दे सकता हैं। इसी आधार पर हमारे भारत का प्राचीन गौरवमयी-प्रतिभापूर्ण इतिहास घोषणा करता हैं कि -

क्षत्रं ब्रह्म मुखं चासीद् वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः ।
शूद्राः स्वकर्म निरतास्त्रीन वर्णानुपचारिणः ।।

– बाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, सर्ग ६/१९

क्षत्रियों के मुख मानों ब्राह्मण थे। क्षत्रिय ब्राह्मणों की आज्ञानुसार काम करने वाले थे। क्षत्रियों के पीछे-पीछे वैश्य अपने कर्त्तव्य का पालन करते थे। ऐसे ही कैकय देश के राजा अश्वपति अपने देश की अवस्था-स्थिति का वर्णन करते हुए कहता हैं -

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो ।
नाना हिताग्निर्ना विद्वान न स्वैरी स्वैरिणी कुतः ।।

– छान्दोग्य उपनिषद, अध्याय ५, खण्ड ११ में कथाधार

मेरे सारे जनपद-राष्ट्र में एक भी चोर, कंजूस, शराब पीने वाला, अग्निहोत्र न करने वाला तथा अशिक्षित और व्यभिचारी पुरुष नहीं हैं,

तब व्यभिचारी स्त्री कैसे रह सकती हैं ? क्या आज भी कोई देश का राष्ट्रनायक नेता या अधिकारी, सरपंच या अन्य विशिष्ट शासनाधिकारी ऐसा हैं, जो कि सत्यतापूर्वक छाती पर हाथ रख कर महात्माओं के सामने इस तरह की निश्चित घोषणा करके अपने प्रान्त, शहर, नगर, राज्य या गाँव को निर्दोष कथन कर सके ? नहीं, कदांपि नहीं ! कोई नहीं !! क्योंकि वह प्रमुख सूत्र-संचालक भी दोषों के शिकार हैं । व्यसनों में बीमार हैं तो औरों की रक्षा के लिए चुश्त कौन रहे । कहावत प्रसिद्ध है ही कि **'यथाराजस्तथाप्रजा:'** । प्राचीन काल के जनसेवक शासक **'यथा बाणी तथा पाणी'** जैसे मुख से कहते थें, वैसे करते थे, किन्तु आज के समाज-सेवक **बातें करते हैं टन भर, याद रखते हैं मन भर, काम करते हैं कन भर,** वाली काव्योक्ति-अभिधा शक्ति का चरितार्थ होता हैं ।

सद्गुणो ब्राह्मणो वर्णः क्षत्रियस्तु रजोगुणः ।
तमोगुणस्तथा वैश्याः गुण साम्यात् शूद्रता ।।

– भविष्य [1] पुराण ३/४/२३

---

१. **'पुराण'** शब्द का अर्थ हैं – प्राचीन कथाऐं । **'पुराणम् आख्यानम्'** अर्थात् प्राचीन आख्यान । वैदिक साहित्य में **'पुराण'** शब्द का इतिहास और आख्यान शब्द के साथ प्रयुक्त हुआ हैं । पुराणों को ब्रह्मा (राजस), विष्णु (सात्विक) तथा तामस (शिव) देवों के अनुसार छः छः को तीन वर्गों में विभक्त किया गया हैं । यथा –

सात्विक (विष्णु विषयक)	**राजस (ब्रह्मा विषयक)**	**तामस (शिव विषयक)**
१. विष्णु पुराण	१. ब्रह्माण्ड पुराण	१. शिव पुराण
२. नारद पुराण	२. ब्रह्मवैवर्त पुराण	३. लिंग पुराण
३. भागवत पुराण	३. मार्कण्डेय पुराण	३. स्कन्द पुराण
४. गरूड़ पुराण	४. भविष्य पुराण	४. अग्नि पुराण
५. पद्म पुराण	५. वामन पुराण	५. मतस्य पुराण
६. वाराह पुराण	६. ब्रह्म पुराण	६. कूर्म पुराण

सात्विक वृत्ति से ब्राह्मण, रजोगुण-प्रधान क्षत्रिय और तमोगुणः वृत्ति से वैश्य तथा शान्तिशील वृत्ति से शूद्र वर्ण की निश्चयता होती हैं ।

शास्त्रीय वर्ण-परिवर्तन व्यवस्था

मिश्र देशोद्भवा म्लेच्छाः कांश्यपेनैव शासिताः ।
संस्कृताः शूद्रवर्णेन ब्राह्म वर्ण मुपागता ॥१९॥
शिखा सूत्रं समाधय पठित्वा वेद मुत्तमम् ।
यज्ञेश्च पूजयामासुर्देव देवं शचि पतिम् ॥२०॥

– भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्व, ३/४/१९-२०

कश्यप मुनि ने मिश्र देश में जाकर वहाँ के म्लेच्छों को शिक्षा दी, फिर उनका संस्कार (शुद्धि) कराया । संस्कार करा कर उन्हें अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार शूद्र से लेकर ब्राह्मण तक वर्ण दिये । शिक्षा और यज्ञोपवीत धारण करके उत्तम वेद को पढ़ कर वे यज्ञों के द्वारा भगवान की पूजा करने लगे ।

त्यक्त स्वधर्माचरणा निघृणाः परपीड़काः ।
चण्डाश्च हिंसका नित्यं म्लेच्छास्ते ह्य विवेकिनः ॥

– शुक्रनीति १/४४

म्लेच्छ वे है, जिन्होंने अपने धर्म का परित्याग कर दिया हैं । जीव दया रहित हैं, दूसरों को पीड़ा देने वाले क्रूर, हिंसक और विचार रहित हैं, वे दुष्ट या राक्षस हैं ।

प्रत्यक्ष हैं कि चार वर्णों के धर्म से पतित हेने वाला ही म्लेच्छ कहलाता हैं – पृथक कोई जाति का निर्देश नहीं हैं, इस निर्णयानुसार यदि वह शुद्धाचरण धारण करले तो पुनः आर्य हिन्दू हो जायेगा ।

नहिं हरि भगति जग्य तप ग्याना । सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना ॥

बरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो कराहिं ।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति ।।१८३।।
बाढ़े खल बहु चोर जुआरा । जे लंपट परधन परदारा ।।
मानहिं मातु पिता नहिं देवा । साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ।।
जिन्ह के यह आचरन भवानी । ते जानेहु निसिचर सब प्रानी ।।

- रामचरित मानस, बालकाण्ड

क्या सुन्दर अनुवाद किया गया हैं - अर्थ स्पष्ट हैं ।

उरूक्षयस्य पुत्र त्रयमभूत तच्च त्रितयमपि पश्चाद् ।
विप्रतामुपजगाम् । - महाभारत, वन पर्व, ४/१६/१०

क्षत्रियवंशीय महावीर राजा का ऊरूक्ष्य नामक पुत्र हुआ, उसके त्र्यारूण, पुष्करी और कपि ये तीनों पुत्र बाद में ब्राह्मण बनें ।

विश्वविख्यात इतिहास-तत्व मूलग्रन्थ आदि कवि द्वारा बील्मीकि रामायण तथा गोस्वामी तुलसीदास ने मानस रामायण में ठीक ही स्पष्ट किया हैं, जो वर्ण-लक्षण-परिवर्तन का ज्वलन्त उदाहरण हैं -

ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य ऋषि और उनके विश्रवा मुनि की केशनी रानी के गर्भ से जन्म लेने वाले **ब्राह्मण कुल में रावण, कुम्भकरण** जैसे महाबलि शक्तिमन्त अत्याचारी विश्व-दुःखदायी राक्षस-कर्म में प्रवृत्ति पा कर **निशाचराधिपति असुर** बने । क्या यह वर्ण-परिवर्तन नहीं हुआ ? उन्हीं **विश्रवा** का ज्येष्ठ पुत्र **यक्षराज कुबेर** यक्ष बना और **विभीषण** भक्त-ब्राह्मण ही रहे और दशकन्ध पुत्र-कलत्र-परिवार के सहित निशाचर रहा । **मय दानव** ने तनुजा **मंदोदरी** का विवाह रावण से किया । क्या यह सुकुल का परिवाद स्पष्ट नहीं हैं ?

महाराज **उग्रसेन** जैसे धर्मात्मा राजा के **कंस** जैसे पुत्र होकर अपने कर्माचरणों से राक्षसराज हुआ । इसी प्रकार राक्षस-कुलपति **हिरण्यकश्यप** के पुत्र भक्त **प्रह्लाद** ब्राह्मण रहे । उनके वंशज बलिराज तथा विरोचन

त्रिगुण-शक्ति-सम्पन्न दानव रहे, तभी तो कहा हैं -

वंश के कुवंश जन्मा, कुवंश के वंश ।
हिरण्यकुश के प्रहलाद जन्मे, उग्रसेन के कंश ।।

इसी प्रकार श्री मद्भागवतादि में कथित वेन राजा के दुष्ट शरीर से नित्यमान ऐश्वर्य-सम्पन्न भगवान पृथु और निषाद की उत्पति-कथा आती हैं । वह भी विचारणीय हैं कि एक ही शरीर से उत्पन्न सन्तान पृथु को राज्यसिंहासन की प्राप्ति और निषाद को जंगल में देश-निर्वासन दे दिया जिसकी सन्तान भील, मेणा आदि (वंशज) मानी जाती हैं । ऐसे-ऐसे दृष्टव्य एवं श्राव्य हजारों रूपान्तर प्रस्तुत करने में यत्किंचित मात्र भी ह्रासतापूर्ण उदासता का अनुभव नहीं होता । अपितु ऐतिहासिक अक्षय भण्डार हैं, जिन सबका विस्तार यहाँ अत्युक्त कागज के राशन की व्यर्थ खर्ची मात्र होगा । यदि पाठकों ने लेखनी के प्रसाद का स्वागत किया हैं तो कुछ और ले लो -

सुकेतु नामक यक्ष की पुत्री **ताटका** (ताड़का) पुत्र **मारीच** सहित राक्षस पद को प्राप्त हुई । ब्राह्मण ऋषि **कश्यप** का पुत्र **हिरण्याक्ष** और **हिरण्यकश्यप** राक्षस हुए । धृष्ट राजा के वंश में धाष्ट्र नाम क्षत्रिय हुए उनमें से बहुत से पृथ्वी पर ब्राह्मण हो गए । (भागवत पुराण ९/२/१७) और देवदत्त क्षत्रिय के घर ऋषि, अग्नि, वैश्य (जातुकर्ण्य, क्वॉरी कन्या के गर्भ से जन्मे तब उसे कानीन भी कहते हैं) का अवतार हुआ । इनके वंश में **'अग्नि वैश्यायन'** नामक गोत्र का ब्राह्मण कुल हुआ (भागवत ९/२/२१-२२) **मनु-पुत्र दिष्ट के नाभाग, जो कर्म से वैश्य हो गया ।**

(यह अम्बरीष राजा के पिता नाभाग से पहले हुए थे) भागवत ९/२/३४ आगे ९/२३/१५ में दुर्मना राजा के प्रचेता जिसके १०० पुत्र हुए, वह सब उत्तर दिशा में रहते हुए म्लेच्छों के अधिपति हुए ।

राजा मन्यु के गर्ग, उनके शिनी, उनके गार्ग्य नामक पुत्र हुए, यह **क्षत्रियों में से ब्राह्मण पैदा हुए।** मन्यु के महावीर्य, उनके दुरितिक्षय, उनके त्र्यारूणी, कवि, पुष्करारुणि **तीनों पुत्र ब्राह्मण** गति को प्राप्त हुए। श्री मद्भागवत महापुराण ६/२१/१६-२० के अनुसार अजमीढ़ के वंश में प्रियमेध आदि ब्राह्मण हुए। (श्री मद्भागवत ६/२१/३०)। शरद्वान के ब्राह्मण ऋषि द्वारा उर्वशी को देखने से कॉस के गुच्छे में वीर्य पड़ा, उससे कृपाचार्य एवं कृपी का जोड़ा हुआ, शान्तनु महाराज ने इनकी पालना की। भागवत ६/२१/४६ अक्रिय राजा के क्षेत्र में ब्राह्मण उत्पन्न हुए (भागवत-महापुराण ६/१७/१७) ययाति क्षत्रिय ने शुक्राचार्य ब्राह्मण की पुत्री देवयानी से विवाह किया (भागवत महापुरण ६/१८) और **शुक्राचार्य ब्राह्मण ने क्षत्रिय राजा प्रियव्रत की पुत्री उर्जस्वती से विवाह किया। जमदग्नि ब्राह्मण ने सूर्यवंशी राजा प्रसेनजित की कन्या रेणूका से विवाह किया। शृंगी ब्राह्मण ने सूर्यकुल-भूषण रामचन्द्र की बहिन शान्ता नामक कन्या से तथा राजा लोमपाद की कन्या से विवाह किया।** क्षत्रिय प्रियव्रत राजा ने विश्वकर्मा ब्राह्मण की पुत्री बहिष्मती से विवाह किया। राजा नीप क्षत्रिय ने व्यास-पुत्र शुकदेव [1] की कन्या कृत्वी से विवाह करके ब्रह्मदत्त को उत्पन्न किया, इसी कुल में मुद्गल ऋषि हुए, जिससे प्रचलित ब्राह्मण गोत्र मौद्गल्य आज तक हैं। **प्रमता ब्राह्मण का विवाह एक नाइन के साथ हुआ जिससे महामुनि मतंग की उत्पति हुई।** (महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय २२)। **कर्दम क्षत्रिय की कन्या अरुन्धती का वेश्या-पुत्र वशिष्ठ से विवाह हुआ।** इससे शक्ति, अग्निहोत्र नामक पुत्र हुए, उनमें से **शक्ति का विवाह चाण्डाल-कन्या अदृश्यन्ति से हुआ, उनसे मत्स्यगन्धा द्वारा वेद-व्यास हुए।** (लिंग पुराण, पूर्वार्द्ध, अध्याय ६३ और शिवपुराण, पूर्वार्द्ध, खण्ड १, अध्याय १३ में देखिये)

---

१. शुकदेव ने ब्रह्मचर्यावस्था - तपकालीन के बाद गृहस्थ धारण किया था।

शुकी से शुकदेव, अलूकी से कणाद ऋषि हुए इत्यादि।

इसी प्रकार हम पूर्व में बता कर आये हैं कि आज जितनी भी शूद्रतम कही जाने वाली निम्नस्थ जातियाँ हैं, वह प्रायः क्षत्रियों, ब्राह्मणों, महाजनों (वैश्यों) से अक्षरक्षः एक्यतापूर्वक मिलती हैं और उन द्विजातियों के पूर्वज शूद्र वंश में ही हुए प्रतीत होना असम्भव न होगा। मूल में चाहे वह सूर्य, अग्नि या चन्द्रवंश ही क्यों न हों, फिर भी मानव-रूप में कोई भेद नहीं, जो आज भंयकर छूत-प्रथा का बहुरूप धारण करके पतन रूप हो रहा हैं। इसे सुधारना, उन्नति में लाना प्रत्येक समाजप्रिययी धर्मप्रेमी हिन्दू जनता व राज्याधिकारियों का कर्त्तव्य हैं। अस्तु -

सिंधु द्वीपश्च राजर्षिर्देवापिश्च महातपाः।
ब्राह्मण्यं लब्ध्वा नत्र विश्वामित्रस्तथा मुनिः॥

– महाभारत, शल्य पर्व, ४/३६-३७

सिंधु द्वीप, देवापि तथा विश्वामित्र जैसे यह सब तप आदि के कारण ही ब्राह्मण पदवी को पहुँच गए और अरिष्टषेण नामक क्षत्रियकुलोत्पन्न बड़े तप-प्रभाव से ही ब्राह्मण पद को प्राप्त हुए।

क्षत्रिययेभ्यश्च ये जाता ब्रह्मणास्ते च विश्रुताः।
विश्वामित्र प्रभृतयः प्राप्ता ब्रह्मत्व मुत्तमम्॥

– महाभारत, आदि पर्व, १३६/१४

जन्म से क्षत्रिय कुलोत्पन्न भी विश्वामित्र आदि अनेकों क्षत्रिय ब्राह्मण वर्ण को प्राप्त हुए। पुनश्च -

तपो बीज प्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे।
उत्कर्ष चापकर्ष च मनुष्येष्विह जन्मतः॥

– मनुस्मृति १०/४२

तप-प्रभाव से विश्वामित्र और वीर्य-प्रभाव से ऋषि शृँगादिवत सब युगों में मनुष्य उच्चता और नीचता को भी प्राप्त होते रहे है । इसी प्रकार से पुनः पुष्टिपूर्वक शब्द-उद्धरण देखिये -

ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो । - विदुरनीति ६/१३

ब्राह्मण से क्षत्रिय की उत्पति होती हैं ।

ऐसे-ऐसे उदाहरणों से आर्य सनातन साहित्य भरपूर प्रमाण प्रस्तुत करता हैं । **वर्णों के परिवर्तन** का उल्लेख बहुधा खुलासा ही मिलता हैं अर्थात् आज जितने ब्राह्मणादि उच्च गर्वी जन्म से जातीय मानने वाले जिन-जिन ऋषियों की सन्तान होना प्रसिद्ध करते हैं । अब कुछ उन्हीं ऋषियों के वंश का वर्ण प्रमाण भी प्रस्तुत कर रहे हैं । सम्भवतः इसके जानने से कुछ बुद्धिमन्दता को दूर कर सकेंगे ।

पूर्वादि प्रत्येक प्रसंग-प्रकरण में वर्णित सामग्री हिन्दू धर्म की हितप्रदा तथा समाज को अपना पूर्व शुद्ध वेद प्रतिपादित संस्कार कथित वर्ण-व्यवस्था धर्म कहा हैं, सो प्रत्येक आस्तिक, सामाजिक प्राणियों की धारणामय शक्ति ही हैं ।

शूद्रोऽपि शील सम्पन्नो गुणवानो ब्राह्मणो भवेत् ।
ब्राह्मणो विगताचारः शूद्राद्धीनतरो भवेत् ॥ - भविष्य पुराण

शील, सदाचार-सम्पन्न शूद्रकुलोत्पन्न भी ब्राह्मण से अधिक हो जाता हैं और आचारहीन ब्राह्मणकुलोत्पन्न भी शूद्र से नीचा हो जाता हैं ।

सप्तम परिच्छेद

प्राचीन ऋषियों का वंश-परिचय

इस सम्बन्ध-प्रसंग का अंश बहुत-सा पिछले प्रकरण में उदाहरण रूप से लिखा जा चुका हैं - अस्तु प्रामाणिक उद्धरण फिर भी प्रस्तुत करते हैं -

जाता व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वापाक्याश्च पराशरः ।
मृगियोऽर्थर्ष्य शृंगोऽपि वशिष्ठो गणिकात्मजः ।।
मन्दपालो मुनिश्रेष्ठो नाविका पत्य मुच्यते ।
बहवोऽन्येऽपि विप्रत्वं ये पूर्वमद्विजाः ।।

- भविष्य पुराण, अध्याय ४३

व्यास मुनि एक कैवर्त (मल्लाह) की लड़की के पुत्र थे । व्यास के पिता पारासर ऋषि एक स्वपाकी चाण्डाली से उत्पन्न हुए थे । ऋष्यशृँग पौराणिक-प्रसिद्धि के अनुसार मृगी के पुत्र वाली स्त्री के पुत्र थे । वशिष्ठ वेश्या के पुत्र थे । मुनि मन्दपाल नौका चलाने वाली स्त्री के पुत्र थे । इसी प्रकार बहुत से अन्य भी ब्राह्मण बन गए, जो पहले से द्विज नहीं थे । इसका स्पष्टीकरण अन्यत्र शास्त्रों में इस प्रकार पाया जाता है -

उत्तर श्लोक -

तत्र जात्यन्तरेष्वनेक जाति सम्भवाः ।
सन्ति ऋष्यशृँगो मृग्यः कौशिकः कुशात् ।।
जम्बुको जाम्बुकात् बाल्मीकि बल्मीकात् ।
व्यासः कैवर्त कन्याकायाम् शश पृष्ठात् ।।
गौतमः वशिष्ठ उर्वश्याम् अगस्त्यः ।
कलशेजात इतिश्रुत त्वात् ।। - वज्रसूचिकोपनिषद्

नहीं ! मृगी से शृँगी ऋषि, कुशिक से कौशिक, जम्बुक से जाम्बुक,

बाल्मीकि (वर्मी) से बाल्मीकि, मल्लाह की कन्या से व्यास, खरगोष की पीठ से गौतम, उर्वशी अप्सरा से वशिष्ठ और घड़े से अगस्त्य का जन्म हुआ, परन्तु करणी के बल से तपो-प्रभावित ब्राह्मण कहलाए किन्तु **जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता** । पुनश्च-

हरिणी गर्भ सम्भूतः ऋष्यशृँगो महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ।।१।।
श्वपकी गर्भ सम्भूतः पिता व्यासस्य पार्थिव : ।
तपसा ब्राह्मणो जाताः संस्कारस्तेन कारणम् ।।२।।
उल्वकी गर्भ सम्भूतः कणादाख्यो महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जाताः संस्कारस्तेन कारणम् ।।३।।
गणिका गर्भ सम्भूतः वशिष्ठश्च महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जाताः संस्कारस्तेन कारणम् ।।४।।
नाविका गर्भ सम्भूतोः मन्दपालो महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जाताः संस्कारस्तेन कारणम् ।।५।।
माण्डव्यो मुनिराजस्तु मण्डुकी गर्भ सम्भवम् ।
तपसा ब्राह्मणो जाताः संस्कारस्तेन कारणम् ।।६।।

हरिणी से महामुनि ऋष्यशृँग, चाण्डालिन से व्यास पिता पाराशर, अल्लकी से कणाद्, वेश्या के गर्भ से वशिष्ठ (मार्कण्डेय) इत्यादि यह सब नीच कुलस्थ ही **तप-प्रभाव से आचरणशील ब्राह्मण बने** । अतः संस्कार ही ब्राह्मणत्व हैं । तभी तो कहा हैं –

धर्मचर्यया जघन्योः वर्णः पूर्व पूर्व वर्ण मापद्यते ।
अधर्म चयया उत्तमः वर्ण अपरम्पारं वर्ण मापद्यते ।।

– भाषाइन्दव छन्द (संकलित)

कुम्भ में सिन्धु समात नहीं, सुत कुम्भ अगस्त चलू भरि है ।
गनिका सुत है रघुनाथ गुरू, झिमरी सुत वेद हृदय धरि है ।।
मर्कट सुत है मार्कण्डेय ऋषि, दासी सुत विदुर दया धरि है ।
अपनी करणी कर होत बड़ो, वंश बड़ो तो कहा करि है ।।१।।

-: छप्पय छन्द :-

तप बिन कहिये लेड, कला बिन भेड़ कहावे ।
सिकल विकल से ढेढ़, सिंह सो हिंसक गावे ।।
खाय अलिन सो श्वान, बिलाव सो मन थिर नाहीं ।
कुबुद्धि सोई काग, विषयों में रह लपटाहीं ।।
कृतघ्नी गुण चोर और, दुष्ट भलाई ना करे ।
'हरिराम' यह मूढ़ जन, माया संग बान्ध्या मरे ।।१३।।

– श्री हरिसागर, राजनीति अंग

पुनश्च – *पृषध्रस्तु गुरु गोवधाच्छूद्रताम गात् ।* (मार्कण्डेय ११/२/२५)

तथा – *पृषध्रोहिंसयित्वा तु गुरोर्गा द्विज सत्तमाः शापाच्छूद्रत्वमापन्न ।*

– ब्रह्मपुराण, अध्याय ७

गुरु की गाय की हत्या के कारण पृषध्रराजा शूद्र हो गया ।

नाभागी नेदिष्ठ पुत्रोऽन्यः कर्मभिर्वेश्यतां गतः ।

– भागवतपुराण, ६/२/२३

पाठान्तर – *नाभागो नैदिष्ठ पुत्रस्तु वैश्यताम् गमत् ।* – विष्णुपुराण ४/१/१६

नैदिष्ठ का पुत्र नाभाग क्षत्रियकुलोत्पन्न होते हुए भी वैश्य बन गया । इसी प्रकार से और भी –

यवीयांस एकाशीतिः जायतेयाः पितुरोदश करा महाशालीना ।
महा श्रोत्रिया यज्ञ शीलाः कर्म विशुद्ध ब्राह्मणा बभूवः ।।

– श्री मद्भागवत महापुराण, ५/४/१३

जयन्ति (ऋषभदेव की पत्नी) के शेष ८१ पुत्र पिता के आज्ञाकारी, महाशीलवान, वेद के उत्तमतया जानने वाले, विशुद्ध कर्म करने वाले ब्राह्मण हुए । इसी प्रकार से वायुपुराण में एक उल्लेख भी उद्धृत करने योग्य आता हैं कि गृत्समद का पुत्र शुनक था, जिसके कुल में कर्म-भेद के कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्ण के पुत्र हुए । प्रमाण स्पष्ट –

पुत्रो गृत्समदस्या सीच्छुन को यस्य शौनकः ।

ब्राह्मणः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च ।।
एतस्य वंश सम्भूता विचित्राः कर्मभिर्द्विज ।
तथा गृत्समतेः पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ।।

– वायुपुराण, अ० ९२/४५, हरिवंशपुराण, ३२/२० तथा
वायुपुराण, उत्तरखण्ड ३०३/५

अस्तु – *ऐते ह्यंगिरसः पुत्रा जाता वंशोऽथ भार्गवे ।*
ब्राह्मणाः क्षत्रिय वैश्याः शूद्राश्च भरतर्षभ ।।

– हरिवंशपुराण, ३२/४०, ब्रह्मपुराण ११

भार्गव वंश में उत्पन्न होने पर भी अेबगरा मुनि के पुत्र कर्म-भेद से चारों वर्णों में विभक्त हुए । ऐसे ही कवष, एलूष, महिदास, ऐतरेयादि के नाम भी उदाहरण के रूप में हैं कि जो शूद्रा-पुत्र होने पर भी सर्वोच्च ऋषि पदवी को प्राप्त हुए, इस प्रकार के उदाहरणों द्वारा अति स्पष्टीकरण हैं कि प्राचीन काल में **'वर्ण-व्यवस्था'** का कार्य ब्राह्मण तथा ऋषि, राजाओं के द्वारा निष्पक्ष व जातीय-द्वेष रहित निर्णय लेकर जो जिस योग्य होता था, उसे वहीं वर्ण अंकित दिया जाता था, फिर चाहे वह किसी भी कुल में जन्म लेकर प्रकट क्यों न हुआ हो । इसका प्रमाण यह हैं –

आचार्यस्त्वस्ययां जाति विधिवद्वेदपारगः ।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साऽजराऽमरा ।। – मनुस्मृति २/१४८

"आचार्य ब्रह्मचारियों के समावर्तन-संस्कार के समय वर्ण-निश्चय किया कहते थे ।' युग-प्रथा-परिवर्तन से सतयुग, त्रेतायुग तक ऐसा कोई भेदभावजन्य ऊँच-नीच-द्वेषता का पुष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं होता । जैसे - रामायणकालगत पात्र केवट-निषाद-राज गुह को राम ने कण्ठ से लगाया । वशिष्ठ भरतादि उच्च महापुरूषों ने भी कुल-कर्म का आर्दश निभाया और आगे प्रसंग में अरण्यवास के समय पुरुषोत्तम रामचन्द्र ने ब्राह्मण-वर्गादि की पर्ण-उटजों का त्याग किया और अग्रजानुज ने भीलनी शबरी जो मतंग ऋषि की शिष्या थी, जिनके घर की पर्णशाला में झूठे बेरों का

प्रसाद माँग-माँग कर लिया । उसी काल की प्रार्थनीय चौपाई स्पष्ट हैं -

अधम ते अधम अधम अति नारी । तामें मैं मतिमन्द गँवारी ।।

मुनि मतंग के प्रमाण में स्पष्ट उल्लेख आया हैं कि -

स्थाने मतंगो ब्राह्मण्यम् अलभद् भरतर्षभ ।

चाण्डाल योनौ जातोहि कथं ब्राह्मण्य माप्तवान ।।

- महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय ३

यहाँ मतंग को चाण्डाल योनिज कह कर भी उसके ब्राह्मण होने की बात कहीं हैं । महात्मा बुद्ध ने वसल (वृषल) सूत्र में भी मतंग के चाण्डाल कुलोत्पन्न होने पर ब्रह्मलोक की प्राप्ति का वर्णन किया हैं । उन्हीं की शिष्या शबरी को **'नवधा भक्ति'** उपदेशोपरांत राम के द्वारा मुखरित शब्द-रचना भी दुहराने योग्य हैं तथा मनन व श्रद्धास्पद वाक्य भी -

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई । धन बल परिजन गुण चतुराई ।।

भक्तिहीन नर सोहहि कैसा । बिन जल वारिद देखिय जैसा ।।

आगे चल कर महाभारत, द्वापुरस्थ, अन्तकाल के इतिहास का अध्ययनकरने से ज्ञात होता हैं कि उस समय कम से कम उच्चकोटि के विद्वान इसी सिद्धान्त-रूप में गुण-कर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था को मानते थे, परन्तु क्रिया में प्रायः कालयवन आदि आसुरिक प्रपंच-प्रभाव की छाप से जातिभेदजन्य ऊँच-नीच का भाव हृदयांचल में प्रवेश कर गया था । इस बीजारोपण के यह प्रमाण प्राप्त होते हैं । जैसे कि -

स्वयंवर के समय कर्ण के प्रति द्रौपदी व राजाओं के घृणा-सूचक अपवाक्य ।

यदि कर्ण वीरता के बल पर, इस विमल वंश को ललचाये ।

तो धनुष उठाने से पहले, अपनी वंशावलि बतलाये ।।

राजाओं द्वारा इन शब्दों का दुहराया जाना तथा एकलव्य की द्रोणाचार्य का धनुर्विद्या न सिखाना केवल मात्र इस हेतु कि वह एक निषाद जाति

का होकर राज्यकुल-गुरु से संसर्ग-शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता, इत्यादि प्रकार से भेद जन्य अशपृश्यता के भाव उत्पन्न हुए ।

प्राचीन ऋषियों के विषय में वक्तव्य

५००० वर्ष से पूर्व महाभारत काल प्राकृतिक ऐश्वर्य, शिल्पकला, विज्ञान-भोग्य-साम्रगी आदि की दृष्टि से बहुत ही वीरतत्वसंयुत उन्नत था, किन्तु नैतिक दृष्टि से वह समय रामायणकाल से बहुत ही आदर्श-पतन होकर पिछड़ चुका था । इस अवस्था का प्रधान कारण सच्चे लक्षणीय ब्राह्मणों की अधोगति व अभाव ही हो सकता हैं । जैसे कि जिस सभा में जहाँ द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा जैसे चतुर्वेद-वक्ता ब्राह्मण भी द्यूत (जूआ) क्रीड़ा के विरुद्ध आवाज या आंदोलन न उठा सकें । भीष्म, विकर्णादि के सावधान करने तथा द्रौपदी के द्वारा लज्जामयी दीनतापूर्वक प्रार्थना करने पर भी दुर्योधन, दुःशासनादि के नीच कर्म का खुले तौर पर प्रतिवाद करने तक का साहस न हो । उस सभा-समय की दृष्टि से यदि बड़े-बड़े भीष्म-वीर, विद्वान-व्रतधारी भी इतने क्रान्तिहीन दिखाई दे तो कोई आश्चर्यमयी बात नहीं हैं । **ऐसे महाभारत-काल के पश्चात् जो हमारे भारतवर्ष का पतन प्रारम्भ हुआ वह अब तक कहीं समाप्ति तक धराशायी नहीं पहुँच सका ।** जो ब्राह्मण सम्पूर्ण विश्व का सत्य मार्ग का प्रदर्शन करते थे, वहीं स्वयं अपने निजी कर्त्तव्यपालन में भी अधीर हो तपशीलादि को सर्वथा त्याग कर कल्पित अधिकारों की रक्षा के पक्ष में पूर्ण तत्पर रहने लगे, वही समाज का पतन प्रारम्भ हो जाता है ।

वस्तुतः पूर्व प्रकारण के निर्देशानुसार मस्तिष्क-शक्ति-ह्रास होने से जो दशा शरीर की अस्वस्थ (पागल) होती हैं, वही दुर्दशा समाज की हुई । भारतीय पूर्वजों में शास्त्र-विहित व्यवस्था होने से सच्चे आदर्शशील कठोर तप-प्रभाव से ब्रह्म-तेज के कारण ही एक कोपीनधारी कौत्स ब्रह्मचारी के

पधारने पर चक्रवर्ती सम्राट् रघु जैसे राजा भी राज्य-सिंहासन से उठ कर खड़े होते हैं और उनके आदेश के पालनार्थ प्रतीक्षा में तत्पर रहते हैं। ऐसे समय मे प्रजा वर्ग के सब प्राणी अपने-अपने कर्त्तव्यपरायण रहते। **वर्ण-परिवर्तन होना अपने कुल के परिवाद-अपवाद को समझ कर नित्यप्रति उच्च आदर्श लक्षणों का पालन करते रहते थे।** बाद में शनैः शनैः लोक-कर्त्तव्यविमुख होने लगे, क्योंकि शास्त्र-वाक्यों में अधिकारसूचक वर्णोच्च भाव से लालायित रह कर उन्होंने स्वार्थ-साधना की दृष्टि से देखा कि बीस-पच्चीस वर्ष तक तपस्या करके ज्ञान, का सम्पादन करके परिश्रम से वेदादि-पठन को कौन करें ? हमारे अधिकार तो स्वतः सब धर्म-शास्त्रों में स्वरक्षित प्रतिपादित हैं ही। सब क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों को शिक्षाहीन अनभिज्ञता के अंधकार में रख कर धर्म-कृत्यों पर एकाधिकार हस्तगत करके अपनी भावी पीढ़ि के लिए रोजी रोटी-भोग संवृद्धि का प्रबन्ध करने लगे। इस नटवरमय कूट स्वार्थ नीति-रचना का परिणाम पाने को **प्रथम स्त्रियों और शूद्रों के शिक्षा-अधिकार का घात किया। बाद में क्षत्रियों को और वैश्य वर्ग को भी धीरे-धीरे सर्वथा वेदाधिकार से वंचित करके केवल वाद-स्वाद रूप धनैश्वर्य भोग-साधनों की प्रवृत्ति देकर उनकी अन्तस्थ दिशा विपरीत पतन की ओर मोड़ दी और धीरे-धीरे आप भी वेदों की वास्तविकता शिक्षा-दीक्षा से ठगे रह कर कतिपय वेद-पाठ का शुक-रटन (तोता-पाठ) या संस्कारनामक रीति करवा-कर यथेष्ट दक्षिणा और गौ, भूमि, धन, रत्न, दाल, आटा, नमक, घृतादि का दान लेना ही उन्होंने अपना गुण-कर्त्तव्याधिकार जमा रखा।**

पूत कपूत तो क्यों धन संचत, नीच कुमारग मांहि बहावे।
पूत सपूत तो क्यों धन जोड़त, आपनो काज समाज जमावे।।
स्वस्थ शरीर तु चिंत कहा करे, सहजहि सुख के साधन आवे।
"रामप्रकाश" परमार्थ शोध तूं, निश्चय आनन्द रूप समावे।।१।।

झूँठ कठोरता औ परनिन्दन, वाणी चपलता दोष ये चारो ।
चोरी यारी तज हिंसा के दोषजु, तीन शरीर के देख निहारो ।।
चिंता को त्याग तृष्णा मन चंचल, औगुन और के नांहि विचारो ।
"रामप्रकाश" यह दोष दशों तज, जीवन मुक्ति को रूप तुम्हारो ।।२।।
खान रू पान में माँस मदिरा तज, जूआ चोरी कर्म नांहि कमावो ।
वेश्या से प्रीत-हिंसा मन ना कर, और परदार ते नेह न लावो ।।
व्यसन सात तजो सब गात, सदा सतसंग सभा शुभ जावो ।
"रामप्रकाश" जो मोक्ष चहो तुम, गोविन्द गाय परमानन्द पावो ।।३।।

समय पाकर असली **'शास्त्रीय वर्ण-व्यवस्था'** के रूप का पासा पलट करके उच्च आदर्शों के वाक्यों से नकली वाक्य मिला दिये, जिनका प्रक्षिप्त रूप नमूना मात्र पीछे बता कर आये हैं । जैसे -

अविद्वांश्च विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् ।
प्रणीताश्चाऽप्रणीतश्च यथाऽग्निर्दैवतं महत् ।।३१७।।
एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु ।
सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवितंहि ततः ।।३१६।।

- मनुस्मृति, अध्याय ६ में प्रक्षिप्त

ब्राह्मण कुल में जो उत्पन्न हुआ हैं, वह कितना भी दुराचारी और मूरख क्यों न हो वह परम देवतातुल्य पूजनीय हैं । (जबकि वास्तविक श्लोक जो आये हैं वह सर्वथा इस प्रस्तुत श्लोक के विपरीत तथा बहुप्रमाण शास्त्र-मज्जित हैं, देखिए एक ही ग्रंथकर्त्ता का प्रसंगभेद विरोधाभास मनुस्मृति १०/२-६२-६३ तथा १/८८-८६ अध्याय २/१६१, अध्याय १२/१०६ में जो पूर्व 'गुणकर्म अधिकार' प्रसंगों में कथित हैं) । ऐसे ही समय प्रभावी ब्राह्मण कवियों व पण्डितो ने भी भाषा-ग्रन्थों में पुट देकर उनका समर्थन किया हैं । जैसे कि -

सापत ताड़त परुष कहता । विप्र पूज्य अस गावहिं संता ।।
पूजिअ विप्र सील गुन हीना । सूद्र न गुनगन ग्यान प्रवीना ।।

- रामचरित मानस

ढोल गंवार सूद्र पशु नारी । यह सब ताड़न के अधिकारी ।।

इस प्रकार के शब्दों से स्त्री और शूद्र-समाज को शिक्षा से वंचित रख कर दूर फेंकने का प्रयास किया गया । इधर लोगों में नितान्त अज्ञानमयी विदेशी परछाई और उधर मान-प्रतिष्ठा से प्रेरित ब्राह्मण लोगों की धूर्तता से वर्तमान सामाजिक फूट की उत्पति हुई, जिसके परिणाम स्वरूप हिन्दू समाज हानि का पात्र, बुराइयों का भण्डार होता चला गया, जिस का यदि रूपान्तर खोला जाय तो स्वतन्त्र साहित्य की आवश्यकता हो सकती है । अस्तु उसे यहाँ बढ़ाना उचित न होगा ।

अब यदि कल्पनाधार पर दो मिनिट भर के लिए जन्म से जाति मान भी लें तो इसमें भी संशय नहीं रह जाता कि पूवोक्त प्रमाण ही तथ्य रूप में ठहरेंगें । देखिए –

'पद्मपुराण' उत्तरखण्ड, अध्याय १७५ से १६२ तक की कथाओं का सानुवाद रूप श्री मद्भगवदगीता के अठारहों अध्यायों के महात्म्य-गाथाओं के अध्ययन से स्पष्ट ही निःसन्देह निष्कर्ष निकल जाता हैं । एक भी ऐसी वार्ता का अभाव-सा ही हैं कि **कोई जन्म से शूद्र जाति का प्राणी नरक नहीं गया अथवा प्रेत-पिशाच-भूतादि योनि में गया ही नहीं अपितु सब महात्म्य अक्षरशः कथाओं में ब्राह्मण ही गुण, कर्म-हीन, कुल बहिष्कृति पाकर शूद्राचरित पतिताचरणों से नरक में गये और भूतादिक योनिज, पशुवादिक का उद्धार अमुक अध्याय पठन-संकल्प देने से मुक्ति हुई ।** यह प्रमाण तो आज प्रत्येक धर्मप्रेमी गीता-पाठ करने वाले अपने घर-घर में नित्य पढ़ते हैं, फिर भी ध्यान नहीं देते, कितनी भूल का प्रमाद विद्वानों में भी घर कर रहा हैं ।

क्या ? आज भारतीय साधु-सन्त, ब्राह्मण, गृहस्थी, हिन्दू मात्र आस्तिक भाव से केवल तोते की रटन लगा देते हैं, किन्तु वास्तविकता रस की गहनता से अपरिचित ही हैं । यह कोई शूद्र जान नहीं सकते

कि यह नरक के भागी ब्राह्मण ही क्यों बने ? शूद्र क्यों नहीं उल्लेख में आये ? इसका आर्ष सिद्धान्त अर्थ प्रस्तुत पुस्तक में हम बता कर ही आये हैं, किन्तु पतित होने के एक दो प्रमाण और भी लीजिए, जो शायद **'ठीकरी घड़ा फोड़ देने'** की शक्तिपूर्ण कहावत चरितार्थ होकर सम्भव हिन्दू जनता सम्भल ही जाए और दुर्गुणों का मूल छोटे-मोटे छूत-भूत को दूर कर सकेंगे ।

ब्रह्म चैतत्पुरा सृष्टं वेतु जानन्ति न द्विजाः ।
तेषां बहु विधास्त्वन्यास्तत्र तत्र हि जातयः ।।१७।।
पिशाचा राक्षसाः प्रेता विविधा म्लेच्छ जातयः ।
प्रणष्टन ज्ञान विज्ञानाः स्वच्छन्दा हार चैष्टिताः ।।१८।।

– महाभारत, शान्तिपर्व १८८

जो पुरुष ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर जो वेद-विद्या को नहीं जानते उनका ज्ञान सब नष्ट हो जाता हैं । उनका आहार-विहार तथा अन्य चेष्टाऐं उच्छृँखल हो जाती हैं और वह धीरे-धीरे पिशाच, राक्षस, प्रेत और म्लेच्छ जातियों के भाव-वाचक नाम से पुकारे जाने लगते हैं । ऐसे प्रमाणों से यह भी स्पष्ट होता हैं कि म्लेच्छ (अनार्य) दस्यु आदि शब्द भी उस आदिकाल में प्रयुक्त होते थे, वे भी कोई विशेष जातिसूचक नहीं थे । परन्तु व्रतहीन नीच लोगों के लिए ही उन शब्दों का प्रयोग होता था, किन्तु धीरे-धीरे ब्राह्मणादि शब्दों की तरह ही भिन्न-भिन्न जातियों के वाचक शब्द माने जाने लगे ।

म्लेच्छों की उत्पति का जो विष्णुपुराण, अंश ४, अध्याय ३ में वर्णन आया हैं, वह भी अत्यन्त मनोरंजन का उत्पादक हैं । उसके अनुसार हैहय, तालजंघ, यवन, शक, पारद, पहक, चीनी, किरात, दरद, खस, द्रविड़, चौड़, कम्बोज, पौण्ड्रक आदि मानव-मतों का ही उल्लेख हैं । इसका संशय-निवारण मनुस्मृति १०/४४ से शीघ्र ही हो जाता हैं कि वह

क्षत्रिय जाति के लोगों को धर्म और द्विजों के संग का परित्याग करा कर ही म्लेच्छ बना दिये हैं । जैसे कि -

ते च (क्षत्रियाः) आतम-धर्म परित्यागाद्

ब्राह्मणेश्च परित्यक्ता म्लेच्छतां युयः ।। - श्रुतिसार

इत्यादि से पता चलता हैं कि ये जातियाँ धीरे-धीरे अपने वैदिक क्रिया-कलाप को छोड़ने और ब्राह्मणों के संसर्ग न होने से पतित हो गई । इस प्रकार से सम्पूर्ण धार्मिक, इतिहास, आस्तिक विज्ञान आदि शास्त्र-दृष्टियों का विवेचन-निर्णय तथ्य-सम्पन्न उल्लेख करने के अवान्तर भी एक बार पुनः दोहराई जाती हैं कि चारों वर्णों का तादात्म्य सम्बन्ध कार्य-कारण की भाँति शरीर के अवयांगोवत् समाज रचना का व्यवस्था कार्य है । जिसमें किसी से अस्पृश्य रह कर समाज को जीवित रखना असम्भव हैं । हमारे वेदों का आदर्श, धर्म, गायत्री, अध्यय, पठन सब को समानाधिकार- पूर्ण उपदेश प्रदान करता हैं । भारतीय शास्त्रों ने राजधर्म, विशेष- धर्म, मानवधर्म, व्यक्तिधर्म, आपत्तिधर्म प्रकार से मूल धर्मस्वरूप के निर्वाहार्थ विवेचनीय परिव्याख्यायें करके बताई हैं । सामान्य मानव-धर्म का आदेश कितना सरस, भावपूर्ण, गूढ़ और उच्चता की आदर्श शैली से हैं -

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।

एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवान्मनुः ।। - मनुस्मृति १०/६३

हिंसा न करना, असत्य का त्याग, पराये धन के अपहरण, अपवित्रता से दूर रह कर अंहिसा, सत्य भाषण, सत्य व्यवहार, दूसरे का धन अन्याय से न लेना और पवित्र रहना तथा इन्द्रियों का निग्रह करना यह संक्षेप में चारों वर्णो का मानव-धर्म मनु ने कहा हैं -

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ।। - मनुस्मृति ६/९२

धैर्य, क्षमा, इन्द्रिय-मन को वश में करना, चोरी का परित्याग

करना, तन-मन-वाणी-वस्त्र-गृह को पवित्र रखना, शुद्ध-बुद्धि, सत्यविद्या को प्राप्त करना तथा क्रोध का त्याग करना, यह मूल धर्म के दश अंग लक्षणों सहित कहे हैं ।

ग्रन्थ पन्थ सब जगत के, बात बतावत तीन ।
नाम हृदय मन में दया, तन सेवा में लीन ।।१।।
चार वेद षड्शास्त्र में, बात मिली सत दोय ।
सुख दीने सुख होत हैं, दुःख दीने दुःख होय ।।२।।
तन पवित्र सेवा किये, धन पवित्र कर दान ।
मन पवित्र हरि भजन कर, त्रिविध होत कल्याण ।।३।।

गृहस्थ धर्म में पालनीय पंच यज्ञ का वर्णन इस प्रकार से आया है -

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ।। - स्मृति

ऋषियज्ञ (सत्यज्ञाननिष्ठ महात्माओं की सेवा-पूजा करना ।), देवयज्ञ (दिव्य भौतिक शक्तियों का ज्ञानपूर्ण इष्ट-उपासना हो ।), भूतयज्ञ (इतिहास का ज्ञाता हो कर गौ, कुत्ता आदि प्राणियों का पोषण करें ।) नृयज्ञ (लोक-कल्याणदायक उपकार-कार्य करना अन्न जल आदि से अतिथि प्रभृत्य की सेवा करना ।) तथा पितृयज्ञ (पूर्वजों के आभार को जानने वाला और संयम-शक्ति से कृतज्ञ रहने वाला हो ।)

जो धन शक्ति भरी जन में बहु , ताहि सहाय करी न करी रे ।
मेघ उमंग वर्षावित बादल, सिंधु में धार झरी न झरी रे ।।
हंस प्रकाश सु ज्ञान भयो तब, दीपक ज्योति जरी न जरी रे ।
'रामप्रकाश' जो पाय सुसंगत, लाभ लियो सु धरी न धरी रे ।।१।।

निर्मल नैन विचार सु उत्तम, धी मनिषा जन धारण जानो ।
भास्कर देव सदा सतगुरू हूँ, उत्तम ब्रह्मनिष्ठ सु बखानो ।।
दर्पण धार हूँ वेद को ज्ञान सु, साधन सहित कुकर्म को भानो ।
'रामप्रकाश' तबे मुख आतम, सूझत हैं सत देव दिवानो ।।२।।

- रामपद्धतिविलास, प्रथम भाग से

भाग-संयोग सुपात्र मिले तो, कुपात्र को दान दिया न दिया ।
गंग को नीर सु चंग बहे तो, कूप का नीर पिया न पिया ।।
जिनके हृदय भगवान बसे तो, और का नाम लिया न लिया ।
कवि गंग कहे सुन शाह अकब्बर, नीच का संग किया न किया ।।१।।

अष्टम परिच्छेद

समाज की गतिविधियों का अध्ययन

भारतीय विचारधारा में श्रेष्ठ और पापी की गणना उसकी जाति, देश और रंग-रूप तथा भाषा से नहीं प्रत्युत् उनके कर्मों से होती रही हैं । पिछले प्रकरण में यथासाध्य **हिन्दू समाज के उन्नति एवं पतन की रूपरेखा शास्त्रीय और राष्ट्रीय तत्वों पर आधारित स्पष्टीकरण कर** आये हैं । **प्रकृति की** परिवर्तनशील **गतिविधियों का** अनुसरण सामयिक **समाज करता रहा है और रहेगा** । परिस्थितियाँ **व्यक्ति-समाज-राष्ट्र** को बदलती हैं, **इस प्रसंग को प्यारे पाठक स्थिर बुद्धि से पढ़ चुके** हैं । अब आपको सामाजिक हानि-लाभ से दूर किन्तु अज्ञान की ओट और हठधर्मी से मनोकल्पित धारणाएँ चलाने वाले सज्जनों की रही हुई तुच्छ शंकाओं का समाधान बताना ही उपसंहार-रूप सिद्ध होगा ।

पिछले सीमित समय में भी क्या कोई शूद्र-कुलोत्पन्न महापुरुष तपोबल से सामर्थ्य को प्राप्त हुआ हैं ? क्या शूद्र भी उच्च पद के योग्य हैं ? क्या शूद्र पूज्य हैं ? क्या शूद्र भी राष्ट्र की नींव के आधार-पत्थर रहे हैं ? इत्यादि प्रश्नों की भरमार मेरे श्रवण-रन्ध्रों में सुनने को मिलती हैं ।

धर्मप्रेमी पाठकों ! प्राचीनकाल से लेकर जो-जो प्रकृति देवी की चमत्कारपूर्ण लीलाभूत निधि शक्तियाँ इस शूद्र या नीचकुलोत्पन्न प्रथावलि

में अवतरित हुई हैं वे सम्भवतः विश्व में अहंकारी अभिमानियों के गर्वोत्कुल में नहीं हो सकती - इसका स्पष्ट पुष्ट प्रमाण ऋषिमुन्यादि के वंश-परम्परा-परिचय में जान चुके होंगे । यथा -

भक्ति करे पाताल में, प्रकट होत आकाश ।
रज्जब तीनों लोक में, छिपे न हरि को दास ।।१।।

समाज के कनिष्ठ अंग, चरणवत, चतुर्थवर्ण, शूद्रवंश में उत्पन्न कतिपय विश्वैतिहास-प्रसिद्ध रत्नों का नाम-दर्शन करते हैं । मुख्यतः जैसे प्रथम बताया हैं कि जितने भी षड्शास्त्राचार्य, पुराणप्रणेता, वेद-ज्ञान-भाष्यकार ऋषि-मुनि-महापुरूषों की शक्ति-सम्पन्न आदर्शशील पदोन्नत ख्यातिकार हुए उन सबका वंश, जन्म, कुल, जाति विशेषता-विहीन स्थान में ही हुआ और अपने कर्त्तव्य-परायण धर्मशीलता से प्रसिद्ध हुए ।

शरीर में पाँव जैसे पूरे बोझ को सम्भालने में सार्थक समर्थ हैं, यद्यपि वह ज्ञानेन्द्रिय-विहीन हैं, तद्यपि कर्म करने में उनका अटूट चैतन्य सम्बन्ध सेवा से हैं ।

"सकल पदारथ है जग मांहीं, करमहीन पर पावत नांहीं ।।"

"उत्तमराम" संसार में, सेवा ज्ञान को ज्ञान ।
ज्ञानी अज्ञानी मान लेत, मान लेत भगवान ।।१।।
कर बिन कर क्या काम का, कर करणी शुभ काम ।
"उत्तमराम" लख आप में, आतम अमर अकाम ।।२।।
तन से सेवा कीजिए, मन से भला विचार ।
धन से या संसार में, कीजे पर-उपकार ।।३।।
कबीर सेवक देह के, दोनों हाथ रू पाँव ।
सौ कोसों साथ हि चले, दिन दिन दूनो भाव ।।४।।

समाज के चतुर्थ शूद्र वर्ण का सचमुच महत्वपूर्ण कार्य हैं, यदि वह

अपना सेवा-सम्बन्धी, उद्योग, भारवहन छोड़ दे तो समाज का संचालन ही पंगु शरीर की भाँति अस्तित्वहीन अव्यवस्थित हो सकता हैं। इस वर्ग में ज्वलन्त शक्तियों के उदाहरणों का इतिहास साक्षी हैं। परन्तु हम यहाँ पर विश्व-विख्यात निधियों का मूलतः सारांश नाम मात्र क्षुद्र लेखनी के आगे लाते हैं, जिस से आप वृतानुवृती पाठक लाभ उठा सकें।

भारतीय-समाजोत्पन्न कुछ रत्न

इस शीर्षक-निबन्ध में प्राचीन से अर्वाचीन वर्तित समय तक जो भी लेखक के ध्यानगम्य, स्मृति-रेखा में हैं वह भी लिख देना हितकर व कर्त्तव्यमयी होगा।

आज भारतीय नागरिक जिस कलरब-नादिनी, कल्लोलकरणी, हिमधारा गंगा नदी को माता जाह्नवीं, जाह्ननन्दिना, शिव-शृँगार, अघ-हारिणी, पतिततारिणी, त्रिलोक-सोहनी, त्रिपथगामिनी, लोकपावनी इत्यादि अलंकारों से सुशोभित करते हैं। जन-जन के मन-वाणी पर विश्रामदायी महिमामयी वाणी उच्चरित-मुखरित हो रही हैं। उस नीलधारा की जहाँ भी जिस-जिस पुराण-शास्त्रादि ऐतिहास गत साधार उत्पत्ति-कथा आती हैं, वहाँ मूलतः सब का सारांश यह है कि राजा बलि के यज्ञ में इन्द्रादि देवताओं की प्रार्थना से वामन के अवतार में श्री विष्णुदेव आये। यथास्तु-

धुर बिगड़ी सुधरे नहीं, लाखों खरचो दाम।
दान लियो त्रयलोक को, मिट्यो न वामन नाम॥
बलबन्ता लकड़ी बढ़ी, बिन कोपल बिन डार।
जब हरि पकड़ी हाथ सों, बढ़ते लगी न वार॥२॥
बड़ सेव्यां बड़ होत हैं, ज्यों वामन भुज-दण्ड।
कर से पकड़ी कांमड़ी, जाय लगी ब्रह्मण्ड॥३॥

- सन्तदास जी महाराज की अनुभव वाणी

उस समय जबकि '**पद पाताल शीश अज धामा**' के विराट रूप की स्तुति-प्रार्थना में सब देव-यूथ-शुश्रुषा में लगे रहे। तब वेदवक्ता श्री ब्रह्मा ने गण्डकी नदी के रेवा-जल को कमण्डल में लेकर चरण-प्रक्षालन द्वारा शिरोधार्य नतमस्तिष्क से सूंघ कर सादर कमण्डल में रखा - कालान्तर में सूर्यकुल रघुवंशस्थ चक्रवर्ती सम्राट राजा सगर, अंशुमान पुत्र असमंजस, दिलीप और भागीरथ, चार पीढ़ि के अथक परिश्रम, सतत तपस्या के फलादेश में पूर्वजों के उद्धारार्थ ब्रह्माजी ने कमण्डल में रखा वह हरि चरणामृत जल छोड़ा। वह मगर-वाहिनी गंगे शिव-मस्तिष्क- मुकुट, हिमांचलादि शिखरांचल में बह कर हरिद्वार, काशी, प्रयागादि तीर्थ तक धाम क्षेत्रों में बहते सागर-संगम के प्रमुख स्थल पर पहुँची, वही पुण्य-स्थान बने। *- पौराणिक कथाधार*

विवेचन यह हैं कि आज उस विष्णुचरण शूद्र अंग से उत्पन्न शूद्रा गंगे की जलधारा जिसके तट व नाम पर आज हजारों भोजन-भट्ट ब्राह्मणादि जातीय गौरव में तीर्थों की ओट लेने वाले शूद्र जन्म-कुलोत्पन्नों को घृणित समझ कर ही समाज में भेद-वृत्तिक गुलछर्रे उड़ा रहे हैं। शास्त्रीय मार्मिकतामय ऋषि-उद्घोषों का कथन है कि जन्मजन्मान्तर के पाप-समूह गंगास्नान, ध्यान, नाम-जप से [1] सौ कोसों दूर भी खड़ा रह कर गंगा-गंगा गाया हुआ कीर्तनाऽलाप मुक्ति का हेतु व पाप-निवृत्तिदायक हैं।

हिन्दू भावुकों! गंगा-पूजा विष्णु-चरणोदक का अभिप्राय शूद्र महत्व पूजन और गुणगौरवता का प्रतिपादक हैं। उसमें स्नान करने वाले वैकुण्ठवास-मुक्ति के अधिकार से वंचित नहीं रह सकता, किन्तु हिन्दू समाज के जन्म, कुलाभिमानी शूद्र को दश बार भी गंगा-स्नान, पान, ध्यान, मन्त्रगान, दर्शन-स्पर्श करने पर भी उसकी शुद्धि मानने-अपनाने में हिचकिचाहट करते हैं अर्थात् उसे समाज में स्थान देने में हीं संकोच करते हैं। क्या यह गंगा के महात्म्य पर कलंक नहीं हैं?

१. गंगा गंगेति यो ब्रयाद योजनानां शतै स्थितः।
सोऽपि मुच्येत पापेभ्यः किमु गंगाभिषेकवान् ॥ - नारदपुराण, पूर्व० ६/१२-१३

हिन्दुओं के कहने-करने के अन्तर और आस्तिकता पर अराजकता यह होगी कि जहाँ शूद्रचरण-जल से हजारों पलते हैं, किन्तु विपरीत यह अलभ्य आधार से उल्लेख कहीं नहीं आया कि विष्णु के ब्राह्मणांग मुख द्वारा स्रवित जल की पूजा हो। हाँ ! ऐसी एक कथा भी पुराणों मे आई हैं - जो राजा त्रिशंकु के स्वर्ग से पतित होने पर विश्वामित्र मुनि के तप-प्रभाव से आकाशस्थ उलटे मुख टंगे ही स्थिर रह गए। उनके मुख से एक लार नदी-रुप सिंहल द्वीप के मगध अथवा मगहर में नदी बहीं बताते हैं जो '**कर्मनाशा**' के नाम से प्रकट हैं, जिसके प्रभाव में कई जन्मों के किये गौ, कन्या, सोना दान आदि सर्व पुण्यों की जल-स्पर्श-स्नान से नाशगति हो जाती हैं। यह हैं अन्तर्कथा - **यदि कुछ समय के लिए वर्णों की उत्पत्ति ईश्वर के अंगों से मानी जाय तो सर्वथा सिद्ध हो जाता हैं कि विष्णु के चरणों से शूद्रों का जन्म और उन्हीं से गंगा का जन्म और मुख से उत्पन्न ब्राह्मण का महत्व कर्मनाशा की भांति होगा ,परन्तु अन्तर कितना हैं - आकाश-पाताल का, जहाँ गंगा नाम-स्नान से वैकुण्ठ-वास मिलता हैं तो शूद्र से बात करने में भी दोष, स्पर्श-मिलन से अपराध मानने वालों के विचार से तो भगवान ही बचाये**। वाह समाज-रक्षक पण्डितों ! महिमा मण्डित धर्माचार्य गण ! धन्य हैं आपकी प्रक्षिप्त इन्द्रजाल रचना को।

अस्तु - कोई व्यक्ति जब पवित्र श्रद्धा के मानसिक पुष्प लेकर किसी देव-दर्शन को मन्दिर-देवालय अथवा किसी पूज्यपाद महापुरुष महात्मा की पावन सौम्य मूर्ति के दर्शनार्थ जाते हैं, तब सर्वप्रथम उन इष्ट-आचार्य के **शूद्रांग चरण-स्पर्श में दण्डवत-नमस्कार समर्पित करता हैं** और अपनी मुक्तिमय कल्याणाशा-प्रसाद की प्राप्ति का अनुभव करते हैं। विपरीत में मुख, भुजा या पेट से उत्पन्न उच्च्व द्विजात्य उत्तमांगों का दर्श-पर्श-

प्रणाम-वन्दन करने को शायद ही कोई भावुक होगा या नहीं, इसका न्याय भावुक श्रद्धेय पाठक सोचे ।

सारांश यह हैं कि जितना महत्व शरीर के चतुर्थांग का विख्यात फलेष्ठ-दायक उपयुक्त हैं, उतनी अन्य अंग की कीर्ति में अलभ्यता व असम्भवता ही होगी ।

विचार लीजिए - त्रेतायुगस्थ रामचन्द्र के अरण्यवास में पम्पासुर से लंका-विजय तक जो भी वानरों द्वारा प्रशंसनीय कार्य हुआ, वह वनचर ही वास्तव में पिछड़ी जाति के जंगलीय मानव थे, जिसके प्रमाण में पीछे के प्रकरणों में हम प्रमाणित कर चुके हैं कि शूद्रों को मूंज (सण) की जनेऊ होनी चाहिए । इधर हनुमानजी के प्रशस्य प्रसंग में सर्वत्र आता हैं, जिसमें से एक लोक-प्रसिद्ध प्रमाण प्रस्तुत हैं - **''कान्धे मूंज जनेऊ छाजे''** उसी के अद्वितीय प्रत्यक्ष प्रमाण में आज तक राजस्थान प्रांत में शूद्र तथा क्षत्रिय-कुल में वानर गोत्र के व्यक्ति बसते हैं । क्या पूंछ (लांगुल) वाले भी पशु रुप के कोई जंगली थे ? इसे तार्किक विज्ञान-युग कदापि स्वीकार नहीं करेगा कि वानरों ने कभी ज्ञान-शक्तिवान के स्वरुप में राम के सहायक बने हो । वस्तुतः उनकी यत्र-तत्र कर्म क्षेत्र में पूछ होने के पुरुषत्व के कारण ही यह शब्द प्रयुक्त हुआ हो अथवा हमारे भौतिक विज्ञानवाद का कथन है कि किसी प्राचीनकाल में सृष्टि-उद्भव-रुपक आज का मानव ऋक्ष-वानर अर्थात् वन्य-जंतु था, जो समय पाकर अपना विकास करके रहा - खैर कैसे भी हो । मूंज जनेऊ होने के कारण हनुमानजी शूद्र कुल के महापुरुष हैं, तो आजकल कई बुद्धिहीन लोग हनुमानजी का प्रसाद मंगलवार के दिन शूद्रों को नहीं देते हैं और जल भी नहीं पिलाते हैं । क्या हिन्दू-प्रेमी उस महत्व की रुपरेखा के अनुकरणमय साहस-सेवा-उपकार को भूल जायेंगे ?

- काल्पनिक तर्क-विज्ञान

यह लो महान् क्रूर-कालिक रुप में वीरता का दुर्धर्ष नृत्यमय नाट्य कि जहाँ मर्यादापुरुषोत्तम कृष्णचन्द्र की कूटनीतिज्ञता के कारण समस्त भूपाल चुड़ामणि नतमस्तक एवं कौरवकुल, बाणासुर, जरासंध, कालयवन, कंस, शिशुपाल, दन्तवक्रादि दैत्य-वृत्तिकों को सुदर्शन कला अर्थात् राजनीति के वैविध्य कलात्मक रश्मियों (युक्तियों) द्वारा अन्धकार की भाँति परास्त करके अपने प्रभुत्व-सूर्य को प्रकाशित करके पाण्डवों में अर्जुन के रक्षक, पालक, सेवक, स्वामी सर्वस्व युधिष्ठिरादि के प्राण-लज्जाकरण, देनशरण, विपत्तिहरण कर्णधार थे, किन्तु आयु के शेष भाग में अन्तिम कला-केन्द्रित घड़ियों में कवियों को कहना पड़ा -

मनुष्य नहिं बलवान है, समय बड़ा बलवान ।
काबिन लूटी गोपियाँ, वह अर्जुन वह बान ।।

तथा स्वयं गोपाल की मृत्यु भी तो कर्माधीन पूर्व जन्म के बाली के निषादकुलोत्पन्न शिकारी रुप द्वारा ही हुई थी । इतिहास कथासार के मूल तत्व में चाहे कर्म-आधार होनहार, या ईश्वरइच्छा कुछ भी हो, उन्हें यहाँ हम उस दृष्टि से नहीं, अपितु एक सामाजिक तथ्य का विवेचन करते हुए देखते हैं । इससे यह अक्षरशः शक्तिवन्त व वीरत्व-गाथा हैं ।

इस प्रकार इतिहास प्रसिद्ध है कि एकलव्य नामक भील-पुत्र को जब ऋषि द्रोणाचार्य ने धनुर्विद्या-शिक्षण से इन्कार कर दिया कि तुमको निषाद होने के नाते हमारे राजगृह गुरुकुल के छात्रमण्डल में रख कर शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कराना हमारे लिए लज्जाजनक हैं । तब उस वीर श्रद्धेय ने जंगल में एकान्त में चौकी पर पत्थर-धातुमय मिट्टी से निर्मित द्रोण-गुरु की मूर्ति (प्रतिमा) स्थापन करके, सश्रद्धा विश्वास के साथ मनोभावाज्ञा पालन द्वारा, दैनिकचर्या में नियमित प्रतिक्षण, सतत अभ्यास से दक्षतापूर्ण, धनुर्कलामय लक्ष्य-वेधन की अन्तिम परीक्षा की घड़ियों में सर्वप्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण सफलता प्राप्त की । इतने पर भी सहसा द्रोण जैसे कुलाभिमानी

ने ईर्षावश उन्हें कुशलतापूर्वक जीवन-दक्षता लेने-देने की अपेक्षा दक्षिण हाथ के अँगूठे को गुरु-दक्षिणा में भेंट देने की माँग रखी । इससे आचार्य का अभिप्राय यह था कि धनुष की प्रत्यंचासहित फलश्रुति बाण-शक्ति पूर्ण न खींचने के कारण लक्ष्यवेध में बाधा होगी । विपरीत पक्ष आंतरिक मनेच्छा का परिणाम राज्यकुल-पुत्र प्रिय शिष्य अर्जुन को दिया हुआ वरद वाक्य शुभश्री होकर यश की प्राप्ति होगी । किन्तु हुआ यह कि कृतज्ञता के उदारचित्त भक्त ने गुरुआज्ञा-पालन-रुप चट से अंगुष्ठ-छेदन करके एक की अपेक्षा दोनों हाथों को प्रस्तुत कर दिये, अवान्तर बाण चलाने पर भी उसकी चातुर्यता वीर पार्थ से अग्रणीय दक्ष रही ।

समाज के लाल पाठकों ! यह थी शूद्रस्थ समझे जाने वालों की गुरु-भक्ति का प्रत्यक्ष उदाहरण व श्रद्धा तथा विद्याप्राप्ति की अमोघ युक्ति जिसने गीता-वाक्य का नैतिक दर्शन कराया -

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।।२/४७

श्रद्धावॉल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।।४/३९

कर्म करना ही अधिकार हैं, उसके फलों मे कभी नहीं और - जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान मनुष्य ज्ञान को प्राप्त करता है तथा ज्ञान को प्राप्त होकर वह बिना विलम्ब के तत्काल ही भगवत्प्राप्ति-रुप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता हैं ।

इस पर क्या कभी आपका दृष्टिपात होगा कि ५००० वर्षों के बीच में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजाति में से एक भी ऐसे रत्न का नाम उल्लेख में आना सम्भव होगा ? जो इस प्रकार की निष्कपट गुरु-भक्ति को ज्वलन्त आदर्श-रुप बता सकें ।

इतिहास प्रसिद्ध शूद्र कुलोत्पन्न छत्रपति शिवाजी महाराज श्री सतगुरु समर्थ रामदासजी के उपदेश से हिन्दू धर्म की रक्षा के प्रणेता अपनी वीरता

के बल पर ५१ किले (दुर्ग) विजय के प्रतीक जीते कि आज तक किसी वीर क्षत्रिय (राजपूत) की जीत का ऐसा उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। किन्तु ऐसे वीर की इतनी ऐतिहासिकता विजय के बाद भी शूद्र कुलोत्पन्न होने के कारण कोई ब्राह्मण उन्हें सिंहासनर पर बैठा कर ताज पहना कर राजतिलक करने को राजी नहीं हुआ। आखिर माता जीजाबाई के हाथ से तिलक किया गया, तब उनके एक ब्राह्मण मित्र ने भोजन भट्ट ब्राह्मण समाज के भय से नजदीक न आकर दूर खड़े खड़े ही वेद मन्त्रों का उच्चारण करके राजसिंहासन की पद्धति का पालन किया। वाह रे ब्राह्मणों ! वाह क्षत्रियों ! यही आप का हिन्दू धर्म ? यही आपकी धर्म भिरुता का दिखावा ? कहाँ अपना सनातन धर्म का महात्म्य और कहाँ छिछले व्यक्तियों की ओछी सोच।

ऐसे-ऐसे न मालूम कितने ही ज्ञात-अज्ञात राष्ट्रीय पुरुषों ने शूद्रकुलोत्पन्न होकर भी अपने प्राणों की आहुति देकर इस राष्ट्र-भवन की नींव में पत्थर बन कर सहारा दिया। ऐसे अपूर्व बलिदानी महापुरुषों का इतिहास वर्तमान और आने वाली भावी पीढ़ी को सदैव प्रेरणा देता रहेगा। प्रत्येक आर्य सनातनधर्म-प्रेमियों का कर्त्तव्य हैं क वह उन महापुरुष-रत्नों की इस पावन धरोहर की श्रीवृद्धि करके अपनी राष्ट्र-भक्ति के सामाजिक जीवन को समुन्नत बनाने में सुदृढ़ रहें।

आज के पूर्वमध्यकालीन द्विजाति-जन्म हठधर्मी हिन्दू जनता ने राष्ट्रीयता का उल्लंघन कह कर अपने ही समाज के पाँव रुप नींव के पत्थर को असुरक्षित छोड़ कर जो अधिकारों से वंचित रख कर जघन्य अपराध किया है, उसे वर्तमान पीढ़ी तो क्या आगे आने वाली पीढ़ियाँ भी कदापि क्षमा नहीं करेंगी। इतिहास के पृष्ठ सदैव इस काली करतूतमयी कथाओं का चित्रण करते रहेंगे। सत्य कभी झुठलाया नहीं जा सकता।

सत्य, त्रेता और द्वापुर युग-प्रथा का दिग्दर्शन जो पूर्व कथन कर

आये हैं कि उन युगों में किसी प्रकार का मतभेद न मान कर एक ही परिवारवत् समाज के शरीर की अंगीय व्यवस्था से संचालन होता था। युग-प्रभाव से पिछले लगभग दो हजार वर्षों से अधिकारिक अन्धकार का छायावाद-जाल बढ़ता हुआ पतन में जा रहा हैं। इस कालिक आविर्भूत अनुभूतियों का संक्षिप्त नाम मात्र का प्रसिद्ध ऐतिहासिक व मुख्य विख्यातकारी रत्नों का परिचय देते हैं।

श्री रामानुजाचार्यजी ने एक अन्त्यजा स्त्री के पवित्र वचनों से आडम्बरित वैष्णव-प्रथा का अभिमान त्याग कर, अपने सम्प्रदाय-शिष्यों को विशेष रुप से जाति, धन, विद्या अभिमान-त्रय पतनकारक गर्व से त्याग धारण करने का आग्रह किया था। इस आदेश के साथ ही वृद्धावस्था में जब स्नान करने हेतु गंगा नदी को जाते तब किसी ब्राह्मण-शिष्य के कन्धे पर हाथ रख कर, उनके सहारे से जाते थे। जब स्नान करके लौटते तब किसी शूद्र-शिष्य के कन्धे पर हाथ का सहारा लेकर प्रमुखपीठ आश्रम में पधारते थे।

इस प्रतिवाद-तर्क में उन्होंने ब्राह्मण समाज को बताया कि **"आप लोग जिसे नीच समझते हैं उसके स्पर्श से मेरा जात्याभिमान मिटता हैं, जिसको मैं स्नान, शौच और आचमन से शुद्ध नहीं कर सकता। उस कार्य के साथ ही समाज को एकत्रित होने व भाई-भाई के समान रहने की शिक्षा का उदाहरण भी प्रस्तुत करते थे।"**

विक्रम संवत् १३५६ में स्वामी रामानन्दजी का भूमि पर अवतरित होना सिद्ध हैं और उनकी ही जीवनगत झाँकियों में हठवश अज्ञानताजनक शूद्र समझे जाने वाले समाज के रोके हुए अधिकार देने की गूँज हुई। ठीक आपने वैसे ही सिद्ध किया और प्रत्येक जन के लिए उपदेश, पूजा, दर्शनादि का द्वार खोल दिया जिस में कई नीचकुलोत्पन्न व्यक्तियों को संस्कारित किये। तद्गत समकालीन नाभाजी, पीपाजी आदि सन्त रुप में उपदेशित

हुए तथा काशी नगर-निवासी चमार जाति से रघु नामक पिता और माता धुरबिनिया के घर रविदासजी का जन्म हुआ, जो रामानन्दजी के शिष्यों में थे । यह इतिहास प्रसिद्ध तथा उनकी शब्द रचना द्वारा स्पष्ट भास होता हैं ।

जाति भी ओछी, करम भी ओछा, ओछा कसब हमारा ।
नीचे से प्रभु ऊँचे कियो है, भने रविदास चमारा ।।

– सन्तवाणी, कल्याण, पृष्ठ २१८

पाठान्तर जाति भी ओछी पाँति भी ओछी, ओछा नाम हमारा ।

तथा – *ऊँच नीच देखे नहिं कोय, हरि भजे सो हरि का होय ।।*
रविदास जन्म के कारणे, होत न कोई नीच ।
नर को नीच कर डारहिं, ओछे कर्म की कीच ।।

– सन्त रविदास जी

उनकी जातीय-प्रमाण का पुष्टिदायक आज तक मेवाड़ प्रान्त में माण्डवगढ़ नाम के गाँव में एक जल-कुण्ड तीर्थ हैं जहाँ हजारों लोग जिज्ञासी यात्री दर्शन-स्पर्श लाभ लेते हैं। कथन यह है कि जूते बनाने की चमारिका (कुण्डी) में गंग-प्रवाह के रुप का ही यह साक्षात् हैं । उसके किनारे पर मुख्य मन्दिर रविदासजी का हैं जहाँ पर पुजारी चमार जाति के व्यक्तित्व का साधिकार हैं । मेड़ता की शिसोदिया वंशज मीराबाई जो महाराणा रत्नसिंह पति के देहान्त पर आपका शिष्यत्व स्वीकार करती हैं । इसी बात को लेकर देवर राणा भोजराज से उनका विवादास्पद संवाद रहा करता था । इस कथन का पुष्टिकर प्रमाण स्वयं मीराबाई की वाणीगत शब्दों में प्रत्यक्ष ही पाया जाता हैं । जैसे कि –

हँसि हँसि मीठो बोल, ओछी उमर थोड़ो जीवणो ।
लेणो हरिजी को नाम ।।टेर।।

* * * *

रविदास कहिये जाति चमार, मृत गायों का रंगे चामड़ा ।
रविदास मोरे माय रु बाप, मीरां हैं पग मोजड़ी ।।४।।

❋ ❋ ❋ ❋

जुगड़े में जीवण थोड़ो वाला, कौन करे जंजाल ।।टेर।।
यह संसार ओस का पानी, तपै धूप मिट जाय ।।१।।
यह संसार कागज की पुड़िया, छाँट पड़े गळ जाय ।।२।।
यह संसार हाट का सौदा, विणज करे उठ जाय ।।३।।
यह संसार अरहट की घड़ियाँ, भरि आवे खाली जाय ।।४।।
कह मीरां प्रभु गिरधर नागर, रविदास गुरु ध्याय ।।५।।

❋ ❋ ❋ ❋

कानराजा भयो वैरागी, चालो सइयाँ जोवण जाय ।।टेर।।
सोने की सुई रेसम का धागा, दरजण के मिस जाय ।।१।।
कोरी कोरी मटकी महीड़ो बिलोवे, गूजर के मिस जाय ।।२।।
हरे बाग में फुलड़ा बीणती, मालिन के मिस जाय ।।३।।
कह बाई मीरां प्रभु गिरधर नायो, रविदास गुरु पाय ।।४।।

❋ ❋ ❋ ❋

यथा – मेरो मन लागो हरिजी सूं, अब न रहूँगी अटकी ।
गुरु मिल्या रविदासजी, दीन्हीं ज्ञान की गुटकी ।।

–मीरांबाई शब्दावलि, शब्द ५७, पृष्ठ २५

गुरु रविदास मिले मुझे पूरे, धुर से कलम भिड़ी ।
सतगुरु सैन दई जब आके, जोत में जोत रली ।।

– मीरांबाई शब्दावलि, शब्द १४, पृष्ठ ३६

"मीरा" ने "गोविन्द मिल्याजी, गुरु मिल्या 'रैदास' " ।

– मीरांबाई शब्दावलि, शब्द १, पृष्ठ ३७

पुनश्च अन्य फुटकर उद्धृत शब्द–प्रमाण –

चार वर्ण में "हरिजन" ऊँचे, ...
शबरी के झूँठे फल खाये, ... जब शंख श्वपच बजायो ।

बाल्मीकि यज्ञ पूरण कीनो, ... तथा -
जाति वर्ण पर जो हरि जाते, तो गनिका क्यों तारी हैं ।
शबरी सरस करी सुरमुनि ते, हीन कुचील जो नारी हैं ।।
दास कबीरा जाति जुलाहा, ...
साख सुनो रविदास चमारा, सो जग में उजियारी हैं ।
कनक जनेऊ काढ़ दिखायो, विप्र गये सब हारी हैं ।।

* * * *

अजामील सदना त्रिलोचन, नाभा नाम अधारी हैं ।
धना जाट कालू अरु कूबा, बहुत किये भव पारी हैं ।।

- चरणदास कृत, भक्तिसागर, शब्द-वर्णन

पुनश्च- सिद्ध होते साधक होते, पाण्डवों के यज्ञ मांहि ।
शंख बजायों सरगरे, कुल को कारण नाहिं ।।

- संकलित

इसी तरह संवत् १४५५ के लगभग बाद में कबीर की सधुक्कड़ी भाषा के ओजस्वी नाद ने सर्वत्र जन-हृदय पर अपना अधिकार अपनाया हैं । उन्होंने जातिवाद के तथा धर्माडम्बर रुप आदि का जी खोल कर पाखण्ड-खण्डन किया, वह भारत-प्रसिद्ध वाणियाँ प्रचलित हैं । अतः यहाँ केवल उनके जीवन-जाति-परिचय हेतु नीरु जुलाहे द्वारा पोषित का संक्षेप में प्रमुख प्रमाण प्रस्तुत करते हैं । यह भी रामानन्दजी के उपदेशित शिष्य थे -

कह कबीर मैं हुता ब्राह्मण, अणछाण्या जळ पीया ।
एक पलक सेवा में भूल्या, पकड़ जुलाहा कीया ।।१।।
नाम कबीरा जाति जुलाहा, मैं काशी का वासी । - कबीर

अतिरिक्त और भी बहुत जैसे सिरियादे कुम्भारी, धना जाट, नामेदव छींपा, कर्मा जाटनी, दादूजी पिंजारा इत्यादि आधुनिक शूद्र वंशगत रत्नों को कहाँ तक बता कर उनके कार्य का परिचय दें । सब प्रकार से कर्मगत

विशेषता प्रत्यक्ष में आयेगी, जिसका निर्णय पिछले प्रकरणों में कर आये हैं । भक्ति पक्ष में तो वस्तुतः करुणासागर सर्वेश्वर भगवान किस पर प्रसन्न होते हैं - देखिये भक्तिप्रियता के सप्त उदाहरण -

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्यका ।
कुब्जायाः किमु नाम रुपमधिकं किंतत सुदामो धनम् ।।
का जातिर्विदुरस्य यादव पतेरुग्रस्य किं पौरुषम् ।
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः ।।

यथा -

व्याध दुष्टाचरण ध्रुव आयु खिन, वंश जटायु सुगीव न धारा ।
जाति कुजाति शिबरी अरु विदुर, तीर्थ बिना सदना निस्तारा ।।
ज्ञान विद्या तप रुप बिना गुण, सो कुब्जा गजराज हूँ प्यारा ।
माधव को भगती मन भावत, रामप्रकाश न और विचारा ।।

उत्तमराम संसार में, प्रेम-भाव प्रधान ।
चार वर्ण सब मानता, भक्त मान्य भगवान ।।१।।

भक्त बीज पलटे नहीं, जो युग जाय अनन्त ।
ऊँच नीच धर अवतरे, रहे सन्त को सन्त ।।२।।
"पीपा" पानी एक हैं, भरणहार अनेक ।
भाण्डे बासण एक है, पानी एक का एक ।। - संकलित

इसी प्रकार से हाल ही में राजस्थान प्रान्त में बीकानेर के पास सिंहस्थल नामक ग्राम में भाग्यचन्द्र गरुड़ा (गर्ग, जो मेघवालों, भीलों आदि हरिजनों के ब्राह्मण कहलाते हैं ।) के घर में दिव्य रुप श्री हरिरामदास जी प्रकट हुए जो रामस्नेही आचार्य गादीपीठ कहलाए, जिनका परिचय भी वाणी में कहीं-कहीं झलक में आता हैं ।

हरिरामदास जात का गुरुड़ा, राम नाम का कीना झुरड़ा ।
पठान्तर - *राम नाम का लागा झुरड़ा, सिंहस्थल में हरिरामा गुरुड़ा ।।*

जोधपुर से फलोदी रेलवे के बीच भीखमकोर (ओसियाँ) नाम के गांव में शार्दूलजी मेघवाल पिता ओर अणभीदेवी माता के घर संवत् १७८३

फाल्गुन कृष्णा १३ को श्री रामदासजी को प्राकट्य होना व हरिरामदासजी द्वारा दीक्षित साधुरुप में जोधपुर से २२ मील उत्तर दिशा की दूरी पर खेड़ापा नामक नगर बसाया, जैसे कि उनके कुल-कार्य का वर्णन उनकी वाणी में पाया जाता हैं -

बुनकर पाटी बेचता, दुःख से भरता पेट ।
"रामा" राम प्रताप से, भूपति चाढ़े भेट ।।१।।

यही रामस्नेही सम्प्रदाय का राजस्थान में चतुर्थ मुख्यस्थल कहलाया जाता हैं । उनके पीठाधिकारी पीढ़ि में स्वपुत्र आत्मीय शिष्य दयालदासजी, उन के पुत्र पूर्णदासजी आत्मीय एवं अर्जुनदासजी शिष्य परम्परा में हुए । आज इन्हीं दोनों गुरु-गद्दियों पर तथाकथित सवर्ण वंशज कहलाने वालों का अधिकार हैं और पूर्वाचार्य (उन शूद्रकुलोत्पन्न) के नाम पर हजारों पेट भरते हैं, पूजा-प्रतिष्ठा पाते हैं, किन्तु उन की जाति प्रकट बताने में उन्हें पूर्णतः लज्जा का अनुभव होता हैं । स्वत्व पर जीते रह कर उनके वंशजों के साथ वहीं मतभेद वर्तित किया जा रहा हैं, तो आज के प्रचलित पाखण्ड का खण्डन करते हुए महर्षि दयानन्द ने ही इनकी जाति को गरुड़ा मेघवाल (ढेढ़) के नाम से वर्णन बताया, किन्तु उनके नाम गुलछर्रे मारने वाले तो गुरुजनों की जाति बताने में भी शोक-शर्म या लज्जा समझते हैं और इतिहास में जोशी या किसान लिख कर सच्चाई पर पर्दा डालने का प्रयास किया है । यह ढोंग (पाखण्ड) नहीं तो और क्या हैं ? वास्तविकता जनता से कहाँ तक छिपा सकेंगे ? विद्वानों ने शोद्ध कर यह विषय सिद्ध कर दिया है ।

यही उदाहरण राजस्थान-प्रान्तस्थ नागौर जिले के टाँकला ग्रामस्थ मेघवाल साधु किसनदासजी हुए । वहीं पास के चाड़ी नामक ग्राम में मेघवाल मेघूदासजी हुए । आज तक उनकी परम्परा पीढ़ी (गद्दी) चल रही हैं । अफसोस यह हैं कि भारतीय समाज के प्रमुख ठेकेदार स्वयं शूद्रजन्म-जात होकर अन्य को हीन कह कर किसी व्यक्ति का उत्थानमय जीवन लेकर किसी को जीने

नहीं देते है और उनके उपकार-कार्य का सम्पादन भी तो कृतज्ञ-भाव से प्रकट नहीं करते हैं। जो उनके द्वारा दिये-दिलाये बलिदान-अधिकारों के उपभोग से लाभान्वित होते हुए स्वार्थ में लिप्त होते हैं।

जोधपुर के वीराग्रणीय राव जोधाजी के द्वारा ऐतिहासिक भारतप्रसिद्ध नगर के रक्ष महादुर्ग (किला) की नींव में उच्चवर्ण की स्वार्थपूर्ण, भेद-भावना, तत्परता में अपनी भोग्य-साम्रगी की अटलता रखने हेतु शूद्रों के ही वीर पुरुष राजूराम/सूराराम मेघवाल कड़ेला गौत्र को संवत् १५१५ ज्येष्ठ वदि ११ शुक्रवार के दिन जीवित बलिदान में दिया, जिन पर सहस्रों टन, मन, कन, भर भार की दीवारें चुनाई गई। उन जीवित नींव के पत्थरों की बलि-प्रताप से ही अब तक दुर्ग की अखण्ड विजयता है।

आज उन दिवंगत आतमा की स्मृति में कोई कार्य प्रभाव-सुझाव नहीं हो पाया है और न कोई होने की ही कुछ आशा की जा सकती हैं। इसके साथ निःसंकोच यह भी कहा जा सकता हैं कि कन्नोज से आये राजस्थान में जहाँ भी राठौड़-राजपूतों का अस्तित्व-कार्य रहा वह सूत्रकार मेघवाल जाति के आश्रय-प्राप्त या संरक्षण के आधार पर से ही रह सका हैं। इतिहास-गवेषणा से सर्वसिद्ध हैं किन्तु आज चाकर से ठाकर बन कर रह गये।

ऐसे उदाहरण में स्वतन्त्र स्वराज्य राष्ट्र के लोकनायक **'भारतीय संविधान'** निर्मात्री सभा के अध्यक्ष (पदाधिकारी) स्वर्गीय डॉ० भीमराव अम्बेडकर रामजीराव जो एक पिछड़ेवर्ग के परिवार में से हरिजनकुलस्थ रत्न थे। जिनके बताए हुए मार्गदर्शन नैतिक-पथ पर आज केन्द्रीय राष्ट्र शासन-सूत्र-संचालन सुरक्षापूर्ण कार्य-पद्धति की प्रशंसनीय व्यास-प्रथा चल रहीं हैं। आज ऐसे रत्नाकर बाबू के जीवन-ईर्षावृत्ति से सम्भवतया कि कहीं यह दलितों के राज्य-हित भूभाग अधिकार न ले लें अथवा हमारी मध्यकालीन बपौती का राज्य हाथ से न चला जाय। वस्तुतः आज जो भी दलितों की हित-सुरक्षा में अधिकार बाँटे जा रहे हैं, वह सब सुविधा

जनक कानून की धाराओं के सूत्र में मन्त्र-प्रेरणा उन्हीं की कृपा पूर्ण देन हैं। परन्तु आज उस संविधान द्वारा दत्त सुविधाओं से प्रायः समाज के पिछड़े वर्ग को ही अपरिचित, अनभिज्ञ व वंचित रखा जाता हैं। भारत के विशाल संसद तथा प्रान्तीय विधानसभाओं में जनता के प्रमुख बनकर कई विभिन्न दलगत सदस्य, नेता, कर्मठ और कुशल, नेक व निर्भीक कार्यकर्ता आते रहे हैं और है भी, किन्तु स्वतन्त्र प्रबल समर्थन किसी को नहीं दिया जाता। भले ही कुछ सीमा तक लोकतन्त्रात्मक प्रणाली का दर्शनमात्र जनता की दृष्टि में करलें, परन्तु मानसिक झिझक पूर्णतया बनी रहती है।

वाह! आजादी के मतवालें भाइयों! हिन्दू समाज के कूट **'चाण्क्य नीति'** का प्रसाद ही वर्तित करके समाज व देश का पतन कर रहे हैं।

वस्तुतः आज हम संतवाणी को सतसंग में गाते, पढ़ते और सुनते भी हैं, परन्तु अंशतः उनका कोई प्रभावित अनुकरण नहीं किया जा रहा हैं। यथा -

हरिजन हरि का रुप हैं, जग में लियो अवतार।
पर कारज बानो धस्यो, अधमी जीव उधार ।।

- अचलराम भजन प्रकाश ११६/६

संत मिलन को चालिये, तज माया अभिमान।
जेता पग तेता यज्ञ, यूँ भाखे भगवान ।। - संकलित
विद्या, जोभन, जाति, धन, प्रभुता, सुन्दर रुप।
कुल, मदिरा-मद अष्ट तज, महिमा बढ़े अनूप ।।

आज विभिन्न रुपों में जिनके नाम-ज्ञान को प्राप्त करके हजारों भारतीय प्राणी पोषण पाते हैं। इतने पर भी अभिमानी भावुक अपनी कूट धृष्टता से अग्नि को कपड़े में **''रुई लपेटी आग''** ही रख रहे हैं। यह एक दिन समाज का पतन कर देगी। देखिए एक घटना-चक्र -

मरुधर-इतिहास में सन्त रामदेव तुँवर सिद्ध पुरुष (अवतार) संवत्

वि० १४१४ के लगभग में हुए। उस समय सामन्तशाही राज्यकाल में एक मात्र डालीबाई जयपाल (मेघवाल) ने ही सेवा में रह कर जीवन बिताया। अस्तु - जब कृष्णावतार कहलाने वाले सिद्धिसाफल्य द्विजातिकुलस्थ समाधि लेने लगे, तब डाली ने बीच में ही 'अदृश्य सिद्धि' के भविष्य वचन कहे- **'यह समाधि मेरी हैं, इसकी निशानी में कंघी-डोरे होंगे।'** वस्तुतः वहीं हुआ, तब रामदेव ने दूसरी जगह दूसरे दिन समाधि खुदवा कर ली। विचारणीय यह हुआ कि जगत्प्रसिद्ध रामदेव को यह भी ज्ञात नहीं हो सका कि **यहाँ समाधि मेरी होगी या डाली की ?** किन्तु डाली ने तो उनके वचनों को 'इतिश्री' ही कर दिया। परन्तु इतना होने पर भी आज उनकी समाधि केवल जन्म-जातीयता के नाम पर ही आश्रित रखकर पूजी जाती हैं, गुणों के विश्वास पर नहीं ! इस सन्दर्भ को विस्तृत रूप से जानने के लिए **'रामदेव गप्प दर्शन** अर्थात् **पोल में ढोल'** नामक प्रस्तुत लेखक की शोद्ध से किया गया। (मेघवाल बाबा रामदेव) भण्डाफोड़ साहित्य भी देखने पढ़ने योग्य है। ऐसे बहुत बहुश्रुत, बहुदृशित तथा ऐतिहासिक महानात्माओं की घटनाओं का कोई पार नहीं। इसी परम्परा में धारु मेघ तथा खींवणजी, राहू रिखिया आदि प्रसिद्ध मेघवल जाति में जन्मे भक्त हुए, जिनके पद्य-कीर्तन आज तक प्रचलित हैं, जिनके द्वारा ही रामदेव जी की प्रसिद्धि हुई तथा हैं, जिनके उपास्य-स्थान जोधपुर शहर के पश्चिम में मसुरिया नामक (जहाँ गोसांईजी का मेला लगता है) तथा उत्तरांश में लखजी का थड़ा (महामन्दिर रेल्वे स्टेशन के पास) और जूंझाला मन्दिर (जहाँ गोसांईजी का मेला लगता हैं। यह नागौर जिले में मूंडवा स्टेशन से मोटर-राजपथ पर हैं।) जो कई दिनों से मेघवाल वर्ण के लोगों के अधिकार में रहे थे, किन्तु आपसी फूट तथा स्वार्थी तन्तुओं के कारण आज उनके अधिकार में नहीं रह सके, नशेदार पण्डों (बनावटी पुजारियों) के पास ऐतिहासिक स्थान साक्ष्य रुप स्थित है।

नाद, बिन्दु और कला की सृष्टि

सृष्टि भेद में तीन प्रकार का जगत माना जाता हैं ।

(१) **बिन्दुमय सृष्टि** - पिता-पुत्र सम्बन्ध से बनी हैं । सारा गृहस्थ परिवार इसी के अन्तर्गत आता हैं । ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ के तीनों आश्रमों का जीवन बिन्दु सृष्टि से जीवित हैं । इन में गृहस्थ भेद का जीवन जीते है, जो क्रमशः तीन प्रकार के होते हैं - (क) उत्तम, (ख) मध्यम तथा (ग) कनिष्ठ । इन तीनों की क्रिया बिना गृहस्थ में जीने वालों का जीवन भृष्ट माना जाता हैं । **बिन्दु सृष्टि** में -

(क) **उत्तम गृहस्थ** वह है जो शास्त्रीय विधि से ब्रह्मचर्य अवधि से गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करते हैं, वेद पुराण श्रुति-स्मृति की आज्ञाओं का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं । धार्मिक प्रक्रिया से अपने विविध व्यवसाय से आजीविका प्राप्त करते हुए नित्य नैमितिक धार्मिक क्रिया कलापों का पालन करते हैं । कुल, परिवार, गृहस्थी नियमों का पालन करते हुए निर्व्यशनी जीवन में देश, समाज और साधु सेवा, सतसंगी का जीवन धारण करते हुए सन्ध्या सुमिरण सहित धर्म के दशांगों का पालन करते है ।

(ख) **मध्यम गृहस्थ** वह है जो लोक-कुलरीति का निर्वाह करते हुए अपने इष्ट-उपासना का साधारण जीवन व्यतीत करते हैं और नौकरी खेती व्यापारादि व्यवसाय से जीवन यापन करते हैं ।

(ग) **कनिष्ठ गृहस्थ** में वे मानव हैं, जो लौकिक जीवन में भौतिक व्यवस्था को महत्व देते हैं । पाप या पुण्य से जैसे-तैसे अर्थोपार्जन हो और अपना जीवन सुखमय बनाने के प्रयासों में लगे रहते हैं । जिन्हें निन्दाऽस्तुति से कोई सम्बन्ध नहीं हैं, कि वे भेष बनाने, माँगने, झूँठ, छल, कपट भी करने को तैयार रहते है । इनके अतिरिक्त, (घ) चौथे क्रम में वे लोग विषयी या नारकीय जीवन को यापन करते हैं ।

यह सारा क्रम जो हैं वह **बिन्दु सृष्टि** का व्यवहार निभाते हैं । शारीरिक सम्बन्धों की सृष्टि रचना के भागीदार होते हैं और स्त्री-पुरुष (पति-पत्नी) के सम्बन्धों का कारक जीवन होता हैं, जिनसे पुत्रोत्पति (सन्तानोत्पति) सृष्टि का क्रम चलता हैं ।

(२) नादमय सृष्टि में गुरु शिष्य सम्बन्ध रहता हैं - द्वैत, अद्वैत, द्वैताऽद्वैत, शुद्धाऽद्वैत, विशिष्ठाऽद्वैत के पाँच सिद्धान्तों मे शैव, शाक्त, वैष्णव त्रिधा उपासना मन्त्र दीक्षा में विश्वास करते हैं, वे **(क) उत्तम नाद सृष्टि** के सृजेता हैं । सतगुरु सेवा, सन्तमत प्रणाली में गुरु परम्परानुयायी रह कर साधक रुप से जिज्ञासु, ज्ञानी के संसार में जीते हैं । वे उत्तम नाद सृष्टि से सम्बन्ध रखते हैं । **(ख) मध्यम नाद सृष्टि** में वे महापुरुष हैं, जिनका कोई शास्त्रीय सिद्धान्त नहीं हैं, सन्तमत को स्वीकारते हुए गुरु परम्परा विहीन किसी मन चाहें इष्ट उपासना से सम्बन्ध जोड़ते हैं या गुरु मत के नाम येन केन प्रकारेण शास्त्राधार इष्ट की धारणा से प्रणाली जोड़ कर चलते हैं । **(ग) कनिष्ठ नाद सृष्टि** में वे हैं जो चलते फिरते बेनामी गुरु द्वारा मन्त्र दान दीक्षा लेकर आगे से आगे मन्त्रदान करते चेलों का संसार बढ़ाते है । गति-मुक्ति के मन माने विचारों की पुष्टि करते हैं । नशे-व्यशनों में झूलते, धर्म के नाम आडम्बर करते हुए भौतिक संसाधनों का संसार बनाते है ।

इन तीनों के अतिरिक्त और भी नाद सृष्टि से अन्धानुकरण को पालते हुए जीते हैं, (घ) जो गृहस्थी भी हैं - नौकरी धन्धा, उद्योग, खेती, व्यापार के साथ सतसंग, कीर्तन एवं शिष्य मूँडने की प्रक्रिया को भी बढ़ावा देते हैं, जिन्हें गुरु-परम्परा, सम्प्रदाय-सिद्धान्त से कोई लेना देना नहीं हैं और धर्म के नाते आजीविका प्राप्त करते हैं और लोकदेवता भैरव, भौमिया खेतरपाल भूतादि आन उपासना के आधार से जीते है ।

इस प्रकार साधक-साधु, गुरु-शिष्य सम्बन्ध में जिज्ञासु, मुमुक्षू या भोपा, मन्त्रदाता आदि का यह नाद संसार हैं। इसमें गुरु का पद "सतगुरु" शब्द से जाना जाता हैं या गुरु-शिष्य के पहिचान से चलते हैं।

(३) **कलामय सृष्टि** का संसार ही इस द्रश्य जगत का आधार हैं। विश्वकर्माजी की समस्त पाँचों ललित कलाओं की प्रधानता में चौसठ कलाओं का प्रस्तारित रचना ही व्यवहार सिद्धि एवं जीवन का सार्थक द्रश्य है।

जो कोई आजीविका उपार्जन धन-सृजन, भौतिक सृष्टि की संरचना में सहायक किसी कारीगरी (कला) को किसी से लेता, सीखता, पढ़ता हैं, ऐसा कला संसार **स्वामी-सेवक** के सम्बन्ध आधार से चलता हैं।

इस में किसी भी कला को जानने वाला कारीगर या मिस्त्री कहलाता हैं, जो विभिन्न कारीगरी, कलाविद, हस्त शिल्प, उद्योग के अधिवेता होते हैं। वे जब अपनी कला किसी को सिखाते हैं, तब वह **गुरु (उस्ताद)** का पद पाते हैं और सीखने वाला **शिष्य (शार्गिद)** कहलाता हैं। अर्थात् **नाद सृष्टि** सतगुरु एवं **कला सृष्टि** में गुरु का पद सर्वदा ऊँचा (वरिष्ठ) मान्य होता हैं और दोनों में शिष्य का पद मुमुक्षू-जिज्ञासु या भक्त के नाम से **नाद जगत** में तथा **कला जगत** में केवल शिष्य कहलाते हैं।

इस प्रकार सारी सृष्टि के संचालन में **(१) नाद, (२) बिन्दु तथा (३) कला** की प्रधानता हैं। अर्थात् -

नाद - **सतगुरु-शिष्य (मुमुक्षू)** का एक मात्र सम्बन्ध लेकर संसार चलता है।

बिन्दु - **पिता-पुत्र, स्त्री-पुरुष** दोनों सम्बन्ध मय लेकर जगत चलता है।

कला - **स्वामी-सेवक** के एक सम्बन्ध से इस तरह तीनों सृष्टि भेद का विस्तार चलता हैं। इस प्रकार **चारों सम्बन्धों** में तीनों सृष्टि का संचालन होता हैं।

साधु संसार

उपयुक्त तीनों सृष्टि से ही साधु संसार का निकास हैं। जीवन की आध्यात्मिक साधनाऐं, आत्मचिन्तन, लोकोपकार, जनहित धार्मिक उपासना इत्यादि सब कल्याणकारी कृत्य यद्यपि मानव मात्र के अधिकार हैं। तद्यपि १००% विरक्त जीवन में रह कर परम्परानुगत **नाद सृष्टि** के व्यक्ति विशेष के कर्त्तव्य अधिकार हैं। आस्तिक धर्म-प्रेमी जनता की भेंट, शिष्य प्रणाली या आकाशवृति से अनायास प्राप्ति द्वारा उन का आजीविका उपार्जन साधनमात्र है। इसी से लोक हित में अन्न-क्षेत्र, आश्रम, मठ-मन्दिर निर्माण धर्मशाला, विद्यालय इत्यादि कार्य भी करने में उनको दी गई **भेंट की सार्थकता है।** अतिरिक्त वर्णाश्रम में ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्याश्रम में रह कर गुरु आज्ञानुसार गोचरी (भिक्षा) तथा ब्राह्मण वर्ण के वर्गीकरण में धार्मिक अनुष्ठान मानव जीवन जन्म से मृत्युपर्यन्त होने वाले कर्मकाण्ड, यज्ञ (हवन), गृह-पूजन, देवोपासना, जन्म, विवाह, मृत्यु इत्यादि द्वारा दान, दक्षिणा, **भिक्षा लेने का अधिकार उन्हें दिया गया हैं, किन्तु वे भेंट लेने के अधिकारी नहीं होते हैं।** भेंट लेने की पात्रता सर्वप्रकार से **नाद सृष्टि** के विरक्त जीवन जीने वाले **वियोगी साधु** के लिए ही उपयुक्त नैतिक वैधता हैं। साधु संसार में भेद से **नाद और बिन्दु अर्थात् वियोगी और संयोगी** अवस्था से दो तरह के साधु होते हैं।

(१) **नाद (वियोगी)** - जो परमजिज्ञासु, वैराग्यवान त्याग वृति से कुटुम्ब माता-पिता को छोड़ कर सतगुरु शरणापन्न गुरु प्रणाली से जुड़ते हैं, शास्त्र-प्रमाण से सैद्धान्तिक गुरु-परम्परा से शिक्षित-दीक्षित होकर जीवन साधना मयी बनाते हैं। **दीक्षित गृहस्थों से भेंट** अर्थात् **शिष्य भक्त जनों की भेंट ही आजीविका का साधन होता हैं।** अन्य कोई उपार्जन हेतु उपाय नहीं होता, इसी पर निर्भर अपने जीवन निर्वाह के साथ लोक

हित, धर्म-प्रचार, राष्ट्र-निर्माण में सहायक, निर्व्यशनी नागरिकता के सुसंस्कार धर्म-प्रचार करते हैं । सामाजिक बुराइयों में बाल विवाह, बहु विवाह, मृत्युभोज, व्यर्थ खर्ची, शराब, मांस, गांजा, भांग इत्यादि नशों, सप्त व्यशनों, दश दोषों के विरुद्ध आवाज उठाते हैं । उन के सामयिक मार्गदर्शन करना समाज को दिशा निर्देश देने के परम कर्त्तव्य हैं ।

(२) **बिन्दुज (संयोगी)** – जो पूर्वात्पर या अद्यावधि काल में सामाजिक बुराई या किसी मानसकि व्यथा से वियोगी नादिक जीवन भ्रष्ट हो जाता हैं या हो गया, उन की वंश परम्परा भावी पीढ़ि बिन्दुज (संयोगी) अर्थात् विभिन्न प्रकार से गृहस्थ साधुओं की परम्पराऐ चलती हैं । जिन की आजीविका साधन, मात्र, शिव, शक्ति, विष्णु, सूर्य, गणपति आदि पंचदेवों के प्रतीक अन्येत्तर मन्दिरों के पुजारी होकर उपासक भक्तों से प्राप्त सामाजिक नियमों के आधीन भिक्षा, दान, उदारता से प्राप्त साम्रगी ही आधार होता हैं । किन्तु आजकल **नाद या बिन्दु प्रणालियों में क्षत-विक्षत नियमों** और मनोनीत स्वतन्त्रता या उच्छ्रृंखलता के कारणों से परमपरानुगत नियमों की अवहेलना रुप नौकरी पेशा, धन्धा, उद्योग, व्यापार, **गृहस्थी जीवन के साथ शिष्य मुण्डन, भेंट, पूजा, दान, दक्षिणा इत्यादि भी अपनाने लग गये हैं ।** बहुधा आज के समय में **नाद परम्परा** के साधु भी मनमुखी होकर अपनी प्रतिष्ठा हेतु अपने गुरु का नाम लेने मात्र सीमित दायरे में आकर गुरु परम्परा से बेमुख, गुरु प्रणाली से रुठे, बातूनी (वाच्यार्थी) वाग्प्रलाप कथा, कीर्तन या आन उपासना में उलझ रहे हैं । ऐसे ही बिन्दु परम्परा के संयोगी साधु भी पृथ्वी पर खड़े खड़े ही आकाश के चन्द्र को पकड़ने का प्रयास करते हैं कि गृहस्थ जाल, आजीविका साधनों में उलझे रहने पर भी अद्वैत चर्चा, साधनहीन वेदान्त दर्शन के प्रचार प्रसार को अपनाने लगे है । भेंट लेने या शिष्यों में रुचि रखने लगे हैं । जब कि वेदान्त चिन्तन, हरि

भक्ति साधन, कर्म उपासना ज्ञान आदि अपनाने का अधिकार मानव मात्र को हैं, किन्तु उन्हें आय का स्त्रोत बनाने, प्रचार करने, दीक्षा-भेंट लेने का अधिकार शास्त्र विहित सभी के लिए कदापि नहीं है ।

इन तीनों सृष्टि में पूर्वातपर कई ऋषि-मुनि, सन्त, मनीषी, महापुरुष, शास्त्रवेता, विद्वान, सिद्ध, साधु पुरुष हुए हैं, जिन्होंने शास्त्रीय मर्यादाओं का पालन करते हुए वर्णाश्रम व्यवस्था बनाए रखने के साथ अपने सैद्धान्तिक औचित्य को बनाए रखा और तथाकथित जाति-पांति अश्पृस्यता के कलंक से दूर होकर उच्च सिद्धान्त प्राप्त किये हैं । जिन का नाम अद्यावधि स्वर्णाक्षरों से जोड़ते हुए गौरव से लिये जाते हैं ।

आज के वातावरण में जिस जातीयता के दायरे को मान्यता दे रहें हैं, वह सर्वथा घृणित व्यवस्था हैं, जो शास्त्र-विरुद्ध एवं मूलतः त्याज्य है । तथाकथित शोषित शूद्र कुल में कई ऋषि-महर्षि जन हुए हैं, जिन्हें आज सामाजिक व्यवस्था गौरवान्वित करती हैं, किन्तु **उन्हीं ऋषिकुल के सन्तों को शोषक वर्ग के लोग हीनता से देखते है** । किंचित निर्पक्ष वृति से चिन्तन करें कि किसी भी समाज या वर्ग का व्यक्ति जब किसी **नाद परम्परा से** दीक्षित होता हैं तब से उन के संसारिक व्यवहार के सम्बन्ध सर्वथा निवृत हो जाते हैं । **उन का पुनर्जन्म माना जाता है,** कि - दीक्षा पंच संस्कारों के बाद नाम, पिता, गौत्र, जाति को तिलांजली देते हुए उन का नया नाम, गौत्र सतगुरु प्रदत्त प्राप्त लेते है और पिता के स्थान सतगुरु की प्रधानता रहती हैं । फ़िर उनका गृहस्थ समाज का वर्ण-वर्ग नहीं रहता अपितु साधु समाज, गुरुपरम्परा की पहिचान शैव, शाक्त या वैष्णव कुल से होने लगती हैं । किन्तु आजकल के गुरु अपने नाम की पहिचान पिता के नाम से करवाते हुए भी नाम दान देकर शिष्यों से भेंट लेकर अपना जीवन-धर्म त्यक्त करते है और गुरु का नाम केवल स्वार्थ-सिद्धि हेतु लेते या ना भी ले ।

इस प्रकार आज की प्रचलित विकृतियों का सर्वथा बहिष्कार होना चाहिए, किन्तु देखा यह जाता हैं कि विद्वत प्रधान, समाज के कर्णधार मार्गदर्शक प्रमुख भी सामाजिक विकृतियों, मान, ईर्षा, दम्भ दिखावे में उलझ रहें हैं। चारों तरफ मनरचित ईर्षा, घमण्ड का प्रदर्शन करते प्राचीन शास्त्रीय मर्यादाओं को अनदेखा करते हुए प्रत्येक विद्वान अपने अहं को लाद कर **अन्येत्तर किसी धर्माचार्य से मिलना नहीं चाहते, अपने उपासकों को अपने घेरे में रखे रहते है।** अपने द्वाराचार्य, गुरु परम्परा का परिचय नहीं करवाते हैं, केवल अपनी प्रतिष्ठा रत रहते हैं।

आज प्रत्येक मठधारी अपने नाम के आगे श्री श्री १००८ श्री, महामण्डलेश्वर, आचार्य, जगद्गुरु, विश्वगुरु, ब्रह्माण्डगुरु आदि शब्दों का बाहुल्यता वर्षाती मेंढ़कों की तरह उपयोग बढ़ाते हैं। इत्यादि कई तरह से महिमा मण्डित करते हैं, किन्तु गुरु एवं द्वारा-शाखा परिचय को सर्वथा गौण कर देते हैं एवं १०८ के बजाय १००८ का अर्थ भी स्पष्ट नहीं करते हैं, चूँकि यह केवल अपनी मूर्खता को जन मानस पर उडेलने के काम करते हैं। अतः साधु समाज में भ्रान्तियों के निवारण का प्रयास केन्द्र शासित शासन एवं हिन्दू धर्म ध्वजी संस्थाओं तथा उच्च धर्माचार्यों मे चारों मूल जगद्गुरु शंकराचार्यों तथा उनके मठाधीश, महामण्डलेश्वरों और मूल चारों वैष्णव रामानुज, रामानन्द, वल्लभाचार्य जी की सभी बैठकों, निम्बार्काचार्य सहित श्री विष्णु स्वामी सम्प्रदाय प्रमुख पीठाधिकारियों, जगद्गुरु सम्प्रदायाचार्यों का अपने अधीनस्थ समस्त ५२ द्वाराचार्यों के माध्यम से सभी के द्वारा परिमार्जन करने चाहिए। पाखण्डवाद, व्यशन एवं स्वार्थ-दिखावे के व्यवहार से साधु समाज को निवृत होना चाहिए।

भारतीय समाज की प्रभावोत्पादक सर्वस्व शक्ति

समाज के स्तम्भ, प्राण अथवा अस्तित्व की **आचार संहिता** प्रभृति जो भी कहा जाया वह किसी रूप में भी रहते हुए लक्षणीय साधु, लेखक, ब्राह्मण, गुणी, प्रचारक, विद्वान सन्त, महात्मा आदि ही हैं । भारत में विद्वन्मण्डलाचार्यों का अभाव नहीं हैं - अपार हैं । ऐसे प्रकरण-गत विशेषताओं से भरपूर आध्यात्मिक अभ्युदय, अपूर्व निधियों का ज्ञान-पथ प्रदर्शकों के रूप में प्रादुर्भाव होता रहा हैं । निश्चय ही वेद-वेदान्त प्रतिपाद्य परम कारूणिक भगवान् अपने नित्यांश जीवों की दयनीय दशा देख कर द्रवीभूत हो उनके शोकार्णव को सुखाने के लिये तथा अपनी पुरातन ज्ञान राशि को प्रकट करने के लिये अपने तेजों से किसी अलौकिक महापुरुष को प्रकट कर अध्यात्म ज्ञान का समय-समय पर उपवृंहण करते रहते हैं एवं उन्हीं महापुरुषों के द्वारा उस गुह्य ज्ञान को सर्व जन को सुलभ करा देते हैं । अतः सन्तजन संसार चक्र से निष्पीड्यमान प्राणियों के उद्धारार्थ कल्याण मार्ग को दिखाते हुए दृष्टिगोचर होते हैं ।

इस भारत भूमि पर अध्यात्म विषय का जितना सुदृढ़ एवं व्यापक विचार किया गया उतना अन्यत्र नहीं हुआ । भारतीय परमार्थ चिन्तन परम्परा में निर्गुण-सगुण वाद, कर्म, ज्ञान, भक्तिवाद आदि अनेक विवेच्य विषय प्रचलित हैं । वेद के प्रामाण्य को स्वीकार करने वाले आस्तिक दर्शनों में वेदान्त दर्शन में जिस का आधार उपनिषद् हैं । ब्रह्म, आत्मा, प्रकृति तथा इनके पृथक्-पृथक् स्वरूप और पारस्परिक सम्बन्धों पर ही मुख्य विचार किया गया हैं । अनेक दर्शन शास्त्रियों की भिन्न-भिन्न व्याख्याओं के कारण **वेदान्त दर्शन** में विभिन्न सिद्धान्तों सहित सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ हैं ।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक की आचार्य-गुरु-परम्परा का परिचय

{जो कतिपय प्राचीन तीर्थस्थलों से शिलालेखों आदि द्वारा उद्धृत श्रम-फल तथा शोद्ध-कार्य में प्राप्त हुआ हैं, जिनका पूर्ण विचार-विस्तार "आचार्य सुबोध चरितामृत" नामक पुस्तक रूप में लेखक द्वारा प्रकाशित हैं ।}

श्री मत् वैष्णव धर्म सम्प्रदाय में दीक्षित गुरु परम्परा

(१) स्वामी राघवानन्दाचार्यजी महाराज (श्री मठ वाराणसी)
(२) स्वामी रामानन्दाचार्यजी महाराज ("---")
(३) स्वामी अनन्ताचार्यजी महाराज ("---")
(४) स्वामी कृष्णपयाहारीजी महाराज ("---")
(५) स्वमी अग्रदासजी महाराज (रेवासा धाम गद्दी)
(६) स्वामी नाभादासजी महाराज नारायणदासजी (बड़े)
(७) स्वामी नरहरिरामजी महाराज (गिरीनार धाम)
(८) स्वामी प्रेमपहाड़ीजी महाराज ("---")
(९) स्वामी रामदासजी महाराज ("---")
(१०) स्वामी नारायणदासजी महाराज (छोटे) ("---")
(११) स्वामी सन्तदासजी महाराज (दॉन्तड़ा धाम)
(१२) स्वामी कृपारामजी महाराज ("-")
(१३) स्वामी केवलरामजी महाराज ("-")
(१४) स्वामी दौलतरामजी महाराज ("-")
(१५) स्वामी गंगारामजी महाराज (कोटा में समाधि)
(१६) स्वामी हरिरामजी महाराज (जोधपुर गद्दी)
(१७) स्वामी जीयारामजी महाराज ("--")
(१८) स्वामी सुखरामजी महाराज ("--")
(१९) स्वामी अचलरामजी महाराज ("--")
(२०) स्वामी उत्तमरामजी महाराज ("--")
(२१) तत्वज्ञ सन्त रामप्रकाशाचार्यजी (लेखक)

वर्त्तमान उत्तम आश्रम (आचार्य पीठ) गुरू गद्दी परम्परा

व्यास-गद्दी का अधिकार किसको ?

आजकल श्रवण-रन्ध्रों में तो सर्वथा निराधारिक बातें गुंजित होती हैं कि -

शूद्र करहि जप तप व्रत नाना । बैठि बरासन कहहि पुराना ।।

-रा.च.मा. ७/९९ ख ६

विपरीत में कलि के ब्राह्मण-लक्षण का रुप हैं -

बिप्र निरच्छर लोलुप कामी, निराचार शठ वृषली स्वामी ।

-रा.च.मा. ७/९९ ख ६

शूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ज्ञाना, मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ।।

-रा.च.मा. ७/९८ ख २

वाद शूद्र कर द्विजन्ह सन, हम तुम्ह ते कछु घाटि ।
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि दिखावहिं डाटि ।।

- रामचरित मानस ७/९९ (ख)

इन अर्द्धलियों का अनुकरण करते हुए कई कह बैठते हैं - **"यह शूद्र हैं, इन्हें व्यास गद्दी का अधिकार नहीं है अथवा शूद्र उच्चासन पर कथा करते हैं - हम श्रोतागण पृथ्वी पर कैसे बैठे ?"**

वाह प्यारे श्रद्धालु श्रोत्रिय आस्तिकों ! अब तक आपने ऋषिमुन्यादि पूर्वज आदि कवियों के **वक्तापन एवं व्यास गद्दी के वास्तविक तथ्य** के रहस्य पर कोई सुझाव-निर्णय नहीं लिया । देखिये -

अष्टादश पुराणानां वक्ता सत्यवती सुतः । - शिवपुराण, रेवाखण्ड

सत्यवतीनन्दन व्यास अठारह पुराणों के रचयिता प्रचारक है ।

मूल कथाकार वक्ता की गद्दी-आसन के मूल व्यवस्थापक में श्री वेदव्यास जी, जिन के जन्म, वर्ण, जाति, कुल का परिचय पीछे बता दिया हैं, वे जन्मजात वर्ण शंकर एवं जन्म से शूद्र थे, कर्त्तव्य से ऋषि-ब्राह्मण बने । गीता शास्त्र के भाष्य- वर्द्धनकार-व्याख्याता एवं मूल रचना का श्रेय

भी इन्हीं वेदव्यास कैवर्त्यकन्या के ललना को हैं। **महाभारत तथा अष्टादश महापुराणों के रचयिता** व कथा-वक्ता-शिरोमणि एवं चारों वेदों के भाष्य-वर्द्धनकार और **उत्तरमीमांसा-दर्शनशास्त्र (वेदान्त)** के सूत्र रचयिता, संतवाणी का मूलस्रोत, **झिमरी-कुमार पाराशर-वंशज शूद्र ही तो थे।** ऐसे ही स्मृतिकार वशिष्ठ, पाराशर, गोभिल, यमाचार्य, व्यास आदि सब जन्म से शूद्र ही तो थे। इतना इनके द्वारा रचित विशाल साहित्य भारतीय कोष से अलग कर देने पर शेष केवल वेद मात्र मूल ग्रन्थ रह जायेंगे, जो जन साधारण भी नहीं समझ पायेंगे। यह सब उन्हीं तपस्वी तथाकथित पिछड़ा, अनुसूचित जन जाति आदि से कहे जाने वाले समाज में जन्मे महापुरुषों के प्रसंशित कार्य हैं।

रामचरित मानस या तत्सम्बन्धी राम-रहस्य मूल रामायण महात्म्यादि ग्रन्थ का पूर्वात्पर इतिहास-प्रबन्ध युगानुजीवी परमायुमान महर्षि लोमस के द्वारा कागभुसुण्डि को प्राप्त हुआ। उनसे शिव-याज्ञवल्कादि को रहस्यात्मक भेद प्राप्त हुआ। (सति-विछोह-काल में पक्षी रुप से शिव ने सुना था) जो शिव से शिवा ने, याज्ञवल्क से भरद्वाज ने तथा शंकर के **'खग समुझइ खग ही की भाखा'** सिद्धान्तादेश के पालन-कारण को लेकर **कागभुसुण्डि से गरुड़जी को स्वानुभवैक रामकथा रसादन मिला।** पुनश्च त्रेतायुग के आदि में 'आदि कवि' कुल विवाहित, कृत्य पोषित या जन्म जात संग दोष तथा लक्षणीय तपस्वी **बाल्मीकि** के द्वारा **आदि काव्य** रचित हुआ। तदनन्तर कलि में विक्रम संवत् १६३१ में गोस्वमी तुलसीदासजी ब्राह्मणज से रामायण प्रबन्ध-महाकाव्य शैली का प्रादुर्भाव हुआ। जैसे कि -

संवत् सोलह सौ इकतीसा। करउं कथा धरि हरि पद सीसा॥

वह भी वस्तुतः गोस्वामी को भी बाल्मीकि का पुनरावतार मानने की परिपाटी से हुआ हैं, जैसे नाभादासजी के द्वारा कथन में आया हैं कि -

कलि कुटिल जीव निस्तार हित, बाल्मीकि तुलसी भयो ।

- भक्तमाल छप्पय नाभाजी कृत

विचारणीय निष्कर्ष-सम्पन्नता यह हैं कि **गरुड़ पक्षियों का राजा था** और वे श्रोता हुए **काग-शरीर पक्षियों में चाण्डाल** (शूद्र) वे व्यास पीठ के वक्ता हुए ।

नीतिकारों द्वारा स्पष्ट कहा गया हैं -

*नराणां नापितो धूर्तः **पक्षिणां** चैव वायसः ।*

चतुष्पदां शृगालस्तु स्त्रीणां धूर्त च मालिनी ।। - चाण्क्यनीति ५/२१

स्वयं कागभुसुण्डि के शब्दों में -

सकुनाधम सब भाँति अपावन । प्रभु मोहि कीन्ह विदित जग पावन ।।

-रा.च.मा. ७/१२२/८

अतः स्पष्ट ही निर्णय हैं कि यदि एक चाण्डाल-योनिज पक्षी काग से खगराज गरुड़ को उपदेश-श्रवण सम्भव हैं तो इसमें भी कोई दो भेद नहीं हो सकते कि शूद्रकुलोत्पन्न व्यक्ति विद्वन्मण्डलासीनस्थ कथा का प्रवचन कर सकते हैं । **प्रचीनतम प्रभुत्व व्यास-गद्दी का स्वतः लक्षणीय विद्वान को पूर्ण अधिकार मान्य हैं, चाहे वह किसी भी जाति/वंश में उत्पन्न हुआ हो** । उपयुक्त संशय-निृवत्तिमय कल्यान-सामंजस्य की प्राप्यता हो अर्थात् राम-कथा का मूल प्रचार-कार्य जो शूद्रजन्मीय रत्न कृतियों से ही हुआ हैं, जिसका विश्व आभारी हैं और रहेगा । यथा -

इहाँ वसत मोहि सुनु खग ईसा । बीते कलप सात अरु बीसा ।।

-रा.च.मा. ७/११३ ग १०

नीचकुलोत्पन्न पाराशर के पुत्र धीवर-गर्भा पुत्र व्यास द्वारा शूद्र दादा-पिता के वंशज शुकदेव जो राजऋषि भूपाल चूड़ामणि परीक्षित के वक्ता हुए । उन्हीं व्यास के भाँड्य-वंशज भाण्ड (शूद्र) सूत जी वक्ता और अट्ठासी हजार ऋषियों (ब्राह्मण) श्रोता का समाज हुए । ऐसे ही हिन्दी

साहित्य के सर्वप्रथम काव्य में इतिहास प्रसिद्ध ग्रन्थ भक्तमाल के रचयिता नाभादासजी महाराज जो स्वामी अग्रदासजी महाराज के शिष्य थे, वह भी अनुसूचित वर्ग में ढोली (कत्थक) ही थे ।

इन समस्त प्रसंग-कथाओं को दृष्टव्य श्राव्य-मनन करने से दृढ़ निश्चय के साथ ध्रुव सत्य हो जाता हैं कि **व्यास गद्दी** किसी जन्म-जाति विशेष की अधिकार-वस्तु नहीं हैं, प्रत्युत् विद्वान, तत्वज्ञ, पण्डितों का **'व्यास गद्दी'** पर पूर्ण सत्व अधिकार रहा हैं और रहेगा, वस्तुतः तथाकथित जन्म-जाति के आधार से व्यास गद्दी शुद्राधिकार की ही धरोहर है ।

शासन-सूत्र की समीक्षा-दृष्टि

पिछले मुग़ल-सामन्तशाही विदेशी शासन सत्ता प्रतिक्रियावादी के समय से जन्म-जाति मानी जाने के कारण बुराइयों की बाहुल्यता समाज में आती रहीं । युगों की परतन्त्रता से देशवासियों को स्वतन्त्रता का आभास मिला, किन्तु वह केवल शिक्षित सत्ताधिकारी तथाकथित सर्वण-कुलोत्पन्न व्यक्तियों के पंजे से बाहर न होने के कारण देहातिक जनता अथवा युगानु पिछड़े समाज की शताब्दियों में गर्दित पराधीनता का आज भी दिवा-स्वप्न बन कर रह गया जो मात्र सदोष शोषणता का रुप है ।

जब उपयुक्त व्यवस्था हेतु अस्पृश्यता (जाति-भेद) को समाप्त करने की धाराओं को गत विधानात्रियों में घोषणा हो चुकी । परन्तु आज वह घोषणा केवल **'कागजी घुड़दौड़'** ही होकर चुप साधन करके कार्यालयों की अलमारियों मे रजिस्टर-पंजिकाओं को सड़ा रहीं हैं । उस पर भी शोषक वर्ग के उच्च्व से निम्नाधिकारी वर्ग का कर्तव्य **'हाथी के दांत दिखाने के और खाने के और'** की भांति भेद वर्तित होता नजर आ रहा है ।

जब कि हमने कुल-भेद को 'अमान्य' घोषित कर दिया तो आज शूद्र (दलित-अनुसूचित) कुलोत्पन्न को जिलाधिकारियों (तहसील-कार्यालय) से जो जातीय प्रमाण-पत्र देने-लेने की व्यवस्था करवाई जाती हैं, वही नौकरी आदि सुविधा का साधार माना जाता हैं। चिन्तनीय यह हैं कि यह प्रणाली **भारतीय समाज की भेद-समाप्ति की अपेक्षा जातीयता का पक्का सरकारी स्टाम्प प्रमाणित सबूत बन रहीं है**। इस पर भी क्या कभी किसी ने दृष्टिपात किया होगा ?

इस व्यवस्था से भारतीय कूटनीति का परिणाम विफल होगा और होता जा रहा हैं। साथ ही समय के सवर्ण कहलाने वाली जातियाँ भी लाभ-उपयोग को अनौचित्यतापूर्वक उठाती है। इसके विपरीत दलित कहलाने वालों को भी यत्र-तत्र लज्जापूर्वक नतमस्तकता से लाभ की अपेक्षा हानि का सामना करना होता हैं।

हमारी धारणा से यदि अस्पृश्यता-निवृत्ति के साथ ही जातीयता का उन्मूलन किया जावे और समाज-संचालन की मूल नीति-व्यवस्था में पूर्व प्रकरणों द्वारा प्रस्तुत की गई गतिविधियों के उपाय का दिग्दर्शन करवाया हैं। उसी प्रकार शास्त्रीय पद्धति से **वर्ण-व्यवस्था की कर्म द्वारा सूत्र-रचना की जावे** तो पूर्णतः विश्वासपूर्ण तार्किक कसौटी हैं, ताकि कोई भी नीच - चोरी, यारी, हिंसा, मद्यपानादि करने वाले न होकर सब व्यवस्थापक, गुणशील, कर्तव्यवान होकर प्रत्येक उन्नति के इच्छुक होंगे। क्योंकि सदैव से प्राकृतिक विधान रहा हैं कि हम व्यक्तिगत जीवन में जो कुछ करते हैं अथवा सीखते हैं, वह गुण-कर्म-स्वभाव-सतसंग-प्रभाव के द्वारा ही होते हैं और वही समाज की उन्नति का कारण व्यक्तीय जीवन से सम्बन्धित हैं।

यदि व्यक्तित्व सबका सुधरा हुआ हैं तो वह समाज उन्नति-शिखर पर पहुँच सकेगा अन्यथा कदापि नहीं और समाज की नींव पर ही देश

का भविष्य हो सकता हैं । अतः सर्वप्रथम यदि देश का हित करना हैं तो समाज के सदस्यों का दैनिक जीवन नियमित रुप से वैदिक पद्धतिमय उन्नति-काम्य सुशील होना आवश्यक हैं ।

यह कार्य केवल भाषणों और लेखाशाही कानून श्रवण करने या लम्बे चौड़े भाषण, कथा-व्याख्यान के श्रद्धा-भाव्य से सम्पन्न नहीं होगा, अपितु कार्य में रत होने से ही होगा । वह भी केवल मात्र कुछ व्यक्तियों से नहीं अपितु देश के समस्त नागरिक मिल कर शासन-शृँखला की सुधारमय पुरुषार्थ करेंगे तब यह कार्य सुसम्पन्न होगा तथा यह हमारा लोक तन्त्रात्मक गणराज्य सफलता पूर्वक चल सकता हैं अन्यथा आने वाली प्रलय की आँधी अणु-एटम-परमाणु बमादि सब इस पवित्र भूमि को ऊजाड़ कर देगी और प्रजातन्त्र-रुप नवीन वृक्ष को उखाड़ देना ही नहीं अपितु नाम तथा चिह्नांग को भी अस्तित्वहीन कर देगी । आज अनेकों सत्ता लोलुप पार्टियों को उद्भव वर्षाती मेंढ़कों की तरह बढ़ रहा है, घूस-भ्रष्टाचार, धोखाधड़ी सुरसा के मुँह की भाँति बढ़-चढ़ कर फैलाव कर रहीं हैं, अर्थव्यवस्था डिगमिगा रहीं हैं, उच्च्व नेताओं के विदेशी खातों में बेनामी धन बढ़ रहा हैं, इस का निदान-विधान निकालना होगा ।

आज साक्षर से लेकर निरक्षर, मूर्ख से पण्डित, किसान से राज्याधिकारी शासक, गरीब से लेकर धनपति तक सबके आचरण अश्लील-असभ्यता पूर्ण गर्व से अनियमित, अव्यवस्थित, भोग्यप्रधान, सजावटीय साजों से निखरे होने के कारण पाश्चात्य वायु का भौतिक जीवन एक दिन भारत का भी सर्व पतन कर देगी । हमारा अभिप्राय इस पूर्व **'वीरभोग्या वसुन्धरा'** भूमि का मान वहीं हो कि जब-तक इस राष्ट्र में प्राणियों का आस्तिक, धर्मप्रियता, भविष्य-विचार-शक्ति, कर्त्तव्यशीलता, नियमित-संयमित जीवन के व्यवस्थित समाजजीवी प्राणी नहीं होंगे ,तब तक हमें स्वतन्त्रता का जनतन्त्र राज्य कहना भी केवल विडम्बना मात्र

होगा एवं अपने को भुलावे में रखना होगा ।

अस्तु सब मिल कर भारतीय एक ऐसे संगठित समाज का निर्माण करें, जिससे भविष्य का दुःख समूल न रहें और सर्व सुख-सुविधा के साधन प्राप्य हों । अब हिन्दू समाज को पिछले भूतकालिक की भांति परमुखान्पेक्षी दूसरों के आश्रयी रह कर मुख नहीं ताकना हैं । विपरीत स्वावलम्बी स्वाभिमान, गौरवशीलता के कर्त्तव्य में अपना जीवन सुखी बनाने के प्रयत्न से ऐसे मार्ग-दर्शन को हस्तगत करें, जिससे आने वाली भावी पीढ़ियाँ उस पथ पर चल कर सुख, शान्तिमय निर्वाह कर सकें ।

गत १००० वर्ष पूर्व तक के ऐतिहासिक आधार से ज्ञात होता हैं कि जितने राजाओं से लेकर साधारण वर्ग पण्डित (ब्राह्मण), क्षत्रिय, वैश्य तक के घरों की सेवा करने वाले, पानी भरने वाले, रसोई बनाने वाले, परोसने वाले, बर्तन, घर वस्त्रादि की सफाई करने आदि की सब व्यवस्था जन्मजात शूद्र ही करते थे । अब भी जब तक शास्त्रीय लक्षणों को प्राथमिकता देकर **भारतीय दर्शन-व्यवस्था** नहीं की जायेगी, तब तक समाज का पतन इतिश्री नहीं होगा ।

आज ग्राम सरपंच से थानेदार, जिलाधीक्षक या अन्य कोई भी राज्य-कर्मचारी, राज्याधिकारी, मन्त्रिमण्डल तक का कोई महाशय अपनी यात्रा के विश्राम में कहीं अनुसूचित वर्ग के भोज-आश्रय को उसी रुप में स्वीकार करते हैं जो आज से सौ वर्ष पूर्व में था । अपितु जाति, धर्म, सम्पन्न श्रीमन् के घरों में ही डेरा लगाते हैं और चलाते हैं व्हिस्की-नारंगी मदिरा आदि के कश... आगे क्या लिखें....ऐसे सहभागियों की महिमा के गुणावगुण लिखने में संकोच से सहसा कलम रुक जाती हैं । .... अस्तु ऐसे शासक सत्तान्ध-मतान्धों से धर्म, जाति, देश, समाज या विश्व के व्यक्तीय जीवन आदि किसी का भी उद्धार-सुधार नहीं हो सकेगा ।

अब आगे की स्थिति आपकी समझ में आ गई होगी कि आज अपने ही शासन में बढ़ रही भ्रष्टाचारी, रिश्वतखोरी, अवसरवादिता, कुनबापरस्ती, प्रांतीयता, जातीयता इत्यादि दुर्गुणों को अवनति का मापदण्ड मान कर देश का भविष्य नैतिक पतन हो रहा हैं ।

नैतिक पतन से मानव-समाज-राष्ट्र अपनी सामाजिकता, आर्थिकता, आध्यात्मिकतापूर्ण, सर्वोन्नतिदायक शास्त्रीय आदर्श मर्यादा ज्ञानादि सर्वसाधन से च्युत होता हैं । इनका प्रभाव प्राकृतिक शक्तियों के बल का ह्रास करके विश्व को दैवी-प्रकोप, अतिवर्षा, अनावृष्टि, सुग्गा, टीडी, विद्युत्घात, चूहे तथा नाना रोगादि की ईति, भीति (भौतिक) उपद्रवों से शान्ति के विपरीत अशान्ति का वातावरण जो व्याप्य व विकृत रुप से प्रकट होता हैं, यहीं अस्तित्व हीनता के दर्शन है ।

आज का जातीय हौवा क्या हैं ?

भारत का एक उलझा हुआ प्रश्न है, जिससे सभी लोग त्रस्त हैं, वह हैं - **जाति** । इन जातियों को लेकर ही देश का विभाजन हुआ, साम्प्रदायिक निर्वाचन की माँग उठी और आज भी विभिन्न प्रदेशों में उठ रहीं हैं । जातियों को लेकर ही दंगे होते हैं, मनुष्य एक-दूसरे के खून का प्यासा हो जाता हैं और ऊपर से दुहाई देता हैं कि यह तो भगवान ने बनाया हैं । वर्ण-व्यवस्था को लेकर दुनिया में पर्याप्त झगड़े हैं । देश-विदेश में लाखों जातियाँ एवं उपजातियाँ प्रचलित हैं और न जाने कितनी ही जातियाँ अतीत के गर्भ में विलीन हो गई हैं ।

एक बात सर्वमान्य हैं कि जाति-व्यवस्था का अब कोई आधार/अर्थ नहीं रह गया हैं । पहले विविध व्यवसायों के आधार पर जातियाँ बनी

थी और अपने-अपने व्यवसाय के अनुकूल अभिमान भी रहता था। पर **अब तो व्यवसाय भी किसी जाति विशेष के लिए नहीं रह गए हैं** और न व्यवयास के अनुसार जातियाँ। वैसे तो यह अच्छी बात हैं, पर हमारे राजनीतिज्ञों को यह नहीं सुहाया। **अन्यथा सरकार को जाति के अनुसार आरक्षण और राजनीति में आरक्षण की आवश्यकता ही क्यों पड़ती ?** एक ओर तो समाजवाद का ढ़ोल पीटा जा रहा हैं और दूसरी ओर समता, समरसता में बाधक शक्तियों को पनपाने का दोगला व्यवहार हो रहा हैं। जाति अनुसार आरक्षण किये गये हैं। राजनीतिक क्षेत्र में ऐसे आरक्षण की कोई आवश्यकता ही नहीं हैं। **किसी भी आरक्षित-उम्मीदवारी के लिए उस उम्मीदवार को उसे अपनी अपनी जाति का प्रमाण पत्र देना पड़ता हैं अर्थात् उसे उसकी जाति का स्मरण दिलाया जाता हैं। जातियों को समाप्त करने का यह तो कोई उपाय नहीं। जातिरुपी शस्त्र की धार इससे और अधिक तेज होगी। शासकीय व्यवस्था में जाति अनुसार आरक्षण-व्यवस्था को समाप्त कर देना चाहिए।**

आज कल पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति/जनजाति आदि में बाबा अम्बेडकर भीमराव के विचार समर्थक उद्घोषक्, भाषण या व्यक्तिगत विचारों में कहते हैं - छोटी जातियों के इतिहास को मनुवादी ब्राह्मणों द्वारा छुपाया/दबाया गया हैं। **समाज के कर्णधार वे व्यक्ति कृपया उत्तर दें,** कि - क्या मनु ब्राह्मण थे ? नहीं वे मानव सृष्टि के प्रथम शासक, समाज व्यवस्था के शासन सूत्र व्यवस्थापक क्षत्रीय वृत्ति के थे। उन के द्वारा चार वर्ण या पाँच वर्ण मात्र ही **गुण कर्म स्वभाव के आधार से व्यवस्थित थे**। क्या आज के संविधान में मानव समाज को एकीकरण करने का कोई सूत्र (धारा) है ? विपरीत प्राचीन चार वर्णो की वर्ग व्यवस्था की अपेक्षा आज शासन शासित मोहरबन्द वर्गों का बाहुल्य होता जा रहा हैं। यथा - अनुसूचित जाति/जन

जाति, घुमक्कड़ जाति, आदिवासी, वनवासी, ओ.बी.सी (O.B.C.) के अतिरिक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, विश्नोई, जाट इत्यादि विविध और विभिन्न खेमों में बंटे हुए अनेक वर्ग अपना वर्चस्व, अधिकार, आरक्षण याचना या सुरक्षा में लगे हैं । **क्या यहीं हैं भारतीय संविधान का गौरव ?** क्या शासित नियमों के तहत दिये अधिकारों की रक्षा हो रहीं हैं ? किसी जातीय या व्यक्ति का जीवन सुरक्षित हैं ? नारी उत्पीड़न, गरीबों का शोषण, अस्पृश्यता का अन्त, इत्यादि **जो जो बुराइयाँ प्राचीन ऋषि-महर्षि पण्डितों, राजाओं पर थोपी जाती हैं, क्या आज उनका अन्त हो गया हैं ? क्या हो जायेगा ?** कदापि नहीं, अब आगे आने वाला भौतिक स्वार्थ काल सामन्तवाद के हाथों सर्वथा असुरक्षित होगा । सभी शोषक वर्ग के सामन्तवाद के पोषक राजा, ठाकुर, सत्तान्ध, अभिनेतागण नाचने-कूदने, खाने-पीने वाले मदोन्मत लोग सत्तासीन दलों (पार्टियों) में पहुँच चुके हैं, **अब होगा घोर अन्याय, गरीबों एवं सच्चे सीधे साधे लोगों का समाज शोषण** । जिसका कोई निदान, विधान नहीं होगा, **जिसकी लाठी उसकी भैंस** वाली कहावत सिद्ध होने जा रहीं हैं/जनता सावधान रहें ।

जन्म-जाति के अनुसार आरक्षण से जाति व्यवस्था को अधिक बल मिलता हैं । अतः जात-पाँत और उनसे उपजने वाले भेद-भुला देना ही श्रेयस्कर हैं । देश प्रगति के पथ पर अग्रसर हैं, नित नई दिशाओं में सफलता के मार्ग खुल रहे हैं । अतः जातिगत संकीर्णता से ऊपर उठकर ही इस विकृति पर विजय प्राप्त की जा सकती हैं ।

✻ नवम परिच्छेद ✻

सनातन संस्कृति की विशेषताऐं

भारत की संस्कृति '**देव संस्कृति**' कहलाती हैं। '**संस्कारों**' से बनी यह सर्वाधिक प्राचीन देव-संस्कृति मनुष्य को श्रेष्ठ संस्कार देती है। जैमिनी सूत्र (३.१.३) के अनुसार '**संस्कारो नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य**' अर्थात् संस्कार वह प्रक्रिया हैं - जिसके होने से कोई व्यक्ति या पदार्थ किसी कार्य के योग्य हो कर श्रेष्ठ योग्यता को पा जाता हैं। **मनुष्य के गर्भ में आने से पूर्व गर्भाधान-संस्कार और उसके बाद पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म (मुण्डन), कर्णबेध, उपनयन, वेदारम्भ (विद्यारम्भ), समावर्त्तन, विवाह, वानप्रस्थ, सन्यास एवं अन्त्येष्ठि (मरणोत्तर-संस्कार) सम्पन्न किये जाते हैं।** संस्कारों, मन्त्रों में जो शिक्षाऐं भरी पड़ी हैं, उनसे मुनष्य के गुण, कर्म एवं स्वभाव का निरन्तर परिष्कार होता चलता हैं और वह सच्चा इन्सान, महामानव, देवमानव, बन जाता हैं। **अकेले गर्भाधान संस्कार के माध्यम से न केवल जनसंख्या पर नियन्त्रण पाया जा सकता हैं, वरन् संस्कारवान् एवं मनचाही सन्तान पुत्र या पुत्री को जन्म दिया जा सकता हैं।**

भारत की संस्कृति मानवतावादी **हैं। इस संस्कृति के नष्ट होने से मानवता के नष्ट होने की पूरी सम्भावना हैं।** अतः इस संस्कृति की रक्षा करना प्रत्येक मानव धर्म का परम कर्त्तव्य हैं। यह संस्कृति मानवता के लिए एक महान् वरदान हैं और ऋषि-मुनियों के द्वारा दिया गया एक अनुपम एवं अमूल्य उपहार हैं।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्वेत्॥

उपहारमयी भारत की सनातन देव-संस्कृति का यह मंगल-मन्त्र सर्व-कल्याण और सृष्टि-कल्याण का उद्‌घोष हैं । कोटि-कोटि कल्पों की संकल्पमयी-यात्रा में नित्य-नित्य शत-शत वार वैदिक-ऋषियों ने इस मन्त्र के उच्चारण किए हैं । साथ ही एक ही कामना की हैं -

सं गच्छध्वं संवद्‌ध्वं सं वो मानांसि जानताम् ।

देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।। - ऋग्वेद १०/१९१/२

देवता, सुनागरिक पहले ही अच्छी तरह स्व-मर्यादा तथा तद्‌नुकूल कर्त्तव्यों को जानकर जिसकी उपासना करते हैं तथा निज-निज कर्मों में तल्लीन रहते हैं, वैसे ही तुम भी एक-दूसरे के साथ मिल कर - समीप रहकर काम करो, समान गति करो, समान मन्तव्य प्रकट करो, भेदभाव मत रखों । व्यक्तिगत विचारों को सर्वोपरि बतलाकर लोगों की दुर्गति मत करो । सब काम अनुशासन में रह कर करों ।

देव-तुल्य ऐसे मन्त्रोच्चारकों की सन्तानें, भारत-भूमि के संदेश-वाहक, विश्व के जिस किसी भी भाग में गए, कभी भी आक्रामक बनकर नहीं गए, वे ऋषि-सन्देश का गौरव-गान करते हुए गए । यह कहते हुए गए- **'यह मेरा है, वह पराया है - ऐसा सोचना लघुता का प्रतीक हैं । उदारता तथा समता ही उत्तम चरित्र के लक्षण हैं । वैसी प्रकृति वालों के लिए सम्पूर्ण विश्व ही कुटुम्ब हैं, एक परिवार हैं -**

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम् ।

उदार चरितानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।

वैदिक ऋषियों का मंगल-वाक्य एवं जीवन का महावाक्य (Life-motto) हैं -'**सर्वं खल्विदंब्रह्म**' सर्वत्र ब्रह्म हैं । सभी को समान जानकर और सभी को परमेश्वर स्वरूप मानकर मर्यादापूर्वक समान व्यवहार करना ही सर्वोपरि ज्ञान हैं । यही सनातन संस्कृति का सर्वोत्तम स्वरूप हैं, उपहारमयी देव-संस्कृति का मंगल-संदेश हैं । यही वैदिक साम्यवाद का

सत्य स्वरूप हैं जो कहतां हैं -

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।। - ऋग्वेद १०/१६१/४

किसी बात को कूंतने का, मूल्य स्थिर करने का ढंग एक-सा रहें । सभी के मन एक बात पर जमें । सभी का साहित्य-मान (Standard) एक जैसा हो । आचार-विचार, पठन-पाठन, जीवन-कार्य आदि पद्धतियाँ एक जैसी हो । इस तरह के साम्यभाव से ईर्ष्या का प्रसार नहीं होता हैं और जीवन सुखी होता हैं ।

प्रभु-प्रदत्त प्रकृति और सृष्टि की साधना, उपासना और आराधना ही वैदिक-ऋषियों एवं उनकी सन्तानों के जीवन-निर्वहन के उपादान रहें हैं । पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र-मंडल, अरण्य, पर्वत-श्रेणियाँ, जल-स्रोतों, वनस्पतियों, जीव-जन्तुओं आदि को ही पुरातन पुरूषों ने अपनी सेवाओं से संपोषित किया हैं । उन्हें समाहित करते हुए, कोटि-कोटि बार-बार उन्हें नमन करते हुए, ऋषियों ने मन्त्रोच्चारित किए हैं -

विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।

वेश्वानर बिभ्रति भूमिरग्निमिन्द्र ऋषभो द्रविणे नोदधातु ।। - अथर्ववेद १२/१/१/६

भू-देवी की अर्थात् पृथ्वी की वन्दना करते हुए ऋषियों ने केवल निज धरती के लिए ही नहीं, अपितु सकल-सृष्टि के लिए मंगल-कामना की है । इसी प्रकार अग्नि, वायु, जल, ऋतु, श्रद्धा, प्राण, गृह, यज्ञ, शक्ति आदि से सम्बन्धित सूक्तों में भी विश्व-मंगल की कामना अभिव्यक्त की गई हैं । सभी का मूल-मन्त्र **'श्रद्धा'** है, **प्रेम** है, **निष्ठा** है । ऋग्वेद में कहा गया है -

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यं दिनं परि ।

श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेहनः ।। - ऋग्वेद १०/१५१/५

प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्या के समय, नित्यप्रति ईश्वर-स्मरण आज

तक प्रबुद्ध भारतीय समाज में श्रद्धा से किया जाता हैं। यही जीवन की प्रेरक-शक्ति है। ऐसे प्राणों को अभय प्राप्ति से परिपोषित करने की कामना भी नित्य की जाती है, क्योंकि '**अभय**' प्राण ही सर्वत्र सिद्धि प्राप्त कर सकता हैं -

यथा मृत्युश्चामृतं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण भारिषः ॥ - अथर्ववेद

जिस प्रकार मृत्यु और अमृत न डरते हैं और न क्षीण होते हैं, हे मेरे नाथ ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ।

पंच तत्वों - जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष आदि की व्याख्या करते हुए वेदों में सूर्य-चन्द्र, ग्रह-नक्षत्र आदि के अन्योन्याश्रित पारस्परिक सम्बन्धों की भी व्याख्या प्रस्तुत की गई हैं। इनके परिणाम स्वरूप दिन-रात की क्रिया, ऋतु-परिवर्तन की क्रिया, दिवस, मास, वर्ष आदि की क्रिया जैसे अनुसंधानात्मक विषयों को भी वेदों में परिभाषित किया गया हैं ।

ज्ञान-विज्ञान के गूढ़तम तत्वों का प्रथम-ज्ञाता भारत विश्व के हर कोने में ज्ञान-संदेश लेकर ही गया । भारत ने कभी भी '**विश्व-गुरू**' कहलाने का स्वभाव व्यक्त नहीं किया । फिर भी संसार के वैज्ञानिकों ने, मनीषियों, चिन्तकों और विद्वानों ने '**वैदिक-ज्ञान**' की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है, साथ ही यह भी कहा - '**वैदिक संस्कृति के अनुपम ग्रन्थ वेद सृष्टि के प्रथम ज्ञान-ग्रन्थ हैं ।**'

ब्रह्ममयी एवं यज्ञमयी भारतीय संस्कृति ने सर्वदा विनम्रतापूर्वक कहा-

समाने मन्त्रः समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मंत्रमभिः सन्त्रेयवः, समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ - ऋग्वेद १०/१९१/३

सकल सृष्टि के लिए, सम्पूर्ण, मानव-समुदाय के लिए यह कितना मंगलमय-गान हैं। इन्हीं सत्यों की, इन्हीं तथ्यों की आधारशिला पर '**महान भारत**' का '**भव्य-सांस्कृतिक प्रासाद**' निर्मित हुआ हैं ।

सनातन देव-संस्कृति का ज्ञान कोष

१. (क) वेद-वेदांग उपनिषद्-पुराण

प्रभु वाणी '**वेद**' ऋषि-चर्चा बनकर आविर्भूत हुई थी। 'वेद' शब्द का अर्थ है-'**ज्ञान**'। ईश्वर-ज्ञान को **वेद-ज्ञान** कहते हैं। वेद-मन्त्रों का दूसरा नाम है-'**श्रुति**'। श्रुति का अर्थ हैं- **सुना हुआ**। ऋषियों ने प्रभु-वाणी सुनी थी। जो नित्य ज्ञान हैं, वह अनादि परम्परा से श्रवण के द्वारा ही प्राप्त हो सकता हैं। प्रभु-वाणी वसुधा की मंगलकामना की जाती हैं। वेदों में सकल सृष्टि की मंगलकामना की गई हैं। कई तरह से कहा गया हैं-'**सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिन दुःख भाग्भवैत्** ।। और **वसुधैव कुटुम्बकम्** ।' आदि-आदि ।

वेदों की उत्पति :- 'वेद' भगवान के '**निःश्वास**' हैं। सृष्टि के आदि में सृष्टा ने उन जगत्कर्ता के निःश्वासों को सुना था। सृष्टा के आदि प्रजापतियों, अन्यान्य ऋषि-महर्षियों ने भी सुना था। यह क्रम चलता रहा। इसी क्रम में प्रभु-ज्ञान पारम्परिक चलता रहा।

प्रभु ज्ञान स्वयं ब्रह्म स्वरूप श्रीकृष्ण ने पूर्वावतार में जगत-सृष्टा सूर्यदेव को दिया था -

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनु रिक्ष्वाकवेऽब्रवीत ।।
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
सकालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ।। - गीता ४/१-२

इस योग विद्या को पहले मैंने सूर्य देव विवस्वान् को दिया था, जिन्हें मनुष्यों के पिता '**मनु**' से इक्षवाकू तक पहुँचाया और यह परम विज्ञान गुरु-परम्परा द्वारा चलता रहा, किन्तु दीर्घ काल-क्रम में यह लुप्त हो गया।

सृष्टि की उत्पति सूर्य से मानी जाती हैं। अतः प्रभु-प्रदत्त ज्ञान-परम्परा का सूर्य से उद्भव सहज-स्वाभाविक हैं । इस श्रवण परम्परा के कारण **'वेद मन्त्र'** श्रुति कहे जाते हैं । ये **वेद-मन्त्र प्रणव ध्वनि** हैं। प्रवण-ध्वनि को **'अनाहत नाद'** भी कहा जाता हैं ।यह प्रणव बीत मन्त्र ही सतगुरु का अनमोल शब्द सृष्टि मूलक हैं। आज भी परम योगी कानों को बन्द करके अनाहदनाद सुना करते हैं या सुनने की चेष्ठा किया करते हैं । इसी प्रणव-ध्वनि से **'गायत्री-छन्द'** का आविर्भाव हुआ हैं । गायत्री-छन्द से ही **'वेदों'** की उत्पत्ति मानी जाती हैं। एक कथा में कहा गया हैं - **'सहस्त्रों वर्ष तप करके ब्रह्मा ने यह ध्वनि सुनी थी । आदित्य अग्नि वरुण यम आदि वैदिक ऋषियों ने भी तप करके ही यह ध्वनि सुनी थी ।'**

'गीता' में श्रीकृष्ण कहते हैं -

'अक्षराणामकारोऽस्मि' - (गीता १०/३५) मैं ही अक्षरों में ॐ कार हूँ, **'गायत्री छन्द सामहम्'** - (गीता १०/२२)मैं ही छन्दों में गायत्री हूँ, और **'वेदानांसामवेदोऽस्मि'** - वेदों में मैं सामवेद हूँ अर्थात् गायन हूँ। गायन परम्परा ही छन्द, श्रुति और मन्त्र हैं ।

वैदिक काल :- वैदिक-काल गणना के अनुसार सृष्टि-संवत् का एक अरब, पंचानवे करोड़, अठावन लाख, पचासी हजार पचास वर्ष हो (१,९५,५८,८५,०५०) चुके हैं। सृष्टि-संवत् की शेष आयु है - दो अरब, सोलह करोड़ (२,१६,००,००,०००) वर्ष । भूगर्भ शास्त्रियों के अनुसार पृथ्वी की शेष आयु सात करोड़ वर्ष हैं। रेडियम किरणों से वैज्ञानिकों के अनुसार सृष्टि की आयु दस करोड़ वर्ष हैं। वर्तमान सृष्टि-संवत् वैवस्त मनु से प्रारम्भ होता हैं । **अतः वेदों का रचनाकाल लगभग २ अरब वर्ष पुराना है । वेदों में जल-प्रलय की कथा का कोई वर्णन नहीं हैं ।** अतएव वैदिक-काल भी पिछले सात मन्वन्तरों से पूर्व का ठहरता हैं ।

जल-प्रलय की कथा पारसियों, स्कन्दनेवियनों, बेबोलोनिया आदि के ग्रंथों में भी वर्णित हैं। **अतः 'वेद' विश्व की समस्त सभ्यताओं के उदित होने के पूर्व की ज्ञान-गाथा है। वेद अनादि और नित्य हैं।** वेद, काल की परिधि से परे हैं। वेदों के काल की चर्चा करना अथवा कई मनोकल्पित या तर्क-कुतर्क भरी गाथायें कहना बाल-बुद्धि का प्रयत्न होगा। वैदिक काल के विषय में इतना कहकर ही सन्तोष कर लेना चाहिए -

हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता। कहहि सुनहि बहु विधि सब सन्ता॥

- रामचरति मानस १/३२/७

कलपभेद हरिचरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए॥

- रामचरति मानस १/३२/७

जो न काल-परिधि में बन्धता, 'वेद' वही कहलाता।
प्रभु अनन्त, प्रभु-ज्ञान अनन्ता, कोई जान न पाता॥

वेदों का स्वरूप :- प्रायः सामान्य लोग **'वेदत्रयी'** का नाम लेकर केवल तीन ही वेद मानते हैं, किन्तु **'वेद' एक हैं, इसके तीन काण्ड हैं - ज्ञान काण्ड, उपासना काण्ड तथा कर्म काण्ड**। त्रेतायुग में जब मनुष्य का साधन, तप एवं ध्यान से हटकर यज्ञ-प्रधान हो गया तो वेदों को चार भागों में बाँट दिया गया। यज्ञ में ऋग्वेद, से **'होता'**, यजुर्वेद से **'अध्वर्यु'**, सामवेद से **'उद्‌गाता'** और अथवर्वेद से **'ब्रह्मा'**, अपने वंश से **'यज्ञ'** का **'कर्म-पात्र'** बन गया और **'वेद-मन्त्र'** चार भागों में विभाजित हो गए।

द्वापुर युग में महर्षि व्यास ने पुनः इन सबकों संचयित कर **'त्रयी विद्या'** का वर्णन किया -

त्रयी विद्यामवेक्षेत वेदे सूक्तमथांगतः।
ऋक्सावर्णाक्षरता यजुषोऽथर्वणस्तथा॥ - महाभारत शान्तिपर्व १३५

अर्थात् वेदों में तीन प्रकार के मन्त्र हैं - विनियोग, गायन एवं गद्य । आदि शंकराचार्य ने पुनः इन्हें संकलित किया ।

हमारे प्राचीन वाङ्मय में वेद ज्ञान-राशि को विविध नामों से अभिव्यक्त किया गया हैं । उनमें से प्रमुख नाम व अर्थ निम्न हैं -

वेद = वेद का अर्थ है ज्ञान ।

मन्त्र = मन्त्र का अर्थ है मनन करने का विचार ।

श्रुति = श्रुति का अर्थ हैं - श्रवण से प्राप्त ज्ञान ।

निगम = अनुभूति जन्य अभिव्यक्ति जिन ग्रन्थों में हैं, वे धर्मशास्त्र ।

छंदस् = नाद रूप से सम्पूर्ण वेद स्वरविज्ञान पर आधारित हैं ।

आम्नाय= मानवीय उन्नति के उपदेशों का समुच्चय हैं ।

चार वेद :- व्यापक अर्थ में तो वेद का अर्थ निरपेक्ष ज्ञान हैं, परन्तु उस निरपेक्ष ज्ञान की अनुभूति अपनी साधना व तपस्या द्वारा भिन्न-भिन्न ऋषियों ने की और अपने उस साक्षात्कार को वाणी द्वारा मन्त्रों के रूप में, ऋचाओं के रूप में अभिव्यक्त किया । वेदों में जो अभिव्यक्ति हैं, वह तीन प्रकार से है - **वैदिक पद्य को ऋक् या ऋचा कहते हैं । वैदिक गद्य को यजुष् कहा गया और जो गीतात्मक छन्दरूप पद हैं, उन्हें साम कहा गया** । इस दृष्टि से **वेद राशि पद्य, गद्य व गेय तीन रूपों में** होने से प्राचीन काल में **'वेदत्रयी'** शब्द का प्रयोग होता था । **छान्दोग्य उपनिषद्** के (१/१/१) मन्त्र द्वारा ओ३म् (ॐ) शब्द से तीन व्यावहतियों का उल्लेख आया हैं कि -

(क) जो नियत संख्या के अनुसार होते हैं, उन मन्त्रों को **'ऋक्'** कहते हैं ।

(ख) जिन के अक्षर आदि की कोई नियत संख्या या क्रम न हो, उसे **'यजु'** कहते हैं ।

(ग) ऋग संज्ञक मन्त्रों में जो गीत प्रधान हैं और गाये जा सकते हैं, उनको **'साम'** कहते हैं ।

ऐसे ही **प्रश्नोपनिषद्** में ५/७ द्वारा त्रय वेद (ऋक्, यजु, साम) का कथन हुआ हैं। मनुस्मृति द्वारा भी यहीं कहा गया हैं -

ॐकार चाप्युकारं च मकांरं च प्रजापतिः ।

वेद त्रयान्निरदुहद्द भूभुर्व स्वरितीति च ।। - मनुस्मृति २/७६

अर्थात् - ब्रह्मा ने तीनों वेदों से अकार, उकार, मकार और भूर्भुवः स्वः यह तीन व्याहृति सार निकाले हैं।

वेद गायत्री दोहन द्रष्टव्य - मनु २/७७ से ८१ तक, श्री मद्भागवद् गीता द्वारा भी तीन वेदों का प्रमाण कथन हुआ है।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।

वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ।। - गीता ९/१७

अर्थात् - मैं ही सम्पूर्ण जगत् का **धाता** अर्थात् धारण करने वाला, **पिता** अर्थात् पालन करने वाला, **माता** अर्थात् उत्पन्न करनेवाल, **पितामहः** अर्थात् मूल उद्गम हूँ, जिसमें सभी प्रवेष पाते हैं और जानने योग्य पवित्र ओंकार अर्थात् **अहम् आकारः इति ऊँकारः** वह परमात्मा मेरे स्वरूप में है, **सोऽहं, तत्त्वमसि** इत्यादि एक दूसरे के पर्याय हैं, ऐसा जानने योग्य स्वरूप मैं ही हूँ। **ऋक्** अर्थात् सम्पूर्ण प्रार्थना, **साम** अर्थात् समत्व दिलाने वाली प्रक्रिया, **जुयः** अर्थात् यजन की विधि विशेष भी मैं ही हूँ। योग अधिष्ठान के उक्त तीनों आवश्यक अंग मुझसे होते हैं।

पुनश्च -

त्रैविद्या मां सामपाः पूतपापायज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।

ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ।। - गीता ९/२०

अर्थात् - आराधना विद्या के तीनों अंग - ऋक्, साम और यजु अर्थात् प्रार्थना, समत्व की प्रक्रिया और यजन का आचरण करने वाले, सोम अर्थात् चन्द्रमा के क्षीण प्रकाश को पानेवाले, पाप से मुक्त होकर पवित्र हुए पुरुष उसी यज्ञ की निर्धारित प्रक्रिया द्वारा मुझे **इष्टरूप में**

पूजकर स्वर्ग के लिये प्रार्थना करते हैं। यहीं असत् की कामना हैं, इससे वे मृत्यु को प्राप्त होते हैं, उनका पुनर्जन्म होता हैं, जैसा पिछले श्लोक में योगेश्वर ने बताया। वे पूजते मुझे ही हैं, उसी निर्धारित विधि से पूजते हैं, किन्तु बदले में वे स्वर्ग की याचना करते हैं। वे पुरुष अपने पुण्य के फलस्वरूप इन्द्रलोक को प्राप्त होकर, स्वर्ग देवताओं के दिव्य भोग भोगते हैं, अर्थात् यह भोग में ही देता हूँ।

(द्रष्टव्य विशेष प्रमाण मनुस्मृति ७/३७, ३/१, २/७६, ७८, ८१, १२/१११, ११३)

इन तीनों मन्त्रों के रूप समूह को **सूक्त** कहा गया, जिसका अर्थ होता हैं **उत्कृष्ट कृति**। इन मन्त्रों का संकलन आगे चलकर वेद के रूप में जाना जाने लगा।

वेद मन्त्रों का संकलन आजकल जिस रूप में मिलता हैं, उसे **संहिता** कहा जाता हैं। पूर्व में एक ही वेद ज्ञानराशि थी, जो परम्परा से गुरू द्वारा शिष्य को, पिता द्वारा पुत्र को श्रुति या श्रवण द्वारा प्राप्त होती रही। अतः उन्हें **श्रुति** भी कहते हैं। विविध ऋषि वंशों में जो सूक्त परम्परा से चले आ रहे थे, उस एक वेद राशि को सर्वसामान्य लोगों की सुविधा के लिए महर्षि वेदव्यास ने चार भागों में विभाजित किया, जिसे हम लोग चार वेदों के रूप में जानते हैं। यह हैं - १. ऋग्वेद, २. यजुर्वेद, ३. सामवेद तथा ४. अथर्ववेद।

वेदों का बाह्य परिचय

१. **ऋग्वेद** - इस वेद में १० मण्डल, ६४ अध्याय, १०२८ सूक्त तथा १०५५२ मन्त्र हैं।

२. **यजुर्वेद** - इसके दो भाग हैं - शुक्ल यजुर्वेद तथा कृष्ण यजुर्वेद। इसमें ४० अध्याय, ३०३ अनुवाक् तथा १९७५ कण्डिका या मन्त्र हैं।

3. **सामवेद** - इसमें १८७५ मन्त्र हैं, परन्तु नये मन्त्र केवल ७५ हैं। शेष मन्त्र ऋग्वेद से लिए गए हैं। पूर्वार्चिक भाग में आग्नेय, ऐन्द्र, पावमान्

आरण्यक नामक चार काण्ड एवं महानाम्नार्चिक पाठ है, जिस मे छः प्रपाठक (अध्याय) हैं और उत्तरार्चिक भाग में नौ प्रपाठक के अन्तर्गत २१ अध्याय हैं ।

४. अथर्ववेद -इसमें २० काण्ड, ७३१ सूक्त तथा ५९७७ मन्त्र हैं । सभी वेद मन्त्रों के साथ ऋषि, देवता तथा छन्द का उल्लेख रहता हैं ।

ऋषि = उस मन्त्र के द्रष्ट्य, जिन्होंने उस मंत्र द्वारा अनुभव-लाभ प्राप्त किया ।

देवता = उस मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय और फलदाता ।

छन्द = उस मन्त्र के अक्षर एवं स्वर रचना को इंगित करता हैं ।

वेदों के द्रष्टा ऋषि :- वेदों के मन्त्रद्रष्टा ऋषि अनेक हुए । इनमें पुरुष भी हैं, स्त्रियाँ भी हैं । लगभग ३०० से अधिक ऋषि हुए हैं ।

प्रमुख पुरुष मन्त्रद्रष्टा हैं – जैसे वशिष्ठ, विश्वामित्र, अत्रि, अंगिरा, भृगु, भारद्वाज, वामदेव, कश्यप, नारद, मनु, गृत्समद, दीर्घतमस्, वैवस्वत मनु, शिवि, ओशीनर, प्रतर्दन, मधुच्छन्दा, देवापि, मेघातिथि, शुनःशेष, कण्व, गौतम, कुत्स, कुक्षीवान् आदि ।

प्रमुख महिला मन्त्रद्रष्टा – श्रद्धा, रोमशा, लोपामुद्रा, विश्वारा, अपाला, घोषा, यमी, इन्द्राणी, उर्वशी, दिक्षिणा, सूर्या आदि ।

सनातन संस्कृति के अनुसार 'वेद' ज्ञान हैं अर्थात् 'विद्या' है । विद्याएं कुल ३२ है । यथा - ४ वेद, ४ उपवेद, ६ वेदांग, ६ दर्शन तथा १२ देशादि धर्म ।

४ **उपवेद** - आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, तन्त्रवेद (ज्योतिज्ञान) ।

६ **वेदांग** - शिक्षा, कल्प, निरूक्त, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष ।

६ **दर्शन** - मीमांसा, न्याय, सांख्य, वेदान्त, योग एवं वैशेषिक ।

१२ **देशादि धर्म** - इतिहास, पुराण, स्मृति, नास्तिकमत, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, शिल्पशास्त्र, काव्यशास्त्र, देशभाषा, अवसरोक्ति, यवनमत और देशादि धर्म ।

मूल रूप से वेदों का सम्बन्ध उपवेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण से हैं । आयुर्वेद को ऋग्वेद का उपवेद कहा गया हैं । गान्धर्ववेद को सामवेद का उपवेद माना जाता हैं । तन्त्रवेद या ज्योतिर्वेद को अथवर्वेद का उपवेद माना गया हैं ।

उपनिषद-पुराण :- उपनिषद् और पुराण के विषय में दो मत हैं- एक मत मे उपनिषद् एवं पुराण समकालीन अर्थात् वैदिक कालीन रचनाऐं हैं, दूसरे मत में दोनों ही वेदों की उत्तरकालीन रचनाएं हैं। यह तर्क-वितर्क का विषय हैं। उपलब्ध तथ्यों के अनुसार **'भाष्य'** या **'वेदभाष्य'** की प्रथा रावण-कालीन मानी जाती है। रावण ने ही खण्डन-मण्डन की प्रथा प्रारम्भ की थी।

जहाँ तक **'स्मृति'** की बात हैं, वह अपने आप में स्पष्ट है। स्मृति का अर्थ हैं - **'स्मरण' करके कही गई या लिखी गई।** ऋषियों ने एकाग्र अन्तःकरण में वेद-मन्त्र के जिस अर्थ-स्वरूप के दर्शन किए और उसे अभिव्यक्ति प्रदान की, वही **'स्मृति'** के नाम से जानी गई। भगवान व्यास ने उन्हीं उपदेशों को पुराणों में संकलित कर दिया और इस प्रकार ऐसे उपदेश **'पुराण'** कहलाए। पुराणों में पुराने चरित्र तथा प्राचीन भारतीय इतिहास के उपदेश वर्णित हुए है।

महर्षि पाराशर के पुत्र भगवान श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास ने १८ पुराणों को संकलित किया था। जम्बू द्वीप में जन्म होने के कारण वे **द्वैपायन** कहलाए, घन नीलवर्ण होने के कारण वे **कृष्ण द्वैपायन** कहलाए, वेदों को संकलित करने के कारण ही वे **कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास** कहे जाते है। उन्होनें चार वेद का भाष्य, उत्तर मीमांसा, अठारह पुराण तथा महाभारत कथा का संकलन किया। श्रीकृष्ण द्वैपायन के इस ग्रन्थ को **'कार्ष्ण वेद'** भी कहा जाता हैं। **'भारतः पंचमो वेदः'** अर्थात् महाभारत पाँचवाँ वेद हैं, उक्ति प्रसिद्ध हैं। इसमें प्रसिद्ध 'कुरुवंश' का इतिहास हैं। धर्म,अर्थ, काम और मोक्ष रूप **'पुरूषार्थ चतुष्ट्य'** का सार इसमें निहित हैं। यथा -

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च पुरुर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥ - व्यास

महर्षि वेद व्यास से पूर्व महर्षि आंगिरस ने मूल वेद से कुछ छन्द लेकर अलग ग्रन्थ संकलित किया था, जो कि 'आंगिरसवेद' कहा गया। बाद में वहीं 'अथवर्वेद' कहलाया। महर्षि व्यास ने वेद की ऋचाओं को एक में, गायन योग्य मन्त्रों को दूसरे में और गद्य-मन्त्रों को तीसरे में संकलित कर उन्हें अलग से ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद नाम दिया। इस प्रकार चार वेदों की परम्परा का प्रारम्भ हुआ। आदि शंकराचार्य ने तप करके बद्रीनाथ धाम में भगवान वेदव्यास के साक्षात् दर्शन किए और उनसे चारों वेदों का प्रसाद प्राप्त किया था।

महर्षि वेदव्यास ने ही प्राचीनकाल से चली आ रही पौराणिक कथा परम्परा को '**अट्ठारह पुराणों**' में कथाओं के अनुरूप वर्णित किया। वे मूल रूप में श्लोकों की संख्या के आधार पर निम्न प्रकार से वर्णित किए जा सकते हैं -

१. ब्रह्म पुराण	- १०,००० श्लोक	२. पद्म पुराण	- ५६,००० श्लोक
३. विष्णु पुराण	- २३,००० श्लोक	४. शिव पुराण	- २४,००० श्लोक
५. श्रीमद्भागवत पुराण	- १८,००० श्लोक	६. नारद पुराण	- २५,००० श्लोक
७. मार्कण्डेय पुराण	- ९,००० श्लोक	८. अग्नि पुराण	- १५,४०० श्लोक
९. भविष्य पुराण	- १४,५०० श्लोक	१०. ब्रह्मवैवर्त पुराण	- १८,००० श्लोक
११.लिंग पुराण	- ११,००० श्लोक	१२. वाराह पुराण	- २४,००० श्लोक
१३.स्कन्द पुराण	- ८१,००० श्लोक	१४. वामन पुराण	- १०,००० श्लोक
१५.कूर्म पुराण	- १७,००० श्लोक	१६. मत्स्य पुराण	- १८,००० श्लोक
१७.गरुड़ पुराण	- १९,००० श्लोक	१८. ब्रह्माण्ड पुराण	- १२,००० श्लोक

स्मृति :- व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्रहित में प्रभु-प्रदत्त वाणी का स्मरण ही '**स्मृति**' हैं। अर्थात् **श्रुति** का स्मरण **स्मृति** हैं, जो प्रभु-कृपा से प्रभु स्वरूप विभूतियों को प्राप्त हुए थे। वेद-पुराण के समान ही व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय मार्ग-दर्शन के लिए स्मृतियों

का स्थान उच्चतम हैं । कुल २० स्मृतियाँ उपलब्ध हैं, वैसे २७ कही जाती हैं -

मनु-स्मृति	अत्रि-स्मृति	विष्णु-स्मृति	याज्ञवल्क्य-स्मृति
उशना-स्मृति	अंगिरा-स्मृति	यम-स्मृति	आपस्तम्ब-स्मृति
संवर्त-स्मृति	कात्यायन-स्मृति	बृहस्पति-स्मृति	पराशर-स्मृति
व्यास-स्मृति	शंख-स्मृति	दक्ष-स्मृति	गौतम-स्मृति
शातातप-स्मृति	वशिष्ठ-स्मृति	लखित-स्मृति	भारद्वाज-स्मृति

इनमें **मनुस्मृति** ही प्रधान हैं, क्योंकि इसके द्वारा ही गर्भाधान से लेकर परलोक तक के लिए मार्ग-दर्शन हैं । सृष्टि से लेकर प्रलय तक की व्यवस्था का व्यापक विवेचन हैं । सनातन धर्म के निर्णय में मनुस्मृति का प्रधान स्थान हैं, किन्तु विदेशी शासन काल में विद्वान पण्डितों द्वारा लोभ या मृत्यु भय के यातना प्रवाह से कई प्रक्षिप्त श्लोक मिलावट कर दिये गए हैं, जो मानवता के विरुद्ध होने से विचारणीय हैं ।

उपनिषद् :- श्रुति-स्मृति, वेद-पुराण के साथ 'उपनिषद्' का भी भारतीय जीवन में महत्वपूर्ण स्थान हैं । **'उपनिषद्'** शब्द दो धातुओं अर्थात् दो शब्दों - 'उप' और **'नि'** में **'सद्'** एवं **'क्विप्'** प्रत्यय करने पर बना हैं । 'कठोपनिषद्' में विद्वान आचार्यों द्वारा विवेचन करते हुए लिखा हैं - **'जिससे मुमुक्षुओं की संसार-बीजभूत-अविद्या नष्ट होती हैं, जो विद्या उन्हें ब्रह्म-प्राप्ति करा देती हैं, जिससे दुःख का सर्वथा शिथिलीकरण हो जाता हैं, वही आध्यात्मिक विद्या** 'उपनिषद्' **हैं ।'**

ऊपर कहा जा चुका हैं कि चारों वेदों की कुल शाखाएं ११३० हैं । प्राचीन साहित्य में स्पष्ट किया जा चुका हैं कि उतनी ही **'कल्प सूत्र'** 'उपनिषद्' थीं । किन्तु दुर्भाग्य से आज केवल १०८ उपनिषदें ही सार रूप से उपलब्ध हैं । इसमें १० का ऋग्वेद से, १९ का यजुर्वेद से, ३२ का कृष्ण यजुर्वेद से, १६ का सामवेद से और ३१ का अथवर्वेद से सम्बन्ध हैं । कुछ अत्यन्त चर्चित

उपनिषदों के नाम हैं - कठोपनिषद्, ईशावास्योपरिषद्, केनोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, तैत्तिरीय, प्रश्न, मुण्डक, श्वेताश्वर, माण्डुक्य, आरण्यक, ऐतरेय, वृहदारण्यक आदि ।

वेद-पुराण, स्मृति-उपनिषद् चाहे आज जिस रूप में भी उपलब्ध हैं, अत्यन्त विस्तृत हैं । कालान्तर में **'वेदाध्ययन'** का **'अधिकार'** समाज के एक महत्वपूर्ण वर्ग **'शूद्र'** से छिन गया था । समाज की पीड़ा को महर्षि वेदव्यास ने हृदयंगम करके एक नए वेद की रचना की -**'महाभारत'** । यह **'पंचमवेद'** कहलाया । श्रुति और स्मृति का सिद्धान्त-सार इसमें संकलित कर दिया गया । इस सम्बन्ध में एक कथा हैं कि **'भगवान वेदव्यास बोलते जाते थे और प्रथम पूज्य श्रीगणेश लिखते जाते थे ।'** वर्तमान समय में **'गीता'**, **'रामायण'**, और **'महाभारत'** को पढ़ने का अधिकार समान रूप से सभी वर्गों को हैं ।

वैदिक भाषा :- 'वेद-पुराण', 'स्मृति', 'उपनिषद्', 'गीता', 'रामायण' 'महाभारत' की मूल भाषा **'संस्कृत'** हैं । आज ये सभी ग्रन्थ क्षेत्रिय तथा विश्व की विभिन्न भाषाओं में भी उपलब्ध हैं । विश्व के भाषा वैज्ञानिकों का मत हैं :-

"संसार की मूल भाषा एक ही रही होगी । फिर ईश्वर अपनी ही सन्तानों को अलग-अलग भाषा क्यों देने लगे ?"

प्रसिद्ध जर्मन विद्वान **'मैक्समूलर'** का यही मत हैं । संस्कृत के गहन अध्ययन के पश्चात् उन्होंने ऐसे विचार व्यक्त किए थे । साथ ही कहा था कि **'जब विश्व का प्रथम ग्रन्थ वेद हैं, तो विश्व की अन्य भाषाओं का उद्‌गम भी संस्कृत से ही सम्भव हैं ।'**

विश्व के भाषा वैज्ञानिक एवं अन्य वैज्ञानिक इस तथ्य पर लगभग एक मत हैं कि **संस्कृत भाषा** एवं वेद सर्वाधिक प्राचीन **भाषा-कोष** तथा

ज्ञान-कोष हैं। इसकी पुष्टि में विद्वान मैक्समूलर द्वारा महारानी विक्टोरिया को लिखे गये एक पत्र का उद्धारण सार्थक होगा -

"The Rigvedas are the Hindu Sacred writings which are probably the oldest literary composition in the world History. And if I were asked myself from what literature we here in Europe, we who nurtered almost exclusively on the thoughts of the Greeks and Romans and of the sometic race the Jewish, may draw that corrective which is most wanted in order to make our inner life more perfect, more universel, in fact more truly human a life not for this life, again I should point to India."

(Letter addressed to Queen Victoria in the year 1858 by a great German Scholar-Maxmuller.)

(यदि मैं अपने आप से पूछूँ- किस साहित्य का आश्रय लेकर सेमेटिक, यूनानी और रोमन विचारधारा में बहते हुए यूरोपीय अपने आध्यात्मिक जीवन को अधिकाधिक विकसित, अत्यन्त विश्वजनीन, उच्चतम मानवीय मूल्यों के योग्य बना सकेंगे-जो केवल इहलोक से सम्बद्ध नहीं हो, अपितु शाश्वत एवं दिव्य हो, तो मैं बार-बार भारतवर्ष की ओर ही संकेत करूँगा।)

(विद्वान मैक्समूलर द्वारा महारानी विक्टोरिया के पत्र का अंश - १८५८)

निर्विवाद रूप से कहा जा सकता हैं कि वैदिक ऋषियों द्वारा संकलित प्रभु-वाणी का दिव्य संदेश वेद समस्त मानव समुदाय के लिए अनुपम ज्ञान-उपहार हैं।

(ख) गायत्री

ॐ भूः भुवः स्वः तत्सवितुर्रेयणम् ।

भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोद्यात् ॥ -गायत्री मन्त्र

सुगम **अर्थ** - हम सब जगतसृष्टा उस देवता के वरण करने योग्य तेज का ध्यान करते है, जो हमारी बुद्धियों को प्रेरित करें ।

गायत्री मन्त्र अथवा गायत्री छन्द का प्रारम्भ 'ॐ' से होता हैं । 'ॐ' सृष्टि की **प्रथम ध्वनि** हैं । अतः यह **ध्वनि ब्रह्म** (**प्रणव**) हैं । ॐ सृष्टि का प्रथम **अक्षर** हैं अर्थात् यही **अक्षर-ब्रह्म** हैं । यही आदि, अनादि, अखण्ड, अगोचर गुरू शब्द हैं । विश्वरूप श्रीकृष्ण कहते हैं - 'अक्षराणामकारोऽस्मि' (गीता १०/३३), अक्षरों में मैं 'ॐ' कार हूँ । ओंकार को ही **प्रणव** कहते हैं । अर्थात् गायत्री छन्द **प्रणव-मन्त्र** हैं । श्रीकृष्ण आगे कहते हैं - **'गायत्री छन्द सामहम्'** (गीता १०/३५), छन्दों एवं मन्त्रों में मैं गायत्री हूँ अर्थात् **गायत्री** ही **पूर्ण ब्रह्म मन्त्र** हैं और **प्रणव-मन्त्र** हैं । गायत्री **सामवेद** के उत्तरार्चिक १३ वें अध्याय के तृतीय खण्ड के तीसरे मंत्र में **सामरूप** में वर्णित हैं । श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं - **'वेदानांसामवेदोऽस्मि'** (गीता १०/२२) अर्थात् वेदों में मैं **सामवेद** हूँ अर्थात् गीता-मन्त्र हूँ, गायन मन्त्र हूँ । सामवेद मे **प्रणव** सम्बन्धी **गेय** मन्त्रों का संकलन हैं । इस प्रकार **प्रणव-मंत्र** गायत्री ही **प्रथम वेद मंत्र** हैं । इस मन्त्र के मन्त्र प्रवर ऋषि **विश्वामित्र** हैं, जिन्होंने इस ज्ञान को भगवान भास्कर से प्राप्त किया था । निरन्तर तप के पश्चात् उन्हें यह श्रुति-ध्वनि अनाहत-नाद के रूप में प्राप्त हुई थी । सर्वप्रथम यह ध्वनि **भुवन भास्कर** ने भगवान श्रीकृष्ण से योग-ज्ञान के रूप में प्राप्त की थी ।

गायत्री-मंत्र का उल्लेख वेदों में स्थान-स्थान पर मिलता हैं । **ऋग्वेद** के ३/६२/१०वें मंत्र में गायत्री **ऋक्-रूप** में वर्णित हैं । यजुर्वेद के

३/३५, ३०/२ एवं ३६/३ में **यजु:रूप** में वर्णित हैं।

गायत्री २४ अक्षरों वाला मंत्र हैं। गायन किए जाने वाला छन्द हैं। यह वेदत्रयी अर्थात् कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड तथा उपासना काण्ड को परिभाषित करने वाला पूर्ण मंत्र हैं, क्योंकि इसमें ऋग्वेद का **ऋक्-रूप**, यजुर्वेद का **यजु:रूप** और सामवेद को **सामरूप** तीनों ही समाहित हैं। यह **गायन-त्रयी** होने के कारण ही **गायत्री** हैं। यह अन्य मंत्रों के समान ही एक प्रमुख वैदिक मन्त्र हैं।

मन को **त्राण** देने वाली शक्ति को ही **मंत्र** कहते हैं। मन को त्राण देने वाली शक्ति केवल परमात्मा हैं, जो **प्रणव** स्वरूप हैं। फलतः यह **प्रणव-मन्त्र** हैं।

शास्त्रों का कथन हैं कि –**'मंत्र एक सेतु हैं।'** सेतु अर्थात् नदी-नालों को सुगमता से पार कराने वाला साधन। इस प्रकार दैवी-जगत तक पहुँचानें के लिए, प्रणव से साक्षात्कार कराने के लिए जो साधन हैं, वही **मंत्र** हैं, वही **प्रणव-मंत्र** गायत्री हैं। **मनुस्मृति** में कहा गया है –

योऽधीतेऽहन्येतांस्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः।

स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्॥ – मनुस्मृति २/८२

तीन वर्षों तक तपः साधना के द्वारा जो प्राणी **गायत्री-मंत्र** का जाप करता हैं, उस जापक को परब्रह्म की प्राप्ति होती हैं।

मंत्र-शक्ति भक्त या सामान्य प्राणी की साधना-शक्ति हैं।मंत्र चाहे **पंचाक्षरी, षड्ाऽक्षर** या द्वादशाक्षरी हो या **प्रणव-मंत्र गायत्री** हो, उसमें प्रभु शक्ति एवं सर्व-मंगल शक्ति तथा सर्व-कल्याण शक्ति विद्यमान रहती हैं। वैदिक ऋषि स्वभाव से ही **परमार्थ-प्रिय** थे। प्रभु-विरचित सृष्टि एवं सृष्टि के जड़-चेतन का कल्याण ही उनकी तपः साधना का प्रधान लक्ष्य था। फलतः **श्रुति** के रूप में प्राप्त अनाहत-नाद् को उन्होंने **गायत्री-मंत्र** या **प्रणव-मंत्र** के रूप में जन-कल्याण के लिए उद्घोषित किया।

गायत्री माता :- सनातन संस्कृति मातृरूपिणी हैं । कर्म, ज्ञान, भक्ति, शक्ति, प्रेम सभी मातृस्वरूप हैं । वही कर्ममयी हैं, वही ज्ञानमयी हैं, वहीं प्रेममयी हैं, वहीं ममतामयी है और वही शक्तिस्वरूपा भी हैं । फलतः वैदिक ऋषियों ने **गायत्री माता** की परिकल्पना करते हुए उनके स्वरूप की अवधारणा में उन्हें **पाँच मुख, दश मुख** से सुशोभित करके अनन्त फलदायिनी माता कहा हैं । उनका स्वरूप सूर्य के समान तेजोमय हैं । सूर्य को **सविता** भी कहते हैं । अतः गायत्री मंत्र **सविता** मंत्र भी हैं । उन्हें वेदमाता भी कहा गया हैं । वेदमाता ही ज्ञानमाता हैं । ज्ञानमाता ही सरस्वती हैं । अतः गायत्री माता भी तेजोमयी शक्तिस्वरूपा **सरस्वती** हैं । ऐसी मातृ शक्तिरूपा गायत्री माता प्राणी की सर्वकामना पूर्ण करती हैं और अन्तरात्मा में अनन्त ज्योति विभासित कर अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करती हैं ।

संसार में कोई भी प्राणी दुःख की कामना नहीं करता । मानव के पुरूषार्थ-धर्म, अर्थ, काम का मुख्य लक्ष्य **दुःखों से निवृत्ति** अर्थात् **मोक्ष (परमानन्द)** की प्राप्ति हैं । कहा गया हैं –**'त्रिविधदुःखात्यन्त** निवृत्तिरत्यन्त **पुरूषार्थः'** (कपिल-साख्यदर्शन) और **'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति'** – आत्मानन्द सबको प्रिय हैं । अतः आत्मा ही दर्शनीय हैं, श्रवणीय हैं, मननीय हैं । वही परमानन्दस्वरूप हैं, **सत्-चित्-आनन्द** का स्वरूप हैं, परब्रह्म सच्चिदानन्द हैं । गायत्री माता का मंत्र उसी स्वरूप की चिन्तन-शक्ति हैं ।

गायत्री-मंत्र विवेचन :- वैदिक ऋषियों ने गायत्री-मंत्र को **सत्-चित-आनन्द** की साधना-उपासना का **साध्य-सेतु** कहा हैं । मंत्र त्राण प्रदान करने वाला होता हैं । त्राण प्रदान करने वाला **परमात्मा** कहलाता हैं । वह त्राता **तर्क-वितर्क** (Reasoning) से परे होता हैं । तर्क-वितर्क से

सत्य का ज्ञान मिल सकता हैं। सत् का आंशिक-ज्ञान (Fragmentary) पूर्ण नहीं हो सकता। चित् और आनन्द के मिश्रण के बिना सत् की सम्पूर्ण अनुभूति (Realization) नहीं हो सकती। वैदिक ऋषियों ने समग्र रूप में सामग्रिक (Integral) ज्ञान प्राप्त कर उसकी अनुभूति भी प्राप्त की थी। **गायत्री-मंत्र** वही अनुभूति हैं।

फलतः वैदिक ऋषियों ने कहा हैं - **भूः भुवः स्वः** - चतुर्दश भुवनात्मक इस समस्त ब्रह्माण्ड के प्रसविता हैं, उनकी **वरणीय ज्योति** का हम आव्हान करते हैं।

ऋषि स्वयं से प्रश्न करते हैं -'**हम ध्यान क्यों करते हैं ?**' यह तर्क-वितर्क नहीं, यह सहज जिज्ञासा हैं। सहज उत्तर मिलता हैं -'क्योंकि वे (परमात्मा) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के चालक हैं। वे ही हमारी बुद्धि के प्रचोदयिता हैं अर्थात् प्रेरणाकर्त्ता हैं।'

इसके पश्चात् ही सामान्यजनों में वैसे परमात्मा के जानने, देखने और साक्षात् दर्शन करने की जिज्ञासा जागती है। **साकार परमात्मा के दर्शन-साक्षात् परमात्मा के दर्शन हैं।**

ऋषि विवेचन करते हैं - 'सत्य के दो रूप होते हैं। प्रभु-परमात्मा के भी दो रूप हैं - एक **प्रत्यक्ष** और दूसरा **अप्रत्यक्ष** अर्थात् **सगुण-निर्गुण**। एक हैं **निर्वस्तुक** (Abstract) और दूसरा **वस्तुनिष्ठ** (Concrete)। दोनों को समझाने के लिए एक उदाहरण दिया जाता हैं :- २+२=४, यह गणित शास्त्र का माना हुआ सिद्धान्त हैं। यह सत्य का **निर्गुण स्वरूप** हैं। ब्रह्म का माना हुआ स्वरूप अलख हैं, अगोचर है। जब तक गणित का माना हुआ कल्पित सत्य २+२=४ हैं, वह धनि मात्र हैं, कल्पना मात्र है। जब यही चार वस्तुओं के रूप में साकार-मूर्त दिखता हैं, तो **सगुणस्वरूप** हैं।'

सगुण स्वरूप गायत्री :- भक्तों में भगवान के साक्षात् दर्शन की अभिलाषा सहज स्वाभाविक होती हैं । **गायत्री- ॐ कार'** स्वरूप हैं, उसके दर्शन कैंसे हों ? गायत्री प्रणव स्वरूप है, उसके दर्शन कैंसे हो ? गायत्री सविता अर्थात् सूर्य का स्वरूप हैं, उसके दर्शन कैसे हों ? प्रणव-ध्वनि साधना के द्वारा सुनी जा सकती हैं, देखी नहीं जा सकती । सूर्य देखा जा सकता हैं, किन्तु उसके साथ जीव रूप में क्रीड़ा, केलि नहीं की जा सकती हैं । फिर सत्-चित्-आनन्द स्वरूप में देखा भी जाए तो उसके साथ भक्त के चित्तानन्द का सम्मिश्रण कैसे हो सकता हैं ? **फलतः भक्त को आनन्द प्रदान करने के लिए भगवान अवतार ग्रहण करते हैं ।** यही भक्त की भक्ति हेतु **कृपा-प्रसाद** होता हैं । कहा गया हैं कि यह प्रसाद जन्म-जन्म की भक्ति-साधना के पश्चात् केवल **विशुद्ध निर्मल हृदय** वाले भक्तों को प्राप्त होता हैं । शास्त्रों में **'ॐ'** स्वरूप के दर्शन अर्थात् **प्रणव-दर्शन** का एक रूपक वर्णित हैं । यही **प्रणव** का सगुण स्वरूप हैं, गायत्री मंत्र का सगुण स्वरूप हैं, आनन्द स्वरूप हैं । रूपक वर्णित करते हुए कहा गया हैं -

सरस्वती नदी का तट हैं । वेदव्यास ध्यान-मग्न हैं । उनके ध्यान में बार-बार गुंजित हो रहा हैं - 'वेदों की रचना पूर्ण हो गई । पुराणों की रचना पूर्ण हो गई । महाभारत की रचना पूर्ण हो गई । सबों का ज्ञान-सार **गायत्री** और **गीता** में अभिव्यंजित हो गया । अर्जुन की बुद्धि-प्रचोदना का फल-**सप्तशत श्लोकमयी गीता** प्राप्त हो गई । वहीं तो ज्ञान-चक्षुओं वालों ने **गायत्री-मंत्र** की मूर्ति **परब्रह्म प्रणव** के दर्शन कर लिए'-**'या स्वयं पद्मनाभस्य** मुखपद्माद्विनीसृताः'

अब तो प्रत्येक नर-नारी के जीवन-समर के मध्य-स्थल में भी यही मूरत सर्वदा विराजमान रहेगी । प्राणी की भ्रमित अर्जुन-बुद्धि का

प्रचोदन कर (प्रेरणा देकर) ज्ञान-गंगा में अवगाहन कराती रहेगी ।

महर्षि वेदव्यास के मुख से सहसा उच्चरित हुआ-'गायत्री मिल गई, गीता मिल गई, ज्ञान-गंगा-वेद मिल गए, अब शास्त्रों के विस्तार की क्या आवश्यकता हैं ?' - **'किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः ।'**

लेकिन इतना कहकर भी, ज्ञान-गंगा में अवगाहन करके भी महर्षि वेदव्यास का चित् आनन्द शून्य ही रहा । वे रह-रहकर अशान्त हो उठते थे । मन उद्वेलित हो उठता था । **प्रवण** रूप श्रीकृष्ण अपने परम भक्त महर्षि वेदव्यास के अश्रु-अंजलि लख कर द्रवित हो उठे । भगवान श्रीकृष्ण ने देवर्षि नारद का रूप धारण किया । प्रकट हुए । बोले -**'महर्षि ! चरम सत्य साधनलब्ध वस्तु नहीं हैं । चरम सत्य तो कृपा-लब्ध-धन हैं । अर्जुन की बुद्धि का उपदेश द्वारा संचालन ज्ञान की श्रेष्ठता तो हैं, परन्तु वह तो सर्वोत्तम नहीं हैं । निर्मल-विशुद्ध प्रेम के द्वारा जो कर्म-प्रवर्तना होती है, वह उपदेश की अपेक्षा सौ गुनी अधिक उत्तम और कार्यकारी हैं ।'**

भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं देवर्षि नारद का रूप धारण कर महर्षि वेदव्यास के पावन-निर्मल हृदय में प्रेमांकुर उत्पन्न कर दिया । **अब तो स्वयं उनके हृदय का गीता और गायत्री ज्ञान-मंत्र प्रेम के लिए विह्वल हो उठा ।** वे श्रीकृष्ण स्वरूप के साथ **केलि** करने लगे । तन-मन-आत्मा राधामय होकर **प्रणव** के संग रास-रचाने को आतुर हो उठे । निरन्तर 'सरस्वती तट' पर श्रीकृष्ण की मुरली-ध्वनि से अनाहत-नाद प्रस्फुटित होने लगा ।

कितना सत्य कहा गया हैं -'प्रेम के द्वारा जो प्रेरणा प्राप्त होती हैं, वह सर्वथा आन्तरिक **होती है** । उपदेश का आवेदन (Appeal) विचार-शक्ति के ऊपर होता हैं । प्रेम का आवेदन भावना-शक्ति, इच्छा-शक्ति

और अनुभव-शक्ति (thinking, willing and feeling) सबसे ऊपर होता हैं, अखण्ड जीवन के ऊपर होता हैं । इसी कारण प्रेम अधिक व्यापक होता हैं । **भगवान ने अर्जुन की बुद्धि का संचालन केवल स्वधर्म और स्वकर्म के लिए किया था** । वह ज्ञान दिशा हैं, श्रेष्ठ दिशा है, किन्तु **सर्वश्रेष्ठ** दिशा नहीं ।'

महर्षि वेदव्यास का हृदय प्रेम-विह्वल होकर बोल पड़ा -'फिर, वह कौन-सा साधन हैं, जो गायत्री और गीता से भी अधिक अहर्निश **प्रभु-दर्शन** कराने में समर्थ हैं ?'

देवर्षि नारदस्वरूप श्रीकृष्ण ने पुनः कहा -

'परम पुरुष जब विशुद्ध प्रेम के द्वारा किसी के जीवन को प्रचोदित कर उसे ऐश्वर्य-माधुरी के दर्शन करा देता हैं और उस पर कृपा करके हृदय-स्थल में अहर्निश विद्यमान होते हुए मुरली का **'अनाहत-नाद'** सुनाता रहता हैं, वही अवस्था सर्वश्रेष्ठ भक्ति की अवस्था होती हैं । तब भक्त धर्म, कर्म, ज्ञान, मंत्र आदि से ऊपर उठकर सर्वधर्म को परित्यज कर भगवान का हो जाता हैं, भगवान के साथ केलि करने लगता हैं । तब साधन और साध्य का तादात्म्य हो जाता है । वहीं स्थिति कर्म, ज्ञान और भक्ति की पराकाष्ठा **प्रेम की स्थिति** होती हैं ।'

महर्षि वेदव्यास ने **श्रीराधा-कृष्ण** की **ऐश्वर्य-माधुरी** के दर्शन कर लिए । उनकी चेतना श्रीकृष्ण की आह्लादिनी-शक्ति **श्रीराधा** में समा गई । महर्षि वेदव्यास के तन-मन-प्राण, आत्मा-परमात्मा एकाकार हो उठे । उनके होठों से स्वतः छन्द स्फुटित होने लगे । देवर्षि स्वरूप नारद श्रीकृष्ण अन्तर्ध्यान हो गए । महर्षि वेदव्यास को यह ज्ञात तक नहीं हुआ कि देवर्षि नारद स्वरूप श्रीकृष्ण कब चले गए । उनके नयनों में **श्रीराधा-रूपिणी-गायत्री-माता और मुरली वाले श्रीकृष्ण विराज रहे थे** ।

ब्रह्म-गायत्री और **गीता-ज्ञान** सम्पूर्णता प्राप्त कर मूर्तिमान हो उठा । छन्द पर छन्द होटों से प्रस्फटित होते रहे । अठारह हजार (१८,०००) श्लोकों वाला **श्रीमद्भागवत महापुरण** प्रस्फुटित हुआ । **'रासपंचाध्यायी'** के छन्द पर छन्द प्रस्फुटित होते रहे । महर्षि वेदव्यास को प्रेम स्वरूप, प्रणव-रूप श्रीकृष्ण-राधा का प्रेमानन्द **सच्चिदानन्द** प्राप्त हो गया । उनका **गायत्री-ज्ञान** और **गीता-ज्ञान** पूर्णरूपेण **सगुण-स्वरूप** हो गया वे बोल पड़े -

'गायत्री भाष्यरूपोऽसौ वेदार्थपरिबृंहितः ।'- श्रीमद्भागवत पुराण

महर्षि वेदव्यास सरस्वती नदी के तट पर अपने आश्रम कक्ष में स्वयं ही **मुरली के अनाहत नाद** में बुदबुदाते रहे -

'सारे धर्म-कर्म, साधन-भजन, राष्ट्र-समाज, कृतृव्य-पांडित्य, आदर-सत्कार तभी तक हैं, जब तक कि यह मुरली-मनोहर अपनी बंशी-ध्वनि से **अनाहत-नाद** सुना कर, बुद्धि को प्रचोदन कर, हृदय-आत्मा में प्रेम-गंगा प्रवाहित करता रहता हैं ।' एक बार पुनः महर्षि वेदव्यास के **प्रेम विह्वल कंठ से** प्रस्फुटित हुआ -

प्रपन्नपारिजाताय तोत्रवैत्रैक पाणये । ज्ञानमुदाय कृष्णाय गीतामृतदुहेनमः ।।

गायत्री के एक मन्त्र में, मात्र 'ॐ' में सम्पूर्ण ब्रह्म के दर्शन कराने का ज्ञान केवल सनातन संस्कृति के महर्षियों में ही था । विश्व के किसी भी **ज्ञान-कोष** में अथवा **धर्म-कोष** में ऐसा अनुपम उपहार कहीं भी उपलब्ध नहीं हैं । ऐसा ही **महर्षि बाल्मीकि** द्वारा धर्म सम्पन्न रमणीय **राम पुरुषोत्तम** के इतिहास ग्रंथ में पाया गया ।

(ग) गीता - मानव जीवन का एक मार्ग-दर्शक महान ग्रंथ

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।

पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ।।

अर्जुन रूपी भक्त (मानव समुदाय का प्रतिनिधी) बछड़ा हैं, सारे उपनिषद् गायें हैं, दुहने वाले भगवान श्रीकृष्ण हैं और यह महान् अमृतरूपी दुग्ध-स्वरूप **गीता-वचन** सम्पूर्ण सृष्टि के विचारवान मानव समुदाय के लिए वेदोपनिषद्-सम कर्म-ज्ञान है, भक्ति-गान हैं । गीता का सार वचन हैं -

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ।। - गीता ६/३०

जो सब कहीं मुझे (ईश्वर को) देखता हैं और सबको मुझमें (ईश्वर में) देखता है, मैं उससे तिरोहित नहीं होता और वह मुझसे तिरोहित नहीं होता ।

गीता-ज्ञान कालजयी वचन हैं । ये वचन किसी सम्प्रदाय विशेष या धर्म विशेष या क्षेत्र विशेष के लिए नहीं उच्चरित हुए हैं । ये तो सर्वकालीन कर्म और ज्ञान के भक्तिप्रद संदेश हैं, जो सम्पूर्ण मानव-समुदाय के लिए हैं । ये दर्शनीय हैं, सर्वयुगीन हैं । पिछले पाँच हजार सालों से मानव-समुदाय को मार्ग-दर्शन पूर्ण प्रेरणा से दे रहे हैं, सदैव देते रहेंगे ।

एक बार एक प्रसिद्ध अमेरिकन कवि इमर्सन (Emerson) एक ईसाई संत थोरो (Thoreau) के पास वाल्डेन (Walden) में उनके दर्शन हेतु गए । संत थोरो एक टूटी खाट पर विराजमान होकर कुछ पढ़ रहे थे । उनकी खाट के नीचे घास फैल रही थी । उन झाड़ियो में सर्प विचर रहे थे । कवि इमर्सन ने प्रश्न किया -'फादर ! क्या आपकों इन सर्पों से भय नहीं लगता हैं ?'

संत ने विहँस कर उत्तर दिया -'Where is fear, when

mother Gita is there to protect ?' **मातेश्वरी गीता की गोद में पुत्र को भय कहाँ ?** संत ने सिरहाने से निकालकर गीता की प्रति को सादर नमन किया। **स्पष्ट हैं श्रद्धा रखने वालों के लिए गीता** मातृरूपिणी **हैं, मातृ-ज्ञान हैं।**

श्रद्धावान ही ईश्वर को सर्वत्र देखते हैं। जिस क्षण ऐसी ईश्वर-भावना हृदय में पैठ जाती हैं, सर्वत्र ही ईश्वर और ईश्वर के दर्शन होने लगते हें। जड़-चेतन समस्त में ईश्वर समाहित हो जाते हैं। **'गीता'** में **'श्रद्धा'** को परिभाषित करते हुए कहा हैं -

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥ - गीता ४/३९

संयतेन्द्रिय होकर ज्ञान-प्राप्ति में लगा हुआ श्रद्धावान प्राणी ज्ञान प्राप्त करता हैं और ज्ञान-प्राप्त करके अविलम्ब परम-शान्ति को प्राप्त होता हैं। ऐसी श्रद्धा, ऐसी निष्ठा और ऐसा ज्ञान हर प्राणी के जीवन में कभी-कभी और किसी-किसी अनमोल क्षण में ही प्राप्त हो पाता हैं, वह भी ईश्वर-कृपा से। **'सत्य-ज्ञान'** अनमोल ज्ञान हैं। यह कहना संभव नहीं होगा कि ऐसा ज्ञान कब, किसे, कहाँ और किस प्रकार प्राप्त होगा ? यह भी कहना सम्भव नहीं है कि इसका उपयोग कर भी पाएगा ? लेकिन यह ज्ञान भक्त को श्रद्धापूर्ण भक्ति, प्रेम, निष्ठा और समर्पण से अवश्य प्राप्त होता हैं। गीता में इस **'सत्य-ज्ञान'** को परिभाषित करते हुए कहा गया हैं -

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥ - गीता १८/५५

केवल भक्ति के द्वारा भगवान के यथारूप को जाना जा सकता हैं। ऐसी भक्ति भगवान के पूर्ण भावनामृत में होती हैं, भगवत्कृपा से होती हैं।

संत तुलसीदासजी ने इसे ही परिभाषित करते हुए लिखा है -

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई । जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ।।
तुम्हरि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन । जानहिं भगत भगत उर चंदन ।।

– रामचरितमानस २/१२६/३-४

संसार के समस्त संत **'सत्-पथ'** के पथिक रहे हैं । ऐसे पथिकों के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं रहा हैं । एक और **'ऐतिहासिक दृष्टांत'** हैं –

संत इग्नासियस लोयला (St. Ignatius Loyala) को **'निर्झर'** देखकर यह संदेश प्राप्त हुआ था । निर्झर की अनवरत अनन्तकालीन साधना का संकेत पाकर उनके हृदय में **ईश्वर सत्य** की अनुभूति जगी । जैकब (Jacob Bochme) को यह अनुभूति चमकीली गिल्ट बर्तन को देखते-देखते प्राप्त हुई थी और वहीं समाधिस्थ हो गए थे –

"After fixedly gazing upon a burnished pewter Jacob Bochme fell into ecstasy : St. Ingatious Loyala on seeing the running water."

हमारे देश के अनेकों संतों ने **'गीता-ज्ञान'** से ऐसी अनुभूति प्राप्त करते हुए कहा हैं –**'ईश्वरीय अनुभूति परम शुद्ध भक्ति-निष्ठापूर्ण जीवन व्यतीत करने वालों को प्राप्त होती हैं ।'** (Ethical life is a prelude to life spiritual)

सदाचार ही आध्यात्मिक जीवन की भूमिका है । वही जीवन श्रद्धा से युक्त होगा । निरंकुश आस्तिकता ही श्रद्धा हैं । भगवान के चाहे जिस रूप को साक्षात्कार करना हो, उनके व्यापक-विराट स्वरूप की अनुभूति के पश्चात् ही उस **परम तत्व** (सगुण स्वरूप) का साक्षात्कार संभव हैं । **ब्रह्मभूत होने के पश्चात्** भगवत्कृपा **द्वारा पराभक्ति पाकर जीव प्रभु को जानकर कृत-कृत्य हो जाता हैं ।**

'गीता' ऐसे ही 'सत्य' की पहिचान कराने वाला ग्रंथ हैं । सत्

एवं असत् का विभेद कराने वाला ग्रंथ हैं । समस्त मानव-समुदाय को सत्कर्म और असत्कर्म की पहचान कराने वाला ज्ञान-ग्रंथ हैं । **इसमें किसी आश्रम में किसी महर्षि या किसी आचार्य के द्वारा दिए गये उपदेशों का संकलन नहीं हैं । यह किसी गुरूकुल में दीक्षा देने वाले किसी कुलपति या उपकुलपति का दीक्षान्त-भाषण नहीं हैं । यह तो मायावशीभूत, कर्म-पथ विमुख एवं भ्रमित भक्त के प्रति भगवान के द्वारा दिया गया जीवन-महासमर में प्रविष्ट हेतु कर्म-ज्ञान है ।** कुल ७०० (सात सौ) श्लोकों में वर्णित यह कर्म-ग्रंथ सृष्टि के समस्त प्राणियों के लिए **जीवन-समर** में प्रविष्ट होने के लिए **प्रभु-प्रदत्त महामंत्र** है ।

इस ग्रंथ में जीवन-महासमर के महानतम सारथी **श्रीकृष्ण** के उन वचनों का संकलन हैं, जो एक **जीवन-समर के महानतम महारथी अर्जुन** के प्रति उद्घोषित हैं । रथी और महारथी माया वशीभूत हो सकते हैं, पथ-भ्रमित हो सकते हैं, जीवन-पथ विमुख भी हो सकते हैं, किन्तु **जीवन-समर का महासारथी न तो दिशाहीन हो सकता हैं, न ही वह पथ-विमुख हो सकता हैं,** क्योंकि जीवन-रथ के अश्वों की रज्जु उस **महारथी** के हाथों में होती हैं । उसे जीवन-समरांगण की पहिचान होती हैं । जीवन-रथ के समस्त अश्व अर्थात् **कर्मेन्द्रियों** एवं **ज्ञानेन्द्रियों** के अश्वों की रज्जु उसके हाथों में होती हैं । **महासारथी** एक **मार्गदर्शक** होता हैं ।

'गीता' में भगवान श्रीकृष्ण ने संसार के महासमर में भक्त अर्जुन की मोह-माया ग्रस्त बुद्धि का प्रचोदन कर उसे स्व-धर्म एवं स्व-कर्म की ओर अग्रसर होने हेतु प्रेरित किया । **'गीता'** इसी कारण से प्रत्येक प्राणी के लिए जीवन-समर में प्रविष्ट होने हेतु **'प्रयाण-मंत्र'** हैं । यह प्रत्येक समाज के लिए **समाजशास्त्र** हैं । यह राजनायकों के लिए राजनीतिशास्त्र हैं । यह संत-महात्माओं-ज्ञानियों के लिए **अध्यात्मशास्त्र** हैं । इसमें सम्पूर्ण

मानव-समाज के लिए **मानवता का महामंत्र** हैं । इस ग्रंथ में पूँजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, वर्णवाद, वर्गवाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद, हिंसावाद, अहिंसावाद, द्वन्द्वावाद आदि समस्त संकीर्णताओं से ऊपर उठकर **सम्पूर्ण मानव** बनने के **पथ-प्रदर्शक** सिद्धान्तों का संकलन हैं । फलतः गीता किसी युग-विशेष, क्षेत्र-विशेष, धर्म-विशेष, वर्ग-विशेष या वर्ण-विशेष का ग्रंथ नहीं हैं, अपितु वह सम्पूर्ण **मानव समाज** का अद्वितीय, अतुलनीय और कालजयी ग्रंथ हैं । **यह सनातन संस्कृति का गौरव ग्रंथ हैं । भारत अपने इस अनुपम उपहार के लिए विश्व-इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में रेखांकित रहेगा ।**

पश्चिमी देशों के दार्शनिकों, चिन्तकों, कवियों, विचारकों आदि ने भी ऐसे ही विचार अभिव्यंजित किए हैं और **गीता-गरिमा** की **मुक्त-कंठों** से प्रशंसा की हैं । स्वामी विवेकानन्द, योगीराज अरविन्द, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गाँधी, संत विनोबा भावे, गुरूदेव रविन्द्र, डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन जैसे विचारकों एवं चिन्तकों ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं । विश्व-विख्यात कवि-चिन्तक **एफ.टी. ब्रुक्स** के विचार भी इसी भावना की पुष्टि करते हैं -

Not only does the Bhagwat Gita fulfil every condition needed for becoming a National Scripture of India, a link between harmony scattered sects, a priceless asset of National life to be, It is primitively a scattered the future World Religion, a gift of India`s glorious past to the moulding of the still glorioud future of Mankind.

- (F.T. BROOKS)

अर्थात् - "गीता में सारी विशेषताएँ हैं, जो कि एक **मानव धर्म** की पुस्तक में होनी चाहिए । भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों को एक सूत्र में बाँधने वाला यह अनुपम ग्रंथ भारत एवं विश्व के जातीय-जीवन की अमूल्य

सम्पत्ति हैं। यही **'भावी सार्वभौम धर्म'** का सूत्र बनने के उपयुक्त एक मात्र पुस्तक हैं। भारत के इस प्राचीनतम अनुपम ज्ञान-ग्रंथ से मानव-जाति के भविष्य-निर्माण में सम्पूर्ण दिशा-निर्देश प्राप्त हो सकेगा। **सम्पूर्ण मानव-समाज के लिए भारत स्वर्णिम अतीत का यह मंगल-उपहार नव-निर्माण एवं नवल-विश्व का प्रकाश-स्तम्भ बना रहेगा।''** - (एफ.टी. ब्रुक्स)

ऐसे विचार मुट्ठी भर विश्व-समाज के विचारकों एवं चिन्तकों के ही नहीं हैं, अपितु आज कोटि-कोटि मानव-समुदाय युद्ध और विनाश की विभीषिकाओं से त्रस्त होकर मुक्ति हेतु **कर्म, ज्ञान** एवं **भक्तिप्रद चिंतन** के लिए भारतीय अध्यात्म की ओर उन्मुख हैं। जीवन को ईश्वरोन्मुख बनाने के लिए व्याकुल मानव-समुदाय **गीता-ज्ञान** का संदेश चाहता हैं। **'गीता'** का **'निष्काम-कर्म' संदेश** केवल सेवा-पथ के सच्चे पथिकों को ही सुनाई पड़ता हैं। उनके कर्णरन्ध्रों में स्वर गुंजित होने लगते हैं - **निष्काम कर्म ही ईश्वर पूजा हैं** (Work is worship)। यह संदेश इस युग के महिमामयी जन-सेविका **मदर टेरेसा को कोलकाता काली मंदिर के पास सुनाई पड़ा था।** जब महिमामयी मदर टेरेसा के मुख से सहसा एक वाक्य फूट पड़ा - 'Service to humanity is service to God' -**'जन-जन की सेवा ही ईश्वर की सेवा हैं।'**

श्रीकृष्ण ने गीता में कहा हैं -**''कर्म या मानवी प्रयत्न का त्याग नहीं, प्रत्युत कर्म-फल का त्याग।''** गीता का यह **महामंत्र** हैं। संसार के समस्त दर्शनों, आध्यात्म-शास्त्रों और धर्म-शास्त्रों का 'सार' है, जो **संसार के किसी भी ग्रंथ में उपलब्ध नहीं हैं।** यह नवीन मत हैं। त्याग का ढंग भी आकर्षक हैं, भले ही कठिन है। कहा गया हैं- **'व्यैक्तिक लाभ हमारे कर्म का हेतु नहीं होना चाहिए। हमारे कर्म का हेतु समाज-सेवा एवं समाज-कल्याण होना चाहिए।'** ऐसी अवस्था में समाज का कल्याण और व्यक्ति का कल्याण दोनों अविभाज्य रूप से एक

हो जाते हैं, या यो कहें कि समाज का कल्याण क्या व्यक्ति का कल्याण दोनों ही व्यक्ति के नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान के साधन बन जाते हैं । श्रीकृष्ण का वचन हैं -

'तुम न तो कभी अपने आपको अपने कर्मों के फलों का कारण मानों, न ही कर्म करने में कभी आसक्त हो', क्योंकि -

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ।। - गीता ५/७

अर्थात् जिसने अपने को योगमय बना लिया है, जिसने आत्मशुद्धि कर ली है, जिसने आत्म-नियंत्रण करके इन्द्रियों पर काबू पा लिया हैं, जिसने अपने को सबके साथ (जन-जन के साथ) तन्मय कर लिया है- वह कर्म करते हुए भी कर्म में कभी भी लिप्त नहीं होता है ।

कर्म का सार यह हैं कि मुनष्य यदि **भगवत्सत्ता** पर विश्वास रखता हैं, तो उसके लिए सारे कर्म **सेवा-कर्म** एवं **पूजा-कर्म** हो जाते हैं, क्योंकि जन-जन में ईश्वर का निवास हैं । जन-जन ही जनार्दन हैं और जन-जन की सेवा में प्राणी को निजी **लाभ-हानि** या **जय-पराजय** या **जीवन-मरण** अथवा **यश-अपयश** की चिंता नहीं होती हैं । संत तुलसीदासजी इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

हानि-लाभ, जीवन-मरण । यश-अपयश विधि हाथ ।। (मानस)

श्रीकृष्ण भी अर्जुन से यही कहते हैं -

सुख-दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ।। - गीता २/३८

तुम सुख-दुःख, जय-पराजय, हानि-लाभ का विचार किए बिना युद्ध के लिए युद्ध करो अर्थात् **कर्म के लिए कर्म करो** । ऐसा करने से तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा ।

यही जीवन-सत्य हैं, जीवन-समर का सत्य हैं । यही उच्चतम

सत्कर्म हैं, यही स्वधर्म की पहिचान हैं । यही जीवन-धर्म की पहिचान हैं, क्योंकि लोक-कल्याण के लिए ही प्राणी को **'मानुष-तन'** प्राप्त होता हैं - **'बड़े भाग मानुष तन पावा'** । मानुष-तन साधना का तन हैं, तपस्या का तन हैं, लोक-कल्याण का तन हैं । इसकी सार्थकता **कल्याणमय लोक-कर्म** करने में हैं ।

आध्यात्मिक और भौतिक भावनाओं का ऐसा पूर्ण सामंजस्य संसार की अन्य किसी एक पुस्तक में मिलना संभव नहीं हैं । **'गीता'** प्रतिपादन का सार हैं । **वर्गहीन** एवं **वर्णहीन** समाज में किसी भी प्राणी की पहिचान उसके **सत्कर्म** अर्थात् **निष्काम कर्म** से की जानी चाहिए । उसके कर्म भी वैयक्तिक लाभ से नहीं, अपितु सामाजिक एवं राष्ट्रीय लाभ के तराजू पर मूल्यांकित किए जाने चाहिए । यही ईश्वरीय दृष्टि हैं । ऐसी दृष्टि दया, क्षमा, करूणा, सहानुभूति, संवेदना, नम्रता, शुचिता जैसे मानवीय गुणों पर आधारित होती हैं । ऐसा व्यक्ति **कर्म** के प्रति **श्रद्धा** रखता हैं, ऐसा प्राणी कर्म का संपादन निष्ठापूर्वक किया करता हैं । वह कर्म में **श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, निष्ठा** और **भक्ति** रखता हैं । यही तो **सत्य-ज्ञान** हैं और यही तो **प्रेममय समर्पित ईश्वर-भक्ति** हैं, क्योंकि उस प्राणी का हर कर्म **ईश्वर को समर्पित होता हैं** ।

'गीता' में **कर्म, ज्ञान,** और **भक्ति** का सार हैं - 'अपने पड़ोसी से वैसा ही प्यार करों, जैसा अपने आप से करते हों ।'

वर्तमान विश्व में एक पड़ौसी दूसरे पड़ौसी की ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य की आग में झुलस रहा हैं । व्यक्ति का व्यक्ति के साथ संघर्ष हैं, समाज के एक वर्ण का दूसरे वर्ण से, एक वर्ग का दूसरे वर्ग से संघर्ष हैं । एक **पड़ौसी राष्ट्र, दूसरे पड़ौसी राष्ट्र को हड़प लेना चाहता हैं** । एक 'वाद' (चाहे वह तथाकथित समाजवाद हो, या साम्यवाद अथवा पूँजीवाद) दूसरे 'वाद' पर हावी होना चाहता हैं । सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था,

शासन-व्यवस्था, सैनिक-व्यवस्था एक **महासमर** के कुरूक्षेत्र में **भ्रमित** और मोहग्रस्त होकर **पथविहीन** और दिशाहीन होकर **अर्जुन** के समान **श्रीकृष्ण** की प्रतीक्षा कर रहीं हैं । चारों ओर **कर्ण, दुर्योधन, द्रोण, जयद्रथ** जैसे कई रथी-महारथी विकसित-विनाशक **विविध आयुध लेकर खड़े हैं ।**

एक बार पुनः **विवेकमय समन्वय** की आवश्यकता हैं । **एक बार पुनः गीता-ज्ञान** को हृदयंगम् करने की प्रतीक्षा हैं । **कहाँ हैं वह पार्थसारथी ? कहाँ हैं वह ज्ञानामृत पान कराने वाला** लोकनायक, **युग-पुरूष, क्रान्तिद्रष्टा श्रीकृष्ण ?** आज सम्पूर्ण जगत् में, अंधकारमय विश्व में, विश्व के कोने-कोने में **मोहग्रस्त अर्जुन जैसा मानव समुदाय** एक बार फिर से **ज्ञान-त्याग कर अज्ञान-पथ** पर अग्रसर हो चुका है । एक ही मार्ग-दर्शक **महामंत्र** हैं -

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।। - गीता १८/६६

यही ज्ञान वर्ण, वर्ग, सम्प्रदाय, धर्म, क्षेत्र, अल्पसंख्यक, बहुसंख्यक आदि समस्त संकीर्णताओं से ऊपर उठाने वाला एक मात्र **'महामंत्र'** हैं । इस ज्ञान में अटूट विश्वास रखने वाले चाहे वे कर्मयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग, उपासनायोग, द्वैत, अद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताऽद्वैत, विशिष्ठाद्वैत किसी भी मार्ग के अनुयायी हों, उनके पास **'गीता'** का पावन-ग्रंथ अवश्य मिलेगा । यहाँ तक कि स्वतन्त्रता संग्राम के समय **फाँसी के फन्दों** को गले लगाने वाले **क्रान्तिकारियों** के हाथों में भी **'गीता'** पुस्तक मिला करती थी ।

'गीता' का **'महामंत्र'** यह हैं कि **ईश्वर समर्पित प्राणी** चाहे जिस राह का भी पथिक हो या वह जिस पथ को भी अपनाता हैं, **प्रभु** उसकी **भक्तिप्रद सेवा** अवश्य ही स्वीकार कर लेते हैं -

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्हम् ।" - गीता ४/११

(घ) मनुस्मृति

यद्यत्परवशं कर्म तत्त्यत्नेन वर्जयेत् ।
यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेतयत्नतः ।। - मनुस्मृति ४/१५९

अर्थात् जो-जो कर्म पराधीन अर्थात् दूसरों की प्रार्थनादि से सिद्ध होते हैं, उन-उन कर्मों का यत्नपूर्वक त्याग करना चाहिए और जो कर्म स्वाधीन हैं, दैहिक व्यापार द्वारा सिद्ध हो सकते हैं, उन परमात्म-ज्ञान प्रभृति कार्यों का यत्नपूर्वक अनुष्ठान करना सर्वोत्तम हैं ।

यह **व्यक्ति-स्वतन्त्रता-शिक्षा** और **आत्म-निर्भरता** का मंत्र हैं । इसके द्वारा मानव-समुदाय पग-पग पर व्यक्तिगत प्रतिष्ठा अंगीकृत कर सकता है । यह मार्ग-दर्शन ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी और सन्यासी सबों के लिए अपेक्षित हैं । एकसा स्वराज्य परमात्मा के समान समदर्शी, **स्वतन्त्र** और **स्वाधीन** भाव का ही होना चाहिए । **भगवान मनु** ने परमात्म्-भाव को स्पष्ट करते हुए कहा हैं -

''जो सब भूतों में आत्मा को देखता हैं, वहीं समदर्शी आत्मजयी प्राणी स्वराज्य को प्राप्त करता हैं ।'' -

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वराज्यमधिगच्छति ।। - मनुस्मृति १२/९१

मनुस्मृति **'गर्भाधान'** से लेकर **'परलोक गमन'** के बाद तक के समस्त आचार-विचार एवं कर्म-धर्म को निर्धारण करने वाला सृष्टि का **प्रथम आचार-ग्रंथ** हैं । इसका सम्बन्ध समस्त मानव-समुदाय के साथ हैं, किसी क्षेत्र-विशेष, किसी काल विशेष, किसी धर्म विशेष के मानव-समुदाय के साथ नहीं । फलतः इसे **मानव-समुदाय की आचार संहिता भी कहते हैं** । इसके -**'श्लोक'** भी **वेदों की ऋचाओं** के समान ही मानव समाज के लिए **मार्ग-दर्शक** हैं । यह **सर्वश्रेष्ठ ऋषि-उपहार** हैं ।

रचनाकार और रचनाकाल - मनुस्मृति अर्थात् मनु रचित अथवा कथित स्मृति । स्पष्ट है कि रचनाकार महापरुष मनु हैं । कौन-से मनु ? शास्त्रों में कई 'मनुओं' के उल्लेख हैं । प्रत्येक 'मन्वन्तर' के अलग-अलग 'मनु' हैं । कथा इस प्रकार हैं -

ब्रह्मा की मानसिक सृष्टि सिद्ध नहीं हो रही थी । वे ध्यान-मग्न हो गए । सृष्टा के दक्षिण भाग से एक पुरुष और वाम भाग से एक स्त्री प्रकट हुई । मन से उत्पन्न होने के कारण वे मनु कहलाए और शत-शत रूपों वाली शतरूपा कहलाई । इन स्वायम्भुव 'मनु' से ही मनुष्य जाति की उत्पत्ति हुई । उन्होंने ही मनुष्यों को आचार-ज्ञान दिए और श्रुतियों के तात्पर्य स्पष्ट किए । वही स्मृति 'मनु-स्मृति' कहलाई, जो 'मानव-धर्म-सूत्र' बनकर प्रतिपादित हुई । कालान्तर में वह मूल मनुस्मृति लुप्त हो गई ।

मात्स्यकल्प में श्रीहरि नारायण ने मत्स्य रूप धारण कर श्राद्धदेव की रक्षा की । वे ही विवस्मान् के पुत्र वैवस्वतैय वर्तमान मन्वन्तर के मनु हुए । इन्हीं के पुत्र इक्ष्वाकु प्रभृति दस पुत्रों से पुनः सृष्टि का विस्तार हुआ । वर्तमान 'मनु-स्मृति' इन्हीं मनु महाराज की कृति हैं । मनुजी ने उसका उपदेश महर्षि भृगुजी से प्राप्त किया था । 'मनु-स्मृति' में यह तथ्य वर्णित हैं । वर्तमान 'मनु-स्मृति' सदाचार शास्त्र, समाजशास्त्र, न्यायशास्त्र, धर्मशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि समस्त गुणवत्ताओं से परिपूरित माना जाता हैं, लेकिन यह महर्षि भृगु की स्मृति पर आधारित होने के कारण प्रथम मनु-स्मृति पर ही आधारित हैं ।

विषय की व्यापकता - मनु-स्मृति का विषय अत्यन्त व्यापक हैं । 'मनुस्मृति' ग्रंथ के समस्त आदर्शों को पढ़कर ही हृदयंगम किया जा सकता हैं । संक्षिप्त रूप से कुछ मार्ग-दर्शक सिद्धान्तों को पढ़कर मानव-समाज अपने दैनिक जीवन और व्यक्तिगत जीवन आचरणों को

सदाचार के साँचे में ढ़ाल सकता हैं । इस हेतु कुछ मूल श्लोकों को प्रस्तुत कर मानव-जीवन के मार्ग-दर्शक सिद्धान्त प्रस्तुत किये जा सकते हैं । यथा -
१. ईश्वर सूत्र, २. धर्म सूत्र, ३. सदाचार सूत्र, ४. संतान सूत्र,
५. लोंक-परलोक सूत्र, ६. समता सूत्र,७. ज्ञान सूत्र, ८. सृष्टि कल्याण सूत्र ।

१. ब्रह्म सूत्र - ईश्वर सूत्र

सनातन संस्कृति में ब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर विस्तृत वर्णन एवं सुस्पष्ट वर्णन वेद, पुराण, रामायण, गीता, भागवत, महाभारत आदि ग्रंथों में उपलब्ध हैं । 'ईसाई' इसे **गॉड** कहते हैं, मुसलमान इसे '**खुदा**' या '**अल्लाह**' कहते हैं तथा अन्य धर्मों में जिसे **ईश्वर** कहा गया हैं, उसे ही **मनु-स्मृति** में **परम पुरुष परमेश्वर** या **पुरुषोत्तम** कहा गया हैं -

प्रशासितारं सर्वेषामणीयां समणोरपि ।
रुक्माभ स्वप्नधीगम्यं विद्यान्तं पुरुषं परम् ।।
एष सर्वाणि भूतानि पंचभिर्व्याप्य् मूर्तिभिः ।
जन्मवृद्धिक्षयै नित्यं संसारयति चक्रवत् ।। - मनुस्मृति १२/१२२-२४

जो सूक्ष्म से अति-सूक्ष्म और सम्पूर्ण जड़-चेतन का भली प्रकार शासन करने वाला हैं एवं स्वर्ण के समान देदीप्यमान् और निर्मल हैं तथा स्वप्नकाल में भी बुद्धि द्वारा प्रत्यक्ष होने वाला हैं, उस **परम पुरूष** परमेश्वर को जानना ही मानव जीवन का प्रथम कर्त्तव्य होता हैं । क्योंकि वही सम्पूर्ण जगत के प्राणियों को पंचभूत रूपी पाँच मूर्तियों के द्वारा व्याप्त किए हुए हैं तथा जन्म, वृद्धि, क्षय के द्वारा निरन्तर सब को चक्र की भाँति घुमा रहा हैं।

'**मनुस्मृति**' में ऐसे परम पुरुष की साधना, उपासना और आराधना का भी वर्णन हैं -

अक्षंर दुष्करं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः ।
विधि यज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशाभिर्गुणैः ।।

उपांशु स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ।।
ये पाक यज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः ।
सर्वे ते जप यज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।

- मनुस्मृति २/८४, ८५, ८६

उस अक्षर '**ओंकार**' को जानना चाहिए जो अविनाशी है, जो परब्रह्म का स्वरूप है । जानने का एक मात्र साधन हैं - '**जपयज्ञ**' । इस पौर्णमासादि विधि यज्ञ से **साधारण जपयज्ञ** दस गुणा श्रेष्ठ हैं । उपांशुजप (जिसमें होठ भी नहीं हिलते हैं) तो समस्त यज्ञों में सौ गुणा श्रेष्ठ हैं । **मानसिक जप** तो हजार गुणा श्रेष्ठ हैं ।

कर्मफल :- जो दस पौर्णमास सहित चार पाक यज्ञ हैं अर्थात् बलिवैश्वदेवयज्ञ, अग्निहोत्र यज्ञ, नित्य श्राद्ध यज्ञ, और अतिथि पूजन-यज्ञ ये सब भी जपयज्ञ की सोलहवीं कला के समान भी नहीं हैं ।

निष्कर्ष यह हैं कि '**मनुस्मृति**' में खाते-पीते, उठते-बैठते, चलते-फिरते नाम-स्मरण को सर्वश्रेष्ठ ईश्वर-भक्ति कहा गया हैं । प्रथम अक्षर **ओंकार** ही सर्वश्रेष्ठ नाम हैं ।

२. धर्म सूत्र

'**मनुस्मृति**' में '**धर्म**' को परिभाषित करते हुए कहा गया हैं - **धारणा करना ही धर्म हैं** । यही धर्म का धातुगत अर्थ भी हैं । '**धर्मंचरः**' और '**धर्मेण सुखमासीत्**' अर्थात् धर्म करो, धर्म से सुख मिलता हैं । आगे कहा गया हैं -

'धर्म की उत्पत्ति सत्य से होती हैं । दया और दान तथा त्याग से वह बढ़ता हैं । क्षमा में वह निवास करता हैं । क्रोध से उसका नाश होता हैं ।'

संसार के किसी भी धर्म में इससे अधिक कुछ नहीं कहा गया हैं । धर्म उपेदशक और धर्मसभा को परिभाषित करते हुए '**मनुस्मृति**'

में कहा गया हैं- **'वैदिक धर्म ज्ञज्ञाता चार ज्ञानी और तीन विद्याओं को जानने वाले बहुत से ज्ञानी मिलकर 'धर्मसभा' कहलाती हैं ।'** साथ ही नीतिज्ञ मनु यह भी स्पष्ट करते हैं कि **व्रत**, दान, मन्त्र, जप-ज्ञान रहित जाति नामधारी **हजारों ब्राह्मण** न तो **धर्म उपेदशक** बन सकते हैं, न ही उन सबों से **धर्मसभा** का गठन हो सकता हैं -

अब्रतानाऽमन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ।
सहस्रशः समेतानां परिषत्वं न विद्यते ।। - मनुस्मृति १२/११४

धर्म की उपयोगिता को परिभाषित करते हुए भगवान मनु कहते हैं - **'धर्म धारण करने से व्याधियों एवं ग्रहों की कुदृष्टि समाप्त हो जाती हैं । धार्मिक आचरण से शत्रु पराजित हो जाते हैं और सभी क्षेत्रों में विजय प्राप्त होती हैं ।'** -

धर्मेण हन्यते व्याधि धर्मेण हन्यते ग्रहः ।
धर्मेण हन्यते शत्रुर्यतो धर्मस्ततो जयः ।। - स्मृति-वाक्य

३. सदाचार सूत्र

'जो कर्म जीवन को संस्कारित करके प्राणी को ईश्वरोन्मुख बनाये रखे एवं सत्कर्मों में संलग्न रखे, उसे ही **संस्कार** कहते हैं । ऐसे ही संस्कारमय कर्म **सदाचार** कहे जाते हैं । मनुस्मृति में गर्भाधान से लेकर परलोक गमन तक के बाद भी **सदाचार** एवं **संस्कारों** के वर्णन एवं दिशा- निर्देश हैं । **ऐसे कुल ४० संस्कार हैं** । इन्हें पालन करने वाला दोषमुक्त रहता हैं तथा सर्वदा **गुणयुक्त** रहता हैं और निरंतर **उत्कर्ष-सोपान** का पथिक बना रहता हैं ।' -

गाभ्रै हौं मैर्जातिकर्मचौडमौंजनिबन्धनैः ।
बैजिकं गार्भिकं चै नौ द्विजानामपमृज्यते ।।
स्वाध्यायेन व्रेतैर्होमैस्त्रौविद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ।। - मनुस्मृति २/२७-२८

गर्भ को पवित्र करने वाले होम से, जात कर्म, चूड़ा कर्म, मौंजी-बंधन (उपनयन) आदि संस्कारों से द्विजों के बैजिक (बीज से आए हुए) और गार्भिक (गर्भ जनित) समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं। स्वाध्याय, व्रत, होम, वेदत्रयी आदि का अध्ययन और तदानुकूल कर्म, देव-ऋषि-पितृ तर्पण, प्रजोत्पादन, पंचमहायज्ञ तथा ज्योतिष्टोमादि यज्ञों के द्वारा मानव शरीर **ब्राह्म** अर्थात् ब्रह्म प्राप्ति के योग्य बन जाता हैं।

चालीस संस्कारों में गृहस्थ के कुल २६ संस्कार हैं। यथा - पाँच महायज्ञ (देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ और ब्रह्मयज्ञ), सात पाक यज्ञ (स्मार्त), सात हविर्यज्ञ (श्रौत) और सात सोम यज्ञ हैं। इन दिनों गृहस्थों के द्वारा इनमे कुछ भी व्यवहार में नहीं हैं। महापुरूष मनु ने ऐसी स्थिति का अनुमान पहले ही लगा लिया था। फलतः उन्होंने यह भी कहा- 'प्राणी अर्थात् गृहस्थ केवल आठ आत्म गुणों से सम्पन्न होकर भी बिना संस्कारों को प्राप्त किये **ब्रह्म का सायुज्य** प्राप्त कर सकता हैं। इन आठ गुणों में भी दो प्रमुख हैं - **'प्रेम और ब्रह्म के किसी भी रूप का स्मरण या नामजप।'**

जाप्येनैवतु संसिध्दिद् ब्राह्मणो नास्ति संशयः।

कुर्यादन्यत्र वा कुर्यान्मैत्रौ ब्राह्मण उच्यते ॥ - मनुस्मृति २/८७

स्पष्ट है कि जन-जन के प्रति प्रेम और प्रभु प्रेम ही समस्त संस्कारों का सार हैं। ऐसे व्यक्ति को और कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं पड़ती - ऐसा श्रुति में भी कहा गया है। **मनु ने जो कुछ भी कहा वह जीवन औषधि हैं'** - 'य द्वै किं चिन्मनुखदतद्भेषजनम्।'

४. सन्तान सूत्र

उत्तम संतान ही संस्कारों एवं सदाचारों का पालन किया करती हैं। इसी कारण वैदिक-काल में **गोत्र-परम्परा** तथा **गुरू-शिष्य परम्परा** तथा **कुल-परम्परा** की प्रधानता थी। शास्त्रों में भी इसी कारण समाज

के किसी भी वर्ग को, किसी भी जाति को '**दलित**' (Depressed) या '**अस्पृश्य**' नहीं कहा जाता था। ऐसे शब्दों का प्रयोग समाज में विदेशी शासकों ने स्वार्थ-सिद्धि हेतु किया और आज तो राजनीति का ढाँचा हीं **दलित** (Depressed) तथा **अस्पृश्य** (Untouchable) पर खड़ा हैं। मनुस्मृति में भी कहा गया हैं -

येनास्य पितरो याताः येन याताः पितामहाः ।

तेन यायात् सतां मार्ग तेन गच्छन्न रिष्यति ।। - मनुस्मृति ४/१७८

पिता-पितामह के द्वारा बताए गए मार्ग पर चलकर ही दुःखों और अभावों से मुक्ति मिलती हैं। यही **सन्मार्ग** कहा जाता हैं।

उन दिनों 'पिता-पितामह' ही **गुरु-शिष्य परम्परा** का भी निर्वाहन किया करते थे। मनुस्मृति में **उत्तम संतान** की प्राप्ति को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई हैं। प्राप्ति के साधन भी वर्णित हैं। कहा गया हैं कि **विवाह का उद्देश्य**-'खाओ, पियो, मौज करो' - Eat, Drink and be merry नहीं होता हैं।' **विवाह का उद्देश्य है** -'प्रभु-प्रदत्त स्त्री-पुरुष जन्म को शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, एहलौकिक, पारलौकिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के साधनों की ओर प्रवृत्त करना। विवाह का उद्देश्य **अनर्गल भोग-काम- वासना की तृप्ति** नहीं, अपितु उत्तम संतान की प्राप्ति के द्वारा **देव, पितृ** तथा **ऋषि-ऋण** आदि से मुक्ति पाना होता हैं।'

गृहस्थ-धर्म

वैदिक विवाह दो पुनीत आत्माओं का मिलन होता हैं। वर-वधु विवाह-यज्ञवेदी की अग्नि के समक्ष '**सप्त-पदी**' के द्वारा सात प्रतिज्ञाएं लिया करते हैं। अन्त में दोंनों प्रतिज्ञाएं करते है। अन्त में दोनों कहते हैं -'आगे के जीवन में जो कुछ भी हम करेंगे - यज्ञ, दान, व्रत, पुण्य, तीर्थ, पूजन, रक्षण - सब साथ-साथ करेंगे -'**यज्ञे होमे च दान दौ भविष्यामि**

त्वया सह' और अन्त में '**ध्रुव दर्शन**' के समय कहते हैं कि - 'हम दोनों अपनी अपनी प्रतिज्ञाओं पर ध्रुव के समान अटल रहेंगे। अब हम दोनों सखा हो गए - '**ॐ सखा भव**' अर्थात् आप और हम परमेश्वरी-परमेश्वर (शिव-परमेश्वर) स्वरूप होकर **एक दूसरे** के प्रति '**सखा**' भाव रखेंगे।' **यही सनातन संस्कृति का सहधर्मिणी स्वरूप हैं।**

वेदों में परमेश्वर को सखा कहा गया हैं। सनातन संस्कृति में विवाह-संस्कार आध्यात्मिक आदर्शों पर आधारित हैं। मनुस्मृति में **विवाह का वर्गीकरण, विवाह-विधान, सप्तपदी मंत्र** आदि विस्तार से वर्णित हैं। व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र को समुन्नत रखना ही वैवाहिक जीवन का उद्देश्य हैं।

जनसंख्या वृद्धि ने हमारे देश, हमारे राष्ट्र की कमर तोड़ दी हैं। यह अनर्गल **भोग-काम-वासना** की तृप्ति का ही कुपरिणाम हैं। ऋषियों ने सर्वदा **कामेन्द्रिय-नियंत्रण** का निर्देश दिया हैं। पुत्र या पुत्री को परिवार में समान स्थान दिया जाता था। आज समस्त वैदिक मान्यताऐं लुप्त हो गई हैं। मनस्मृति (श्लोक ३/४५-४७-५०) में स्पष्ट निर्देश हैं एवं **स्त्री-गमन** के विधान वर्णित हैं -

"महीने भर में स्त्री-रजस्वला होने के दिन से सोलह दिन का ऋतु-काल माना जाता हैं। इनमें पहली चार रात्रियाँ तथा ग्यारहवीं एवं तेरहवीं रात, ये छः रात्रियाँ स्त्री गमन के लिए निषिद्ध मानी गई हैं। शेष बची हुई दस रात्रियाँ प्रशस्त हैं। इस प्रकार निन्दित छः रात्रियों को और अनिन्दित दस रात्रियों में कुल चौदह रात्रियों को छोड़कर केवल दो रात्रियों में स्त्री-गमन से उत्तम संतान की प्राप्ति होती हैं।"

साथ ही यह भी कहा गया हैं कि गर्भाधान के समय स्त्री-पुरुष दोनों का ही दाहिना नासिका से श्वास चलता रहे तो 'पुत्र' तथा बांयी से चलता रहे तो 'कन्या' उत्पन्न होती हैं। **स्वयं वैवस्त मनु** को कोई

सन्तान नहीं थी । मुनि वशिष्ठ ने उन्हें **'मित्रावरूण'** यज्ञ करने का परामर्श दिया । उन्हें उत्तम सन्तानों की प्राप्ति हुई ।

प्राचीनकाल में **सन्तानोत्पत्ति यज्ञ-कार्य** था । पुत्र, पौत्र, दौहित्र (पुत्री के पुत्र) का आध्यात्मिक संस्कारों के निर्वहन हेतु समान अधिकार प्राप्त था । धर्म-परम्परा की रक्षा के लिए संतान की प्राप्ति की जाती थी । **सहधर्मिणी** के लिए मनुस्मृति में पाँच प्रमुख धर्म वर्णित हैं -

(१) सन्तानोत्पत्ति, (२) धर्मानुष्ठान में सहभागिता, (३) गृहजनों की सेवा, (४) पति के लिए रति तथा अपने और (५) पितरों के लिए मोक्ष-अनुष्ठान -

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रुषा रतिरुत्तमा ।

दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणात्मनश्चह ॥ - मनुस्मृति ६/२८

विवाह के बाद पति भी यह दुहराता था -**'ध्रुव दर्शन'** के साथ हम दोनों अपनी प्रतिज्ञाओं पर ध्रुव के समान अटल रहते हुए सन्तानों के साथ सौ वर्ष जीवित रहने की कामना करें -

'मया पत्या प्रजावती संजीव शरदांशतम् ।'

५. लोक - परलोक सूत्र

परलोक सहायार्थम् । - मनुस्मृति ४/२३८

और *नामुत्र हि सहायार्थ विता माता च तिष्ठतः ।* - मनुस्मृति ४/२३९

उपयुक्त जैसे श्लोकों में परलोक का विवरण उपलब्ध हैं । वेद, पुराण, श्रुति, स्मृति, गीता, रामायण, महाभारत एवं आध्यात्मिक मार्गी सन्तवाणी आदि में भी लोक-परलोक का वर्णन उपलब्ध हैं ।

मनस्मृति में **लोक-व्यवस्था** के लिए **'आश्रम-व्यवस्था'** का उल्लेख हैं । परलोक व्यवथा के लिए **पितृ यज्ञ** तथा **पितृ-श्राद्ध** का वर्णन हैं । कहा गया हैं कि मृत पितरों की तृप्ति के लिए प्रति मास कृष्ण पक्ष में अमावस्या को श्राद्ध करना चाहिए -**'पितृभ्योमासि उपमास्यं ददाति'** तथा

'पित्रेराज्यद्रजीमासः' (मनु० १/६६) । '**गीता**' में भी श्राद्ध-यज्ञ से पितृ-संतुष्टि का वर्णन पूर्णरूपेण वैज्ञानिक ढंग से किया गया हैं -'**यज्ञ की हवि अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र** आदि देवता किरणों से खींचकर मेघ बनाकर वृष्टि तथा मनोरथ की वृष्टि कर देते हैं । वायु-शुद्धि की इस प्रक्रिया को **पितृ-देव तृप्ति** का साधन कहा जाता हैं, क्योंकि पितृगण भी निज परलोक में वायु-स्वरूप ही निवास करते हैं । (गीता ३/१०-१२)

मनुस्मृति में अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र आदि प्राकृतिक देवताओं को भी **ब्रह्म का विस्तार** कहा गया हैं । परमात्मा ही सर्वदेवमय हैं । वे ही **पितृदेव** भी हैं -'**आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मव स्थितम् ।** (मनुस्मृति १२/११९)' वे ही देवता 'हवि से तृप्त होकर प्रजा के लिए हित, **धन-धान्य** आदि उत्पत्त्यर्थ जल वृष्टि क्रिया करते हैं - (मनुस्मृति ३/७६) ।' फलतः पितृ-यज्ञ तथा पितृ-श्राद्ध हेतु कहे गये तथ्य कोरी-कल्पना नहीं हैं, अपितु जीवन-सत्य सिद्ध हो चुके है । कहा गया हैं -'**श्राद्ध से तृप्त हो कर पितृगण श्राद्धकर्त्ता को दीर्घायु, सन्तति, धन, विद्या, सुख, राज्य, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करते हैं ।**' अथवा जीतिव पितामह, पिता एवं माता की श्रद्धा सहित तन, मन, धन, वाणी से सेवा की प्रधानता बनाये रखते है ।

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानचि ।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं पितरः श्राद्धतर्पिताः ।। - मार्कण्डेय पुराण

संसार के किसी भी ग्रंथ में लोक-परलोक और श्राद्ध आदि का इतना विस्तृत एवं वैज्ञानिक विवेचन कहीं उपलब्ध नहीं हैं । ईसाई धर्म के एक संत पादरी ने लिखा हैं -'सर्व संत तथा सर्वात्मा दिवस (All saints and all souls day) हिंदुओं के पितृ-श्राद्ध का अनुकरण ही हैं। हम ईसाई इसे **आशाए रबानी** (Holy Communion) के रूप में मानते हैं । मेरा मत हैं कि हिन्दुओं की इस प्रथा का अनुकरण सभी धर्मानुयायियों द्वारा किया जाना चाहिए ।'

औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहाँ को कैद में रखकर पेट भर पानी की व्यवस्था नहीं की, तब प्यासे शाहजहाँ ने मरते समय कहा था –**'शत-शत प्रशंसनीय हैं हिन्दू, जो अपने मृत पिता को भी जल देते हैं ।'**

'आफरीन बाद हिंदबान सद् बाद, मैं देहंद पितरे मुर्दाराबा दायमा आब ।'

– वाकेआत आलमगीरी

६. समता - सूत्र

व्यक्ति और परिवार के बीच, परिवार और समाज के बीच, समाज और राष्ट्र के बीच तथा राष्ट्र और विश्व अर्थात् सकल सृष्टि के बीच **समता, समानता** और **सम्मान** की प्रतिष्ठा बनी रहे, इस हेतु सनातन संस्कृति में **ज्ञान-स्रोत** का प्रमुख केन्द्र **ऋषि-आश्रम** थे । ऋषियों ने व्यक्ति के जीवन को परमार्थमय बनाने के लिए **जीवेम् शरदः शतम्** की परिकल्पना की **थी** । व्यक्ति की आयु १०० वर्ष मानी गई थी । व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन को **चार आश्रमों - ऋषि आश्रम** (ब्रह्मचर्य आश्रम), **गृहस्थ आश्रम** (पारिवारिक आश्रम), **अरण्य आश्रम** (वानप्रस्थ आश्रम) तथा **ध्यान आश्रम** (सन्यास आश्रम) में विभाजित कर दिया था । प्रथम आश्रम **ज्ञानोपार्जन आश्रम** का समय ऋषि-आश्रम में व्यतीत होता था । वह जीवन **ब्रह्मचर्य प्रधान** हुआ करता था । उसी में प्राणी स्वयं को भावी जीवन के लिए तैयार करत था ।

दूसरा आश्रम **गृहस्थ आश्रम** (पारिवारिक) हुआ करता था । इसमें **'अर्थोपार्जन'** के द्वारा व्यक्ति द्वारा तीनों आश्रमों का – **ब्रह्मचर्य-वानप्रस्थ-सन्यास** का भरण-पोषण हुआ करता था । 'मनुस्मृति' में **गृहस्थ-कर्म** को वर्णित करते हुए कहा गया हैं कि –

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ।

तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ।। – मनुस्मृति ३/७७

दान तथा अन्न से पालन करने का भार गृहस्थ पर हैं । उन्हें

निःस्वार्थ भाव से तीनों आश्रमों की सेवा करनी हैं । ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और सन्यासी के लिए गृहस्थ का द्वार उसी प्रकार खुला रहना चाहिए, जिस प्रकार नदी का जल-तट सबके लिए खुला रहता हैं तथा वायु का उपयोग समस्त प्राणियों को समान रूप से प्राप्त होता रहता हैं ।

'मनुस्मृति' में **'वानप्रस्थी'** और **'सन्यासी'** के जीवन के आदर्श निर्धारित किए गए हैं - **'दोनों को सम्मान से दूर ही रहना चाहिए ।'**

असम्मानात्तपोवृद्धिः सम्मानातु तपः क्षयः । - श्रुति

असम्मान से ही तप में वृद्धि होती हैं और सम्मान से तप का क्षय होता हैं ।

वर्ण-व्यवस्था और वर्ग-व्यवस्था में ब्राह्मण को समाज का गुरु कहा गया हैं, लेकिन ब्राह्मण के लिए भी आदर्श का नियोजन किया गया है -

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ।
अमृतस्येव चाकांगेदेवमानस्य सर्वदा ।। - श्रुति

ब्राह्मण को भी सम्मान को विष मानकर सदैव उसके प्रति उदासीन रहना चाहिए और अपमान को अमृत मानकर उसका पान करना चाहिए ।

इस प्रकार समाज को अनुशासित रखने के लिए मनुस्मृति में वानप्रस्थी और सन्यासी के आचरण पर भी अंकुश लगाया गया हैं । इतना ही नहीं, **जन प्रतिनिधि**, **गणतंत्र अध्यक्ष** तथा **राजतंत्र प्रधान** के लिए भी **प्रजा-परिषद्** तथा **दण्ड-विधान** का निर्धारण किया गया हैं ।

'मनुस्मृति' में लिखा हैं -'सृष्टि के आरम्भ में समस्तजन निज-निज कर्त्तव्यों का स्वेच्छापूर्वक अनुशासित रहकर पालन किया करते थे । संख्या बढ़ी । अराजकता उत्पन्न हुई । प्रजा-पक्ष हेतु **दण्ड-विधान** बने । प्रजातन्त्र स्थापित हुए । राजतन्त्र स्थापित हुए -

अराजके हि लाकेऽस्मिन सर्वतो विद्रुते भयात् ।
राक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानामसृज प्रभुः ।। - मनुस्मृति ७/३

मनुस्मृति के सातवें सर्ग में वर्णित **'दण्ड-व्यवस्था' के समक्ष आज के समस्त 'न्याय-ग्रंथ' एवं 'विधान-ग्रंथ' फीके पड़ जाते हैं ।**

७. ज्ञान - सूत्र

ज्ञान के प्रमुख स्रोत हैं - **माता, पिता** और **आचार्य** । फलतः कहा गया हैं -**'मातृ देवो भव ।', 'पितृ देवो भव ।', आचार्य देवो भव ।'** - (तैत्तिरीयोपनिषद्) इन तीनों की निष्काम सेवा से ही **ज्ञानार्थी** को समस्त ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं । अन्य सभी धर्म, कर्त्तव्य एवं ज्ञान **उपधर्म** हैं -

त्रिष्वेतेष्वि तिकृत्यं हि पुरुषस्य समाण्येत् ।
एषधर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते ।। - मनुस्मृति २/२३७

ये तीनों ही लोक हैं, तीनों आश्रम हैं, वेदों के तीन - ज्ञानकाण्ड, उपासना काण्ड, कर्मकाण्ड हैं । ये तीनों ही अग्नि हैं - गार्हपत्य अग्नि (पिता), दक्षिणाग्नि (माता), आहवनीय अग्नि (आचार्य) हैं ।

- मनुस्मृति २/२३०, २३१, २३४

समस्त संस्कारों से संस्कारित होकर जो ज्ञानार्थी नित्य गुरूजनों को नमन करता हैं, सेवा करता हैं - उसे यश, विद्या, आयु, धन, बल आदि समस्त गुण नित्य प्राप्त होते रहते हैं । फलतः **नमन** और **अभिवादन ज्ञान-धरा भारत का प्रथम ज्ञान हैं** और **ब्रह्मचर्य आश्रम** तथा अन्य आश्रमों के **'ज्ञान'** इस प्रथम **'शील'** पर आधारित हैं -

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयु र्विद्या यशोबलमृ ।। - मनुस्मृति २/२२१

८. सृष्टि कल्याण - सूत्र

सनातन संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता हैं कि भारतीय वैज्ञानिक-जीवन की चरितार्थता समष्टि जीवन-कल्याण में हैं, सृष्टि-कल्याण में हैं । जो चतुर्विध पुरूषार्थ व्यक्ति के हैं, वे ही चतुर्विध पुरुषाथ **अखिल**

मानव जाति के हैं । मनुस्मृति का प्रथम सृष्टि कल्याण संदेश हैं - समष्टि-कल्याण - **बहुजन हिताय बहुजन सुखाय (कल्याण)** ।

सनातन संस्कृति के दो प्रमुख आधार बिन्दु हैं - **धर्म** और **ईश्वर** । **ईश्वर** एक हैं और उसके द्वारा निर्धारित **धर्म** भी **एक** हैं- **मानव-धर्म** । यह मनुस्मृति का दूसरा सृष्टि-कल्याण संदेश हैं । अतः मनुस्मृति कहती हैं - 'जगत एक हैं, मानव-जाति एक हैं । तीनों लोक एक हैं, सबके हैं, सबके लिए हैं । तीनों काल एक हैं । एक ही परमात्मा के सब उत्पादन हैं । इस एकत्व में एक रहकर ही सृष्टि का प्राणी उत्कर्ष कर सकता है । अलग रहकर उत्कर्ष भौतिक उत्कर्ष हो सकता हैं - आध्यात्मिक नहीं । इसी एकत्व में प्राणी निज-निज गुणों का उत्कर्ष पा सकता हैं ।

यही सनातन संस्कृति के पावन ग्रंथों - **वेद, पुराण, गीता, स्मृति, रामायण, भागवत** के **मंगल-मंत्र** हैं । इसे ही मनुस्मृति में **'सृष्टि-कल्याण'** मंत्र कहा गया हैं -

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ - मनुस्मृति २/२०

(ड़) भाषा और व्याकरण

जटा माला शिला लेखा ध्वजो दण्डो रथो धनः ।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ता क्रमपूर्वा मनीषिभिः ॥ - विकृत वल्ली १/५

जटा, माला, शिला, लेखा, ध्वजा, दण्ड रथ और धन - ये मन्त्र-विकृति के आठ भेद हैं । साथ ही वेद-पाठ की आठ रीतियाँ हैं । इनमें से एक-एक रीति अपनी विशेषता रखती हैं । कौनसा अक्षर किसके साथ हैं, कौनसा स्वर ह्रस्व हैं, दीर्घ या प्लुत हैं - इन पाठ भेदों से यह स्पष्ट हो जाता हैं । किसी भी भाषा में विकार उच्चारण भेद के

कारण आता हैं। वेदों के उच्चारण को ये पाठ-पद्धतियाँ नित्य परिष्कृत रखती हैं। उसमें विकार उत्पन्न नहीं होता हैं।

इन तथ्यों से ज्ञात होता हैं कि 'वेद' व्याकरण सम्मत हैं। आदि ज्ञान एवं आदि भाषा ईश्वर की ओर से मनुष्य को प्राप्त हुई और वही 'वेद' हैं। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान मैक्समूलर का कहना हैं -'**निःसंदेह मनुष्य की मूल भाषा एक ही थी। जब भाषा मनुष्य को ईश्वर ने दी, तब उसमें भेद कैसे हो सकता हैं। ईश्वर मनुष्य को क्यों अनेक भाषाएं प्रदान करने लगा।**'

विद्वानों का मत हैं इतिहास साक्ष्य है कि **सृष्टि का प्रथम साहित्य वेद हैं और वेदों की भाषा संस्कृत हैं। अतः संस्कृत ही आदि भाषा हैं।** कालान्तर में इसका कुछ स्वरूप क्षेत्र विशेष के कारण बदल गया।

इस प्रकार मूल भाषा संस्कृत हुई और प्रथम रचना 'वेद' हुई। अन्य भाषाऐं संस्कृत से निकलीं या उसी का रूपान्तर बनकर प्रचलित हुई। सम्पूर्ण मानव की, मानव परिवार की एक ही मूल भाषा से संसार की समस्त प्रचल्लित आदि भाषाऐं निकली, इसका प्रमाण निम्नलिखित शब्दों में दिया जा सकता हैं -

'संसार में मुख्य आदि भाषाएं हैं - **संस्कृत, ग्रीक, जेंद, अरबी, लैटिन, हिब्रू, चीनी, सामोपेडिक, इन सभी से संस्कृत का किसी न किसी रूप से संबध स्पष्ट होता हैं। जैसे सभी भाषाओं में संस्कृत की भाँति स्त्रीलिंग, पुल्लिंग एवं नपुंसकलिंग हैं। इनमें 'वचन' भी तीन हैं। स्त्रीलिंग और पुल्लिग बनाने के नियम भी एक जैसे ही हैं। इनमें संस्कृत की भाँति ही आठ विभक्तियाँ हैं**'

स्पष्ट हैं कि इन भाषाओं की उत्पत्ति और उनके व्याकरण का प्रादुर्भाव संस्कृत से ही हुआ हैं। यह सत्य हैं कि मूल भाषा एक होने

पर भी क्षेत्र-विशेष एवं काल-विशेष के कारण भाषा-व्याकरण में विकृतियाँ आती रहीं । इसका मूल कारण **उच्चारण-दोष** हुआ करता हैं । लैटिन, ग्रीक, हिब्रू आदि में आज भी संस्कृत के शब्द भरे पड़े हैं । उच्चारण-दोष के कारण कुल अक्षरों में कमी आ गई हैं । जैसे संस्कृत में ४७ अक्षर, अरबी में २८, हिब्रू और लैटिन में २०, रूसी में ३५, फारसी में ३१, अंग्रेजी में २६, स्पैनिश में २७, बाल्टिक में १७, फ्रेंच में २५ अक्षर होते हैं । **अंग्रेजी के समान कई भाषाएं अन्य भाषाओं के मेल से बनी हैं। अनेक भाषाओं के मेल से उच्चारण तो बढ़ गए, लेकिन अक्षर नहीं बढ़े । उच्चारण की दृष्टि से केवल संस्कृत ही परिपूर्ण भाषा हैं । अतः संस्कृत ही मूल भाषा हैं ।**

भाषा की उत्पत्ति की मूल कथा :- संस्कृत ही मूल भाषा हैं, अतः मूल-कथा का सम्बन्ध भी 'भारत' ही से हैं । वैदिक-संस्कृति ब्रह्म-मूलक संस्कृति है, फलस्वरूप भाषा के प्रथम उद्गाता भी 'ब्रह्म' ही हैं । 'गीता' में स्वयं पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण कहते हैं कि **गीता का प्रथम ज्ञान उन्होंने सृष्टि के आरम्भ में भगवान सूर्य को दिया था और उसी ज्ञान का विस्तार 'वेद' हैं ।**

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत ।। - गीता ४/१

इस योग विद्या को सृष्टि के आरम्भ में मैंने सूर्यदेव को दिया था, जिनसे परम्परानुगत वह मनुष्यों के पिता **मनु** तक पहुँचा ।

साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया कि -**'अक्षराणामकारोऽस्मि'** (अक्षरों में मैं 'ॐ' कार हूँ अर्थात् प्रथम अक्षर हैं) और **'गायत्री छन्दासामहम्'** (छन्दों में मैं ही गायत्री हूँ अर्थात् विश्व का प्रथम छन्द हूँ) तथा **'वेदानांसामवेदोऽस्मि'** (अर्थात् गायन वेद 'सामवेद' में मैं सामवेद हूँ)।

स्पष्ट हैं कि सृष्टि की प्रथम ध्वनि '**ॐ**' कार ही प्रथम अक्षर हैं, जिससे '**ब्रह्म-बोधक**' प्रणव कहा जाता हैं । भारतीय जन-जीवन के समस्त कर्म - ब्रह्म-कर्म, प्रभु-कर्म और वेद-कर्म माने जाते हैं । फलतः भारतीय भाषाओं की उत्पति का मूल कृष्ण-वाक्य/ या गुरू वाक्य की '**ॐकार-ध्वनि**' अनाहद नाद हैं या माता सरस्वती की '**वीणा-ध्वनि**' हैं अथवा देवाधिदेव महादेव का '**डमरू-नाद**' हैं । **भाषा की उत्पत्ति ही** '**नाद-ब्रह्म**' **से हुई हैं**, यही सतगुरु का अनमोल शब्द है ।

व्याकरण का इतिहास :- भाषा वैज्ञानिकों का कहना हैं कि जब भाषा प्रभु-प्रदत्त हैं, तब व्याकरण भी प्रभु-प्रदत्त ही है, क्योंकि '**छन्द**' की रचना व्याकरण के बिना नहीं की जा सकती हैं । लेकिन व्याकरण का लिखित इतिहास '**आचार्य पाणिनी**' से पहले का नहीं मिलता हैं । वेद के सम्यक् ज्ञान के लिए प्राचीन ऋषियों ने '**छः वेदांगों**' का वर्णन किया हैं - कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, ज्योतिष तथ शिक्षा । साथ ही यह भी कहा हैं कि '**वेदार्थज्ञान**' में '**व्याकरण**' का प्रमुख स्थान हैं -

'विल्वग्रहणायेमं ग्रन्थं सम्मानासिपुवेदं वेदांगानिच । - निरूक्त १/२० और
'प्रद्यानं च षटस्वंगेशु व्याकरणम् ।' -महाभारत अ. १/पाद १/आ.२

भगवान पतंजलि ने '**व्याकरण-शास्त्र**' का आर्विभाव 'वेद' से माना हैं । अपने सिद्धान्त की पुष्टि में '**चत्वारि शृँगा०, चत्वारि वाक्, उतत्वः, सक्तुमिव०, सुदेवोऽसि०** - ये पाँच वेद-मंत्र उद्धत करते हैं ।' लेकिन '**प्रातिशाख्य**' आदि वैदिक ग्रंथों में जिन ५७ व्याकरण प्रवक्ता आचार्यों के नाम आते हैं, उनमें ३४ के नाम कहीं उपलब्ध नहीं हैं । केवल २३ के नाम ग्रंथों में कहीं-कहीं वर्णित हैं - इन्द्र, वायु, भरद्वाज, भागुरि, पौष्करसादि, चारायण, काशकृत्सन, वैयाघ्रपद्य, माध्यन्दिनी, रौढ़ि, शौनकि, गौतम, व्याडि, आपिशील, काश्यप, गार्ग्य, गालव, चाक्रवर्मण,

भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य, सेनक, स्फोटायन ।

इनमें भी इन्द्र, भागुरि, काशकृत्सन, पौष्करसादि और आपिशलि- इन पाँचों के सूत्र तथा मंत्र अनेक ग्रंथों में उपलब्ध हैं (संस्कृत व्याकरण का इतिहास) । ये पाणिनी मुनि से भले ही पहले हुए, किन्तु पाणिनी से अधिक प्रमाणित व्याकरण और कहीं नहीं मिलती हैं । पाणिनी मुनि के व्याकरण का काल आज से लगभग ४८६० साल पुराना अर्थात् वि०सं० से पूर्व २८०० साल पुराना ठहरता हैं ।

संस्कृत के समस्त देशी और विदेशी विद्वानों ने एक स्वर से 'पाणिनीय व्याकरण' को सर्वश्रेष्ठ माना हैं । सर विलियम हण्टर ने लिखा हैं -**'संसार के व्याकरणों में पाणिनी का व्याकरण चोटी का हैं । उसकी वर्ण शुद्धता, भाषा का धात्वत्वय सिद्धान्त और प्रयोग विधियाँ अद्वितीय और अनुकरणीय हैं । मानव मस्तिष्क का अद्भुत आविष्कार हैं ।'**

– महान भारत – पृष्ठ १५६

पाणिनीय व्याकरण के पाँच ग्रंथ उपलब्ध हैं – **शब्दानुशासन, धातुपाठ, गणपाठ, उणादिसूत्र और लिंग-अनुशासन** । इनमें शब्दानुशासन अर्थात् **'अष्टाध्यायी'** प्रमुख है, शेष चार सब उसी के परिशिष्ट हैं । **'अष्टाधयी'** में आठ अध्याय और प्रति अध्याय में चार-चार पाद हैं। इस **'अष्टाध्यायी'** ग्रंथ में चार हजार (४०००) सूत्र हैं । यह रचना इतनी सुसम्बद्ध हैं कि इसमें **एक मात्रा के व्यतिक्रम से अर्थ का अनर्थ हो जाता हैं** । इस ग्रंथ का अध्ययन करने वाला प्रत्येक पाठक रचना-सौष्ठव को देखकर मंत्रमुग्ध हो जाता हैं तथा मुक्त-कंठ से इसकी गुणवत्ताओं की प्रशंसा करने लग जाता हैं । बाल की खाल निकालने में अत्यन्त पटु प्रकाण्ड विद्वान महर्षि पतंजलि ने भी कहा हैं -

सामर्थ्य योगाश्र हि किंचदस्मिन् पश्यामि शास्त्रे यदनर्थकं स्यात् ।

– महाभाष्य ६/१/७७

भारतीय लिपि शास्त्र :- भाषा एवं व्याकरण के समान ही '**लिपि**' भी ऋषि-प्रदत्त उपहार हैं। वर्तमान समय में '**मानव-धर्मशास्त्र**' की '**भृगु-प्रोक्त-संहिता**' में लिपि जानने वाले प्राचीनतम विशेषज्ञों के उल्लेख मिलते हैं। बृहस्पति और नारद शास्त्रों में भी इनके उल्लेख हैं। महाभारत सभापर्व ५/६२ में '**गणक**' और '**लेखक**' का वर्णन हैं। मत्स्य पुराण २१५/२५ में '**सर्वदेशाक्षराभिज्ञ:**' पाठ का उल्लेख मिलता हैं - राजा के पास सब देशों के अक्षर जानने वाले लेखक या गणक हुआ करते थे। अनेक देशों के अक्षरों एवं लिपिशास्त्रज्ञ भारत में थे।

(च) शिक्षा - केन्द्र

ॐ सहनाववतु। सहनौभुनक्तु। सह वीर्यं करवाव हे।

तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषाव हे॥ - कठोपनिषद् शान्ति पाठ

अर्थात हम सब मिलकर परस्पर एक-दूसरे की रक्षा करें। अधिगत विद्या-प्रसार को परस्पर मिलकर उपभोग करें। परस्पर मिलकर अविद्या-अंधकार को दूर करे। हम सबों के द्वारा अधिगत विद्या तेजस्विनी हो। हम सब मिलकर किसी भी प्रकार से विद्वेष नहीं करें।

ज्ञानार्थी और समस्त आचार्यगण नित्व प्रति '**वैदिक गुरूकुलों**' में इस मंत्र के उच्चारण के साथ ही विद्या-अभ्यास प्रारम्भ किया करते थे। इस '**श्रुति-वाक्य**' में अभिव्यंजित '**पाँच-प्रयोजनों**' की प्राप्ति ज्ञानार्थी और आचार्यों का जीवन-मंत्र (Life Motto) हुआ करता था। इसी के लिए वे जीवन-पर्यन्त प्रयत्नशील रहा करते थे।

'**षिक्षा-सत्र**' के अन्त में आचार्य अपने प्राण-प्रिय अन्तेवासी के लिए मंगल-भाव अभिव्यंजित किया करते थे -

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति । सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्यय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् । देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् । मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्य देवो भव । अतिथि देवो भव । – तैत्तिरीय उपनिषद्

प्रस्तुत अंश में अन्न, प्राण, आत्मा आदि पर सूक्ष्म चिन्तन किया गया है । प्राचीन समय में विद्या की समाप्ति पर आचार्य की ओर से विदा होने वाले शिष्य को दिया जानें वाला उपदेश निश्चित रूप से बहुत ही महत्वपूर्ण होता था । वह उपदेश वर्तमान समय के विद्यार्थियों के लिए भी अत्यधिक प्रेरणास्पद है । आज भी अनेक विश्वविद्यालयों के दीक्षान्त समारोह में यह अनुशासन रूपी उपेदश प्रदान किया जाता है ।

आचार्यों के मंगल-भाव को जीवन-मंत्र बनाने वाले समस्त ब्रह्मचारी जीवन-पर्यन्त सुखी, सम्पन्न, परोपकारी, समाज-सेवक, राष्ट्र-प्रेमी, स्वाध यायरत, नित्य-न्याय प्रिय बने रहते थे ।

यहीं परम्परा हजारों वर्षों तक चलती रहीं । जनसंख्या वृद्धि के साथ जैसे-जैसे दुर्गुणों की वृद्धि होती गई, इस पद्धति का लोप होने लगा । जब तक **'आश्रम शिक्षा-पद्धति'** का आदर्श भारत के आचार्यों और ब्रह्मचारियों मे अनुष्ठित रहा, तब तक भारत मे अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों की समुचित उन्नति होती रहीं । आश्रम शिक्षा पद्धति पर आधारित कालान्तर में कुछ विश्वविद्यालय भी स्थापित हुए, इनमें सबसे प्राचीन विश्वविद्यालयों के खण्डहर आज तक विद्यमान हैं, जो समृद्ध भारत के गौरव-गान कर रहें हैं ।

(ज) वैदिक विद्यालयों की परम्परा का वर्तमान रूप

मनुस्मृति में वैदिक विद्यालयों की शिक्षा-पद्धति का उद्देश्य वर्णित करते हुए कहा गया हैं -'**अध्यापनं ब्रह्म यज्ञः**' (मनुस्मृति ३/७०)। प्राचीनकाल में ऐसे आश्रम अरण्यों में हुआ करते थे। कभी-कभी आवश्यकता के अनुसार उनके पास गाँव भी बस जाया करते थे। उन दिनों 'विद्यार्थी जीवन' का स्वरूप होता था -'**ब्रह्मचारी**' एवं '**तपस्वी**'।

'**रामायण**' काल में ऐसे आश्रम गंगा-जमुना के तट पर अरण्य में स्थित थे। आचार्य भारद्वाज के दो आश्रम -'**प्रयाग**' और '**हरिद्वार**' **में गंगातट पर स्थित थे**। **महाभारत काल** में महर्षि भारद्वाज स्थायी रूप से **हरिद्वार** में ही निवास करने लगे थे। उसी काल में उन्होंने बाल्यावस्था में राजा **द्रुपद** और **द्रौण** को **वेद-वेदांग, धनुर्वेद, आग्नेयशस्त्र** आदि की शिक्षा दी थी। ऋषि अग्निवेश ने भी बचपन में उन्हीं से शिक्षा प्राप्त की थी।

परम पराक्रमी **परशुराम** का आश्रम **महेन्द्र पर्वत** पर था। उन्होंने ही **द्रोणाचार्य**, दानी धनुर्धर **कर्ण** तथा अजेय पराक्रमी **भीष्म पितामह** को शिक्षा दी थी। इन सबों ने **शस्त्र-शास्त्र** एवं **वेद-वेदांग** का ज्ञान उनसे प्राप्त किया था।

महर्षि व्यास का आश्रम **हिमाचल क्षेत्र** में था। सुमन्त, वैशम्पायन, जैमिनी और पैल जैसे ऋषियों ने उनके ही आश्रम में वेद-वेदांग का ज्ञान पाया था। **महर्षि कणव** का आश्रम **मालिनी नदी** के तट पर था। इस आश्रम में न्याय तत्व, आत्म विज्ञान, मोक्ष-शास्त्र, तर्क-शास्त्र, व्याकरण, छन्द, निरूक्त, कर्म, गुण, द्रव्य, कार्य-कारण आदि की विशेष शिक्षा दी जाती थी। यहाँ प्रायः **लोकायतिक** नामक आचार्य **अतिथि प्राध्यापक** के रूप में आया करते थे।

महर्षि अगस्त्य का आश्रम **दण्डकारण्य** में था। भगवान श्रीराम अपनी सहधर्मिणी श्री सीता के साथ इस आश्रम पर पधारे थे। **वाल्मीकि रामायण** और **तुलसीकृत रामायण** में भी इसका उल्लेख हैं। इस आश्रम में ब्रह्म, अग्नि, विष्णु, महेन्द्र, विवस्वान (सूर्य), सोम, भग, कुबेर, धाता, विधाता, वायु, वरूण, गायत्री, वसुगण, नागराज, गरूड़, कार्तिकेय, गणेश, महेश आदि के लिए अलग-अलग पूजन-स्थल बने हुए थे।

बौद्धयुग (आज से २५०० वर्ष पूर्व) आते-आते राजाओं का वर्चस्व बढ़ गया। राजाओं ने **आश्रमों** और **मठों** के लिए **अग्रहार** नाम से क्षेत्र सुरक्षित कर दिये। उसी **अग्रहार** भूमि से उनका भरण-पोषण होने लगा था। **बौद्धयुग में भिक्षाटन की प्रथा एक व्यापक रूप से चल पड़ी।** इसके बाद से भारत पर निरंतर **हूणों**, **शकों**, **यवनों**, **मुसलमानों**, **मुगलों** के आक्रमण होने लगे। आश्रम शिक्षा-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। इसके बाद शिक्षा के केन्द्र **संस्कृत टोल**, **मठ**, **मन्दिर** आदि बन गए। अंग्रेजों के आने के बाद वे भी छिन्न-भिन्न हो गए।

वेदों की शिक्षा और **संस्कृत शिक्षा** के आदर्श सुरक्षित रखने में **दक्षिण भारत** के राजाओं का महत्वपूर्ण योगदान हैं। **तिरूवोरियम** और **मल्कापुरम** के विद्या-मंदिरों में पाँच सौ विद्यार्थी वैदिक साहित्य, व्याकरण, तर्क-शास्त्र तथा 'अगम' की शिक्षा ग्रहण किया करते थे। **एन्नारियम**, **चिंगलीपुट** और **तिरूमुक्कुदल** में सैंकड़ों विद्यार्थी ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथवर्वेद की शिक्षा ग्रहण किया करते थे। **हैदराबाद के नगई नगर** में लगभग पाँच सौ शिक्षार्थी वेद, स्मृति, पुराण आदि की शिक्षा ग्रहण किया करते थे। **बीजापुर** जिले में **मनगोली**, **कर्नाटक** में **वेलगमवे शिमोग** जिले में **तालगुण्ड** और **तिंजोर** जिले में **पुन्नवयिल** आदि में भी **वैदिक-शिक्षा केन्द्र** थे।

आदि शंकराचार्य ने भी **पुरी, कांची, द्वारिका, बद्रीनाथ में** उच्च कोटि के मठीय विद्यालयों की स्थापना की थी । इन सबके अतिरिक्त भी १४वीं शताब्दी में श्री जगद्गुरु रामानन्दाचार्य द्वारा स्थापित कई वैष्णव पीठों की स्थापन हुई थी, जहाँ आध्यात्मिक-सामाजिक उन्नति के विषयों का अध्ययन करवाया जाता था । ऐसे ही भारत के विभिन्न भागों में वैदिक शिक्षा-केन्द्र उपलब्ध थे ।

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान भी इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किए गए । **गुरुदेव रविन्द्रनाथ द्वारा स्थापित शान्ति निकेतन, बापू द्वारा स्थापित** सेवाग्राम, **पंडित मदन मोहन** मालवीय **द्वारा स्थापित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, सरदार पटेल द्वारा स्थापित** गुजरात विद्यापीठ, साथ ही अन्य स्थानों पर स्थापित **काशी विद्यापीठ, देवघर विद्यापीठ (झारखंड), पंचमठ,** हिरण्यमठ, **कोडियममठ** आदि के द्वारा सनातन संस्कृति को सुरक्षित रखने के प्रयास किए गए । लेकिन अंग्रेजी के वर्चस्व ने आज हमसे **भारतीय संस्कृति के आदर्श** छीन लिए हैं ।

भौतिकवादी लिप्साओं मे आबद्ध, आज भारतीय समाज **मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव, वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वे भवन्तु सुखिनः, शस्त्रेण रक्षति राष्ट्रः, यत्रनारियस्तु पूज्यन्ते रमणयते तत्र देवता,** जैसे आदर्शों से विमुख होता जा रहा हैं । एक बार पुनः **गीता** के **निष्काम कर्म, निष्काम प्रेम** और **निष्काम अध्यात्म** का **पांचजन्य नाद** करना होगा, माता सरस्वती की वीणा ध्वनित करनी होगी और शिव का डमरू नाद और श्रीकृष्ण की मुरली का अनाहत नाद ध्वनित करना होगा ।

२ (क) आयुर्वेद

अकालमृत्यं हरणं सर्वव्याधि विनाशनम् ।

विष्णुपादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।। - कर्मकाण्ड

पूजन, भोजन तथा आचमन आदि कृत्यों मे '**तुलसीदल**' का विशेष महत्व माना गया हैं। ऊपर वर्णित श्लोक का मंत्रोचार करते हए '**चरणोदक**' या '**गंगाजल**' के उद्गम की कथा में उसे श्रीविष्णु के '**चरण**' से निर्गत '**ब्रह्मद्रव**' के रूप में प्रवाहित होने का उल्लेख मिलता हैं। इसी कारण पूजा के पश्चात् चरंणोदक पान करने की सनतान प्रथा का विधान हैं। '**गंगा**' हिमालय से निकलकर गिरि वन, कन्दराओं आदि को पार करते हुए अपने साथ विभिन्न प्रकार की जड़ी-बूटियाँ एवं औषधिय तत्वों को समाहित कर लेती हैं। फलतः तुलसीदल सहित स्वर्णवैष्ठित '**गंगाजल**' चरणोदक के रूप में ग्रहण करते हुए प्रार्थना की जाती हैं -

'हे पवित्र जल ! अकाल मृत्यु से मुक्त कर समस्त व्याधियों का विनाश कर दो । इस चरणोदक पान करने के पश्चात् पुनः जन्म-मरण के बन्धन में नहीं भटकना पड़े ।'

'**चरणोदक**' या '**भगवान के प्रसाद**' या भोजन में '**तुलसीदल**' डालने का विशेष महत्व बताया गया हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार 'जल' या 'भोजन' में '**तुलसीदल**' डालने से न्यूनातिन्यून परिमाण में विद्यमान अन्न-जल की विषाक्तता तुलसी के प्रभाव से शमित हो जाती हैं -'**तुलसीदल सम्पर्कादन्नं भवति निर्विषम्** ।'

भोजन के पूर्व '**ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा**' और भोजन के पश्चात् '**ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा** ।' मंत्र उच्चारण करने की सनातन प्रथा है, जिसका अर्थ होता हैं -'मैं अपने भोजन-जल-प्रसाद को अमृत से आच्छाति करता हूँ ।'

✻ परिशिष्ट उपसंहार ✻

सामाजिक शुद्धि में वेद-विधि

इस प्रकार से हम भारतीय समाज की अपूर्व सनातन धर्म की मूल निधियों पर संक्षेप में प्रकाश तथा शास्त्र-विषय को अवलोकन अध्ययन करके एक तथ्य को जानना अत्यावश्यक मानते हैं, जो भारतीय समाज को छिन्न-भिन्न एवं दलित होने से रोकता हो तथा **शास्त्रीय समाज-व्यवस्था** का उच्चादर्श अधिकार देता हो। ऐसा अपूर्व शास्त्रीय विधान की संकलित साम्रगी प्रस्तुत हैं। सम्भव होगा कि उससे आस्तिक हिन्दू धर्म प्रेमी जनता अपने संकीर्ण विचारों को उदार और विस्तृत बना कर सामाजिक द्वार खोल देगी, जिससे घिनौनापन न रहे एवं दृढ़तापूर्वक संघशक्ति का गठन कर सकेंगे। ऐसे ही समस्त हिन्दुधर्मोद्धारक, समाज मार्गदर्शक राष्ट्रीय वेद सिद्धान्त के कर्णधार वरिष्ठ धर्माचार्य गण एवं जगत्गुरु जन भी उदारता का बर्ताव करेंगे।

ते अज्येष्ठा अकानिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसाविवावृधुः।
सुजाता सो जनुषापृश्नि मातरो दिवोमर्या आनो अच्छाजिगातन ॥

– ऋग्वेद ५/५६/५६

मनुष्यों में छोटा, बड़ा या बीच का कुछ भेद न होकर सब मानव मात्र बराबरी के हैं। कोई भी अस्पृश्य नहीं है। जन्म से कोई अपवित्र नहीं है अर्थात् मनुष्य मात्र एक **"आर्य ईश्वर पुत्रः"** (निरुक्त) समान प्रकाश-स्वरुप परमात्मा के पुत्र हैं।

अज्येष्ठा सो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ॥

– ऋग्वेद ५/६०/५

समाज में यह सब बड़े-छोटे कोई नहीं हैं, सब भाई-भाई हैं। उत्तम ऐश्वर्य के लिए सब मिल कर आगे बढ़ने का यत्न करें। पुनश्च –

किरात हूणांध्रपुलिन्द पुक्कसा आभर कंका यवनाः खसादय ।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुष्यन्ति तस्मै प्रभ विष्णवे नमः ।।

– भागवत् महापुराण २/४/१८

भीलादि, वायव्य देश के ताम्रमुख पुरुष, तैलंगों में आंध्र जाति के मनुष्य, पुलिन्द और पुल्कस आदि चाण्डाल जातियों के मनुष्य, आभीर, कंक, यवन और शक इत्यादि यवन जातियों के मनुष्य और जो अन्य भी पाप जातियों के मनुष्य हैं । जिनकी भक्ति के आश्रय में शुद्ध हो जाते हैं, उन महा प्रभावशाली ईश्वर को मेरा प्रणाम हैं ।

वर्तमान में हमारी भारतीय अस्पृश्यता धर्मशास्त्रानुसार विज्ञानमूलक नहीं हैं, किन्तु रूढ़िमूलक भ्रामक अज्ञान है । यदि शास्त्रानुकूल होती तो वृहस्पत्याचार्य की आज्ञा-नीति का प्रचार करते । अतः शास्त्राज्ञा से अब भी धारणा पर चला जाय तो अनेकों स्थानों एवं शुभ अवसरों की अस्पृश्यता हट जाने में कोई सन्देह नहीं, इसी प्रकार किसी मुसलमान या ईसाई आदि अन्य मतावलम्बी की भी शुद्धि कर के सनातन धर्म में मिला कर ज्ञान देने में संकोच नहीं होता ।

तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे देश विप्लवे ।
नगर ग्राम दाहे च स्पृष्टास्पृष्टिर्न दुष्यति ।। – वृहस्पत्याचार्य स्मृति

तीर्थों में, विवाह में, यात्रा में, युद्धकाल तथा देश पर आये हुए संकटकाल में, नगर तथा ग्राम में आग लग जाने पर स्पर्शाऽस्पृश्य का दोष नहीं हैं । तात्पर्य यह हैं कि इस विश्व के अन्य देशों की अपेक्षाकृत भारत में ईसाइयों, मुसलमानों, पारसियों, बौद्धों, सिखों, ब्रह्म समाज एवं आर्य समाजियों एवं प्रार्थना समाज और कई मतान्तरावलम्बियों व पन्थों में जन्म-कुलोत्पन्न की छूत नहीं हैं, परन्तु यह सम्प्रदायवाद भी मानव समाज के साथ राष्ट्र के लिए हानिकारक काल्पिनिक भूत हैं । समस्त संसार के किसी भी देश में ऐसा भेदजनक विचार नहीं पाया जाता । गज़ब

है कि केवल भारतीय समाज के मध्यस्थ रुढ़ि के भक्तों ने कतिपय हमारे सनातन धर्म को आडम्बर का रुप देकर सामाजिक हीनता जनक बुराइयों का शिकार बना दिया। इस अयोग्यता ने ही वृहत् आर्य जाति को संकुचित बना कर विराट सनातन धर्म को परिसिमित किया हैं।

आज हमारे धर्म के ठेकेदारों की कृपा से भगवान राम, कृष्ण, सच्चिदानन्द की शक्ति हज़रत मोहमम्द तथा ईसा-मसीह से कम रह गई हैं। तात्पर्य यह हैं कि मोहम्मद और ईशा, यशू, मूसा मसीह की शक्ति तो यह हैं कि उनके नाम से कलमा या बपतिस्मा लेते ही या उनकी शरण में जाते ही तथाकथित नीच से नीच कहलाने वाली ढ़ोली, ढाढ़ी, मेहतर, धोबी, नाई आदि शोषित कौम के मनुष्य भी सर्वश्रेष्ठ ईसाई या मुसलमान हो सकता हैं। जिसके साथ आज के द्विजाति ब्राह्मण, क्षत्रिय, महाजनों को कोई एतराज़ नहीं; किन्तु हमारे धर्म की दुहाई देने वालो की कृपा से यदि कोई हिन्दू प्रमाद से अथवा अन्य किसी कारण से ईसाई या मुसलमान हो गया हैं, वह पुनः राम-कृष्ण की शरण में आने एवं गंगा-गोदावरी का स्नान कर लेने के बाद भी हिन्दू नहीं हो सकता। जैसे सभी जातियों का कोई भी व्यक्ति सिख धर्म का **'अमृतपान'** कर लेने से सिख धर्म अनुयायी हो जाता हैं, तथा सन्त जाम्भाजी का पाहल मन्त्र से अभिमन्त्रित जल से किसी भी जाति का मानव या नव जातक शिशु विश्नोई धर्म का अनुयायी हो जाता हैं और होता हैं। ऐसे ही गंगा इत्यादि तीर्थ का पावन स्नान, गायत्री मन्त्रोचित सतगुरु दीक्षा, पावन होकर श्री राम नाम के जप-स्मरण मात्र से अपावन मलेच्छादि सहित तथाकथित शोषित हिन्दू भी शुद्ध उच्च वर्ण को प्राप्त होता या कर सकता हैं। किन्तु आज के धर्माचार्यों एवं ब्राह्मणों के तुच्छ विचारों का परिणाम समाज के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ हैं और आगे भविष्य के अन्धकार में भी महाघातक होगा।

अतः मानव मात्र के लिए एकता के द्वार खोल दें, शास्त्र शुद्धि से हिन्दुत्व के आधार अपनावे। अन्यथा उन्हें स्वर्ग के द्वार-स्थान प्राप्ति की तो बात अज्ञात रही पर यहाँ समाज में भी सम्मिलित-स्थान मिलने से लालायित रहना पड़ता हैं, जहाँ पर प्राचीन शास्त्रीय अनुष्ठानों में यह परम शक्ति थी कि -

श्वपच शबर खस यवन जड़, पामर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात ।। - रा.च.मा. २/१९४

आज उस शक्तिमय शुद्धि-मन्त्रों का महत्व हमारे सनातन-प्रेमी भूल कर तोते की रटन कराना ही ध्येय मानते हैं। परन्तु वह अमोघ शक्तिपूर्ण उपाय शास्त्रों में आज भी हैं, जिसके द्वारा तथाकथित अछूत-शुद्धि करके वर्ण मार्जन द्वारा समाज का बल बढ़ाया जा सकता हैं।

बलाद्दासी कृतो म्लेच्छैश्चांडाधैश्चनन्दस्युभिः।
अशुभं कारितं कर्म गवोदि प्राणि हिंसनम् ।।
उच्छिष्ठं मार्जन चैक तथा तस्यैव भक्षनम्।
तत्स्त्रीं च तथा संगस्ताभिश्च सहभोजनम् ।। - ऋषि देवल-स्मृति

'रणवीर प्रायश्चित' में अनेक प्रमाण मिलते हैं - म्लेच्छ, चाण्डालादि तथा डाकुओं द्वारा जो भी परवश बलात् दास बनाए गये हों तथा अशुभ कर्म से गौ आदि पवित्र प्राणियों की हिंसा इत्यादि जिन से कराई गई हो अथवा जिनसे झूठे बर्तन मंजवाये या उनकी स्त्रियों के संग भोजन-संसर्ग किया हो तो उनकी शुद्धि **'कृच्छ सान्तपन'** व्रत से होती हैं अर्थात् उसे **'कृच्छ सान्तपन'** व्रत-विधान करवा कर शुद्धि कर लेना चाहिये।

ख्यापनेनानुतापेन तपसाऽध्ययनेन च।
पाप कृन्मुच्यते पापात्तथादानेन चापदि ।। - मनुस्मृति ११/२२७

प्राणी अपने पाप जाहिर करने से शुद्ध हो जाता है और तपस्या, वेद-पाठ से तथा गायत्री के जपादि से परम शुद्धि एवं दान करने से भी

सब पापों से मुक्त होकर शुद्ध होता हैं । स्पष्ट ही **इस मंत्र में चारों वर्णों को गायत्री का पूर्ण** समानाधिकार **व शुद्धि अपनाने का** प्रायश्चित **आदेश हैं ।**

पाश्चातापो निराहारस्सर्वे ते शुद्धि हेतवः । – याज्ञवल्क्य-स्मृति

पश्चात्ताप व निराहार व्रत से सब अश्पृष्य की शुद्धि होती हैं ।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्य शूद्रो वा यदिवेतरः ।
विष्णु भक्तिः समायुक्तो ज्ञेय सर्वोत्तमः तमः ।।
दुराचारोऽपि सर्वाशी कृतघ्नो नास्तिकः शठः ।
समाश्रयेदादि देवं श्रद्धया शरणं हियः ।।
निर्दोषं विद्धितं जंतुं प्रभवात् परमात्मनः ।। – स्कन्दपुराण

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और उनसे भी कोई नीच क्यों न हो, विष्णु-भक्ति करने वाला उत्तम से उत्तम हो जाता हैं । नीच, दुष्टाचरण वाला, भक्ष्याऽभक्ष्य खाने वाला, कृतघ्न, ईश्वर-वेद को न मानने वाला नास्तिक, मूर्ख भी यदि श्रद्धा से आदि देव परमेश्वर की भक्ति करें तो वह ईश्वर-कृपा से शुद्ध हो जाता हैं ।

ऊर्ध्व पुण्ड्रो मृदाशुभ्रो ललाटे यश्य दृश्यते ।
स चाण्डालोऽपि विशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ।। – स्कन्दपुराण

जिसके ललाट में श्वेत मिट्टी (गोपीचन्दन) से बना हुआ ऊर्ध्व पुण्ड्र विष्णु-तिलक (**रामानन्दी श्री वैष्णव**) () दीखता हैं, वह चाण्डाल भी शुद्ध हो कर ब्रह्म को प्राप्त होता हैं ।

ऊर्ध्व पुण्ड्र मृदा सौभ्यं ललाटे यस्य दृश्यते ।
स चाण्डालोऽपि शुद्धात्मा पुज्य एव न संशयः ।। – पुद्मपुराण

जिसके ललाट में सुन्दर चन्दन का वैष्णव तिलक खींचा हुआ दीखता हो, वह यदि चाण्डाल हो तो भी शुद्धात्मा पूजने योग्य हैं, इसमें कोई संशय नहीं हैं ।

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वास्तां गतोऽपिवा ।

य स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तर शुचि ।। - पूजा तन्त्र

यह मन्त्र संध्या, जप, यज्ञादि में प्रथम ही पवित्रता के लिए बोला जाता हैं । इसका भाव यह हैं कि - **अपवित्र हो या पवित्र, ऊँची या नीची अवस्था को प्राप्त हो अथवा कैसा भी नीच-ऊँच हो, किन्तु पुण्डरीकाक्ष भगवान को स्मरण करता हैं, वह सदैवतः बाहिर-भीतर सर्व ओर से शुद्ध हो जाता हैं ।**

गंगा गंगेति यो ब्रूयद्यो यननानां शतैष्वपि ।

विमुच्य सर्व पापेभ्यो विष्णु लोकं स गच्छति ।।

- विष्णुपुराण २/८/१२३

चार सौ कोस दूरी से भी जो हरि-हरि-हर गंगे कह लेता हैं तो वह सर्व पापों से छूट कर विष्णु-लोक को प्राप्त होता हैं । इसी प्रसंग में आगे लिखा हैं कि हजारों चान्द्रायण व्रत से बढ़ कर **''गंगा-दर्शन''** तथा **'गंगाजल'** पान से मनुष्य सर्व प्रकार से शुद्ध हो जाता हैं । यथा -

य औंन्नमः शिवायेति मन्त्राभ्यासः स्थिरीकृतः ।

नमस्कारादि संयुक्तं शिवयेत्यऽक्षर त्रयम् ।।

शिवलिंग त शूद्राणां महा शुद्धि करं शुभम् । - शिवपुराण

जो मनुष्य **'ॐ नमः शिवाय'** इस पंचाक्षरी मन्त्र का जप-अभ्यास करता हैं, वह कैसा भी पापात्मा हो पर सब पापों-तापों से छूट जाता हैं तथा शिवलिंग-पूजन से शूद्र मनुष्य भी परम पवित्र शुद्ध हो जाता है ।

रामेति वर्ण द्वयमादरेण सदा स्मरन्मुक्ति मुपैति जंतु ।

कलौयुगं कल्मष मानसा नामन्त्रय धर्म खलुनाधिकारः ।।

- अध्यात्म रामायण

'राम' इन दो अक्षरों को आदरपूर्वक जपने से प्राणी मुक्ति पाता हैं । कलियुग के काल में पापी, पतित मनुष्यों का अन्य धर्म में अधिकार नहीं हैं अर्थात् वह हिन्दू धर्म का परम अधिकारी हैं ।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामी मा शुचः ।।

– श्री मद्भगवत गीता, अध्याय १८, श्लोक ६६

भगवान कृष्ण कहते हैं कि जो सर्व धर्मों को त्याग कर केवल एक प्रभु (मेरी) शरण में जाता हैं, मैं उसे सब पापों से मुक्त कर देता हूँ इत्यादि । हिन्दू धर्म-शास्त्रों में अनेक प्रकार से पतित की शुद्धियाँ कही गई हैं। अतः सब सम्प्रदाय के सनातनी हिन्दूओं को उचित हैं कि अपने-अपने मतानुसार हर प्रकार से पिछड़े हुए हिन्दू भाईयों की शुद्धि करके पुनः अपने धर्म में प्रविष्ठ कर लेना चाहिए ।

असर्वण तु यो गर्भोस्त्रीणां योनौनिषिच्यते ।
अशुद्ध साभवेन्नारीया वच्छल्प न मुचति ।।
विनिसृतेन शल्येन रज सो वापि दर्शने ।
तथा शुध्यन्त सा नारी विमलं कांचनं यथा ।। – पाराशर-स्मृति

जो असवर्ण पुरुष से अर्थात् किसी गैर हिन्दू पुरुष से स्त्रियों के गर्भ रह जाय तो गर्भ में बच्चा रहने तक स्त्री अशुद्ध रहती हैं । बालक का नवजात (जन्म) होने पर नारी के रजोवती होने के पश्चात् स्त्री सोने के समान पवित्र हो जाती हैं ।

गृहीत्वा स्त्री बलादेव म्लेच्छे गुर्वी कृतायदि ।
युर्वीन शुद्धिमाप्नोति त्रिरात्रेणेतरा शुचिः ।।
योषाविभाति या गर्भं म्लेच्छात् कामद कामतः ।
ब्राह्मण क्षत्रिया वैश्य तथा वर्ण तराअपि ।।
अभक्ष्यं भक्षित चापि तस्या शुद्धि कथं भवेत् ।
कृच्छ सान्तपनं शुद्ध घृतैर्योनि विपाचनम् ।। – सुभाषित-सार

जो छीन-झपट व छल-कपट से उत्तम कुल की स्त्री को म्लेच्छों ने गर्भवती कर दी हो तो पेट में बच्चा रहने तक शुद्ध नहीं होती और गर्भवती न हुई हो तो वैसी ही म्लेच्छों के संसर्ग से बिगड़ गई हो तो तीन दिन के

उपवास से शुद्ध हो जाती हैं, जो ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा की स्त्री राजी अथवा बिना राजी किसी म्लेच्छ (मुसलमान-ईसाई-मुसाई) आदि से गर्भवती हो गई हो तथा भक्ष्याऽभक्ष्य खाया हो, उसकी शुद्धि **'कृच्छ सान्तपन'** व्रत से करे और योनि (गुप्तेन्द्रिय) में शुद्ध घृत डालने से शुद्ध होती हैं। अतः उसे अपने वर्ण के गौत्रीय समाज में मिला लेना चाहिए। शुद्धि करने के बाद स्त्री, बच्चा या पुरुष जो हो, उसे अपने कुटुम्ब और जाति-बिरादरी (कौमियत-गोत्र) पंक्ति में मिला लेना चाहिए।

तदासौ स्वकुटुम्बानां पंक्तिमाप्नोति नान्यथा ।
स्वभार्या गन्तु मिच्छेतु गच्छेंचैव विशुद्धितः ।। - देवलस्मृति

प्रायश्चित द्वारा शुद्ध होने वाला पुरुष या स्त्री अपने कुटुम्बियों की पंक्ति या अपने स्त्री-बच्चे आदि सब कुटुम्ब तथा जाति के साथ मिल सकते हैं। उनके साथ पूर्ववत् व्यवहार होने चाहिए, विपरीत छुआछूतमय किसी प्रकार का भेद कदापि न होना चाहिए।

इस प्रकार से वेदोक्त शास्त्रादेश के प्रमाणों से सत्य ही आपत्मलीनता या जन्मगत संस्कारों की परिवर्तन शुद्धि करने में सार्थकता कहते हैं। यहाँ तक कि स्त्री व शूद्र को तुच्छ मलीन माना जाता हैं, किन्तु शास्त्राज्ञा का सनातन धर्म तो उन्हें भी समान ही शुद्धि करके आर्य-धर्म अपनाने को बाध्य करता हैं। अतः हिन्दू अपनी स्थिति विचारें और अपने पूर्वाचार्यों के तथा वेद-पुराणादि के वचनों का पालन करें। पुनश्च नाम-प्रताप -

अपतु अजामिलु गजि गनिकाऊ । भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ ।।
- श्री रामचरितमानस १/२५/७

जो लोग राम-राम कह कर जम्भाई लेते हैं, याने आलस्य से भी जिनके मुँह से राम-नाम (षडाक्षर तारक **'रां रामाय नमः'**) का उच्चारण हो जाता हैं, उनके सामने पापों का समूह नहीं आता। इसी प्रभाव के कारण ही तो -

लोक बेद सब भाँतिहि नीचा । जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा ।।
राम नाम कहि जे जमुहाहीं । तिन्हहि न पाप पुंज समुहाही ।।

- श्री रामचरितमानस २/१६३/३

निषाद-राम-मिलन प्रसंग को लेकर देवताओं द्वारा आकाशवाणी में कहा गया था कि जो गुह, लोक और वेद -दोनों दृष्टि-पक्षों में सब प्रकार से (विद्या, बुद्धि, बल, कलादि विहीन) नीच माना जाता हैं । जिसकी छाया के छू जाने से भी स्नान करना होता है, उसी निषाद से राम के भाई भरत मिल रहे हैं ।

तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता । मिलत पुलकि भरि पूरित गाता ।।
स्वपच शबर खस यवन जड़, पामर कौल किरात ।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात ।।

- रामचरितमानस २/१६४

मूर्ख और पामर-चाण्डाल, शबर, खस, यवन, कोल और किरात्, जंगली दस्यु आदि भी राम-नाम लेने (उच्चारण) से परम-पवित्र और त्रिभुवन में विख्यात हो जाते हैं । यही आचरण स्वयं रामचन्द्रजी ने भी जब से उसे अपनाया तब ही से सर्वसुलभ उदाहरण प्रस्तुत हुआ हैं -

कपटी कायर कुमति कुजाती । लोक बेद बाहिर सब भाँती ।।
राम कीन्ह आपन जबही तें । भयउँ भुवन भूषन तबही तें ।।

- रामचरितमानस २/१६५/१-२

अस्तु पुनश्च -

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यसितो हि सः ।। - गीता ९/३०

कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभाव से मेरा भक्त होकर भजता हैं, इस निश्चय वाला वह साधु ही मानने योग्य हैं ।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियां वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।। - गीता ९/३२

अर्थात् हे पार्थ ! स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्रादिक तथा पाप योनि वाले भी जो कोई होवे, वे भी मेरी शरण होकर रहें, तो परम गति को प्राप्त होते हैं ।

हरिर्हरति पापानि दुष्ट चितैरपि स्मृतः ।
अनिच्छायापि संस्पृष्टो दहस्येव हि पावक ॥ - स्मृति

दूषित चित्त वाले पुरुषों के द्वारा विष्णु-जप स्मरण मात्र से उनके समस्त पाप भी विष्णु हरण कर लेते है, जैसे कि अग्नि काष्ठ-भार को जला कर भस्म कर देती हैं ।

स्मृते सकल कल्याण भाजनं यत्र जायते ।
पुरुषस्तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम् ॥

- विष्णुपुराण ५/१७/१७

जिनके स्मरण मात्र से ही पुरुष सर्वथा कल्याण-पात्र हो जाता हैं । मैं सर्वदा ऐसे अजन्मा श्री हरि की शरण में जाता हूँ ।

यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति दहिनाम् ।
ब्रह्मकूर्चो दहेत्सर्वं प्रदीप्ताग्निरि वेन्थनम् ॥

- वृद्धशातोतप स्मृति, १२

देहधारियों के शरीर में चमड़े और हड्डी तक में जो पाप या अशुद्धता विद्यमान हैं, वह सब **ब्रह्मकूर्च** इस प्रकार जलादे, जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधन को भस्म कर देती हैं । यह मन्त्रों द्वारा लिया गया पंचगव्य और कुशोदक मिलाने से तैयार हुआ **ब्रह्मकूर्च** के द्वारा पापहरण का मन्त्र हैं ।

इस प्रकार से धर्मनीति शास्त्रोपदेश मय ऋषि-मुनियों तथा सरकार ने कानून (नियम) बना दिये हैं, लेकिन कानून या वाक्य ने कभी समाज को नहीं बदला हैं । **समाज को बदलने वाले समय के प्रधान व्यक्ति युगपुरुष होते हैं, व्यक्तियों में विचार उत्पन्न साहित्यकार अपनी ऋतित्व-शक्ति लेखनी द्वारा व्यक्त करते हैं । समाज को आज क्रान्तिकारी विचारों**

की आवश्यकता **हैं - ऐसे व्यक्तियों की जो अपने व्यक्तिगत त्याग और तप-प्रभाव से समाज को कुछ सोचने के लिए विवश कर दें।** परन्तु क्षमा कीजिए - हमारे समाज में तो ऐसे अग्रणीय महानुभाव नेताओं की संख्या कदाचित अधिक हैं, जो बात पूर्व की करते हैं - बढ़ते हैं पश्चिम की ओर, अर्थात् कहते कुछ और हैं करते कुछ और हैं।

शूद्र कौन ?

कृष्ण कह्यो दुर्योधन को सुन, भगवत-भक्त नहिं शूद्र होई।
होवत विप्र सु भागवत वाचक, इष्ट लखे शुद्ध पूरण सोई॥
वर्ण सभी जन शुद्र सो जान हूँ, होय न भक्त जनार्दन ओई।
"रामप्रकाश" श्री भागवत देख हुँ, चार इकतीस में बाईस कोई॥१॥

न शूद्रा भगवद्भक्ता विप्रा भागवताः स्मृताः।
सर्व वर्णेषु ते शूद्रा ये ह्य भक्ता जनार्दने॥ - श्री मद्भागवत ४/३१/२२

श्रीकृष्ण ने दुर्योधन के प्रति कहा हैं -

भगवद्-भक्त कभी शूद्र नहीं होते हैं, किन्तु वे विप्र हो जाते है और वे भागवत कहलाते हैं, सब वर्णों में वे शूद्र हैं, जो जनार्दन के भक्त नहीं हैं।

वस्तुतः कोई जाति से वृषल (चाण्डाल) नहीं होता और न जाति से ब्राह्मण। **कर्म से वृषल होता हैं और कर्म से ही ब्राह्मण बनता हैं।** जैसे कि -

न जच्चा वसलो होति न जच्चा होति ब्राह्मणो।
कम्मना वसलो होति कम्मना होति ब्राह्मणो॥ - धम्मपद, जैनशास्त्र

और भी -

समस्त शास्त्रों का सार भगवत् स्मरण है, यहीं सन्तों का जीवन आधार है। शिखा-सूत्र के आधार पादज और अन्त्यज है। हे भाई ! पैरों को काट कर समाज को पंगु मत बनाना।

- आद्य जगद्गुरु श्री स्वामी रामानन्दाचार्य जी महाराज के अन्तिम उपदेश

विरक्त हो जाने के पश्चात् घर के समस्त सम्बन्धों के टूट जाने के पश्चात् और विधि पूर्वक दीक्षा लेने के पश्चात् न ब्राह्मण ब्राह्मण रहता है और न शूद्र शूद्र रहता है । दोनों के वर्ण मिट जाते है और जाति-पाँति के झगड़े से दूर होकर "अच्युत" गौत्र वाला बन जाता है ।

-जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्री स्वामी भगवताचार्यजी महाराज

इस प्रकार से तेलगू कवि वेमन का कथन हैं कि -

"जन्म के समय कहाँ थी गायत्री ? और कहा था उपवीत ? सूत्रहीना माता तो शूद्रा है, उसका पुत्र ब्राह्मण कैसे होगा ? इसलिये सभी समान हैं, सभी भाई-भाई हैं, सबका जन्म एक ही तरह से हुआ हैं । सब के रक्त और माँस एक ही हैं फिर क्यों इतना भेद-विभेद चलाते हो ?"

- तेलगू कवि वेमन

ये यत्किंचन शुद्धि के उपाय बताए हैं, जो आर्ष सनातन धर्म-शास्त्रों द्वारा वर्णित साधन हैं, जिनके पालन से अवश्य हिन्दू-धर्म-प्रेमियों में संगठन-शक्ति, प्रेम, आचार-विचार की शुद्धि का बल प्राप्त होगा । अतः काल्पनिक मतभेद तथा शुद्धिधर्म द्वारा जबतक हिन्दूत्व को बढ़ाया नहीं जावेगा तब तक आने वाले भावी भूचाल व निर्बलता के विकार कभी नाश नहीं होंगे ।

आशा हैं पाठक अवश्य प्रचार-प्रसार द्वारा सनातन वैदिक धर्म को समुन्नत बनाने में अपना सर्वस्व बल-सहयोग देंगे और अवश्य श्रम सफल करेंगे । क्योंकि -

विद्वानेव विजानाति विद्वज्जन परिश्रमम् ।
नहिं बन्ध्या विजानाति गुर्वि प्रसव वेदनाम् ।।

लेखक के परिश्रम को विद्वान ही समझ सकता हैं, जैसे बच्चा जनने (प्रसव) की कष्ट-पीड़ा को बन्ध्या स्त्री नहीं जान पाती ।

वेदोक्त समाजोद्धारक व्रतों का ज्ञान

पिछले शुद्धि-प्रकरण में कुछ ऐसे व्रतों का उल्लेख हुआ हैं जिनके करने से शुद्धिकरण हो जाता हैं, उन व्रतों का संक्षिप्त ज्ञानोपाय परिचय इस प्रकार हैं ।

सान्तापन व्रत -

छः रात्रि का निराहार व्रत करने से **सान्तापन व्रत** होता हैं । - *विश्व कोश*

कृच्छ सान्तपन व्रत -

गोमूत्र गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
एकैकं प्रत्यहं पीत्वा त्वहोरात्रम भोजनम् ।।
कृच्छं सान्तपनं नाम सर्व पाप प्रणाशनम् । - जाबालि-स्मृति

एक दिन मंत्रोक्त गोमूत्र, एक दिन मंत्रोक्त गोबर, एक दिन मंत्र-प्रेरित दही, एक दिन गोदुग्ध, एक दिन घी और एक दिन कुशोदक (दर्भ-जल) पीने के बाद केवल एक दिन निराहार उपवास करने से महापापों का नाशक साप्ताहिक उपवास **कृच्छ सान्तपन** व्रत होता हैं ।

महासान्तपन व्रत -

त्र्यहं पिबेतु गोमूत्रं त्र्यहं वै गोमयं पिबेत् ।
त्र्यहं दधि त्र्यहं क्षीरं त्र्यहं सर्पिस्ततः शुचिः ।।
महा सान्तपनं चैतत् । - यमाचार्य, यमस्मृति

तीन दिन गोमूत्र, तीन दिन गोबर, तीन दिन दही, तीन दिन दूध, तीन दिन घी और तीन दिन कुशोदक (दर्भ-जल) पीने से तथा तीन दिन निराहार - निर्जल उपवास करने से, यह इक्कीस दिनों का उत्तम व्रत करने से सम्पूर्ण पापों सहित अशुद्धता की विपरीत मति का निवारण करने वाला **महासान्तपन** व्रत होता हैं । यथा -

अति सान्तपन व्रत -

एतन्येव यदा पेयादेकैकं तु द्व्यहं द्व्यहम् ।
उति सान्तपनं नाम श्वपाकमपि शोधयेत् ।। - यमाचार्य

अर्थात् - उपर्युक्त बताये पदार्थों (पंचगव्य) को दो दो दिन पीने से दश दिन का **अति सान्तपन** व्रत होता हैं, जो स्वपच (चाण्डाल) को भी पवित्र (पापमुक्त) करने वाला हैं ।

व्रतेन्दु सान्तपन व्रत -

पहले दिन केवल पंचगव्य (गो के गोबर, गोमूत्र, दही, दूध, घी) पीने और दूसरे दिन उपवास करने से दो दिन का उपवास **व्रतेन्दु सान्तपन** व्रत होता हैं ।

- प्रायश्चितेन्दुशेखर

यति सान्तपन व्रत -

तीन दिन तक पंचगव्य पी कर रहें, चौथे दिन उपवास और मन्त्रोक्त हवन करने से **यति सान्तपन** व्रत होता हैं, जो सर्व पाप-नाशक हैं ।

- प्रायश्चितेन्दुशेखर

इसी प्रकार छः दिनों का '**षाड्ह्निक सान्तपन व्रत**' और सात दिनों का '**साप्ताहिक सान्तपन**' तथा इक्कीस दिनों का '**एकविंश दिनात्मक सान्तपन व्रत**' होता हैं, जिसके द्वारा पातक, उपपातक और महापातकों का नाश हो जाता हैं और मानव को सर्व शुद्धि की प्राप्ति होती हैं ।

हिन्दू धर्म के द्योतक कर्म

गद्य-पद्य सब लिखता हूँ परन्तु भूमिका बांध कर एवं चार्ट बनाकर कुछ नहीं लिखता । जो कलम से शब्द या अक्षर व्याकृति कुछ भी लिखा गया वहीं मेरा लेखन-कार्य हैं । कब क्या लिखूँ, कब क्या लिखने वाला हूँ और कब क्या लिखना चाहिए, यह विचार भी मेरे मस्तिष्क की तरंग से बाहर हैं, किन्तु लेखनी के कागज पर स्पर्श पाते ही जो कुछ लिखा जाता हैं, वह स्वतः बिना कहे, सोचे या किए **हस्त प्रख्यात वाहिनी स्यामानन लेखनी लिख देती हैं** । फिर चाहे जनता उसका स्वागत करे या न करे

उस सम्बन्ध में मेरा तथा लेखनी का कोई स्वतन्त्र विचार विधानमय दृष्टिकोण नहीं हैं । हाँ वह लेख गद्य हो या पद्य परन्तु होता '**स्वान्तः सुखाय-बहुजनहिताय**' साधारण भाषा-ज्ञान-प्रचार के काम का ही हैं । अन्य धारावाहिक की तरंगों से सर्वथा विपरीतोन्मुख ही लिखा जाता हैं, उसी लेखनी का प्रसाद प्रस्तुत हैं ।

पीछे के परिच्छेदों में हम वेद-पठन का बाह्यज अधिकार-चिन्ह समस्त हिन्दू मात्र आर्य सन्तान विशेष स्पष्टतया शूद्र व स्त्री तक के हिताधिकार को दृष्टिगत रख कर शिखा-सूत्र धारण करना अनिवार्य कथन प्रमाणित कर आए हैं । उसी के अन्तर्भाग में आए हिन्दू धर्म के परिपक्व में द्योतक-चिन्ह चोटी-जनेऊ का महत्व आता हैं । शास्त्रों में कहाँ ? क्या हैं ? इसके सम्बन्ध का गठन किया गया हैं । यह सप्रमाण बताने में गद्यक भाग बढ़ जाने से पाठकों की रोचकता का हनन होगा, उकता कर अजीर्ण पाठ्य का पाठक अनावश्यक समझेंगे । अतः हम संक्षेपतः ग्रन्थों का आदर्श सारांश बताने का प्रयास करेंगे, जिससे हिन्दू धर्म के महत्वप्रद द्योतक कर्म-कारण का सर्वजन-साधारण बोध हो ।

शिखा (चोटी) का अर्थ और महत्व

वैद्यक, एलोपैथिक, होम्योपैथिक, विज्ञान, प्राकृतिक, विद्युत्शक्ति, आयुर्वेदिक आदि के सर्जन, हकीम और वैद्य विद्वानों का मत हैं कि कापालिक (योगिक भाषा का दशवाँ द्वार) मध्योत्तरी भाग कोमल होने से सर्दी-गर्मी आदि ऋतुओं का प्रभाव अति क्षिप्रता से प्रवेश कर सर्व शरीर के नाड़ी-विभाग को प्रभावित करके ऋतु-सहनशीलता से बाहर की गति लेकर शरीर के स्वास्थ्य का ह्रास कर देता हैं । इस मस्तिष्क भाग से कुछ कठोर मुखमण्डल और उसमें अन्य शरीर को सहनशीलता की शक्ति अधिक होने से शरीर पर भी उसके प्रभाव की न्यून/विशेषता होती रहती हैं । इस कारण से

सर्दी-गर्मी इत्यादि कफ़, पित्त, वायु समानान्तर रखने हेतु नितान्त शरीर के इस सर्वोपरि ज्ञान-केन्द्रित उत्तमांग भाग की रक्षा करने में शिखा रुप मस्तिष्क पर बालों की अधिकता व लम्बे बाल रखने से शरीर को लाभ प्राप्त होता हैं । इसी शास्त्रोक्त स्वास्थ्य विज्ञान को चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि पूर्वाचार्यों ने जान कर मानव-समाज को पंचकेशी (मस्तिष्क, ढाढ़ी, मूँछ, कौंक्ष तथा गुप्तरोम) रखने का विधानादेश किया है और इसी उद्देश्य को मान कर **प्राचीनकाल में गृहस्थ और वनवासी, त्यागी, ऋषि-मुनि, राजा-प्रजा, सम्राटों तक चारों आश्रमों के मानव इस आर्य-विधान को पालन करते थे,** जिसके परिणाम हम अपने पूर्वजों के इतिहास-रेखाओं में पढ़ कर जानते हैं कि उनमें शारीरिक तथा मानसिक, आध्यात्मिक ज्ञान-शक्ति-महत्ता की प्रबलता व विशाल बुद्धिमता थी, जिसके सामने आज का विज्ञानधर्म-विश्वास नगण्य हो रहा हैं ।

शिखा अथवा इस शरीर के केशों को धारण करने से उपरोक्त गुण-प्रभाव-ज्ञान-शक्ति का होना प्रमाणित हैं कि इन्द्रिय लोलुपता इतिश्री होती हैं । ब्रह्मचर्य-रक्षा का मूल रक्षण प्राप्त होता हैं एवं यह रोम कूप-नाक के द्वारा ली जाने वाली श्वास की गति से लाखों गुणा अधिक प्रश्वास वायु-विज्ञान द्वारा प्रस्वेद बहा कर अन्तर के कफादि मलकीट रोग-कीटाणुओं को बाहर निकालते हैं तथा बाहर के मालिशित घी, तेलादि द्रव्य चिकने पदार्थों को तरावटपूर्ण नाड़ियों व अस्थियों के शून्य प्रवाहक ओज में मिलाने के कार्य को अथक सहयोगदाता रहते हैं ।

मस्तिष्क की कपाल-हड्डी (खोपड़ी) में केन्द्रित अक्षुण्ण असंख्य ज्ञानकण-स्मृति, परमाणु (भेजी के दाने) शान्त-क्रान्त कोष की रक्षाके लिये शास्त्राचार्यों ने चोटी को महत्व दिया हैं, जो धर्मपरायण विद्या-गुण एवं हिन्दुत्व का द्योतक चिह्न हैं ।

शिखा शब्द के अर्थ में शरीर के उत्तमांग भाग को शिखर कहते हैं, जिसका 'शिखर रक्षेति शिखाः' महत्व प्रमाण हैं –

"शिखा रक्षित्वा परितो मुण्डयेत् ।।" – पारस्कर सूत्र

शिखा मुण्ड (मुख्य भाग) की रक्षा के लिए होती हैं ।

याज्ञिकै गोकर्णि मार्जनि गोक्षुरवत् च शिखा इति मंगल हेतोः ।। – यजुर्वेदीय कठ-शाखा

इसी लक्ष्योद्देश्य की पूर्ति में सृष्टि के आचार्यों ने पंचकेशी का अपभ्रंसित रुप मस्तिष्क ज्ञान-तन्तु, ब्रह्मचर्य, शारीरिक ऋतु शक्तिमय संतुलन-रक्षा के हेतु पूरे केसों के अभाव की अपेक्षान्तर शिखा रखने की प्रेरणा दी जो धर्म-शिक्षा का द्योतक बनी । आज इस मध्य युग से अर्वाचीन तक प्रतिदिन इस क्रम की अपेक्षाकृत क्षति होने के कारण आज ही से निर्बलता, अस्वस्थता, व्यसन, दोषाधीनतादि ह्रासता का रुपक बढ़ता प्रतीत होता हैं । उदाहरणार्थ – सिक्खों में वृद्धावस्थापर्यन्त झुकी कमर या नेत्र-रोग से पीड़ित २% ही मिलेंगे, जब कि अन्यों में १०% तक, यह पंचकेशी के प्रभाव-बल पर से ही हैं ।

सम्भवतः ईश्वर-प्रकृति प्रभाव-प्रकरण ने भी सिर के बाल इसी कारण से दिये हों, क्योंकि पूर्वज प्रमुख सनातन धर्मार्य ग्रन्थों में जो यत्र तत्र शिखा-महात्म्य आता हैं कि यज्ञ, सन्ध्या [१], पंचयज्ञ, जप [२], श्राद्धादि

---

१. प्रातः व सायं दो समय सन्ध्या की जाती हैं, जो भेद से तीन तीन प्रकार की है–

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्त तारकाः ।
कनिष्ठा सूर्य संहिता प्रातः सन्ध्या त्रिधा स्मृताः ।।१।।
उत्तमा सूर्य संहिता मध्यमा लुप्त भास्करा ।
कनिष्ठा तारकोपेता सायं सन्ध्या त्रिधा स्मृताः ।।२।। – स्मृति

विशेष – सन्ध्या कैसे करनी चाहिए ? सन्ध्या करने से क्या लाभ है ? सन्ध्या का स्वरूप, विधान एवं साधना की प्रगति के लिए **स्वामी अचलरामजी महाराज** द्वारा रचित **'सन्ध्या विज्ञान'** नामक ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है ।

२. जप तीन प्रकार के होते है – साधारण, उपांसू, मानस, जो उत्तरोत्तर उत्तमावधि से है ।

शुभ कार्य, विद्याध्ययन, नित्यपठन, भोजनादि कृत्य करते समय शिखा (चोटी) खुली न रख कर ग्रन्थी-बन्धन कर लेनी चाहिए। जबकि अतिरिक्त कार्यों में स्नान-शौचादि नित्य क्रिया-वहन में शिखाग्रन्थी खुली रखनी चाहिए।

शिखा बाँधने का मन्त्र -

ॐ ब्रह्म नाम सहस्रेण शिव नाम शतेन च।
विष्णोर्नाम सहस्रेण शिखा बंध करोम्यहम् ॥१॥

शिखा-मुक्ति का मन्त्र -

ॐ ब्रह्मपुत्री शिखाया च ब्रह्मदण्डा तपस्विनी।
सर्व देव नमस्कारं शिखा मुक्ति करोम्यहम् ॥२॥

इसका कारण चोटी एक हिन्दू धर्म का प्रतीक, शिक्षा-धर्मायन्ता का समर्थक होने का बहिरंग द्योतक-चिन्ह हैं। यह प्रयुक्त अर्थ भी हैं कि बालों को ग्रन्थित करना अपनी मानसिक वृत्ति-समूह को तामसिक व राजसी गुण-कर्म समुदाय को निवृत करके सतोप्रधान करें।

ॐ भुः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तप ॐ सत्यम्।
ॐ तत्सवितुवरिण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धीयो योनः प्रचोदयात् ॥
ॐ आपोज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्।

- यजुर्वेद ३६/३ तथा उपनिषद्, पुराण-सम्पुट

इस मन्त्र सम्पुट [१] के द्वारा सत्वगुण प्रधान परमात्मा परमतत्व में दृढ़ धर्मवृत्ति पर स्थित रहने का ध्येय-उद्देश्य प्रार्थित हैं। यही मन्त्र प्राणायाम की पूरक, कुम्भक, रेचक विधि में तथा सन्ध्या-साधना में प्रयुक्त होता है,

---

१. सम्पुट में न्यास प्रकार, गायत्री अंगन्यास विधि मन्त्र -

ॐ हृदयायनमः, ॐ शिरसे स्वाहा, ॐ भुवः शिखायै वषट्, ॐ स्वः कवचाय हुम, ॐ भूर्भुवः नेत्राल्यावौषट्, ॐ भूर्भुवः स्वः अस्त्रायहुँफट्।

गायत्री करन्यास विधि मन्त्र -

ॐ अंगुष्ठाभयां नमः, ॐ भूः तर्जनीभ्यां नमः, ॐ भुवः मध्यमाभ्यामं नमः, ॐ स्वः अनामिकाभ्यां नमः, ॐ भूर्भुवः कनिष्ठाभयां नमः, ॐ भूर्भुवः स्वः करतल कर पृष्ठाभ्यां नमः।

जो अंगन्यास, करन्यास सहित करने से सर्व सिद्ध होता है ।

अस्तु - जिस प्रकार हमारे मस्तिष्क के केस-कणों की रोमावलि को एकत्रित ग्रन्थित करते हैं, उसी प्रकार हमारी सूक्ष्मवृत्तियों की शक्ति को हे प्रभु ! एक सत्व-साक्षी धर्म-स्तम्भ पर दृढ़ रखें ।

यहीं कारण हैं स्त्रियों के मस्तिष्क के बाल रखने व वेणी (जूड़ा-चोटी) गूंथने की क्रिया का । क्योंकि नीति-वाक्यों में शास्त्रकारों का निर्णय हैं -

स्त्रीणां द्विगुण आहारो लज्जाचापि चतुर्गुणा ।
साहसं षड्गुण चैव कामश्चाष्ठ गुणः स्मृतः ।।

- चाणक्य नीति १/१७

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में भोजन की मात्रा दुगुनी, लज्जा चौगुनी, साहस छः गुणा, कामचेष्ठा आठ गुणा अधिक होती हैं । अतः संयम आवश्यक हैं, जिस का प्रतीक शिखा बन्धन हैं ।

इस दृष्टि से ही पूर्वाचार्यों ने वासनिक राजस, तामस वृत्तियों को समेट कर तथा शृँगार-सहयोगी वेणी-बन्धन नारीधर्म पातिव्रत्य-अधिकार स्त्री समाज को दिया हैं । इस प्रकार वेदोक्त मन्त्रों एवं अनुभव-भावगम्य शिखा केवल हिन्दू धर्म की द्योतना ही नहीं अपितु एक प्रकार से मानव जीवन का पुरुषत्व-शक्तिदाता, अणुरक्षण साधन भी हैं, जो मानव मात्र सनातन धर्मावलम्बी का कर्त्तव्य होना चाहिए ।

भारतीय संस्कृति का मूल प्रतीक शिखा-सूत्र माना जाता हैं । जैसे कि-

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्ध शिखेन च ।
विशिखो व्युपवीतिश्च यत्करोति न तत्कृतम् ।। - ब्राह्मण ग्रन्थ

मनुष्य को सदा यज्ञ-सूत्र धारण किये तथा शिखा बांधे रहना चाहिए । **शिखा तथा यज्ञोपवीत से शून्य मनुष्य जो कुछ भी करता हैं वह सब शुभ-कृत्य निष्फल ही हैं** । इस प्रकार के कई प्रमाणों द्वारा **शिखा व सूत्र** धारण शास्त्रनिहित हैं, इनका मुख्य प्रयोजन लघु मूलमस्तिष्क

सुषुम्ना नाड़ी और ज्ञान-केन्द्र की रक्षा करना हैं। ज्ञान-केन्द्रों की रक्षा क्रमशः वृहत्मस्तिष्क, खोपड़ी की कठोर हड्डियों और शिर के बालों से होती हैं। चोटी का स्थान सुषुम्ना और लघुमस्तिष्क के ठीक ऊपर होता हैं, जो रक्षा में विशेष उपयोगी हैं। भारत से बाहर के लोग भी शिर पर बड़े बाल रखते हैं। मुसलमानों में इस प्रथा का न होना प्रायः विपरीताचरण मनोवृत्ति के कारण का द्योतक हैं, पर वह प्रायः क्षीण स्मृति के ही देखें जाते हैं। लघु मस्तिष्क की रक्षा के लिए ही चोटी को पीछे के मन्त्र द्वारा स्पष्ठ गो-खुर के बराबर मोटा रखने का विधान किया हैं।

शिखा व सूत्र को धारणकर्त्ता के आवश्यक प्रतिबन्धक कर्म

शिखा व सूत्र धारणकर्त्ता हिन्दू-धर्मप्रेमी आर्य मात्र को पूर्वकथित धर्मांगों के सात्विक नियमों का पालन करते हुए मांस, मदिरा, तम्बाकू मात्र व्यशन-दोषादि नशे तथा किसी भी रुप-प्रकार से मादक खाद्य-पेय पदार्थ को कदापि सेवन नहीं करना चाहिए। नित्य प्रति प्रातः/सायंकाल की दोनों शास्त्रीय सन्ध्याओं में **ब्रह्म गायत्री** का पुरश्चरण-जप अधिक से अधिक अवश्य करना चाहिए।

शिखा व सूत्र की अवधि

ब्रह्मचर्य की बाल्यावस्था में इनका धारण संकल्प-संस्कार से आचार्य-कुल में दिया जाता हैं। यज्ञ, गायत्री, वेद-पाठ इत्यादि के अधिकार प्राप्त होने की योग्यता का प्रतीक हैं। धर्मांग प्रयाण करते हुए गृहस्थ तथा वानप्रस्थ तक की अवस्था (मनुष्य की ७०-७५ वर्ष की आयु) में सन्यास-धर्म को धारण करके काषाय वस्त्र (पीताम्बर, भगवाँ, बादामी, काला आदि विरक्तभाव-सूचक) दण्ड, कोपीन, जल-पात्र इत्यादि सामग्री के अतिरिक्त गृहस्थादि की दाक्षिण्याग्नि आदि अग्नियों का त्याग करें, उस समय शिखा-सूत्र का परित्याग करे, फिर अन्तिम अवस्था में पंचकेशी धारण करके अथवा मुण्डित रूप से विचरण करता रहे।

यज्ञोपवीत का कारण, महत्व एवं अर्थ-विधि

अब हम शास्त्रीय समाज के प्रतीक सूत्र का संक्षेपतः प्रसंग में स्पष्ट करना आवश्यक समझेंगे । पिछले प्रकरणों में शास्त्रीय सिद्धान्तों द्वारा प्रमाणपुष्ठ हो आया हैं कि चारों वर्णों के सनातन धर्म-बन्धु मात्र को जनेऊ का पूर्णाधिकार हैं और यज्ञोपवीत धारण करना अत्यावश्यक हैं ।

प्रश्न उठता हैं - जनेऊ रखने का कारण क्या हैं ? जनेऊ के तीन स्वरुप में तीन सूत्र ही क्यों ? बनावट का ऐसा रुप क्यों हैं ? पाठकों के लाभार्थ संक्षेप में उत्तर इस प्रकार हैं ।

यज्ञोपवीत का शब्दार्थ

१. **यज्ञोपवीत** - इस शब्द की अन्वय स्वर-सन्धि में - यज्ञ+उप+वीत, यह तीन शब्द होते हैं । इसके अर्थ भिन्न-भिन्न हैं, **यज्ञ = ज्ञानमार्ग, उप = दूसरा, वीत = जन्म,** अर्थात् मानव का प्रथम जन्म कर्म-क्षेत्र माता-पिता द्वारा होने के बाद पुनर्जन्म गुरुकुल में दीक्षा-शिक्षा ग्रहण के समय संस्कार से होता हैं । यहाँ गायत्री (विद्या) माता और आचार्य (स्वामी) पिता के रुप में ज्ञान-पोषण-रक्षण-संस्कार सम्पन्न बनाते हैं । एक प्रकार से यह चिन्ह आचार्य के शिष्य वर्ग में प्रवेश का दर्शक हैं, वहाँ यह अन्य भी कई महत्वपूर्ण गायत्री यज्ञ-वेद (ज्ञान) पठनादि कर्त्तव्यों का स्मरण-दर्शक-गौरव का प्रतीक हैं ।

२. **उपवीत** - उपरोक्त प्रकार से **'दूसरे जन्म'** का सूचक व वाचक अर्थ हैं । यज्ञोपवीत संस्कार अथवा मौंजी बन्धन (आडबन्ध) को बालक का दूसरा जन्म बताया हैं । यह उसके ब्रह्मचर्य व्रत एवं विद्याध्ययन का प्रतीक हैं ।

३. **जनेऊ** - इस शब्द का सन्धि-प्रकार - जन+एऊ, हैं अर्थात् वेदादि शास्त्रविहित ज्ञानलक्षणों को धारण करने वाला जनक यह व्यक्ति हैं ।

४. **सूत्रादि** – सूत आदि से बनने के कारण व्यवस्था का बोधक शब्द सूत्र हैं और ब्रह्मत्व तेज धारणशक्ति अर्थात् वेद-गायत्री-पठन का अधिकार प्राप्त होने से इसे **ब्रह्मसूत्र** कहते हैं तथा यज्ञाग्नि ज्ञान-मेधा धारण करने के नियम से **आग्नेय-सूत्र** या **यज्ञ-सूत्र** भी कहते है । इसके निर्माता एवं विधान सूत्र निर्माता को **सूत्रकार** कहा जाता है ।

शौचादि में सूत्र-संरक्षा -

(१) **जनेऊ** – कर्ण की कर्णिका नाम की नाड़ी जो कान के पीछे की मोड़ में चलती हैं, जिसका गुप्तेन्द्रिय से सम्बन्ध हैं । जो मलादि त्याग के समय बन्ध देकर रखने से विकृति नहीं हो पाती । साथ ही दांत बन्द कर रखने से दन्तरोग नहीं हो सकता । साथ ही शौच-लघुशंका क्रियाओं में दो घेरों से कान को लपेटने से कर्णिका बन्ध लग जाता हैं ।

(२) **धार्मिक मत** – यज्ञोपवीत बनाने की विधि यह हैं कि दायें हाथ की चार अंगुलियों के मूल में उनके चारों ओर ९६ वार जितना धागा लिपटे उससे तिगुना धागा लेकर उसे तीन तार से बांट दिया जाता हैं । अब इस धागे को तिहाई करके ९ तारों का एक धागा बना लिया जाय तो वह तारों वाला धागा तैयार होगा । उसे तिहाई करके तीन तारों में ब्रह्मग्रन्थी, विष्णुग्रन्थी, रुद्रग्रन्थी आदि जो चाहे लगा दी जाती हैं । अपने हाथ की अंगुलियों के आधार पर बना यह यज्ञोपवीत साधारणतया पर्याप्त लम्बाई का होता हैं । यदि नाभिस्थल तक ही पहनना हो तो लटकते हुए हार को लपेट कर उसके साथ ही बट देना चाहिए – इसे **'चाबी लगाना'** कहते हैं । यह सब कार्य वेदोक्त मन्त्र-सर्जित होने चाहिए अन्यथा व्यर्थ ही होंगे । मन्त्रोक्त जनेऊ पहनने वाले के बैठने पर पृथ्वीतल पहुँच पड़ती हैं, जिसे मलादि त्याग के अशुद्ध क्रियाकालीन उपयुक्त गुण महत्व-प्रधान प्रतीका को अपवित्र होने से बचाने के निमित्त (शुद्धि-रक्षार्थ हेतु) श्रुतिमय

वेद के प्रतीक को श्रवण (श्रुति) पर टांकी जाती हैं। इस प्रसंग में शास्त्र-मत हैं कि खुले शिर, गौ, सूर्य, पीपल, नीम, तुलसी, वट, देवस्थली तथा पूर्व दिशादि के सम्मुख बैठ कर शौचादि न करें। दिन को दक्षिण दिशा की ओर रात्रि को उत्तर दिशा की ओर मुँह करके, दांत-मुँह बन्द करके, सूत्र कान में टांक के, शिर पर वस्त्र डाल कर शौचादि क्रिया-निवृत्ति करें।

दैनिक जीवन के नियमित शास्त्रोक्त मन्त्र

प्रातःकाल उठते ही अपने दोनों हाथों के हस्त रेखांगण का दर्शन करते समय पढ़ने का मन्त्र-पाठ -

॥ कर दर्शनम् ॥

ॐ कराग्रे वसते लक्ष्मीः कर मध्ये सरस्वती ।
कर मूले स्थितौ ब्रह्माः प्रभाते करदर्शनम् ॥१॥

बिस्तर से नीचे पृथ्वी पर पाँव रखने में प्रयोगित मन्त्र -

ॐ समुद्र मेखले देवि ! पर्वतस्तन मण्डले ।
विष्णुपत्नी ! नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥२॥

दाँतुन (दन्त-धावन) मन्त्र -

ॐ दंत रूपमधोगं च दंत धावनमुत्फलम् ।
कुर्वंति च त्रियो देवा मम दोषो न दीयताम् ॥३॥
ॐ आयुर्बलं यशो वर्यः प्रजा पशुवसूनि च ।
ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥४॥

स्नान मन्त्र -

ॐ ब्रह्मण्डोदर तीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे ।
तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकरः ॥५॥
ॐ गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती ।
नर्मदे सिंधु कावेरी जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु ॥६॥

ॐ पुष्कराद्यानि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा ।
आगच्छन्तु महाभागाः स्नानकाले सदा मम ।।७।।

ॐ अयोध्या मथुरा गया काशी कांची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती ज्ञैयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः ।।८।।

ॐ नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षाघ्न विशारदाय ।
मधुर प्रसन्न वदनायामित तेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः ।।९।।

जनेऊ कान में टांकने का मन्त्र -

ॐ गंगा तीर्थ सहस्त्राणि कोटि तीर्थानि वै तथा ।
ब्रह्म सूत्रं करं स्पष्टं मल मल मुत्रमुत्तारयेत् ।।१०।।

यज्ञोपवीत शुद्धि (कान से उतारने) का मन्त्र -

ॐ सर्व यज्ञेसु यत्पुण्यं सर्व तीर्थेषु यत्फलम् ।
ब्रह्मसूत्रं कर स्पृष्टं शुद्ध भवति सर्वदा ।।११।।

जीर्ण-शीर्ण तथा खण्डित सूत्र (जनेऊ) त्यागने का मन्त्र -

ॐ एतावद्दिन परियतं ब्रह्मत्वं धारितं मया ।
जीर्णत्वात् त्वत् परित्यागो गच्छ सूत्र यथा सुखम् ।।१२।।

नूतन (नवीन) ब्रह्म-सूत्र धारण करने का मन्त्र -

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजा पतेर्यत्सहजं पुरुस्तात् ।
आयुष्यमग्युँ प्रति मुंच शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ।।१३।।

यज्ञोपवीत कपास, (शण) अतसी, गाय के बाल, सन (मूँज), वल्कल और तृणादि में से जिस देश-धर्म से जिसका मिलन सम्भव हो, उसी का बना कर चारों वर्ण-जन पहिनें । सब मिलें तो कपास का ब्राह्मण, अतसी, गो-बाल का क्षत्रिय, ऊन का वैश्य तथा सण (मूँज, बक्कल, तृर्णादि) का शूद्र पहनें । यह कर्मजन्य वर्ण की पहिचान का हेतु है । संस्कार सम्पन्न व्यक्ति के बहुत लम्बा या छोटा न हो, बांये कन्धे से पीछे पर से होता हुआ दांये हाथ के नीचे आगे नाभि-स्थल पर पहने हुए कटि-भाग तक पहुँचे ।

जनेऊ की बनावट का कारण-अर्थ

स्मृतिकार आचार्य ऋषियों ने शास्त्रों में ज्ञानगर्भित देहधारी मानव पर **(१) देवऋण, (२) ऋषिऋण** तथा **(३) पितृऋण,** इन तीन ऋणों (कर्जों) का भार बताया हैं। जिसे प्रारब्ध भोगायतन शरीरान्त पर्यन्त चुकाते रह कर उऋण होने का प्रमुख कर्त्तव्य-कथन किया हैं। जिसे मनुष्य भूल न जाय- इस स्मृति को अक्षुण्ण बनाए रखने तथा संस्कार-सम्पन्न व्यक्ति को कर्तव्य मार्ग पर चलते रहने के निर्देश से ही **यज्ञोपवीत** का आविष्कार किया गया हैं।

संस्कारान्वेषित आर्य मानव के कन्धे पर सूत्र के रुप में तीन धारा ही विभिन्न उपासना धारियों की सुविधाजनक ब्रह्मग्रन्थि में जोड़े गए कर्म, उपासना और ज्ञान के बोधक कर्तव्यों के पालन का प्रतीक हैं। **एक सूत्र के टूट जाने पर यज्ञ-सूत्र खण्डित माना जाता है**। तैसे ही कर्तव्य (भक्ति) योग, ज्ञान-क्रियाओं में से एक को भी भूल जाना अथवा किसी एक वाद का समर्थक-पथिक बन कर रहना व्रत को खण्डित कर देना हैं।

तीन ऋणों से मुक्ति -

(१) मानव पर प्रभु द्वारा दैवी सृज्य शक्तियों का प्रसाद अक्षुण्ण सूक्ष्म रुप से सदैव बरसता रहता हैं। उसे उपयोग लेने तथा सप्त प्रकार के ईति कष्ट (अतिवर्षा, अनावृष्टि, चूहे, सुग्गे, टिड्डी, विद्युत्प्रकाण्ड, रोगोपद्रव, भूकम्पादि) आते हैं। यदि इनसे रक्षा हो जाती हैं, तब ही मानव को अन्न, धन, स्वास्थ्य, सबल सुखमय शान्ति-शक्ति की प्राप्ति होती हैं। अध्यात्म, अधिदेव, अधिभूत के विकृत रूप आधि-व्याधि और उपाधि त्रय-ताप विघ्नों की भाँति अर्थात् प्रभु द्वारा प्रदत्त अक्षय प्रसाद परमानन्द प्राप्ति हेतु मानव

को देवाधिदेव ईश्वरोपासना, पूजन, पाठ, स्तोत्रादि, भक्ति [१], योग [२], **ज्ञान** [३], यज्ञाहुति आदि समष्टी कर्मों द्वारा देव-ऋण से मुक्ति होती हैं ।

(२) पूर्वाति ऋषियों ने ही अपने ज्ञानशील परम्परा से अन्वेषित तत्वज्ञान चौदह विद्यामय, चौसठ कला-दक्षता का व्यवहार-बोध दिया तथा अपने शिष्य/परशिष्य शिक्षित-दीक्षित शाखा द्वारा नित्य अवतार का दिव्य वांग्मय सृजन किया, जो ज्ञान मार्ग-दर्शक तथा परोपकार स्वरुप सन्त-महापुरुष हैं । उनका प्रत्येक मानव पर ज्ञान-ऋण हैं । इसकी निवृत्ति हेतु सन्तवाणी- पाठ, उनके द्वारा प्रसारित की गई शिक्षा का पालन, ऋषिप्रणालीय साधु, सन्त, धर्म-प्रचारकों की सेवा-सुश्रुषा एवं आज्ञा पालन करनी चाहिए ।

---

१. भक्ति नवधा प्रकार की होती हैं -

प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा । द्वितीय मम हरि कथा प्रसंगा ।।

दो० - गुरू पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान ।
चौथी भगति मम गुन गन, करै कपट तजि गान ।।

मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा । पंचम भजन सो बेद प्रकाशा ।।
छठ दम सील बिरति बहू करमा । निरत निरन्तर सज्जन धरमा ।।
सातवें सब मोहि मय जग देखा । मोतैं सन्त अधिक कर लेखा ।।
आठवें यथा लाभ सन्तोषा । सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ।।
नवम सरल सब सन छलहीना । मम भरोस जिय हरख न दीना ।।

- रामचरितमानस, आरण्यकाण्ड, ३५

२. **यम** (सत्य, अस्तेय, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह),
नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान),
आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि । यह योग के अष्टांग हैं ।

योग के चार प्रकार हैं - **हठयोग, मन्त्रयोग, राजयोग, लयरोग ।**

३. विवेक, वैराग्य, शमादिषट् सम्पति (शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपराम, तितीक्षा) मुमुक्षता, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, ततत्वंपद शोधन (साक्षात्कार), यह ज्ञान के अष्टांग साधन हैं ।

आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव । - तैतरीयोपनिषद् १/११

सब ही सुलभ सब दिन सब देशा, सेवत सादर समन कलेशा ।

(३) पितामह (दादा) ने अपने अपने आत्मज-वंशज को पालन करके योग्य बनाया, उसी तरह पिता ने इस भौतिक शरीर का पालन-पोषण किया । परम्परानुगत विद्या-शिक्षा के व्यावहारिक कार्य-प्रांगण का कर्त्तव्य-ज्ञान दिया तथा उपार्जित बुध्दि द्वारा योग्यता प्रदान की, उनका यह ऋण स्मरण रख कर -

पितृ [1] देवो भव, मातृ [2] देवो भव । - अथर्ववेद, तैतरीयोपनिषद १/११

वेदोक्त सिध्दान्त को जान कर श्रध्दा से सेवा करना, उनकी आज्ञा पालन करना ही श्राध्द हैं और विवाह-संस्कार द्वारा वंश-वृध्दि हेतु सन्तान को गुण-कर्म ज्ञान से उन्नति के योग्य बनावें ।

इस प्रकार इन तीनों ऋणों से मानव की मुक्ति होती हैं अन्यथा यह ऋण मनुष्य के कन्धे पर जीवन-भार रुप से हैं । इसी ध्येय-श्रेय पथ-स्मृति हेतु जनेऊ में प्रमुख प्रकट बाहरी रुप से तीन सूत्र की बनावट का कारण हैं, जो प्रत्येक जीवन-यात्री आर्य (सनातन) हिन्दू नामधारी को

---

१. पिता सात प्रकार के हैं -
(१) जन्म देने वाला, (२) मन्त्र-दीक्षा देने वाला सतगुरु (३) अन्न देने वाला (पालनकर्ता), (४) ज्ञान देने वाला अध्यापक, (५) अभय देने वाला, (६) अग्रज (बड़ा* भाई), (७) श्वसुर ।
- ब्रह्मवैवृतपुराण, कृष्णजन्म खण्ड, अध्याय २५

२. माता सात प्रकार की होती हैं -
जन्म दात्री, गुरू की पत्नी (ब्राह्मणी), विमाता, राजपत्नी, गौ, धाय (पोषक), मातृभूमि ।

* भाई सात प्रकार के होते हैं, जिनमें काके का पुत्र, बड़े बाप का पुत्र, भूआ का पुत्र और पिता की सन्तान (विमातृ-बन्धु), यह चार पितृ-पक्ष के तथा माता का पुत्र, मौसी का पुत्र और मामा का पुत्र, यह तीन मातृपक्ष के भ्राता कहे जाते हैं । स्त्रीलिंग में यहीं सात प्रकार की बहनें भी कही जाती हैं ।

धारण करना चाहिए ।

जायमानो वै ब्राह्मणः त्रिभिः ऋणै ऋणवः जायते ।
ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यः यज्ञेन देवेभ्यः प्रज्ञया पितृभ्यः ।
एष वै अनृणो यः पुत्री यज्वा ब्रह्मचारिवासी ।।

- तैत्तिरीयसंहिता ६-३-१०

यज्ञोपवीत का आध्यात्मिक तथ्यार्थ -

ब्रह्मसूत्र की रचना से एक विचित्र और गम्भीर महत्वपूर्ण अर्थ पाया जाता हैं, जो कि मानव को कर्मकाण्ड और उपासना काण्ड का अधिकार तो देता ही हैं, परन्तु वेद का तत्वार्थ ज्ञान काण्ड के आध्यात्मिक शक्तिमय स्रोत का दर्शनाभास भी करवाता हैं । जिससे लौकिक पारलौकिक जीवनोन्नति कल्याणमय भुक्ति-मुक्ति को प्राप्त करवाता हैं ।

प्रथम तीन सूत्र व्यावहारिक कर्म-उपासना क्षेत्र में तीन गुण (रजो, सत्व, तम) से संसार की संचालक, पालक, संहारक शक्तिरुपा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र की क्रिया-पूजन-पठनादि के संस्कारजनित अधिकारदाता हैं ।

जैसे जनेऊ की बनावट के प्रकार में बताया गया, उस प्रकार से प्रति धागे में तीन-तीन सूत्र का समावेश होकर यज्ञ-सूत्र तैयार होना पाया जाता हैं । इसे घटाने के कई प्रशस्त मार्ग हैं, जो पूर्णब्रह्म का बोध करा कर वेदान्त का तत्वज्ञान दर्शित करवाते हैं ।

(१) नौ सूत्रों में प्राकृतिक शक्तियों का निवास हैं, जो इस प्रकार हैं - प्रथम सूत्र में ॐ कार ग्रन्थि-रुप, द्वितीय सूत्र में अग्नि, तृतीय सूत्र में तक्षक, चतुर्थ सूत्र में चन्द्रमा, पंचम सूत्र में पितृदेव, षष्टम सूत्र में प्रजापति, सप्तम सूत्र में वासुदेव, अष्टम सूत्र में सूर्य और नवम सूत्र में समस्त देव-शक्तियों का प्रसाद-वास हैं । यही नौ सूत्रों के लक्षण-व्रत कहे हैं ।

- सिद्धान्तपटल-ब्रह्म-वचन

(२) धर्म-स्मृति-शास्त्रों का कथन हैं कि प्रमुख रूप में तीन सूत्र

होकर गुप्त में नौ सूत्र रहते हैं । जो तन-मन-वाणी, इन तीनों के द्वारा आन्तरिकं अन्तस्थ वृत्ति में नौ गुण-धर्म को धारण करने के प्रतीक हैं । नौ गुण (सूत्र) यह हैं - क्षमा, अहिंसा, दया, आर्जवता (सरलता), सत्य-मृदु वाणी का उच्चारण, तप (धर्म हेतु कष्ट सहन करना), दान (विद्या, वस्त्र, अन्न, जल, धन को यथाशक्ति सुपात्र में विधिसहित दान देना), शील, (अष्ट मैथुन-रहित ब्रह्मचर्य, वीर्यरक्षण-वेदाध्ययन-ईश्वरोपासना का पालन करना), शौच (तन, मन, वाणी, गृह, वस्त्र को पवित्र रखना) पाठान्तर-शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता, यह नव-गुणों की पुनीत धारणा का द्योतक हैं, जो पालन करने चाहिएँ । भारतीय समाज-दर्शन-शास्त्रों के अभिमतानुसार आन्तरिक सूत्रों का प्रतीक बाहरी गुण (सूत्र-धागा) प्रतीक हैं ।

(३) तीनों गुण परस्पर अनुभौतिक मिश्रित रुप में वर्तित होते हैं, तभी संसार की उपक्रिया नियति-नटी का कार्य चलता हैं । जिसमें एक गुण के प्रमुख रुप में दो गुण गौण रुप में अपना सामंजस्य रखते हैं । जैसे रजोगुण स्वभाव में तमो-सतो का और अन्वय साक्षी चैतन्य ब्रह्म का बोध करवाती हैं ।

(४) विश्व के नियामक विधान का मिलन (वेदान्त)

सूत्रैक्यता	प्रथम सूत्र	द्वितीय सूत्र	तृतीय सूत्र	ब्रह्म ग्रन्थि
ॐ	अकार	उकार	मकार	अर्ध बिन्दू
ईश्वर	बैराट	हिरण्यगर्भ	आव्याकृत	प्रमाचेतन
जीव	विश्व	तेजस	प्राज्ञ	प्रमाता-साक्षी

इस प्रकार प्रत्येक के तीन पाद अपने अंश-रुप में जो जीवादि भिन्न-भिन्न स्थान पर होकर भी अनुरुप संचालन मूल केन्द्र में समर्पित हैं । इन नौ पाद-तत्वों का इष्ट तीन साक्षी-सूत्र हैं और ग्रन्थिएक्य होना

विशिष्टाऽद्वैत मत का प्रतिपादक **सिद्ध** लयचिन्तन रूप है ।

(५) सांख्यशास्त्र-सिद्धान्त में यह विश्व (भूगोल-खगोल) रूप दृश्य नौ तत्वों से बना हैं । जैसे कि -

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।। - गीता ७/४-५

आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी और मन, बुद्धि, अहंकार, यह आठ प्रकार से विभक्त हुई **अपरा प्रकृतिजन्य** रूप-कार्य जड़ हैं । नवमी जीवात्म साक्षी-रूप **पराशक्ति चैतन्य** हैं, जो जगत के सम्पूर्ण सत्व को धारण करती हैं । उक्त आठों सूत्रों का गठन, एक नवमें सूत्र में समावेशित ग्रन्थि निहित हैं ।

(६) छन्द (पिंगल) शास्त्र के संख्या-प्रस्तार में अंक-विभाग ने इन्हीं नौ के अंक को वैचित्र्य चमत्कारिक अलंकार रुप में दर्शित किया हैं, जो **'ब्रह्मैक्य'** बोध का प्रतिपादक, मननीय तथा पठनीय हैं ।

भक्तिपक्ष के विवेचनीय आधार से भी -

नाम चतुर्गुन पंचयुत, द्विगुणित वसु ह्रत शेष ।
राम रम्यो सब लोक में, देखहुँ अंक विशेष ।।१।।

संसार के किसी भी जड़-चैतन्य, चर-अचर, वस्तु-प्राणी के नाम में आने वाले अक्षरों की संख्या को चार से गुणा कर, उनमें पांच का अंक जोड़ लें । कुल संख्या को द्विगुणित कर, योग संख्यांकों में आठ का भाग देने से शेष तत्व-सार **'राम'** का बोधक दो का अंक ही उत्तर होगा ।

उदाहरणार्थ - 'जगत्' शब्द के तीन अक्षर को ४ से गुणा करने पर १२ हुए । उसमें ५ जोड़ने से १७ हुए । द्विगुणा करने से ३४ हुए, अब इन्हें आठ का

भाग चार बार देने से ३२ का अंक बाद (वंटित) होकर शेष २ अक्षरांक उत्तर साक्षी 'रा म' ही रहेगा ।

गुणन-जोड़-भाग का कारण - संसार का प्रत्येक मानव लोक-परलोक द्वय सुधार में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, पदार्थ चतुष्ठ्य को प्राप्त करने हेतु, पंच इष्टदेव गणपति, विष्णु, रुद्र, शक्ति, सूर्य्य में से किसी एक ध्येय का पूजन करता हैं । वस्तुतः इस असार संसार का निर्मित रुप प्रकृति के तीन गुण, पांच तत्व आठों जड़ पदार्थों में एक चैतन्य शक्ति-संयोग होने पर (गीता ७/४-५) नव पदार्थों से हैं । अतः जड़ रुप आठ का त्याग करने से ही **'आत्मैक्य'** स्वरुप परमानन्द की प्राप्ति होती हैं, जो नवमा सत चेतन तत्व हैं ।

दोहा - *समर्थ मेरा राम हैं, घट मठ व्यापक एक ।*
सर्गुण निर्गुण ते परे, अचल अखण्ड अनेक ।।१।।
"उत्तमरामप्रकाश" सत, सब घट में भरपूर ।
अव्यय अनव्यय अचल अज, अखण्ड अनीह अदूर ।।२।।
"रामप्रकाश" व्यापक सर्व, मायातीत अपार ।
चेतन को चेतन लखे, निज ते निज विचार ।।३।।
राम रमत ब्रह्मण्ड में, अनन्त अखण्ड अमाप ।
आनन्द सत चित अटल घन, रामप्रकाश सो आप ।।४।।
गोचर त्रिगुणी ज्ञान सब, यह माया विस्तार ।
एक अनेक स्वरुप में, आप हि आप अपार ।।५।।
सतगुरु "उत्तमराम" सत, समझ विचारत संत ।
शब्द ब्रह्म के जीव को, कहे सतगुरु बुद्धिमंत ।।६।।
ओम अपार अनन्त अज, सो माया को मूल ।
"रामप्रकाश" शुद्ध निज लखे, तजे अविद्या भूल ।।७।।
समय घड़ी मुहूर्त समल, राम मया मय आप ।
शुभ कारज में सकल शुभ, कटे त्रिगुण त्रय ताप ।।८।।

जीवेश्वर को भेद अरु, माया ब्रह्म सम्बन्ध ।
षट् अनादि ता ब्रह्म इक, रामप्रकाश निर्बन्ध ।।६।।

कुण्डलिया :- *जान सच्चिदानन्द त्रय, नाम रुप जड़ ज्ञान ।*
पाँचों मिल जग को रचे, सत्य रुप पहिचान ।।
सत्य रुप पहिचान, उपाधी दोय निवारो ।
अपनो स्वरूप अखण्ड अज, बेरंग ब्रह्म विचारो ।।
अचलोत्तम ब्रह्मज्ञान वित्, आनन्द घन कल्यान ।
"रामप्रकाश" स्वयं वेदविद्, परम ब्रह्म ले जान ।।१०।।

(७) इसीलिए ८ का अंक भी माया का द्योतक हैं, यदि हम अंकगणित में आठ के पहाड़े के गुणक-गुणनफल को जोड़े तो आठों पदार्थो की जड़तापूरक ह्रास का बोधक होगा, जो प्रति अंक, योग घटत-बढ़त ही रहेगा । यही स्थिति माया की हैं, वह निरन्तर घटती-बढ़ती रहती हैं । यथा -

मूल अंक पहाड़ा			परस्पर जोड़			घटती संख्या
८x१	= ८	=	८	=		८
८x२	= १६	=	१+६	=		७
८x३	= २४	=	२+४	=		६
८x४	= ३२	=	३+२	=		५
८x५	= ४०	=	४+०	=		४
८x६	= ४८	=	४+८	= १२	= १+२ =	३
८x७	= ५६	=	५+६	= ११	= १+१ =	२
८x८	= ६४	=	६+४	= १०	= १+० =	१
८x९	= ७२	=	७+२	=		९
८x१०	= ८०	=	८+०	=		८

यहाँ ध्यान देने की बात यह हैं कि जहाँ ब्रह्मस्वरुप अंक १ व ० शून्य आया, वहीं पर आठ रुपक माया विलीन हो गई और वहीं अंक

एक आ गया। इसके बाद फिर माया का अंक प्रारम्भ हो गया, जो सृष्टि का प्रलय होकर फिर सृष्टि उत्पन्न के प्रकार की भाँति का द्योतक हैं।

आठ प्रकार की प्रकृतिजन्य रुप में यदि एक **'ब्रह्मत्व'** शक्ति के संयोग का सम्पुट हो जाय तो कुल नौ पदार्थ हो जाते हैं। इसमें यदि नौ के पहाड़े के गुणकों के गुणनफल को जोड़े तो परिणाम ९ ही रहेगा, न तो वह घटेगा, न बढ़ेगा, इस प्रकार ब्रह्म न तो घटता हैं, न बढ़ता हैं। जो विश्व के आदि से अन्त तक **ब्रह्म सम्पुट सृष्टि तत्व का अनादित्व** अक्षयरुप का बोधक नौ के पहाड़े की संख्या हैं। यथा –

मूल अंक पहाड़ा		परस्पर जोड़				अटल संख्या
९x१	=	९	=	९+	=	९
९x२	=	१८	=	१+८	=	९
९x३	=	२७	=	२+७	=	९
९x४	=	३६	=	३+६	=	९
९x५	=	४५	=	४+५	=	९
९x६	=	५४	=	५+४	=	९
९x७	=	६३	=	६+३	=	९
९x८	=	७२	=	७+२	=	९
९x९	=	८१	=	८+१	=	९
९x१०	=	९०	=	९+०	=	९

जीव तीन षट् ईश अंक, रामप्रकाश वरिष्ठ।
विमुख रहत छत्तीस है, सन्मुख लाभ अभिष्ठ ॥

त्रिगुणात्मक त्रैय अंक जीव के द्योतक (विश्व, तेजस, प्राज्ञ) और षडैश्वर्यक (सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान, वैराग्य सहित [1] हो अथवा विश्व का उत्पत्ति, नाश, प्राणियों का आना-जाना, विद्या-अविद्या,

---

१. ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥

एक आ गया। इसके बाद फिर माया का अंक प्रारम्भ हो गया, जो सृष्टि का प्रलय होकर फिर सृष्टि उत्पन्न के प्रकार की भाँति का द्योतक हैं।

आठ प्रकार की प्रकृतिजन्य रुप में यदि एक **'ब्रह्मत्व'** शक्ति के संयोग का सम्पुट हो जाय तो कुल नौ पदार्थ हो जाते हैं। इसमें यदि नौ के पहाड़े के गुणकों के गुणनफल को जोड़े तो परिणाम ९ ही रहेगा, न तो वह घटेगा, न बढ़ेगा, इस प्रकार ब्रह्म न तो घटता हैं, न बढ़ता हैं। जो विश्व के आदि से अन्त तक **ब्रह्म सम्पुट सृष्टि तत्व का अनादित्व** अक्षयरुप का बोधक नौ के पहाड़े की संख्या हैं। यथा –

मूल अंक पहाड़ा		परस्पर जोड़		अटल संख्या
९x१	= ९	= ९+	=	९
९x२	= १८	= १+८	=	९
९x३	= २७	= २+७	=	९
९x४	= ३६	= ३+६	=	९
९x५	= ४५	= ४+५	=	९
९x६	= ५४	= ५+४	=	९
९x७	= ६३	= ६+३	=	९
९x८	= ७२	= ७+२	=	९
९x९	= ८१	= ८+१	=	९
९x१०	= ९०	= ९+०	=	९

जीव तीन षट् ईश अंक, रामप्रकाश वरिष्ठ।
विमुख रहत छत्तीस है, सन्मुख लाभ अभिष्ठ॥

त्रिगुणात्मक त्रैय अंक जीव के द्योतक (विश्व, तेजस, प्राज्ञ) और षडैश्वर्यक (सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान, वैराग्य सहित [1] हो अथवा विश्व का उत्पत्ति, नाश, प्राणियों का आना-जाना, विद्या-अविद्या,

१. ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

इन षट् [1] कर्मों के तत्वज्ञ को भगवान कहते हैं ।) छः अंक को ईश्वर का वाचक मान कर यदि कहा जाय कि जीव परमात्मा से विमुख होने से (३६) के रुप से परिवर्तित होकर (६३) की भांति जो भगवान के सन्मुख हो जाय तो मूल्य वृद्धि प्राप्त करता हो जाता हैं ।

(८) इन्हीं ८+१ = ९ को साहित्य-मनीषियों ने १०८ के रुप में लिखा हैं, जो भारतीय संस्कृति में महत्वपूर्ण हैं । अपने से पूज्य आचार्य प्रवर गुरु-चरणों को विशिष्ठ उपमाओं में श्री श्री १०८ लिखा जाता हैं। इस अंक में माया एवं ब्रह्मतत्व के गूढ़ रहस्य का सामंजस्य हैं । उपासकों की माला के दाने १०८ रखे जाते हैं, उपनिषदों की संख्या भी प्रायः १०८ तक मानी जाती हैं । यह स्वानुभवैक ब्रह्म का बोधक स्वरुप माना जाता हैं । सूर्य की १०८०० रश्मियों का निर्णायक बोध हैं ।

बीज गणित की भाँति मूल्यांकन निकालें तो शक्तिस्वरुपा माया और चैतन्य ब्रह्मरुवरुप का परिणाम भी यही आएगा ।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	ऋ	ॠ	अं	अः

१	२	३	४	५		६	७	८	९	१०
क	ख	ग	घ	ङ	।	च	छ	ज	झ	ञ
११	१२	१३	१४	१५		१६	१७	१८	१९	२०
ट	ठ	ड	ढ़	ण	।	त	थ	द	ध	न
२१	२२	२३	२४	२५		२६	२७	२८	२९	३०
प	फ	ब	भ	म	।	य	र	ल	व	श
		३१	३२	३३		३४	३५	३६		
		ष	स	ह		क्ष	त्र	ज्ञ		

अब यदि उपर्युक्त वर्णमाला की क्रम संख्या के अनुसार १०८

१. उत्पत्तिः प्रलयश्चैव भूतानां गतिमागतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ।।- स्मृति

अथवा ६ की संख्या-सिद्धि बोधक शब्दाऽक्षर छांटा जाय तो निश्चित रुप से अभीष्ठ फल निकल आयेगा ।

१. सीताराम –

३२	४	१६	२	२७	२	२५	}	१०८
स् +	ई +	त् +	आ +	र् +	आ +	म्	}	अंक जोड़

२. राधाकृष्ण –

२७	२	१६	२	१	११	३१	१५	}	१०८
र् +	आ +	ध् +	आ +	क् +	ऋ +	ष्	ण्	}	बोधक योग

३. ब्रह्म –

२३	२७	३३	२५	}	१०८
ब् +	र् +	ह् +	म्	}	योग

४. मुक्ती रूप –

२५	६	३	१६	४	२७	६	२१	}	१०८
म् +	ऊ +	ग् +	त् +	ई +	र् +	ऊ +	प्	}	बोधक

इस प्रकार १०८ अंक आद्या शक्ति एवं ब्रह्म दोनों का द्योतक हैं तभी तो कहा हैं –

सियाराम मय सब जग जानी । करउँ प्रणाम जोरि युग पानी ।।

(इस प्रकार १०८ के विशेष भावार्थ एवं अनेक विस्तृत अर्थ समझने के लिए सटीक सुखराम दर्पण उत्तम आश्रम द्वारा प्रकाशित अत्यन्त उपयोगी है, अवश्य पाठन करें ।)

(६) काव्य में **"अंकानांवामनो गतिः"** की दृष्टि से अन्तिम न्यायशास्त्र का तर्क शब्द हैं । इसके अनुसार १०८ को यदि उल्टा लिखा जाय तो ८०१ हो जायगा । समझने की बात यह होगी की जब तक माया का बोधक ब्रह्म के आगे रहेगा तब तक उसका मूल्य न्यूनता जनक और माया को पीछे धकेल कर ब्रह्म को सदृष्टित करने से मूल्यांक बढ़ जाता हैं

अर्थात् भक्त प्राणी माया (प्रकृति) के उपासक रहेंगे तब तक उनका मूल्य ८०१ के समान प्रसारित जंजाल और जब ब्रह्मोपासना के सम्मुख होकर माया का आच्छादित आवर्ण त्याग देता हैं तो उसका मूल्य १०८ का गौरवशाली प्रतिभाशील मुक्तरुप हो जाता हैं। इसमें ८ का अंक माया-प्रकृति के गुण का बोधक हैं और ० में लोपमुद्रा पूर्ण ब्रह्म का द्योतक हैं, जो प्रस्तुत पुस्तक के उपोद्घात का ध्येय और उपसंहार की ऐक्यता का शीर्षक हैं।

तथा - १ का अंक **'एकमेवाद्वतीयम्। एकंसद्विप्रा बहुधा वदन्ति।' 'एक सन्तं बहुधा कल्पयन्ति'** इत्यादि उपनिषद् वाक्य सर्व-शक्तिमान की एकता को प्रकट करते हैं।

८ = प्रकृति गण अष्ट सब, ० = शून्य असत सत जान।
१ = एक ब्रह्म चेतन विभु, रामप्रकाश कल्यान ॥१॥

व्यापक एक ब्रह्म अनिनाशी। सत चेतन घन आनन्द राशी॥

आदि अन्त में आप हैं, मध्य भाग मजबूत।
अणघड़ आप ही आप हैं, "उत्तमराम" अवधूत ॥२॥
वेद चक्षु अंक व्योम युग, वाम रौद्र पर्व व्यास।
अर्क कर्क तुल स्वामि दिन, भो ग्रन्थ रामप्रकाश ॥१॥
रस वसु शाके वसु इक, वाम योग अंक एक।
तामे लेखक एक मिल, नौ में ग्रन्थ विवेक ॥२॥
रामप्रकाश निज नाम हैं, "राघवप्रसाद" उपनाम।
"उत्तमराम" गुरुदेवजी, शहर जोधपुर धाम ॥३॥

अन्त में हार्दिक कामना प्रगट करते हुए सद्गुरु से प्रार्थना हैं कि समस्त प्रयत्नशील प्राणियों के ब्रह्मोन्मुखी प्रयास को सफल बनाने की कृपा करें।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. ऋग्वेद
२. यजुर्वेद
३. सामवेद
४. अथर्ववेद
५. महाभारत—*महर्षि व्यास*
६. महाभाष्य
७. रामचरितमानस
८. वाल्मीकि रामायण
९. अध्यात्म रामायण
१०. शक्ति गीता
११. व्यास स्मृति
१२. मनुस्मृति
१३. अत्रि स्मृति
१४. दक्ष स्मृति
१५. यम स्मृति
१६. वृहस्पत्याचार्य स्मृति
१७. ऋषि देवल स्मृति
१८. पाराशर स्मृति
१९. वृद्धशातोतप स्मृति
२०. बुद्ध–गौतम–स्मृति
२१. याज्ञवल्क्य स्मृति
२२. भारद्वाज–गृह–सूत्र
२३. यास्क निरुक्त
२४. शब्द कल्पद्रुम कोष
२५. मेरु तन्त्र
२६. हिन्दु धर्म रहस्य
२७. व्यास कृत पौराणिक सूक्तियाँ
२८. सिद्धान्त शिरोमणि
२९. सारुक्तावलि
३०. उपहारमयी सनातन देव संस्कृति
३१. रघुवंश महाकाव्य—*महाकवि कालीदास*
३२. काल–गणना—*पं० देवकीनंदन खेड़वाल*
३३. भारतीय समाज शास्त्र – *पं० धर्मदेव*
३४. उत्सव—*शिवराम किङ्कर*
३५. प्रयश्चितेन्दुशेखर
३६. ब्राह्मण ग्रन्थ
३७. तैत्तिरीय संहिता
३८. सन्तति रहस्य
३९. रति रहस्य, कोक
४०. रति विज्ञान
४१. श्री मद्भगवद्गीता
४२. श्रीमद्भागत महापुराण
४३. भारतीय इतिहास
४४. मुगल कालीन भारत
४५. मध्यकालीन भारत
४६. मध्यकालीन राजस्थान का इतिहास
४७. गुरु ग्रंथ साहिब
४८. हिन्दी साहित्य इतिहास
४९. श्री रामानन्द वैष्णव मताम्बुज भास्कर
५०. भविष्य पुराण
५१. शिव पुराण
५२. स्कन्द पुराण
५३. पद्मपुराण
५४. नारदपुराण
५५. ब्रह्मपुराण
५६. विष्णुपुराण
५७. हरिवंशपुराण
५८. गरुड़ पुराण
५९. व्रज सूचिकोपनिषद्
६०. चरक संहिता
६१. छान्दोग्यपनिषद्
६२. वज्रसूचकोपनिषद्
६३. भाषा इंदव छंद
६४. श्रुतिसार
६५. भारतीय संविधान
६६. शुक्र नीति
६७. विदुर नीति
६८. चाणक्य नीति
६९. गोभिल गृहसूत्र
७०. नीति–धर्म संग्रह
७१. गया सुलोतान
७२. जरतुश्त – बाइबिल
७३. मानव धर्म सार
७४. महात्मा गाँधी
७५. जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
७६. ज.गु. भगवद्दाचार्यजी
७७. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
७८. सरदार वल्लभभाई पटेल
७९. बाबू जगजीवनराम
८०. ठक्कर बापा
८१. आचार्य विनोबा भावे
८२. लाल बहादुर शास्त्री
८३. साप्ताहिक साक्षी दिल्ली
८४. रिसाला देवरस
८५. आदिमजाति सेवक सङ्घ
८६. कबीर साहेब के पद
८७. बाइबिल पाठ्यक्रम, पूणे
८८. धर्म सूत्र
८९. धर्म–ध्वनि
९०. काल्पनिक तर्क विज्ञ
९१. सन्तवाणी – *कल्याण*
९२. संत रविदासजी की वाणी
९३. मीराबाई शब्दावलि
९४. अचलराम भजन प्रकाश
९५. भक्तमाल – *नाभाजी कृत*
९६. मैक्समूलर द्वारा महारानी विक्टोरिया को लिखे गये पत्र का अंश
९७. वाकेआत आलमगिरी
९८. विकृत वल्ली
९९. महान भारत
१००. सुभाषित सार
१०१. धम्मपद जैनशास्त्र
१०२. विश्व कोष
१०३. श्री हरिसागर—*स्वामी हरिरामजी*
१०४. आचार्य सुबोध चरितामृत
१०५. त्रिकाल रहस्य—*स्वामी रामप्रकाशाचार्य*
१०६. रामपद्धतिविलास
१०७. विविध सन्तों की साखियाँ
१०८. किम्वदन्तियाँ
१०९. लेखक द्वारा स्वरचित पद्यात्मक काव्य एवं तर्क–युक्तियाँ

✻ अन्य प्रकाशन से ✻

लेखक की स्वकृतियाँ

(१) राग काफी पद, छन्द डेढ़वा

इतने ग्रन्थ पढ़े कब प्राणी, सारी ऊमर जावे, सार न पावे ।टेर ॥
चार वेद उपवेद पुनि वर, पुराण अष्टादश गावे ॥१ ॥
ग्रन्थ स्मृति सात रु बीसा, नव व्याकरण बतलावे ॥२ ॥
एक शतक रु अष्ट उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ बतावे ॥३ ॥
गीता नाना ग्रन्थ रामायण, नाना वाणी थावे ॥४ ॥
कर्म उपासक कोटिक पुस्तक, पढ़ सुन भ्रम भुलावे ॥५ ॥
"रामप्रकाश" सन्त ब्रह्मज्ञानी, रमझ समझ दरसावे ॥६ ॥

(२) राग आसावरी, टोडी पद

साधो भाई! रामप्रकाश विचारा।
रामप्रकाश सकल में व्यापक, सर्वातीत निरधारा ।टेर ॥
रामप्रकाश प्रेरक माया का, जीव रु ईश प्रचारा ।
रामप्रकाश अचल सत चेतन, ताका सकल पसारा ॥१ ॥
रामप्रकाश देवासुर गन्धर्व, नर पशुवादि अचारा ।
रामप्रकाश नाक पाताला, चौदह लोक विस्तारा ॥२ ॥
रामप्रकाश की लीला सारी, अद्‌भुत खेल सञ्चारा ।
रामप्रकाश की महिमा गावत, शेष शारद कवि हारा ॥३ ॥
उत्तमरामप्रकाश परमानन्द, रामप्रकाश उचारा ।
रामप्रकाश अद्वैत विशिष्ठा, त्रिगुण जाल निहारा ॥४ ॥
रामप्रकाश गुरु मय चेला, भेदाऽभेद विडारा ।
रामप्रकाश एक शुद्ध चेतन, अपना आप अधारा ॥५ ॥

हरिसागर

[समस्त ज्ञानों का भण्डार]

यह पुस्तक 'कविता' में सत्ताइस अङ्गों में विभक्त हैं।

(१) गुरु महिमा का अङ्ग
(२) अजाणी
(३) जाणी
(४) गुरु पहिचान का अङ्ग
(५) गुरु अवस्था,
(६) गरु शिष्य संवाद,
(७) पापी का अङ्ग
(८) मूर्ख को अङ्ग
(९) भक्त चतुर को अङ्ग
(१०) षट् दर्शन सार
(११) चौदह विद्या का अङ्ग
(१२) राजनीति का अङ्ग
(१४) माया का अङ्ग
(१५) त्याग का अङ्ग
(१६) व्यभिचारिणी का अङ्ग
(१७) शील का अङ्ग
(१८) सुमरण का अङ्ग
(१९) जोग चाणक का अङ्ग
(२०) योग का अङ्ग
(२१) गुरु पुराण का अङ्ग
(२२) मन का अङ्ग
(२३) चाणक का अङ्ग
(२४) साधु का अङ्ग
(२५) विचार का अङ्ग
(२६) कबीरजी और सुखरामजी महाराज के प्रश्नोत्तर,
(२७) अचलरामजी महाराज की सैलाणी (ब्रह्म प्राप्ति का सुगम मार्ग)

इत्यादि अङ्गों से विभूषित यह ग्रन्थ
"योगेन्द्र" श्री हरिरामजी महाराज विरचित है।
मूल्य ४५ रुपये

उत्तम आश्रम जोधपुर का प्रसिद्ध उत्तम साहित्य

१.	आचार्य सुबोध चरितामृत	श्री सम्प्रदाय शोद्ध ग्रन्थ, ११८ पीढ़ि दर्शन
२.	सन्तदास अनुभव विलास	गूदड़ गद्दी श्रीआद्याचार्य कृत गुरु स्मृति वाणी
३.	श्री हरिसागर	आद्याचार्य श्री स्वामी हरिरामजी महाराज विरचित
४.	सुखराम दर्पण (८४ भजन)	अचलोत्तम ज्ञान पीयूष वर्षणी टीका
५.	आध्यात्मिक संत वाणी शब्दकोष (परिशिष्ठ भाग)	दो खण्ड, सुखराम दर्पण
६.	अचलराम भजन प्रकाश	४२५ भजन विविध राग रागिनियों में
७.	वाणी प्रकाश	छः महात्माओं की अनुभव वाणी
८.	उत्तमराम भजन प्रकाश	(ग्लेज कागज) तृतीयावृत्ति, विभिन्न भजन
९.	अवधूत ज्ञान चिन्तामणि	विविध प्रक्रिया भजन, झूलना, इन्दव, दोहा, चौपाई
१०.	पिङ्गल रहस्य (छन्द विवेचन)	गद्य-पद्य सहित सम्पूर्ण विवरण, काव्य षोडस कर्म
११.	भारतीय समाज दर्शन	सनातन वर्ण व्यवस्था का प्राचीन एवं अर्वाचीन रूप
१२.	नशा खण्डन दर्पण	२६ नशों की त्याग विधि, इतिहास, आदर्श शिक्षा
१३.	विश्वकर्मा कला दर्शन	वेदान्त शब्दकोष, प्रश्नोत्तर, कला, मुहूर्त, पूजन, अनुच्छेद
१४.	रामप्रकाशन शब्दावलि	प्रश्नोत्तर भजन, वेदान्त पदार्थ कोष
१५.	रामप्रकाश शब्द सुधाकर	७ द्वीप, ९ खण्ड सहित अनुपम भजन, गर्भ चेतावनी
१६.	रामरक्षा अनुष्ठान संग्रह	विभिन्न सन्तों की २१ रक्षाऐं, साधन विधि सहित
१७.	उत्तमरामप्रकाश भजन प्रदीपिका	बेजोड़ गुरु-शिष्य के अनुभव २५१ भजन
१८.	गूढ़ार्थ भजन मञ्जरी	राश्यार्थ एवं कूटार्थ २१६ दोहा, सटिप्पणी
१९.	दैनिक चिन्तन डायरी	मनन योग्य, ३६५ दिनों में उत्तमोपदेश पठन
२०.	सन्ध्या विज्ञान	स्वामी अचलरामजी महाराज द्वारा विरचित दुर्लभ ग्रन्थ
२१.	स्वयं सिद्ध श्री राम नव स्तोत्र	मानस कामना सिद्ध, नित्य पाठ
२२.	सुगम उपचार दर्शन	देवीदान आयुर्वैदिक औषधि कल्पतरू
२३.	सुगम चिकित्सा (प्रथम भाग)	स्वामी अचलरामजी द्वारा लिखित
२४.	सुगम चिकित्सा (द्वितीय भाग)	स्त्री-पुरुषों के गुप्त रोगों पर इलाज
२५.	एक लाख वर्ष का पत्राकार कैलेण्डर	ईसवी सन्, मास, वर्ष, तारीख, वार
२६.	उत्तम बाल योग रत्नावलि	कर्म, स्वर, ज्योतिष का योग
२७.	स्वाध्याय वेदान्त दर्शन	सारुक्तावलि, विचारमाला, विचारचन्द्रोदयादि मूल ५ पाठ ग्रंथ
२८.	रत्नमाल चिन्तामणि (प्रथम भाग)	छः सौ प्रश्नोत्तर, उपदेश दोहा
२९.	रामायण मन्त्र उपासना	रामायण की सिद्ध चौपाईयाँ
३०.	उत्तमराम अनुभव प्रकाश	स्वामी रामप्रकाशाचार्य कृत ३२१ भजन, वेदान्त
३१.	रामदेव गप्प दर्शन	पोल में ढ़ोल १२५ प्रश्न, उपासना का अनावरण
३२.	उत्तम बाल ज्योतिष दोहावलि	कण्ठस्थ करने में सुलभ ७०० दोहा छन्द
३३.	वेदान्त भूषण वैराग्य दर्शन	वैराग शतक, भाव रसामृत, बोध प्रकाशादि तीन ग्रंथ

ISBN - 81-88138-06-1

सम्पर्क करें - उत्तम आश्रम (आचार्य पीठ), कागातीर्थ मार्ग, जोधपुर-३४२००६